पंचम

श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय

छिंदवाड़ा

ज्ञान रत्नाकर

पंचम वर्ष

सन् २०१५

प्रकाशक

श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान

छिंदवाड़ा मध्यप्रदेश

वर्ष

श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय
छिंदवाड़ा

ज्ञान रत्नाकर

पंचम वर्ष

सन् २०१५

प्रकाशक

श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान
छिंदवाड़ा मध्यप्रदेश

मूल्य - २५० रुपया

प्रस्तावना

अध्यात्म सुमनों की सुरभि से साधना का उपवन सदा सुरभित होता रहा है। संतों की साधना और साहित्य इस आध्यात्मिक वसुंधरा की संस्कृति को शाश्वत पहचान देती है। साहित्य का स्वर्णकाल भक्तिमय, संतमय था। विशेष रूप से चौदहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तो अनेक संतों द्वारा नि:सृत, अनुभूत दर्शन, योग, सिद्धांतों की परिचायक है। वीतरागी संत आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज ऐसे ही संत शिरोमणी हैं। जिन्होंने स्वयं वीतराग धर्म की निश्चय साधना करते हुए शुद्धात्मानुभव रूप चौदह ग्रंथों में जैनागम का सारभूत सृजन किया है। उनकी यह वाणी स्वप्रसूत ज्ञानगंगा है, जिसने भारतीय साहित्य वाङ्मय में आध्यात्मिक परम्परा को नवीन मार्ग दिया है। रत्नराशियों की तरह आभावान यह चौदह ग्रंथ किसी जीव के मोक्षगमन में प्रेरणा बन जायें तो कोई आश्चर्य नहीं। अत: श्रीमद् जिन तारण तरण ज्ञान संस्थान ने मुक्ति प्रेरक, सहकारी इन ग्रंथों को श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय के पंचवर्षीय पाठ्यक्रम का आधार बनाया है। इस आधार की भावभूमि जैनाचार्यों की मूल परम्परा को अनुश्रुत करती है। तीर्थंकरों की दिव्य देशना, गणधरों की वाणी, आचार्यों की लिपियों ने संत पुरुषों को यह गंगधारा सौंपी है; वहीं आज घर-घर में प्रवाहित करने का लक्ष्य इस ज्ञानयज्ञ की महत्वाकांक्षा है। इक्कीसवीं सदी, भौतिकता, विदेशी संस्कृति, संस्कारों का तिरोहित होता जाना आज के समय की शोचनीय चिन्ता है। इस प्रभाव ने संसार, देश व समाज में आध्यात्मिक, धार्मिक संस्कारों को धूमिल किया है। अत: पुन: आध्यात्मिक क्रांति का शंखनाद करते हुए श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान पंचवर्षीय पाठ्यक्रम द्वारा शिक्षा, प्रयोग, आचरण, स्वाध्याय और प्रचार के साधन के माध्यम से जैनागम, सिद्धांत एवं आम्नाय में दक्ष करने हेतु इस कर्तव्य-रथ पर आरूढ़ है।

अखिल भारतीय तारण तरण दिगंबर जैन समाज का यह प्रथम अद्भुत चरण है। अध्यात्म रत्न बाल ब्र. श्री बसंत जी की प्रबल प्रेरणा से ही श्रीसंघ के मार्गदर्शन में श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय का यह स्वरूप धर्मनगरी छिंदवाड़ा में साकार हुआ है। सत्य तो यह है कि आत्म साधक चिंतक बाल ब्र. श्री बसंत जी ने आचार्य प्रवर श्री जिन तारण तरण की दिव्य देशना को जन-जन तक पहुँचाने का विचार वर्षों से संजोया था, वह श्रीसंघ तथा विद्वत्जनों के अपूर्व सहयोग से मूर्त रूप ले रहा है।

श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान द्वारा संचालित श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय पत्राचार माध्यम से देश, समाज के समस्त वर्गों में स्वाध्याय की रुचि जाग्रत कर, उन्हें शास्त्री की गरिमामय उपाधि से अलंकृत करेगा। समाज में प्रचलित आचरण-अध्यात्म एवं परम्परा से सम्बंधित समस्त भ्रांतियों का उन्मूलन कर सम्यक् आचरण का प्रयास करना भी इसका एक लक्ष्य है। आधुनिक शैक्षणिक गतिविधियों के माध्यम से शिक्षण-प्रशिक्षण, वक्ता-श्रोता गुणों का विकास इस लक्ष्य का सहायक होगा। इस ज्ञानरथ-ज्ञानयज्ञ का महती लक्ष्य अध्यात्म जाग्रति, अध्यात्म प्रभावना, भारतीय

संस्कृति की मूल मोक्षदायिनी वृत्ति का विकास करना है। संसार के समस्त जीवों में संयम, सद्ज्ञान, सद्चारित्र जागृत हो। नैतिकता, स्वाध्याय, विनम्रता की वृत्ति का विकास हो। परम्पराओं का सम्यक् आगम प्रेरित आचरण, पूज्य-पूजक विधान का ज्ञान, गुरुवाणी की प्रभावना के संस्कारों का विकास हो। मानव मात्र के जीवन में यह पाठ्य योजना आध्यात्मिक बीजारोपण कर परम आनंद में निमित्त बने। इसके लिये श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान कृत संकल्पित है। इस हेतु बहुमूल्य सुझाव भी आमंत्रित हैं।

इस पवित्र धर्म प्रभावना उपक्रम में पूज्य बाल ब्र. श्री बसंत जी की प्रेरणा, श्रद्धेय बाल ब्र. श्री आत्मानंद जी, श्रद्धेय बाल ब्र. श्री शांतानंद जी, श्रद्धेय ब्र. श्री परमानंद जी, श्रद्धेय ब्र. श्री सुखानंद जी, श्रद्धेय ब्र. श्री मुक्तानंद जी, श्रद्धेय ब्र. श्री चिदानंद जी, श्रद्धेय ब्र. श्री नित्यानंद जी, बाल ब्र. श्री अरविंद जी, बाल ब्र. राकेश जी, विदुषी बाल ब्र. बहिन उषा जी, बाल ब्र. सुषमा जी, बाल ब्र. सरला जी, ब्र. किरण जी, बाल ब्र. रचना जी, ब्र. मुन्नी बहिन जी, ब्र. आशारानी जी, बाल ब्र. संगीता जी एवं समस्त तारण तरण श्रीसंघ सदैव प्रथम स्मरणीय है। समाज के श्रेष्ठिजन, विद्वानों, चिंतकों, लेखकों तथा प्रत्यक्ष-परोक्ष, तन-मन-धन से सहयोग करने वाले सदस्यों, संयोजकों तथा समस्त साधर्मी बंधुओं, प्रवेशार्थियों का भी श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान आभार व्यक्त करता है। जिनका सहयोग ही इस ज्ञान यज्ञ की सफलता है।

श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान
संचालन कार्यालय - श्री तारण भवन,
संत तारण तरण मार्ग,
छोटी बाजार, छिंदवाड़ा (म.प्र.) ४८०००१

आभार

श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान उन सभी व्यक्तियों, संस्थाओं, मंडलों और प्रकाशकों का आभारी है, जिन्होंने इस पाठ्य पुस्तक के निर्माण में प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से अपना बहुमूल्य योगदान दिया है। पाठ्य पुस्तक में संकलित विषय वस्तु के रचनाकारों, प्रकाशकों का भी कृतज्ञ है। छायाचित्र, रेखाचित्र, परिभाषाओं एवं सिद्धांतों के सम्पादन में सहयोगी समस्त विद्वत्जनों, कलाकारों के प्रति आभारी है, जिन्होंने समय-समय पर अपने अमूल्य सुझाव दिये हैं।

ज्ञान रत्नाकर - एक रहस्यपूर्ण बोध

शुद्धात्म स्वरूप अनंत गुण रत्नों से परिपूर्ण ज्ञान रत्नाकर अर्थात् सिंधु है। पर्यायी परिणमन विनाशीक, क्षणभंगुर, उत्पन्नध्वंसी है जबकि स्वभाव त्रिकाली, अपरिणामी, ध्रुव सत्ता स्वरूप शाश्वत अविनाशी है। पर्यायी परिणमन से दृष्टि हटाकर शुद्ध स्वभाव का श्रद्धान, ज्ञान एवं रमणता यही जीव के कल्याण का मार्ग है। ज्ञान अनंत है, अगाध है, इस ज्ञान सिंधु में जो जीव गहरे उतरते हैं, स्वानुभूति में निमग्न होते हैं वे ही सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि रत्नों को प्राप्त करते हैं।

ज्ञानी जानते हैं कि स्वभाव में शांति - विभाव में अशांति है, स्वभाव त्रिकाल है - पर्याय क्षणवर्ती है। यही बोध आत्म स्वरूप के बोधपूर्वक आत्मसत्ता में लीनता का साधन बनता है। ज्ञानी स्व और पर का ज्ञाता होता है। वह द्रव्य - पर्याय को भलीभाँति जानता है और समस्त परिणमन को आत्म भिन्न जानकर यथायोग्य भूमिकानुसार स्वभाव में रमने का पुरुषार्थ करता है।

प्रतिसमय का परिणमन तत्समय की योग्यतानुसार हो रहा है, मैं आत्मा एक अखंड अविनाशी शुद्ध तत्त्व हूँ ऐसा निरंतर आराधन चिंतन मनन पूर्वक स्वानुभव करना ही जीवन की सार्थकता का उपाय है। आत्म ज्ञान पूर्वक यथार्थ वस्तु स्वरूप को जानना और तदनुरूप चर्या बनाना जीवन जीने की कला है।

पंचम वर्षीय प्रस्तुत ज्ञानरत्नाकर पाठ्यक्रम के माध्यम से सभी के जीवन में ज्ञान के अगाध सिंधु स्वरूप शुद्धात्म तत्त्व की अनुभूति प्रकट हो ऐसी मंगलकामना सहित......

- ब्र. बसन्त

णाणं जीव सरूवं

जीव का स्वरूप ज्ञान है। ज्ञान से ध्यान की सिद्धि होती है, ध्यान से समस्त कर्मों की निर्जरा होती है, निर्जरा का फल मोक्ष है अत: ज्ञानाभ्यास करना चाहिये।

श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय ज्ञानाभ्यास का सशक्त माध्यम है। आबाल वृद्ध सभी के लिये घर बैठे अपने ज्ञान का प्रकाश करने के लिये महान स्वर्ण अवसर है। आत्मा की प्रसिद्धि करने वाले ज्ञान की आराधना में सभी बन्धु आगे बढ़ें, यही मंगल भावना है।

इस मंगल कार्य में प्रेरणास्रोत अध्यात्म रत्न बाल ब्र. श्री बसन्त जी महाराज का मार्गदर्शन निरंतर प्राप्त हो रहा है।

साधक संघ के सभी श्रद्धेय साधकों, ब्रह्मचारिणी बहिनों, समस्त संयोजकों, कार्यकर्ताओं एवं समिति के सभी पदाधिकारियों का व सदस्यों, समाज बंधुओं का इस कार्य में अमूल्य योगदान प्राप्त होने से अत्यंत प्रसन्नता है। सभी प्रवेशार्थियों को बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ और आप पाँच वर्ष पूर्ण कर विशेष ज्ञान को उपार्जित करेंगे ऐसी आशा और भावना सहित सभी के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

महासचिव — **पं. जयचंद जैन**

श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान — छिंदवाड़ा (म. प्र.)

सम्पादकीय

जाइ जरा मरण भया, संजोग विजोग दुक्ख सण्णाओ। रोगादिगा य जिस्से, ण संति सा होदि सिद्ध गई।। ५२, गो. जी. कां.।। अष्ट कर्मों से रहित शीतीभूत, निरंजन, अष्टगुणी, कृतकृत्य, लोकाग्रवासी सिद्धों का यह स्वरूप सिद्ध करता है कि संसारावस्था का विनाश होने पर भी आत्मद्रव्य का विनाश नहीं होता। **उव उवन न्यान अन्मोय सिद्धि संपत्तं। (सिद्ध स्वभाव)** सिद्धि की यह संपत्ति आत्म स्वभाव, आत्मज्ञान की अनुमोदना पूर्वक होती है। **'रयणत्तय संजुत्त जिउ उत्तिमु तित्थु पवित्तु' (योगसार)** रत्नत्रय समस्त तीर्थ का सार है, यही मोक्ष का उपाय है। **'रयनत्तयंपि जोई दंसन न्यानेन सुद्ध चरनानि। चिंतंति भव्य जीवा, अप्पा समयं च सुद्ध दिट्ठीऊ।। (ज्ञानसमुच्चयसार)** इसलिये सम्यग्दृष्टि श्रावक रत्नत्रय को धारण करते हैं। सम्यग्दर्शन के स्वामी पंडित हैं, वही साधु हैं जो **'साधओ साधु लोकेन, तव व्रत क्रिया संजुतं। साधओ सुद्ध ध्यानस्य साधओ मुक्ति गामिनो' (तारण तरण श्रावकाचार)** और वही केवलज्ञानी मुक्ति को प्राप्त करते हैं। केवलज्ञान प्रत्यक्ष है, श्रुतज्ञान परोक्ष है। श्रुतज्ञान से द्रव्य पर्याय जानने के लिये नयज्ञान की चक्रभेदी दृष्टि आवश्यक है। अनेकांत - स्याद्वादमयी जिनागम का मर्म भेद नयज्ञान से होता है। **सत्थ पढंतहं ते वि जड अप्पा जे ण मुणंति** अर्थात् केवल शास्त्र पढ़ते हुए जो आत्मा को नहीं जानते वे अज्ञानी हैं। **विरला जाणहिं तत्तु** विरले ही पंडित आत्म तत्त्व को जानते हैं। निश्चय - व्यवहार नय अपेक्षा शुद्ध द्रव्य का निर्णय करके उसे प्राप्त करने वाले तीर्थंकर, केवली, सिद्ध भगवान संसारी जीवों के आदर्श हैं। मनु पुरुषों से आरम्भ वर्तमान कर्मभूमि में आदि पुरुष ऋषभदेव तीर्थंकर का कर्मठ वीतराग, चक्रवर्ती भरतेश्वर का अलिप्त वीतराग, राम का आदर्श वीतराग आदि अनेक अंग-प्रसिद्ध कथा प्रसंग हमारे स्वभाव, चारित्र, आदर्श और सार निर्णय का हेतु बनते हैं। आर्य भूमि भारत की यह धरा केवलियों के इन चारित्र चिह्नों से सदैव उपकृत रहेगी। यह उपकार तभी अंगीकार कहलायेगा जब आत्मानुभव माणिक रत्न से स्वदीप्त होकर हम भी कृतकृत्य हो जायें।

जिनागम के माणिक मोती लेकर अनुभव गागर में भरने के लिये **'ज्ञान रत्नाकर'** यह सहज संकलन पंचम वर्षीय पाठ्यक्रम **'शास्त्री'** की पाठ्यपुस्तक के रूप में समर्पित है। छिंदवाड़ा में अध्यात्म रत्न बाल ब्र. बसन्त जी की पावन प्रेरणा से स्थापित श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय का यह पंचम पुष्प है। पत्राचार पद्धति से आगम का सार आपके हृदय मंदिर में स्थापित करने के लिये हम संकल्पित हैं।

विगत चार वर्षों में इस रत्नाकर में आगम अध्यात्म के अति सूक्ष्म गूढ़ रहस्यों को संजोया गया है। ज्ञानोदय में - छहढाला, ममलपाहुड़ फूलना, मालारोहण, देव गुरु शास्त्र पूजा। ज्ञानपुष्प में - वृहद् मंदिरविधि, पंडितपूजा, कमलबत्तीसी, अध्यात्म आराधना, जैन सिद्धांत प्रवेशिका। ज्ञान रत्न में - तारण तरण श्रावकाचार, तत्त्वार्थ सूत्र, जैन सिद्धांत प्रवेशिका। ज्ञान वैभव में - पुनः तारण तरण श्रावकाचार, द्रव्य संग्रह, अध्यात्म अमृत कलश, त्रिभंगीसार, छद्मस्थवाणी तथा आचार्य परिचय सम्मिलित है। पाँचवें वर्ष में 'ज्ञान रत्नाकर' गोम्मटसार जीवकांड के अंश जीवसमास (नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ती विरचित), योगीन्दुदेव प्रणीत योगसार, श्री तारण तरण मंडलाचार्य जी विरचित सिद्ध स्वभाव, ज्ञानसमुच्चयसार, श्रावकाचार, माइल्ल धवल प्रणीत द्रव्यभाव प्रकाशक नयचक्र आधारित नय परिचय, त्रिकालवर्ती महापुरुष और सिद्धांत समाहित कथा प्रसंगों

की हिलोरों से मुक्ताहार बनाने जा रहा है। आशा है पंचवर्षीय पाठ्यक्रम में सम्मिलित आगम सम्मत प्रकरणों को अपनी बुद्धि, प्रज्ञा के द्वारा स्वाध्याय पूर्वक आत्मानुभव का विषय बनाकर जो परीक्षार्थी प्राप्त क्षयोपशमानुसार मनन करेंगे तथा जो अपनी ग्राह्य बुद्धि को तीक्ष्ण करने हेतु निरंतर स्वाध्याय, प्रेक्षा, मनन, चिंतन में रत रहकर आत्म स्वरूप का निर्णय करेंगे, वे निश्चित ही शास्त्री की प्रवीणता को प्राप्त करेंगे।

'ज्ञान रत्नाकर' में आत्म वस्तु का निर्णय करने हेतु चार अध्याय संयोजित हैं। प्रथमत: 'चारित्र निर्णय' में **अ** – तारण तरण श्रावकाचार की गाथा ३०७ से ४६२ सम्मिलित हैं। इसमें अविरत सम्यग्दृष्टि का स्वभाव आश्रित चारित्र, देशव्रती श्रावक तथा संक्षिप्त में मुनिधर्म का विवेचन भी किया गया है। **ब** – जीवसमास संसारी जीवों को स्थान, योनि, कुलकोडि और शरीर अवगाहना अपेक्षा वर्गीकृत करता है। जीव दया और आचार शद्धि प्रेरक ये विषय चारित्र निर्णय के हेतु बनेंगे।

'ज्ञान रत्नाकर' में द्वितीयत: 'स्वभाव निर्णय' है। **अ** – योगसार में आचार्य योगीन्दुदेव ने १०८ दोहों में मोक्षमार्ग के विवेचन सहित शुद्धात्म साधना योग का सार बतलाया है। यह कृति स्वभाव निर्णय में उपयोगी है। **ब** – आचार्य तारण स्वामी जी विरचित सिद्ध स्वभाव के २० सूत्र सिद्ध स्वभाव के निर्णायक हैं। स्वसमय के मनन, रमण, अन्मोयं से ही सिद्धि होती है ऐसा निर्णय स्वभाव निर्णय है।

तृतीयत: आदर्श निर्णय है। तीन लोक में देव गुरु शास्त्र सच्चे आदर्श हैं। प्रथमानुयोग आधारित **अ** – त्रिकालवर्ती महापुरुषों के लक्षण, स्वरूप, वैभव और विपुल वैभव को तृणवत् मानने वाले आत्म वैभव से पुरस्कृत सिद्ध पुरुषों का वर्णन रोमांचित कर देता है। यह अध्याय वैराग्य हेतु आदर्श बनेगा। **ब** – श्रुत परम्परा से प्राप्त प्रथमानुयोग के कथानक आचरण की शुद्धता हेतु आदर्श के निमित्त बनेंगे।

'ज्ञान रत्नाकर' का चौथा सोपान है 'सार निर्णय'। **अ** – ज्ञानसमुच्चयसार की गाथा ९५ से २९५ में रत्नत्रय की आराधना सहित श्रावक का समग्र आचरण ज्ञान प्रधान कैसे होता है इसका विवेचन किया है। **ब**– नय परिचय जिनागम का सार है। प्रमाण और नयों से निज शुद्धात्मा को प्रकाशित किया है। मूलनय, नैगमादि नयों, अनेकांत स्याद्वाद और सप्तभंगी न्याय से अपने स्वरूप का निर्णय सार निर्णय होगा। इसके साथ ही श्रुतज्ञान का सामान्य परिचय भी दृष्टि विस्तार हेतु आवश्यक है।

समग्रत: यह '**ज्ञान रत्नाकर**' पंचवर्षीय पाठ्य विषयों के आलोक में चारित्र, स्वभाव, आदर्श, सार का निर्णय कर जिनमार्ग में प्रविष्ट राही को प्रवीण, प्रज्ञ, शास्त्री बनायेगा, ऐसी आशा है। वस्तुत: जैनागम और अध्यात्म में स्वाध्याय के विकल्प कभी समाप्त नहीं होते। इसलिये पुस्तक में सहज सुबोध प्रश्न, विषयानुरूप सारणी संपादित हैं। मॉडल प्रश्नपत्र परीक्षोपयोगी हैं। यह आयोजन अध्यात्म रत्न बाल ब्र. श्री बसन्त जी के परिश्रम साध्य उपक्रम का परिणाम है। विद्वत् सम्पादकों ने आवश्यक संशोधन किये हैं।

समस्त ग्रन्थकारों, टीकाकारों एवं लेखकगणों सहित समस्त सहयोगीजनों के प्रति कृतज्ञता सहित त्रुटियों के प्रति सुधी पाठक, चिंतक, विद्वत्समूह संचेतक होंगे ऐसी अपेक्षा है।

डॉ. श्रीमती मनीषा जैन, उप प्राचार्य
श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय
छिंदवाड़ा (मध्यप्रदेश)

दिनांक ०७ मार्च २०१४

प्राक्कथन

श्रमण संस्कृति में भगवान महावीर की आचार्य परम्परा के अंतर्गत श्री कुंदकुंदाचार्य, श्री योगीन्दुदेव, श्री अमृतचंद्राचार्य, श्री उमा स्वामी आदि आचार्यों की श्रृंखला में सोलहवीं शताब्दी में हुए महान संत आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज तत्त्वदृष्टा, आत्मयोगी, आध्यात्मिक क्रांतिकारी युगपुरुष थे। आपकी तत्त्वनिष्ठा पूर्ण वाणी से प्रेरणा प्राप्त कर अनेकों जीवों ने अपने आत्म कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया था। श्री गुरुदेव के द्वारा रचित चौदह ग्रन्थ युगों-युगों तक प्रत्येक मानव को आत्म कल्याण की प्रेरणा प्रदान करते रहेंगे।

शुद्धात्मा के आराधक, आत्मज्ञान की प्रभा से अलंकृत, रत्नत्रय की साधना में तल्लीन रहने वाले आचार्य श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज एक ओर क्रांतिकारी संत थे तो दूसरे ओर धर्म, समाज व संस्कृति के उन्नायक थे।

यह वह समय था जबकि देव, गुरू, धर्म के नाम पर भट्टारकीय आडम्बर और क्रियाकांडों में उलझकर जनमानस दिग्भ्रमित हो रहा था, ऐसे समय में आचार्य श्री जिन तारण स्वामी जी ने धर्म का यथार्थ स्वरूप समझाया कि प्रत्येक जीव अपने अंतरंग में विद्यमान चैतन्य सत्ता स्वरूप की अनुभूति करके मोक्षमार्ग प्रशस्त कर सकता है।

श्री गुरुदेव के उपदेशों को समझने और ग्रहण करने के अभिप्राय से अध्यात्म रत्न बाल ब्रह्मचारी पूज्य श्री बसन्त जी महाराज एवं साधक संघ के अथक प्रयासों से श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय की स्थापना हुई थी और यह पाँचवें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। पूज्य बसन्त जी महाराज ने दूरगामी सुफल का विचार करके अत्यधिक परिश्रम कर पंचवर्षीय पाठ्यक्रम की पुस्तकों को तैयार करने का महान कार्य किया है। जिससे सम्पूर्ण विषय हर दृष्टि से छन-छन कर हम सबके पास तक पहुँचा है और विषय वस्तु को समझने में अत्यधिक सुगमता हुई है।

प्रस्तुत ज्ञान रत्नाकर पंचम वर्षीय पाठ्यक्रम है। इसमें श्री श्रावकाचार जी, श्री ज्ञानसमुच्चयसार जी, श्री योगसार जी, कथानक प्रथमानुयोग, त्रिकालवर्ती महापुरुष, सिद्ध स्वभाव का समावेश किया गया है। इन सभी ग्रन्थों के माध्यम से आत्म शुद्धि का पथ प्रशस्त होगा। यह अंतिम वर्ष का पाठ्यक्रम है, महाविद्यालय के सभी प्रवेशार्थी आगम ज्ञान का स्वयं के जीवन में प्रयोग करते हुए अर्जित ज्ञान से अन्य जीवों को भी लाभान्वित करायें यही इस ज्ञानार्जन की सार्थकता होगी।

समस्त प्रवेशार्थियों के मंगलमय जीवन के लिये अनेक - अनेक शुभकामनाएँ............

प्रो. डॉ. उदय कुमार जैन, प्राचार्य
श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय
छिन्दवाड़ा (म.प्र.)

दिनांक १५ मार्च २०१४

डालचंद जैन (पूर्व सांसद)
अध्यक्ष – विश्व अहिंसा संघ, नई दिल्ली
अध्यक्ष – मध्यप्रदेश स्वतंत्रता संग्राम सेनानी
फेडरेशन, भोपाल (म.प्र.)

निवास : श्रीमंत भवन, बी.एस. जैन मार्ग
राजीव नगर, सागर (म.प्र.)
नि. : २६८०२७, २६८०५९
आ. : २६८०४९,२६८०१७
फैक्स : (०७५८२) २६८०७९ तार : बालक
email : sagarmp@hotmail.com

अध्यात्म रत्न बा. ब्र. बसंत जी
संस्थापक
श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय
छिंदवाड़ा

सादर जय तारण तरण

श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय की योजना प्रारंभ कर श्री तारण तरण दिग. जैन समाज में एक नया युग प्रारंभ करने की दिशा में अच्छी पहल की शुरुआत की है। हम इसकी सराहना करते हुए स्वागत करते हैं। हमारी समाज में धर्म के ज्ञान धन की वृद्धि हो, इस योजना में समाज के सभी विद्वानों का सहयोग प्राप्त हो।

योजना की सफलता की कामना करता हूँ।

सादर भावनाओं के साथ.........

आपका शुभेच्छु

(डालचंद जैन)

- निबंध लेखन के विषय -

पंचम वर्ष के पाठ्यक्रम में प्रत्येक प्रवेशार्थी को निम्नलिखित १० विषयों में से किसी एक विषय पर १००० शब्दों में निबंध लिखकर स्थानीय संयोजक के माध्यम से महाविद्यालय कार्यालय छिंदवाड़ा पहुँचाना अनिवार्य है।

आपके द्वारा प्रेषित किये जाने वाले निबंध में आप आगम ग्रन्थ, तारण साहित्य आदि के संदर्भ भी लिख सकते हैं। पंच वर्षीय अध्ययन के अनुसार यह निबंध आपकी चिंतन शैली को गति प्रदान करेगा।

०१. सम्यग्दर्शन का स्वरूप, प्राप्ति की विधि एवं लाभ।

०२. चतुर्गति के दु:खों का वर्णन एवं छूटने का उपाय।

०३. मंदिरविधि का सामाजिक एवं धार्मिक महत्व।
(मंदिरविधि में प्रयुक्त विषय वस्तु का उल्लेख करते हुए)

०४. अविरती श्रावक की चर्या, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उत्पन्न हुईं शिथिलताएँ (विकृतियाँ) एवं स्वस्थ समाज के निर्माण की आवश्यकता।

०५. कर्म बंध का सांगोपांग विवेचन तथा स्वयं के लिये सावधानियाँ।

०६. जीव के नौ अधिकारों के विवेचन सहित प्रयोगपरक जीवन शैली।

०७. कर्ता कर्म सम्बंधी भूल एवं यथार्थ वस्तु स्वरूप।

०८. सात तत्त्वों के विवेचन सहित मोक्ष का विषद् स्वरूप एवं प्राप्ति का उपाय।

०९. व्रत भेद - प्रभेद एवं स्वयं के जीवन में व्रतों की उपयोगिता।
(श्रावकाचार, ज्ञानसमुच्चयसार, छहढाला एवं तत्त्वार्थसूत्र आदि के आधार पर)

१०. फूलना का भाव सौंदर्य एवं आधुनिक युग में फूलना प्रयोग से लाभ।
(मुक्तिश्री फूलना, चेतक हियरा, अन्मोय चौबीसी, चितनौटा, जनगन बावलो)

....

ज्ञानरत्नाकर समर्पित है .....

जं तारन तरन कल कमल रमन जिनु,
रमि रमिय समय उव उवनं ।
उवन समय उव उवन हियं जिनु,
सम समय उवन सिद्धि गमनं ।।
स्वामी हो बलिहारी समय जिन केरी,
सम समय विवान सिद्धि गमनं ।।

की
अनवरत ज्ञान धारा प्रवाहित करने वाले
आचार्य प्रवर
श्रीमद् जिन तारण स्वामी जी के प्रति,
जिनके,
स्वानुभूति से प्रस्फुटित अमृत वचन
दैदीप्यमान रत्नमणि के समान ज्ञानानुभव प्रकाशित कर रहे हैं।
साथ ही,
उनकी विशुद्ध आम्नाय को सहेजने वाले
विविध कलाओं में निष्णात
धर्म दिवाकर पूज्य श्री गुलाबचंद जी महाराज,
समाजरत्न पूज्य श्री ब्र. जयसागर जी महाराज,
अध्यात्म शिरोमणी पूज्य श्री ब्र. ज्ञानानन्द जी महाराज
सहित
धर्म प्रभावक जागृत चेतनाओं के प्रति।

अनुक्रमणिका...........

क्र.	विवरण	पृष्ठ क्रमाँक
०१.	नियमावली	I
०२.	परीक्षा योजना	II
०३.	प्रार्थना : ब्र. बसन्त जी	III
०४.	**अध्याय एक : [अ] श्री तारण तरण श्रावकाचार :** आचार्य तारण स्वामी जी	**००१ - ०३८**
अ -	अविरत सम्यग्दृष्टि के षट्कर्म	००१ - ०१३
ब -	ग्यारह प्रतिमा एवं पाँच अणुव्रत कथन	०१३ - ०२५
स -	साधु अरिहंत एवं सिद्ध पद	०२५ - ०२८
द -	ग्रन्थ लेखन का उद्देश्य एवं प्रश्नोत्तर	०२८ - ०३८
	[ब] जीवसमास - श्री नेमिचंद्राचार्य विरचित गोम्मटसार के आधार पर	**०३९ - ०६०**
	जीव समास स्वरूप	०३९ - ०६०
०५.	**अध्याय दो : [अ] श्री योगसार जी ग्रन्थ** - आचार्य श्री योगीन्दुदेव	**०६१ - १०६**
	श्री योगसार ग्रन्थ परिचय एवं ०१ - १०८ गाथा [पूर्ण]	०६१ - १०६
	[ब] श्री सिद्ध स्वभाव जी - आचार्य श्री तारण स्वामी जी	**१०७ - ११८**
	श्री सिद्ध स्वभाव जी ग्रन्थ परिचय एवं सूत्र ०१ - २० विवेचन [पूर्ण]	१०७ - ११८
०६.	**अध्याय तीन : [अ] त्रिकालवर्ती महापुरुष** - संकलनकर्ता - श्री आदिसागर जी मुनिराज	**११९ - १६४**
	१६९ महापुरुष एवं प्रथमानुयोग विवेचन	११९ - १६४
	[ब] आराधना कथाकोष - [ब्र. श्री नेमिदत्त जी] के आधार पर	**१६५ - २१४**
	प्रथमानुयोग कथानक बोध	१६५ - २१४
०७.	**अध्याय चार : [अ] श्री ज्ञानसमुच्चयसार जी** - आचार्य तारण स्वामी जी	**२१५ - २६०**
अ -	प्रथम करने योग्य कार्य एवं शुद्ध-अशुद्ध उपभोग विवेचन	२१५ - २१७
ब -	प्रत्यक्ष-परोक्ष प्रमाण कथन	२१७ - २१८
स -	तीन प्रकार का मिथ्यात्व वर्णन	२१८ - २२०
द -	अनंतानुबंधी चार कषाय	२२० - २२६
इ -	अविरत सम्यग्दृष्टि का स्वरूप	२२६ - २२९
फ -	उपादेय पदवी धारी ज्ञानी का उपदेश तथा वीतराग भाव की साधना	२२९ - २३०
क -	प्रथम उपदेश सम्यक्त्व एवं उसके पच्चीस दोषों का स्वरूप	२३१ - २३८
ख -	आठ मूलगुणों का पालन और आठ अवगुणों का त्याग	२३९ - २४५
ग -	रत्नत्रय की साधना	२४५ - २४८
घ -	तीन पात्र और चार दान कथन	२४८ - २५३
ङ -	जलगालन	२५४ - ०००
च -	रात्रि भोजन त्याग, १८ क्रियाओं की पूर्णता,	
	श्री ज्ञानसमुच्चयसार - सार कथन एवं प्रश्नोत्तर.....	२५४ - २६०
	[ब] नय परिचय एवं श्रुतज्ञान - द्र.स्व.प्रका.नयचक्र एवं जी.कां पर आधारित	**२६१ - २८३**
०८.	**मॉडल प्रश्न पत्र ०१-०४, एवं प्रवेश आवेदन पत्र**	**२८४ - २८८**

नियमावली -

०१. महाविद्यालय द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम में पंजीयन हेतु सभी इच्छुक विद्यार्थी पात्र हैं, जाति बंधन नहीं है।

०२. एक वर्षीय पाठ्यक्रम के अंतर्गत दिये जाने वाले ४ अध्यायों का पूरा अध्ययन करना अनिवार्य होगा।

०३. सभी पाठ्यक्रमों में प्रवेश हेतु न्यूनतम आयु सीमा १५ वर्ष रहेगी।

०४. प्रत्येक पाठ्यक्रम का अंतिम परीक्षाफल वार्षिक परीक्षा में प्राप्त अंकों को जोड़कर घोषित किया जावेगा।

०५. विद्यार्थियों की संख्या के आधार पर परीक्षा केन्द्र निर्धारित किये जावेंगे। प्रत्येक परीक्षा केन्द्र में न्यूनतम २५ परीक्षार्थी होना अनिवार्य है।

०६. परीक्षा परिणाम की अंकसूची वार्षिक परीक्षा के पश्चात् डाक द्वारा भेजी जावेगी एवं मेरिट में आने वाले छात्रों के लिये विशेष पुरस्कार प्रदान किये जावेंगे।

०७. प्रमाण पत्र पाँचवें वर्ष की परीक्षा के पश्चात् प्रदान किये जावेंगे।

०८. पाँचवे वर्ष की परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले परीक्षार्थियों को 'शास्त्री' उपाधि से अलंकृत किया जावेगा।

०९. आवेदन पत्र प्राप्त होने पर महाविद्यालय द्वारा नामांकन क्रमांक भेजने के पश्चात् पाठ्यक्रम के अनुसार विद्यार्थी को अपनी पढ़ाई स्वयं करना होगी, केन्द्र द्वारा अध्ययन हेतु पाठ्य सामग्री भेजी जावेगी।

१०. विद्यार्थी को व्यक्तिगत रूप से अपने सामाजिक और धार्मिक कार्यों में सक्रिय रहना अपेक्षित रहेगा।

११. समय-समय पर महाविद्यालय द्वारा निर्देशित नियमों का पालन करना।

१२. प्रत्येक विद्यार्थी की प्रवेश शुल्क ३५०/- रु. होगी जो एक मुश्त देय होगी, जिसमें प्रवेश शुल्क, पाठ्य सामग्री एवं परीक्षा शुल्क सम्मिलित है। अगली कक्षा में प्रवेश हेतु समिति द्वारा निर्धारित शुल्क परीक्षा परिणाम घोषित होने के बाद एक माह में जमा करना होगा। पाठ्य पुस्तक में पीछे प्रकाशित किया गया आवेदन पत्र शुल्क सहित भेजें।

१३. अंतिम वर्ष में निबंध लेखन हेतु १०० अंक निर्धारित हैं। अत: प्रत्येक प्रवेशार्थी को १००० शब्दों में निबंध लिखकर जमा करना होगा। जिनके पास पुस्तकें उपलब्ध हैं वे १५० रु. शुल्क जमा कर अगली कक्षा में प्रवेश ले सकेंगे।

१४. महाविद्यालय कार्यालय से पत्र व्यवहार करने के लिये अपने नामांकन/अनुक्रमांक का उल्लेख अवश्य करें।

१५. अलंकरण समारोह तीर्थक्षेत्रों के वार्षिक आयोजन में या अन्य किसी भव्य समारोह में सम्पन्न किया जावेगा।

१६. महाविद्यालय से संबंधित समय-समय पर दी जाने वाली जानकारी और समाचार संत श्री तारण ज्योति एवं तारण बंधु में प्रकाशित किये जावेंगे।

१७. विशेष जानकारी के लिये महाविद्यालय के निर्देशक, प्राचार्य एवं उपप्राचार्य महोदय से सम्पर्क करें।

विद्यार्थियों के वर्ग विभाग एवं प्रोत्साहन योजना -

दर्शन वर्ग - १५ वर्ष से २५ वर्ष तक बालक एवं बालिका वर्ग के लिये (१० वीं कक्षा उत्तीर्ण होना अपेक्षित है।)

ज्ञान ग्रुप - २६ वर्ष से ४० वर्ष तक वयस्क पुरुष एवं महिला वर्ग के लिये।

ममल ग्रुप - ४१ वर्ष से अधिक के प्रौढ़ पुरुष एवं महिला वर्ग के लिये।

उपरोक्त प्रत्येक वर्ग में प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को पुरस्कृत किया जायेगा।

प्रवेश एवं परीक्षा का समय -

(१) इच्छित पाठ्यक्रम में प्रवेश हेतु आवेदन पत्र पूर्ण रूप से भरकर संचालन कार्यालय तारण भवन छिंदवाड़ा के पते पर भेजें। प्रवेश पत्र पाठ्य पुस्तक में पीछे प्रकाशित किया गया है। (२) आवेदन पत्र संचालन कार्यालय को ३० जून तक प्राप्त होना आवश्यक है। (३) प्रवेशार्थियों के लिये महाविद्यालय में प्रवेश १ जुलाई से प्रारम्भ होगा। (४) प्रवेशार्थियों के लिये महाविद्यालय का शुभारम्भ १ जुलाई से होगा। (५) वार्षिक परीक्षा परिणाम डाक द्वारा प्रेषित किये जावेंगे।

प्रवेशार्थियों के लिये आवश्यक नियम (पंचम वर्ष) -

(१) प्रतिदिन जिनवाणी दर्शन करना। (२) ऊँ नम: सिद्धं मंत्र की जाप करना। (३) प्रतिदिन नियम से स्वाध्याय करना।

परीक्षा योजना

१. श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान द्वारा संचालित श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय के पंचवर्षीय पाठ्यक्रम में प्रत्येक वर्ष में एक बार परीक्षा होगी। परीक्षार्थी को परीक्षा में चार प्रश्न पत्र देना अनिवार्य होगा। प्रत्येक प्रश्न पत्र में न्यूनतम ३३% अंक प्राप्त होने पर ही उत्तीर्ण घोषित किया जावेगा।

अंकों का प्रतिशत/ श्रेणी निम्नानुसार निर्धारित होगा –

अंक	श्रेणी	ग्रेड
००–३२	–	D अनुत्तीर्ण
३३–४४	तृतीय	C उत्तीर्ण
४५–६९	द्वितीय	B उत्तीर्ण
७०–८४	प्रथम	A उत्तीर्ण
८५–१००	विशेष योग्यता	A+ उत्तीर्ण

२. प्रत्येक प्रश्न–पत्र में पूर्णांक १०० होंगे। प्रश्न–पत्र में दो अंकों वाले वस्तुनिष्ठ, चार अंकों वाले (३० शब्दों में) लघु उत्तरीय प्रश्न, ६ अंकों वाले (५० शब्दों में) दीर्घ उत्तरीय तथा १० अंक का एक निबंधात्मक प्रश्न होगा। प्रत्येक प्रश्न–पत्र का प्रारूप निम्नानुसार होगा –

प्रश्न क्रमांक	वस्तुनिष्ठ प्रश्न (२ अंक)	लघु उत्तरीय प्रश्न (४ अंक)	दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (६ अंक)	निबंधात्मक प्रश्न (१० अंक)	प्रश्नों का योग
	रिक्त स्थान, सत्य/ असत्य, सही जोड़ी, विकल्प	परिभाषा, प्रकार, अंतर	अंतर, परिचय, व्याख्या, सारांश	परिचय निबंध	
	प्रश्न संख्या	प्रश्न संख्या	प्रश्न संख्या	प्रश्न संख्या	
प्रश्न १	५	–	–	–	५
प्रश्न २	५	–	–	–	५
प्रश्न ३	५	–	–	–	५
प्रश्न ४	५	–	–	–	५
प्रश्न ५	–	५	–	–	५
प्रश्न ६	–	–	५	–	५
प्रश्न ७	–	–	–	१	१
अंकों का योग	२०×२=४०	५×४=२०	५×६=३०	१×१०=१०	३१ प्रश्न
	४०	२०	३०	१०	१०० अंक

प्रार्थना

नमामि गुरु तारणम्

मोक्ष पथ प्रदर्शकम्, नमामि गुरु तारणम्।
नमामि गुरु तारणम्, नमामि गुरु तारणम्।।

वीर श्री नन्दनं, पुष्पावती जन्मनं।।
गढ़ाशाह प्रमुदितम्, नमामि गुरु तारणम्.....मोक्ष....
दीक्षा तप साधनम्, सेमरखेड़ी वनम्।।
ध्यान धारि निर्मलम्, नमामि गुरु तारणम्.....मोक्ष....
मिथ्या मद मर्दनम्, मोह भय विनाशनम्।।
स्याद्वाद भूषितम्, नमामि गुरु तारणम्.....मोक्ष....
आत्म ज्ञान दायकम्, मोक्ष मार्ग नायकम्।।
सत्य पथ प्रकाशकम्, नमामि गुरु तारणम्.....मोक्ष....
धर्म पथ प्रचारितं, ज्ञानामृत वर्षणम्।।
सूखा निसई शुभम्, नमामि गुरु तारणम्.....मोक्ष....
ज्ञान भाव स्थितम्, समाधि बेतवा तटम्।।
निसई तीर्थ वंदनम्, नमामि गुरु तारणम्.....मोक्ष....
वीतराग जगद् गुरुम्, युगकवि सु निर्मलम्।।
ब्रह्मानंद मोक्षदं, नमामि गुरु तारणम्......मोक्ष....

व्यक्तिगत व्यक्तित्व के विकास हेतु आवश्यक

सर्वप्रथम पद्मासन, अर्द्ध पद्मासन या सुखासन में बैठें, मेरुदंड सीधा रहे, नासाग्र दृष्टि हो, ऐसी मुद्रा में बैठकर संकल्प करें कि - मेरे भीतर अनंत ज्ञान का, अनंत शक्ति का, अनंत आनंद का सागर लहरा रहा है, उसका साक्षात्कार करना मेरे जीवन का परम लक्ष्य है। संकल्प के पश्चात् २ मिनिट श्वासोच्छ्वास पर ध्यान दें, पश्चात् श्वास को गहरे करें एवं ऊँ मंत्र का उच्चारण करें (अपने श्वासोच्छ्वास प्रमाण, श्वास छोड़ते समय ३/४ श्वास में ओ और १/४ श्वास में म् का उच्चारण करें) इसके बाद शांत मौन होकर शून्य ध्यान में आत्म स्वरूप में निमग्न हो जायें।
अंत में ३ बार ऊँ नमः सिद्धं एवं ३ बार ऊँ शांति मंत्र का उच्चारण करके अपने इष्ट शुद्धात्म देव को विनय भक्ति पूर्वक प्रणाम करके ध्यान पूर्ण करें।

अध्याय १

[अ]

: श्री तारण तरण श्रावकाचार जी :

आचार्य तारण स्वामी जी

अ – अविरत सम्यग्दृष्टि के षट्कर्म

ब – ग्यारह प्रतिमा एवं पाँच अणुव्रत कथन

स – साधु अरिहंत एवं सिद्ध पद

द – ग्रन्थ लेखन का उद्देश्य एवं प्रश्नोत्तर

[ब]

जीवसमास – श्री नेमिचंद्राचार्य विरचित

गोम्मटसार के आधार पर

जीव समास स्वरूप

(अ) श्री श्रावकाचार जी

आचार्य श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज द्वारा रचित श्री श्रावकाचार जी आचार मत का ग्रन्थ है। पंचम वर्षीय पाठ्यक्रम में गाथा ३०७ से ४६२ तक पूर्ण विषय है। इसके पूर्व की गाथाओं का स्वाध्याय हम पूर्व के पाठ्यक्रम में कर चुके हैं। अंतिम चरण में आचार्य देव ने अविरत सम्यग्दृष्टि के षट्कर्म का वर्णन, ग्यारह प्रतिमा विवेचन, पाँच अणुव्रत कथन करते हुए साधु पद का स्वरूप दर्शाया है। साधु ही अरिहंत पद प्राप्त करते हैं और समस्त अघातिया कर्मों को क्षय करके सिद्ध पद प्राप्त करते हैं, इस प्रकार पंच परमेष्ठी पद की प्राप्ति का कथन पूर्ण करके परमेष्ठी पद की साधना का महत्व बतलाते हुए अंत में ग्रन्थ लेखन का उद्देश्य बतलाया है कि मैंने आचरण की शुद्धतापूर्वक कर्मों के क्षय के निमित्त से श्रावकाचार ग्रन्थ की रचना की है। इस प्रकार यह ग्रन्थ आचरण को व्यवस्थित क्रम से स्पष्ट करने वाला महान ग्रन्थ है।

(अ) अविरत सम्यग्दृष्टि के षट्कर्म

अविरत सम्यग्दृष्टि श्रावक के शुद्ध - अशुद्ध षट्कर्म

अविरतं स्रावगं जेन, षट् कर्म प्रतिपालये ।
षट् कर्मं द्विविधस्चैव, सुद्धं असुद्धं पस्यते ।। ३०७ ।।

अन्वयार्थ - (अविरतं स्रावगं जेन) जो अव्रत सम्यग्दृष्टि श्रावक हैं वे **(षट् कर्म प्रतिपालये)** षट्कर्म अर्थात् छह आवश्यक कर्तव्यों का पालन करते हैं **(षट् कर्मं द्विविधस्चैव)** षट् कर्म दो प्रकार के होते हैं **(सुद्धं असुद्धं पस्यते)** जो शुद्ध और अशुद्ध देखे जाते हैं।

सुद्धं षट् कर्मं जेन, भव्य जीव रतो सदा ।
असुद्धं षट् कर्मं जेन, अभव्य जीव न संसयः ।। ३०८ ।।

अन्वयार्थ - (सुद्धं षट् कर्मं जेन) जो शुद्ध षट्कर्म हैं **(भव्य जीव रतो सदा)** भव्य जीव सदा उनका पालन करते हैं और **(असुद्धं षट् कर्मं जेन)** जो अशुद्ध षट्कर्म के पालन में संलग्न रहते हैं **(अभव्य जीव न संसयः)** वे अभव्य जीव हैं इसमें कोई संशय नहीं है।

सुद्धं असुद्धं प्रोक्तं च, असुद्धं असास्वतं कृतं ।
सुद्धं मुक्ति मार्गस्य, असुद्धं दुर्गति कारनं ।। ३०९ ।।

अन्वयार्थ - (सुद्धं असुद्धं प्रोक्तं च) शुद्ध और अशुद्ध षट्कर्म को कहते हैं **(असुद्धं असास्वतं कृतं)** अशुद्ध षट्कर्म शाश्वत नहीं हैं, कल्पित हैं **(सुद्धं मुक्ति मार्गस्य)** शुद्ध षट्कर्म मुक्ति मार्ग के साधन हैं **(असुद्धं दुर्गति कारनं)** असुद्ध षट्कर्म दुर्गति के कारण हैं।

असुद्धं प्रोक्तस्चैव, देवलि देवंपि जानते ।
षेत्रं अनंत हिंडंते, अदेवं देव उच्यते ।। ३१० ।।

अन्वयार्थ - (असुद्धं प्रोक्तस्चैव) अशुद्ध देवपूजा वह कही गई है जो **(देवलि देवंपि जानते)** देवालय, मंदिर में देव को जानते हैं और **(अदेवं देव उच्यते)** अदेव [देवत्व रहित] को देव कहते, मानते हुए **(षेत्रं अनंत हिंडंते)** अनेक क्षेत्र, तीर्थ स्थानों में भ्रमण करते हैं।

मिथ्या मय मूढ़ दिस्टी च, अदेवं देव मानते ।
परपंचं जेन कृतं सार्धं, मानते मिथ्या दिस्टितं ।। ३११ ।।

अन्वयार्थ - **(मिथ्या मय मूढ़ दिस्टी च)** जो मिथ्यात्वमय मूढ़दृष्टि जीव हैं वे **(अदेवं देव मानते)** अदेवों को अर्थात् चैतन्यता से रहित पदार्थों के आकार को देव मानते हैं **(परपंचं जेन कृतं सार्धं)** जो नाना प्रकार से मिथ्या प्रचार कर चमत्कारादि प्रपंच फैलाते हैं **(मानते मिथ्या दिस्टितं)** जो जीव इनको मानते हैं वे मिथ्यादृष्टि हैं।

ग्रंथं राग संजुक्तं, कषायं च मयं सदा ।
सुद्ध तत्वं न जानंते, ते कुगुरुं गुरुं मानते ।। ३१२ ।।

अन्वयार्थ - **(ग्रंथं राग संजुक्तं)** जो धन धान्यादि परिग्रह में राग करते हैं **(कषायं च मयं सदा)** और क्रोधादि कषायों से सदा संयुक्त रहते हैं **(सुद्ध तत्वं न जानंते)** शुद्धात्म तत्त्व को नहीं जानते **(ते कुगुरुं गुरु मानते)** वे कुगुरु हैं, उन्हें गुरु मानना अशुद्ध गुरु उपासना है।

मिथ्या माया प्रोक्तं च, असत्यं सत्य उच्यते ।
जिन द्रोही वचन लोपंते, कुगुरुं दुर्गति भाजनं ।। ३१३ ।।

अन्वयार्थ - **(मिथ्या माया प्रोक्तं च)** कुगुरु मिथ्यात्व व मायाचार से पूर्ण उपदेश देते हैं **(असत्यं सत्य उच्यते)** जो असत्य है उसे सत्य कहते हैं **(जिन द्रोही वचन लोपंते)** वे जिनद्रोही हैं, जिनेन्द्र के वचनों का लोप करते हैं **(कुगुरुं दुर्गति भाजनं)** ऐसे कुगुरु दुर्गति के पात्र होते हैं।

अनेक पाठ पठनंते, वंदना श्रुत भावना ।
सुद्ध तत्वं न जानंते, सामायिक मिथ्या मानते ।। ३१४ ।।

अन्वयार्थ - **(अनेक पाठ पठनंते)** जो जीव अनेक पाठों को पढ़ते हैं **(वंदना श्रुत भावना)** वंदना करते हैं, शास्त्रों की भावना भाते हैं **(सुद्ध तत्वं न जानंते)** परंतु शुद्धात्म तत्त्व [अपने आत्म स्वरूप] को नहीं जानते और **(सामायिक मिथ्या मानते)** सामायिक को मिथ्या मानते हैं यह अशुद्ध स्वाध्याय है।

संजमं असुद्धं जेन, हिंसा जीव विरोधनं ।
संजम सुद्ध न पस्यंते, ते संयम मिथ्या संजमं ।। ३१५ ।।

अन्वयार्थ - **(जेन)** जो जीव **(असुद्धं संजमं)** अशुद्ध संयम का आचरण करते हैं **(हिंसा जीव विरोधनं)** जिससे जीवों की विराधना होती है, हिंसा होती है **(संजम सुद्ध न पस्यंते)** वे जीव शुद्ध संयम को नहीं जानते **(ते संजम मिथ्या संजमं)** वे व्यवहार में जो संयम पालते हैं वह सब मिथ्या संयम है [इसको ही अशुद्ध संयम कहते हैं]।

असुद्ध तप तप्तं च, तीव्र उपसर्गं सहं ।
सुद्ध तत्वं न पस्यंते, मिथ्या माया तपं कृतं ।। ३१६ ।।

अन्वयार्थ - **(असुद्ध तप तप्तं च)** जो अशुद्ध तप तपते हैं अर्थात् अज्ञान भाव सहित व्रत उपवास आदि करते हैं और **(तीव्र उपसर्गं सहं)** तीव्र उपसर्ग सहते हैं अर्थात् कठिन से कठिन शरीर के कष्टों को सहन करते हैं परन्तु **(सुद्ध तत्वं न पस्यंते)** शुद्ध आत्म तत्व को नहीं देखते जानते **(मिथ्या माया तपं कृतं)** मिथ्यात्व मायाचारी सहित तप करते हैं वह मिथ्या तप है।

दानं असुद्ध दानस्य, कुपात्रं दीयते सदा ।
व्रत भंगं कृतं मूढ़ा, दानं संसार कारनं ।। ३१७ ।।

अन्वयार्थ - (कुपात्रं दीयते सदा) जो हमेशा कुपात्रों को दिया जाता है **(दानं असुद्ध दानस्य)** उस दान को अशुद्ध दान कहते हैं **(व्रत भंगं कृतं मूढ़ा)** व्रत भंग करने वाले मूढ़ जीवों को **(दानं संसार कारनं)** यह दान संसार का कारण है।

ये षट् कर्म पालंते, मिथ्या अन्यान दिस्टते ।
ते नरा मिथ्या दिस्टी च, संसारे भ्रमनं सदा ।। ३१८ ।।

अन्वयार्थ - (ये षट् कर्म पालंते) जो जीव इन अशुद्ध षट् कर्मों का पालन करते हैं **(मिथ्या अन्यान दिस्टते)** मिथ्यात्व अज्ञानमय जिनकी दृष्टि है **(ते नरा मिथ्या दिस्टी च)** वे मनुष्य मिथ्यादृष्टि हैं और **(संसारे भ्रमनं सदा)** हमेशा संसार में ही परिभ्रमण करते हैं।

ये षट् कर्म जानंते, अनेय विभ्रम क्रीयते ।
मिथ्यात गुरू पस्यंते, दुर्गति भाजन ते नरा ।। ३१९ ।।

अन्वयार्थ - (ये षट् कर्म जानंते) जो इन अशुद्ध षट् कर्मों को जानते हैं [अशुद्ध षट् कर्मों का पालन करते हैं तथा] **(अनेय विभ्रम क्रीयते)** अनेक प्रकार के विभ्रम [शंका, कुशंका, ऊहापोह] करते हैं **(मिथ्यात गुरू पस्यंते)** ऐसे मिथ्यात्वी जीव कुगुरु का श्रद्धान करते हैं **(ते नरा दुर्गति भाजन)** वे मनुष्य दुर्गति के पात्र होते हैं।

षट् कर्मं सुद्ध उक्तं च, सुद्ध समय सुद्धं धुवं ।
जिन उक्तं षट् कर्मं च, केवलि दिस्टि संजुतं ।। ३२० ।।

अन्वयार्थ - (षट् कर्मं सुद्ध उक्तं च) शुद्ध षट् कर्मों का स्वरूप कहते हैं **(सुद्ध समय सुद्धं धुवं)** जो जीव शुद्धात्म स्वरूप, अविनाशी ध्रुव का आश्रय रखते हैं **(जिन उक्तं षट् कर्मं च)** जिनेन्द्र भगवान ने उनको ही षट्कर्म का पालन करने वाला कहा है [शुद्ध षट् कर्म का आचरण] **(केवलि दिस्टि संजुतं)** केवलज्ञानी सर्वज्ञ परमात्मा की परम्परा से जिनागम में वर्णित है।

पचहत्तर गुणों के द्वारा देव पूजा -

देव देवाधिदेवं च, गुरु ग्रंथं मुक्तं सदा ।
स्वाध्याय सुद्ध ध्यायंते, संजमं संजमं श्रुतं ।। ३२१ ।।

अन्वयार्थ - (देव देवाधिदेवं च) देवाधिदेव अरिहंत सिद्ध परमात्मा सच्चे देव हैं **(गुरु ग्रंथं मुक्तं सदा)** जो समस्त पाप परिग्रह के बंधन से रहित निर्ग्रन्थ वीतरागी हैं वे सच्चे गुरु हैं **(स्वाध्याय सुद्ध ध्यायंते)** अपने शुद्धात्म स्वरूप का ध्यान करना, स्व का अध्ययन करना [आत्म निरीक्षण करना] स्वाध्याय है **(संजमं संजमं श्रुतं)** तथा व्यवहार से प्राणी संयम और इन्द्रिय संयम सहित अपने स्वरूप की सुरत रखना संयम है।

तपं च अप्प सद्भावं, दानं पात्रस्य चिंतनं ।
षट् कर्मं जिनं उक्तं, सार्धं सुद्ध दिस्टितं ।। ३२२ ।।

अन्वयार्थ - (तपं च अप्प सद्भावं) अपने स्वभाव में लीन रहना तप है **(दानं पात्रस्य चिंतनं)**

सत्पात्रों को दान देना दान है **(षट् कर्म जिनं उक्तं)** इस प्रकार यह शुद्ध षट्कर्म जिनेन्द्र भगवान ने कहे हैं **(सार्धं सुद्ध दिस्टितं)** सम्यग्दृष्टि श्रावक इनका साधन अर्थात् पालन करता है।

देवं च जिनं उक्तं, न्यान मयं अप्प सुद्ध सद्धावं ।
नंत चतुस्टय जुत्तो, चौदस प्रान संजदो होई ।। ३२३ ।।

अन्वयार्थ - **(देवं च जिनं उक्तं)** जिनवाणी में देव उसको कहा है जो **(न्यान मयं अप्प सुद्ध सद्धावं)** ज्ञानमयी अपने शुद्ध आत्म स्वभाव में लीन रहते हैं **(नंत चतुस्टय जुत्तो)** अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनंत वीर्य चार चतुष्टय के धारी होते हैं तथा **(चौदस प्रान संजदो होई)** चौदह प्राणों सहित वे परम संयमी होते हैं ऐसे अरिहंत भगवान सच्चे देव हैं।

देवो परमिस्टी मइयो, लोकालोक लोकितं जेन ।
परमप्पा ज्ञानं मइयो, तं अप्पा देह मज्झंमि ।। ३२४ ।।

अन्वयार्थ - **(देवो परमिस्टी मइयो)** देव जो परमेष्ठीमयी परमपद में स्थित हैं **(लोकालोक लोकितं जेन)** जो लोकालोक के स्वरूप को देखते जानते हैं **(परमप्पा ज्ञानं मइयो)** जो ज्ञानमयी परमात्मा हैं **(तं अप्पा देह मज्झंमि)** वैसा ही आत्मा [जो परमात्म स्वरूप है] इस देह में ही विराजमान है।

देह देवलि देवं च, उवइट्ठो जिनवरेंदेहि ।
परमिस्टी च संजुत्तो, पूजं च सुद्ध संमत्तं ।। ३२५ ।।

अन्वयार्थ - **(देह देवलि देवं च)** देह देवालय में विराजमान आत्मा ही देव है **(उवइट्ठो जिनवरेंदेहि)** तीर्थंकर भगवंतों ने ऐसा उपदिष्ट किया [बताया] है **(परमिस्टी च संजुत्तो)** वही पंचपरमेष्ठी के गुणों सहित है **(पूजं च सुद्ध संमत्तं)** और उसकी पूजा ही शुद्ध सम्यक्त्व है [जो सम्यग्दृष्टि करता है।]

देवं गुनं विसुद्धं, अरहंतं सिद्ध आचार्यं जेन ।
उवज्झाय साधु गुनं, पंच गुनं पंच परमिस्टी ।। ३२६ ।।

अन्वयार्थ - **(जेन)** जो **(अरहंतं सिद्ध आचार्यं)** अरिहंत, सिद्ध, आचार्य **(उवज्झाय साधु गुनं)** उपाध्याय और साधु हैं **(पंच गुनं पंच परमिस्टी)** यह पाँच गुण परमेष्ठी पद कहलाते हैं **(देवं गुनं विसुद्धं)** देवत्व पद प्राप्त करने के यह पाँच विशुद्ध गुण हैं। [इनका आराधन ही परम इष्ट है]

अरहंतं ह्रियंकारं, न्यान मयी तिलोय भुवनस्य ।
नंत चतुस्टय सहियं, ह्रियंकारं जानि अरहंतं ।। ३२७ ।।

अन्वयार्थ - **(अरहंतं ह्रियंकारं)** अरिहंत तीर्थंकर केवलज्ञानी को कहते हैं [ह्रीं में चौबीस तीर्थंकर गर्भित हैं] **(न्यान मयी तिलोय भुवनस्य)** जो परिपूर्ण ज्ञानमयी हैं, जिनके ज्ञान में तीन लोक झलकते हैं **(नंत चतुस्टय सहियं)** जो अनंत चतुष्टय सहित हैं **(ह्रियंकारं जानि अरहंतं)** ऐसे तीर्थंकर केवलज्ञानी परमात्मा को अरिहंत जानो।

सिद्धं सिद्ध धुवं चिंते, उवंकारं च विंदते ।
मुक्तिं च ऊर्ध सद्भावं, ऊर्धं च सास्वतं पदं ।। ३२८ ।।

अन्वयार्थ - **(सिद्धं सिद्ध धुवं चिंते)** सिद्ध भगवान सिद्ध पद अर्थात् कर्म रहित ध्रुव स्वभाव में

लीन हैं ऐसे सिद्ध भगवान का चिंतन करो [वे सिद्ध भगवान] **(उवंकारं च विंदते)** अपने ब्रह्म स्वरूप में लीन परमानंदमयी अमृत रस का पान करते हैं **(मुक्तिं च ऊर्ध सद्भावं)** जो मुक्ति को प्राप्त हैं तथा तीन लोक के अग्र भाग में विराजमान **(ऊर्धं च सास्वतं पदं)** श्रेष्ठ शाश्वत पद के धारी हैं।

आचार्यं आचरनं सुद्धं, तिअर्थं सुद्ध भावना ।
सर्वन्यं सुद्ध ध्यानस्य, मिथ्या तिक्तं त्रि भेदयं ।। ३२९ ।।

अन्वयार्थ - (आचार्यं आचरनं सुद्धं) पंचाचार में शुद्ध आचरण करने वाले आचार्य हैं वे **(तिअर्थ सुद्ध भावना)** रत्नत्रय स्वरूप की शुद्ध भावना भाते हैं **(सर्वन्यं सुद्ध ध्यानस्य)** सर्वज्ञ स्वरूप शुद्ध स्वभाव का ध्यान करते हैं **(मिथ्या तिक्तं त्रि भेदयं)** तीनों प्रकार के मिथ्यात्व से रहित होते हैं।

उपाय देव उपयोगं जेन, उपाय लष्यनं धुवं ।
अंग पूर्व उक्तं च, सार्धं न्यान मयं धुवं ।। ३३० ।।

अन्वयार्थ - (उपाय देव उपयोगं जेन) उपाध्याय जो ज्ञानोपयोग में रत रहते हैं **(उपाय लष्यनं धुवं)** उपयोग ही जिसका लक्षण है ऐसे ध्रुव स्वभाव की साधना करते हैं **(अंग पूर्व उक्तं च)** ग्यारह अंग चौदह पूर्व रूप जिनवाणी का निरूपण करते हैं **(सार्धं न्यान मयं धुवं)** और अपने ज्ञानमयी ध्रुव स्वभाव की साधना में निमग्न रहते हैं वे उपाध्याय कहलाते हैं।

साधुस्च सर्व सार्धं च, लोकालोकं च सुद्धये ।
रत्नत्रयं मयं सुद्धं, ति अर्थं साधु जोइतं ।। ३३१ ।।

अन्वयार्थ - (सर्व साधुस्च) सभी साधुजन **(लोकालोकं च)** सम्पूर्ण लोकालोक के स्वरूप को जानने वाले **(रत्नत्रयं मयं सुद्धं)** रत्नत्रयमयी शुद्ध आत्मा की **(सार्धं)** साधना करते हैं **(च)** और **(सुद्धये)** शुद्ध पद की प्राप्ति के लिये **(ति अर्थं साधु जोइतं)** साधु तिअर्थमयी आत्म स्वरूप को संजोते हैं।

देवं पंच गुनं सुद्धं, पदवी पंचामि संजुदो सुद्धो ।
देवं जिन पण्णत्तं, साधु सुद्ध दिस्टि समयेन ।। ३३२ ।।

अन्वयार्थ - (देवं जिन पण्णत्तं) जिनेन्द्र भगवान ने कहा है **(देवं)** देव वह है जो परम पद में स्थित है **(पंच गुनं सुद्धं)** अरिहंत, सिद्ध, आचार्य आदि पाँचों परमेष्ठी अपने-अपने गुणों से शुद्ध हैं **(साधु)** जो साधु **(संजुदो सुद्धो)** समस्त पापारम्भ का त्याग कर शुद्ध संयम का पालन करते हैं, और **(सुद्ध दिस्टि समयेन)** शुद्ध दृष्टि पूर्वक स्वसमय का अनुभव करते हैं **(पदवी पंचामि)** वे साधु पंचम पदवी को प्राप्त करते हैं।

अरहंत भावनं जेन, षोडस भावेन भावितं ।
तिअर्थं तीर्थंकरं जेन, प्रतिपूर्नं पंच दीप्तयं ।। ३३३ ।।

अन्वयार्थ - (अरहंत भावनं जेन) जो जीव अरिहंत पद प्राप्त करने की भावना भाते हैं **(षोडस भावेन भावितं)** वह सोलह कारण भावना भाते हुए **(प्रतिपूर्नं पंच दीप्तयं)** परिपूर्ण पंचम केवलज्ञानमयी निज स्वभाव का आश्रय लेकर **(तिअर्थं तीर्थंकरं जेन)** तिअर्थमयी आत्म स्वरूप में लीन होकर जगत पूज्य तीर्थंकर पद प्राप्त करते हैं।

तस्यास्ति षोडसं भावं, तिअर्थं तीर्थंकरं कृतं ।
षोडस भावनं भावं, अरहंतं गुण सास्वतं ।। ३३४ ।।

अन्वयार्थ - **(तस्यास्ति षोडसं भावं)** उस जीव को यह सोलह कारण भावना ही **(तिअर्थं तीर्थंकरं कृतं)** रत्नत्रय स्वरूप में लीनता रूप तीर्थंकर पद प्राप्त कराती हैं **(षोडस भावनं भावं)** सोलह कारण भावना भाने से **(अरहंतं गुण सास्वतं)** शाश्वत गुणों में लीनतारूप अरिहंत पद की प्राप्ति हो जाती है। [सम्यग्दृष्टि पुरुष केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में सोलहकारण भावना भाता है उसे तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो सकता है।]

सिद्धं च सुद्ध संमत्तं, न्यानं दरसन दरसितं ।
वीर्जं सुहं समं हेतुं, अवगाहन अगुरुलघुस्तथा ।। ३३५ ।।

अन्वयार्थ - **(सिद्धं च सुद्ध संमत्तं)** सिद्ध भगवान शुद्ध सम्यक्त्व के धारी होते हैं, उन्हें **(न्यानं दरसन दरसितं)** अनंतज्ञान व अनंतदर्शन पूर्णपने व्यक्त हैं **(वीर्ज सुहं समं हेतुं)** अनंतवीर्य, सूक्ष्मत्व, अव्याबाधत्व **(अवगाहन अगुरुलघुस्तथा)** अवगाहनत्व और अगुरुलघुत्व यह आठ गुण सिद्ध भगवान को प्रकट हो जाते हैं।

संमत्तं आदि गुनं सार्धं, मिथ्या मल विमुक्तयं ।
सिद्धं गुनस्य संजुत्तं, सार्धं भव्य लोकयं ।। ३३६ ।।

अन्वयार्थ - सिद्ध भगवान **(संमत्तं आदि गुनं सार्धं)** सम्यग्दर्शन आदि अनंत गुणों सहित होते हैं **(मिथ्या मल विमुक्तयं)** मिथ्यादर्शन आदि कर्म मलों से रहित होते हैं **(सिद्धं गुनस्य संजुत्तं)** सिद्ध भगवान अनंत गुणों के धारी हैं **(सार्धं भव्य लोकयं)** संसार के भव्य जीव उन गुणों का श्रद्धान करते हैं।

आचार्यं आचरनं धर्मं, तिअर्थं सुद्ध दरसनं ।
उपाय देव उवदेसन कृत्वा, दस लष्यन धर्मं धुवं ।। ३३७ ।।

अन्वयार्थ - **(आचार्यं आचरनं धर्मं)** आचार्य धर्म में आचरण करते हैं **(तिअर्थं सुद्ध दरसनं)** रत्नत्रयमयी शुद्ध आत्मा का दर्शन, अनुभवन करते हैं **(उपाय देव उवदेसन कृत्वा)** उपाध्याय उपदेश करते हैं और **(दस लष्यन धर्मं धुवं)** दशलक्षणमयी अविनाशी धर्म की आराधना करते हैं।

सार्धं चेतना भावं, आत्म धर्मं च एकयं ।
आचार्यं उपाय देवेन, धर्म सुद्धं च धारिना ।। ३३८ ।।

अन्वयार्थ - **(सार्धं चेतना भावं)** अपने शुद्ध चैतन्य स्वभाव का श्रद्धान और साधना करना ही **(आत्म धर्मं च एकयं)** एकमात्र आत्म धर्म है **(आचार्यं उपाय देवेन)** आचार्य और उपाध्याय **(धर्म सुद्धं च धारिना)** इसी शुद्ध धर्म के धारी होते हैं।

ते धर्म सुद्ध दिस्टी च, पूजितं च सदा बुधै ।
उक्तं च जिनदेवं च, श्रूयते भव्य लोकयं ।। ३३९ ।।

अन्वयार्थ - **(ते धर्म सुद्ध दिस्टी च)** जो जीव [चैतन्य लक्षणमयी] धर्म को धारण करते हैं वे शुद्ध दृष्टि हैं **(च)** और **(पूजितं सदा बुधै)** वे ज्ञानी हमेशा आत्म धर्म की पूजा आराधना में रत रहते हैं **(उक्तं च जिनदेवं च)** ऐसा अरिहंत सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा है **(श्रूयते भव्य लोकयं)** हे भव्य जीवो! इसे

सुनो समझो और आत्म धर्म का पालन करो।

साधओ साधु लोकस्य, दर्सनं न्यान संजुतं ।
चारित्रं आचरनं जेन, उदयं अवहिं संजुतं ।। ३४० ।।

अन्वयार्थ - **(लोकस्य)** लोक में **(जेन)** जो **(साधओ साधु)** सम्यग्दृष्टि साधक और साधु हैं वे **(दर्सनं न्यान संजुतं)** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सहित **(चारित्र आचरनं)** सम्यक्त्वाचरण और संयमाचरण चारित्र का पालन करते हैं **(उदयं अवहिं संजुतं)** उनको अवधिज्ञान का उदय हो जाता है।

ऊर्ध आर्ध मध्यं च, दिस्टितं संमिक दरसनं ।
न्यान मयं च सर्वन्यं, आचरनं संजुतं धुवं ।। ३४१ ।।

अन्वयार्थ - वीतरागी साधुजन **(ऊर्ध आर्ध मध्यं च)** ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोक तीनों लोक में **(दिस्टितं संमिक दरसनं)** एक आत्म स्वरूप की अनुभूतिरूप सम्यग्दर्शन को ही देखते हैं **(न्यान मयं च सर्वन्यं)** ज्ञान में अपने सर्वज्ञ स्वरूप का अनुभव करते हैं **(आचरनं संजुतं धुवं)** और ध्रुव स्वभाव में लीनता रूप आचरण करते हैं।

साधु गुनस्य संपूर्नं, रत्नत्रयं लंकृतं ।
भव्य लोकस्य जीवस्य, रत्नत्रयं पूजितं ।। ३४२ ।।

अन्वयार्थ - **(साधु गुनस्य संपूर्नं)** साधु गुणों से परिपूर्ण होते हैं **(रत्नत्रयं लंकृतं)** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र से अलंकृत रहते हैं **(भव्य लोकस्य जीवस्य)** इसलिये लोक के भव्य जीवों को [साधु के गुण] **(रत्नत्रयं पूजितं)** रत्नत्रय ही पूजने योग्य है।

देव गुनं पूज सार्धं च, अंगं संमिक्त सुद्धये ।
सार्धं न्यान मयं सुद्धं, संमिक दरसन उत्तमं ।। ३४३ ।।

अन्वयार्थ - **(सार्धं न्यान मयं सुद्धं)** ज्ञानमयी शुद्ध स्वभाव का श्रद्धानी भव्य जीव **(संमिक दरसन उत्तमं)** उत्तम अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शन का धारी होता है, वह **(अंगं संमिक्त सुद्धये)** सम्यक्त्व के आठ अंगों को शुद्धता पूर्वक पालन करता हुआ **(देव गुनं पूज सार्धं च)** अरिहंत परमात्मा के गुणों की पूजा और सिद्ध का अर्थात् शुद्धात्मा का ध्यान करता है।

न्यानं च न्यान सुद्धं च, सुद्ध तत्व प्रकासकं ।
न्यानं मयं च संसुद्धं, न्यानं सर्वन्य लोकितं ।। ३४४ ।।

अन्वयार्थ - **(न्यानं च न्यान सुद्धं च)** ज्ञान का आठ अंगों सहित पालन करने से ज्ञान की शुद्धि होती है **(सुद्ध तत्व प्रकासकं)** सम्यग्ज्ञान शुद्ध तत्त्व का प्रकाशक है **(न्यानं मयं च संसुद्धं)** संशय, विभ्रम, विमोह रहित शुद्ध ज्ञानमय होने से **(न्यानं सर्वन्य लोकितं)** केवलज्ञान सर्वज्ञ पद प्रकट हो जाता है, जिससे एक समय में तीन लोक तीन काल के समस्त द्रव्य उनके गुण पर्याय सहित ज्ञान में झलकने लगते हैं।

न्यानं आराधते जेन, पूजा तत्र च विंदते ।
सुद्धस्य पूज्यते लोके, न्यान मयं सार्धं धुवं ।। ३४५ ।।

अन्वयार्थ - **(न्यानं आराधते जेन)** जो जीव सम्यग्ज्ञान की आराधना करते हैं **(पूजा तत्र च विंदते)** वही सच्ची पूजा और अनुभूति करते हैं **(सुद्धस्य पूज्यते लोके)** यही शुद्ध ज्ञान लोक में पूजा जाता

है **(न्यान मयं सार्धं धुवं)** इसलिये अपने ज्ञानमयी ध्रुव स्वभाव की साधना करो।

न्यानं गुनं च चत्वारि, श्रुतपूजा सदा बुधै ।
धर्म ध्यानं च संजुक्तं, श्रुतपूजा विधीयते ।। ३४६ ।।

अन्वयार्थ - **(न्यानं गुनं च चत्वारि)** सम्यग्ज्ञान की आराधना हेतु चार अनुयोगों का आराधन करना **(धर्म ध्यानं च संजुक्तं)** धर्म ध्यान में निरंतर लवलीन रहना **(श्रुतपूजा विधीयते)** श्रुतपूजा की विधि है **(श्रुत पूजा सदा बुधै)** सम्यग्ज्ञानी जीव इस विधि से हमेशा द्रव्य श्रुत और भाव श्रुत रूप जिनवाणी की पूजा करते हैं।

प्रथमानुयोग करनानं, चरनं द्रव्यानि विंदते ।
न्यानं तिअर्थ संपूर्नं, सार्धं पूजा सदा बुधै ।। ३४७ ।।

अन्वयार्थ - **(बुधै)** सम्यग्दृष्टि ज्ञानीजन **(प्रथमानुयोग करनानं)** प्रथमानुयोग, करणानुयोग **(चरनं द्रव्यानि विंदते)** चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग के विषयों का अनुभव करते हैं तथा **(न्यानं तिअर्थ संपूर्नं)** रत्नत्रय से परिपूर्ण ज्ञानमयी शुद्धात्म स्वरूप की **(सार्धं)** साधना, आराधना करते हुए **(पूजा सदा)** हमेशा श्रुतपूजा करते हैं।

प्रथमानुयोग पद वेदंते, विंजनं पद सब्दयं ।
तिअर्थं पद सुद्धस्य, न्यानं आत्मा तुव गुनं ।। ३४८ ।।

अन्वयार्थ - सम्यग्दृष्टि ज्ञानीजन **(प्रथमानुयोग पद वेदंते)** प्रथमानुयोग से अपने शाश्वत सिद्ध पद की अनुभूति करते हैं **(विंजनं पद सब्दयं)** व्यंजन, पद और शब्दों के द्वारा **(तिअर्थ पद सुद्धस्य)** रत्नत्रयमयी शुद्ध पद की आराधना करते हैं [वे जानते हैं कि] **(न्यानं आत्मा तुव गुनं)** हे आत्मन्! ज्ञान तुम्हारा ही गुण है।

विंजनं च पदार्थं च, सास्वतं नाम सार्धयं ।
उवंकारस्य वेदंते, सार्धं न्यान मयं धुवं ।। ३४९ ।।

अन्वयार्थ - **(विंजनं च पदार्थं च)** व्यंजन और पदार्थ आदि के द्वारा **(सास्वतं नाम सार्धयं)** जिसका शाश्वत स्वरूप है, जो साध्य है ऐसे **(सार्धं न्यान मयं धुवं)** ज्ञानमयी ध्रुव स्वभाव की साधना करते हैं और **(उवंकारस्य वेदंते)** ऊँकार स्वरूप शुद्धात्म तत्त्व का वेदन करते हैं यही प्रथमानुयोग का सार है।

करनानुयोग संपूर्नं, स्वात्म चिंता सदा बुधै ।
स्व स्वरूपं च आराध्यं, करनानुयोग सास्वतं ।। ३५० ।।

अन्वयार्थ - **(बुधै स्वात्म चिंता सदा)** ज्ञानी हमेशा अपने आत्म स्वरूप का चिंतन करते हैं **(स्व स्वरूपं च आराध्यं)** स्व स्वरूप की निरंतर आराधना करते हैं **(करनानुयोग सास्वतं)** यही शाश्वत करणानुयोग है और **(करनानुयोग संपूर्नं)** संपूर्ण करणानुयोग का यही सार है।

सुद्धात्मा चेतनं जेन, उवं ह्रियं श्रियं पदं ।
पंच दीप्ति मयं सुद्धं, सुद्धात्मा सुद्धं गुनं ।। ३५१ ।।

अन्वयार्थ - **(जेन सुद्धात्मा चेतनं)** जो जीव शुद्धात्म स्वरूप चैतन्य स्वभाव को **(उवं ह्रियं श्रियं पदं)** ॐ ह्रीं श्रीं पद वाला जानते हैं **(पंच दीप्ति मयं सुद्धं)** पंचम ज्ञानमय स्वरूप का अनुभव करते हैं

(सुद्धात्मा सुद्धं गुनं) शुद्धात्मा की शुद्ध गुणों सहित आराधना करते हैं यही करणानुयोग की आराधना है।

सल्यं मिथ्या मयं तिक्तं, कुन्यानं त्रि विमुक्तयं ।
ऊर्ध च ऊर्ध सद्‌भावं, उवंकारं च विंदते ।। ३५२ ।।

अन्वयार्थ - सम्यग्दृष्टि ज्ञानी **(सल्यं मिथ्या मयं तिक्तं)** मिथ्यात्वमयी तीनों शल्यों का त्याग कर देता है **(कुन्यानं त्रिविमुक्तयं)** कुमति आदि तीनों कुज्ञानों से भी रहित होता है **(च)** और **(ऊर्धं च ऊर्ध)** श्रेष्ठ, ऊर्ध्वगामी **(उवंकारं)** पंच परमेष्ठीमयी **(सद्‌भावं)** शुद्धात्म स्वभाव का **(विंदते)** अनुभव करता है, यही करणानुयोग की पूजा [आराधना] है।

दिव्य दिस्टी च संपूर्नं, सुद्धं संमिक दर्सनं ।
न्यान मयं सार्धं सुद्धं, करनानुयोग स्वात्म चिंतनं ।। ३५३ ।।

अन्वयार्थ - **(सुद्धं संमिक दर्सनं)** आत्म स्वरूप के बोध रूप शुद्ध सम्यग्दर्शन सहित होने वाली **(दिव्य दिस्टी च संपूर्नं)** दिव्य दृष्टि परिपूर्ण स्वभाव को देखती है [ऐसी दिव्य दृष्टि पूर्वक] **(न्यान मयं सार्धं सुद्धं)** ज्ञानमयी शुद्धात्म स्वरूप की साधना करना तथा **(स्वात्म चिंतनं करनानुयोग)** अपने आत्मा का चिंतन करना ही करणानुयोग है।

चरनानुयोग चारित्रं, चिद्रूपं रूप द्रिस्यते ।
ऊर्ध आर्धं च मध्यं च, संपूरनं न्यान मयं धुवं ।। ३५४ ।।

अन्वयार्थ - ज्ञानीजन **(ऊर्ध आर्धं च मध्यं च)** ऊर्ध्व लोक, मध्य लोक और अधोलोक में **(संपूरनं न्यान मयं धुवं)** परिपूर्ण केवलज्ञानमयी ध्रुव स्वभावी **(चिद्रूपं रूप द्रिस्यते)** अपने चिद्रूपी स्वरूप को देखते हैं, अनुभव करते हैं **(चारित्रं)** स्वरूप में लीनता रूप चारित्र को धारण करते हैं **(चरनानुयोग)** यही चरणानुयोग की आराधना है।

षट् कमलं त्रिलोकं च, सार्धं धर्म संजुतं ।
चिद्रूपं रूप दिस्टंते, चरनं पंच दीप्तयं ।। ३५५ ।।

अन्वयार्थ - सम्यग्दृष्टि ज्ञानीजन **(षट् कमलं त्रिलोकं च)** षट् कमल के द्वारा तीन लोक में प्रयोजनीय **(सार्धं धर्म संजुतं)** स्वभावरूप धर्म की श्रद्धा सहित साधना करते हैं **(चिद्रूपं रूप दिस्टंते)** अपने चिद्रूपी स्वरूप को देखते हैं और **(पंच दीप्तयं चरनं)** पंचम केवलज्ञान स्वभाव में आचरण करते हैं यही चरणानुयोग की पूजा [आराधना] है।

दिव्यानुयोग उत्पादंते, दिव्य दिस्टी च संजुतं ।
अनंतानंत दिस्टंते, स्वात्मानं विक्त रूपयं ।। ३५६ ।।

अन्वयार्थ - **(दिव्य दिस्टी च संजुतं)** द्रव्यदृष्टि से संयुक्त होने पर **(दिव्यानुयोग उत्पादंते)** द्रव्यानुयोग उत्पन्न होता है, ज्ञानी साधक **(स्वात्मानं)** अपनी आत्मा के **(अनंतानंत)** अनंतानंत **(विक्त रूपयं)** व्यक्त स्वरूप को **(दिस्टंते)** देखते हैं, अनुभव करते हैं यही द्रव्यानुयोग की पूजा [आराधना] है।

दिव्यं दिव्य दिस्टी च, सर्वन्यं सास्वतं पदं ।
नंतानंत चतुस्टं च, केवलं पदमं धुवं ।। ३५७ ।।

अन्वयार्थ - **(दिव्यं दिव्य दिस्टी च)** अपने दिव्य स्वरूप का दर्शन करने वाली द्रव्यदृष्टि है,

उसकी अपूर्व महिमा है **(सर्वन्यं सास्वतं पदं)** यह अपने सर्वज्ञ स्वरूप शाश्वत पद का बोध कराती है **(नंतानंत चतुस्टं च)** और अनंत चतुष्टय में स्थित करके **(केवलं पदमं ध्रुवं)** केवलज्ञानमयी अविनाशी पद को प्राप्त कराती है।

चत्वारि गुण जानंते, पूजा वेदंति जं बुधै ।
संसार भ्रमण मुक्तस्य, सुद्धं मुक्ति गामिनो ।। ३५८ ।।

अन्वयार्थ - इस प्रकार **(जं बुधै)** जो सम्यग्दृष्टि साधक **(चत्वारि गुण जानंते)** जिनवाणी को चारों अनुयोगों के द्वारा जानते हैं [उनके अनुरूप अर्थ अभिप्राय का चिंतन मनन करते हुए] **(वेदंति पूजा)** अनुभव करते हैं, इस शास्त्र पूजा के बल से वे **(संसार भ्रमण मुक्तस्य)** संसार के पंच परावर्तन रूप परिभ्रमण से छूटकर **(सुद्धं मुक्ति गामिनो)** निश्चय ही मोक्षगामी होते हैं।

श्रियं संमिक दर्सनं च, संमिक दर्सनमुद्यमं ।
संमिक्तं संपूर्न सुद्धं च, तिअर्थं पंच दीप्तयं ।। ३५९ ।।

अन्वयार्थ - **(श्रियं संमिक दर्सनं च)** सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ और कल्याणकारी है **(तिअर्थं पंच दीप्तयं)** रत्नत्रयमयी पंचम दीप्ति स्वरूप **(संपूर्न)** परिपूर्ण स्वभाव के आश्रय से **(संमिक्तं सुद्धं च)** सम्यक्त्व शुद्ध होता है **(संमिक दर्सनमुद्यमं)** ऐसे कल्याणकारी सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने का उद्यम करना हितकारी है।

श्रियं संमिक दर्सनं सुद्धं, श्रियंकारेन उत्पादते ।
सर्वन्यं च मयं सुद्धं श्रियं संमिक दर्सनं ।। ३६० ।।

अन्वयार्थ - **(श्रियं संमिक दर्सनं सुद्धं)** शुद्ध सम्यग्दर्शन श्रेयस्कर और कल्याणकारी है **(श्रियंकारेन उत्पादते)** इसी से मुक्ति का मार्ग उत्पन्न होता है **(सर्वन्यं च मयं सुद्धं)** सर्वज्ञ अर्थात् अरिहंत परमात्मा के समान मैं शुद्ध आत्मा परमात्मा हूँ ऐसा दृढ़ निश्चय श्रद्धान ही **(श्रियं संमिक दर्सनं)** श्रेष्ठ सम्यग्दर्शन है।

न्यानं च संमिक्तं सुद्धं, संपूरनं त्रिलोकमुद्यमं ।
सर्वन्यं पंच मयं सुद्धं, पद विंदं केवलं ध्रुवं ।। ३६१ ।।

अन्वयार्थ - **(न्यानं च संमिक्तं सुद्धं)** शुद्ध सम्यग्दर्शन सहित सम्यग्ज्ञान प्रकट होता है **(संपूरनं त्रिलोकमुद्यमं)** इसके द्वारा ही सर्व को जानने वाले त्रिलोकी नाथ होने का पुरुषार्थ प्रकटता है **(सर्वन्यं पंच मयं सुद्धं)** जो जीव सर्वज्ञ स्वरूप पंचम ज्ञानमयी शुद्ध स्वभाव की साधना करते हैं **(पद विंदं केवलं ध्रुवं)** वे केवलज्ञानमयी अविनाशी शाश्वत पद को प्राप्त कर लेते हैं।

श्रियं संमिक न्यानं च, श्रियं सर्वन्य सास्वतं ।
लोकालोकं च मयं सुद्धं, श्रियं संमिक न्यान उच्यते ।। ३६२ ।।

अन्वयार्थ - **(श्रियं संमिक न्यानं च)** परम ऐश्वर्यशाली श्रेष्ठ सम्यग्ज्ञान **(श्रियं सर्वन्य सास्वतं)** सर्व पदार्थों का ज्ञाता और अविनाशी है **(लोकालोकं च मयं सुद्धं)** लोकालोक को प्रकाशित करने वाला शुद्ध ज्ञानमयी सूर्य है **(श्रियं संमिक न्यान उच्यते)** इसलिये सम्यग्ज्ञान को सबसे श्रेष्ठ कहा जाता है।

श्रियं संमिक चारित्रं, संमिक उत्पन्न सास्वतं ।
अप्पा परमप्पयं सुद्धं, श्रियं संमिक चरनं भवेत् ।। ३६३ ।।

अन्वयार्थ - **(श्रियं संमिक चारित्रं)** आत्म स्वरूप में लीन रहना श्रेष्ठ सम्यक्चारित्र है, जो **(संमिक उत्पन्न सास्वतं)** क्षायिक सम्यग्दर्शन होने पर उत्पन्न होता है **(अप्पा परमप्पयं सुद्धं)** मैं आत्मा कर्मादि से रहित परमात्म स्वरूप हूँ ऐसी अनुभूति में लीन रहना **(श्रियं संमिक चरनं भवेत्)** यही कल्याणकारी सम्यक्चारित्र है।

श्रियं सर्वन्य सार्धं च, स्वरूपं विक्त रूपयं ।
श्रियं संमिक्त धुवं सुद्धं, श्री संमिक चरनं बुधै ।। ३६४ ।।

अन्वयार्थ - **(श्रियं संमिक्त धुवं सुद्धं)** शुद्ध ध्रुव स्वभाव की अनुभूतिरूप श्रेष्ठ सम्यग्दर्शन सहित **(श्रियं सर्वन्य सार्धं च)** सर्वज्ञ स्वभाव की साधना करना **(स्वरूपं विक्त रूपयं)** स्वरूप में लीन होकर अपने स्वरूप का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करना **(श्री संमिक चरनं बुधै)** ज्ञानीजनों ने इसी को सम्यक्चारित्र कहा है, जो मुक्ति श्री का वरण कराता है।

पचहत्तर गुन वेदंते, सार्धं च सुद्धं धुवं ।
पूजतं स्तुतं जेन, भव्यजन सुद्ध दिस्टितं ।। ३६५ ।।

अन्वयार्थ - **(जेन)** जो **(भव्यजन सुद्ध दिस्टितं)** भव्यजन शुद्ध दृष्टि हैं, वे **(पचहत्तर गुन वेदंते)** पचहत्तर गुणों का चिन्तन-मनन अनुभवन करते हैं **(सार्धं च सुद्धं धुवं)** और अपने शुद्ध, ध्रुव स्वभाव की साधना करते हैं **(पूजतं स्तुतं)** वे गुणों के आराधन आचरण रूप पूजा, स्तुति करते हैं।

एतत् गुन सार्धं च, स्वात्म चिंता सदा बुधै ।
देवं तस्य पूजस्य, मुक्ति गमनं न संसयः ।। ३६६ ।।

अन्वयार्थ - **(एतत् गुन)** इस प्रकार इन पचहत्तर गुणों के द्वारा **(बुधै)** जो बुद्धिमान ज्ञानीजन **(स्वात्म चिंता सदा)** हमेशा स्वात्मा की चिंता अर्थात् अपने आत्म कल्याण की भावना भाते हैं **(च)** और **(सार्धं)** साधना करते हैं **(देवं तस्य पूजस्य)** वही देव की सच्ची पूजा करते हैं तथा **(मुक्ति गमनं न संसयः)** मुक्ति प्राप्त करते हैं इसमें कोई संशय नहीं है।

गुरु उपासना -

गुरस्य ग्रंथ मुक्तस्य, राग दोषं न चिंतए ।
रत्नत्रयं मयं सुद्धं, मिथ्या माया विमुक्तयं ।। ३६७ ।।

अन्वयार्थ - **(ग्रंथ मुक्तस्य)** जो समस्त परिग्रह के बंधनों से रहित होते हैं **(राग दोषं न चिंतए)** राग-द्वेषादि का चिंतन नहीं करते अर्थात् जो राग-द्वेष रहित निर्ग्रंथ वीतरागी हैं **(रत्नत्रयं मयं सुद्धं)** रत्नत्रय के धारी हैं, जिनका सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र शुद्ध है **(मिथ्या माया विमुक्तयं)** जो मिथ्या माया आदि शल्यों से रहित हैं **(गुरस्य)** वे सच्चे गुरु हैं, उनके गुणों की उपासना शुद्ध गुरु उपासना है।

गुरं त्रिलोक वेदंते, ध्यानं धर्मं च संजुतं ।
तद्‌गुरं सार्धं नित्यं, रत्नत्रयं लंकृतं ।। ३६८ ।।

अन्वयार्थ - **(गुरं त्रिलोक वेदंते)** जो तीन लोक के यथार्थ स्वरूप का अनुभव करते हैं **(रत्नत्रयं**

लंकृतं) रत्नत्रय से परिपूर्ण होते हैं **(ध्यानं धर्मं च संजुतं)** धर्म ध्यान में लीन रहते हैं **(तद्गुरं सार्ध नित्यं)** ऐसे गुरु की श्रद्धा सहित उपासना करना चाहिये।

स्वाध्याय -

स्वाध्याय सुद्ध ध्रुवं चिंते, सुद्ध तत्व प्रकासकं ।
सुद्ध संपूर्न दिस्टं च, न्यानं मयं सार्ध ध्रुवं ।। ३६९ ।।

अन्वयार्थ - (ध्रुवं चिंते) ध्रुव स्वभाव का चिंतवन करना **(सुद्ध संपूर्न दिस्टं च)** परिपूर्ण शुद्ध स्वभाव पर दृष्टि रखना और **(न्यानं मयं सार्ध ध्रुवं)** ज्ञानमयी ध्रुव स्वभाव की साधना करना **(स्वाध्याय सुद्ध)** शुद्ध स्वाध्याय है, यह **(सुद्ध तत्व प्रकासकं)** शुद्ध तत्त्व का प्रकाश करने वाला है।

स्वाध्याय सुद्ध चिंतस्य, मन वचन काय निरोधनं ।
त्रिलोकं तिअर्थं सुद्धं, स्थिरं सास्वतं ध्रुवं ।। ३७० ।।

अन्वयार्थ - (मन वचन काय निरोधनं) मन, वचन, काय का निरोध करके **(सुद्ध चिंतस्य)** शुद्ध स्वभाव का चिंतन करना **(त्रिलोकं तिअर्थं सुद्धं)** तीन लोक में प्रयोजनीय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र से शुद्ध **(सास्वतं ध्रुवं स्थिरं)** शाश्वत ध्रुव स्वभाव में स्थिर होना **(स्वाध्याय)** स्वाध्याय है।

संयम -

संजमं संजमं कृत्वा, संजमं द्विविधं भवेत् ।
इन्द्रियानां मनोनाथा, रष्यनं त्रस थावरं ।। ३७१ ।।

अन्वयार्थ - (संजमं संजमं कृत्वा) मन के संयम पूर्वक संयम का पालन करना चाहिये **(संजमं द्विविधं भवेत्)** संयम दो प्रकार का होता है-**१.** इन्द्रिय संयम, **२.** प्राणी संयम **(इन्द्रियानां मनोनाथा)** पाँच इन्द्रिय और इनके राजा मन को वश में रखना इन्द्रिय संयम है **(रष्यनं त्रस थावरं)** पाँच स्थावर और दो इन्द्रिय से पाँच इन्द्रिय तक त्रस जीवों की रक्षा करना प्राणी संयम है।

संजमं संजमं सुद्धं, सुद्ध तत्व प्रकासकं ।
तिअर्थं न्यानं जलं सुद्धं, स्नानं संजमं ध्रुवं ।। ३७२ ।।

अन्वयार्थ - (संजमं संजमं सुद्धं) निश्चय संयम की भावना पूर्वक शुद्ध संयम का पालन होता है, वह संयम **(सुद्ध तत्व प्रकासकं)** शुद्धात्म तत्त्व को प्रकाशित करने वाला है **(तिअर्थ न्यान जलं सुद्धं)** रत्नत्रयमयी ज्ञान के शुद्ध जल में **(स्नानं संजमं ध्रुवं)** स्नान करना [रत्नत्रयमयी स्वभाव की सुरत रखना, भेदज्ञान तत्त्वनिर्णय पूर्वक स्वभाव की आराधना करना] निश्चय संयम है।

तप, दान -

तपं अप्प सद्भावं, सुद्ध तत्व सचिंतनं ।
सुद्ध न्यान मयं सुद्धं, तथाहि निर्मलं तपं ।। ३७३ ।।

अन्वयार्थ - (तपं अप्प सद्भावं) शुद्ध तप अपने आत्म स्वभाव में रहना, ठहरना है **(सुद्ध तत्व सचिंतनं)** शुद्धात्म तत्त्व का भले प्रकार चिन्तन करना **(सुद्ध न्यान मयं सुद्धं)** अपने शुद्ध ज्ञानमयी शुद्ध स्वभाव में ठहरना **(तथाहि निर्मलं तपं)** इसी को निर्मल तप कहते हैं।

दानं पात्र चिंतस्य, सुद्ध तत्व रतो सदा ।
सुद्ध धर्म रतो भावं, पात्र चिंता दान संजुतं ।। ३७४ ।।

अन्वयार्थ - (दानं पात्र चिंतस्य) दान अर्थात् देना, पात्रों को भक्ति भाव से उनकी आवश्यकतानुसार चार दान देना **(सुद्ध तत्व रतो सदा)** शुद्ध तत्त्व की आराधना में संलग्न रहना **(सुद्ध धर्म रतो भावं)** अपने शुद्ध धर्म, शुद्ध स्वभाव में रत रहने की भावना भाना **(पात्र चिंता दान संजुतं)** पात्र जीवों को भावना सहित दान देना शुद्ध दान है।

षट् कर्म की उपासना का फल -

ये षट् कर्म सुद्धं च, जे सार्धंति सदा बुधै ।
मुक्ति मार्गं ध्रुवं सुद्धं, धर्म ध्यान रतो सदा ।। ३७५ ।।

अन्वयार्थ - (ये षट् कर्म सुद्धं च) इस प्रकार यह शुद्ध षट्कर्म हैं **(जे सार्धंति सदा बुधै)** जो ज्ञानी सदा इन षट्कर्मों की साधना करते हैं **(धर्म ध्यान रतो सदा)** सदा धर्म ध्यान में रत रहते हैं **(मुक्ति मार्गं ध्रुवं सुद्धं)** वे निश्चय ही मुक्ति मार्ग के पथिक हैं।

ये षट् कर्मं च आराध्यं, अविरतं श्रावगं ध्रुवं ।
संसार सरनि मुक्तस्य, मोषगामी न संसयः ।। ३७६ ।।

अन्वयार्थ - (ये षट् कर्मं च आराध्यं) इन शुद्ध षट्कर्मों का जो जीव आराधन करते हैं **(अविरतं श्रावगं ध्रुवं)** वे अविरत शुद्ध दृष्टि श्रावक हैं **(संसार सरनि मुक्तस्य)** वह संसार के परिभ्रमण से मुक्त होकर **(मोषगामी न संसयः)** मोक्षगामी होंगे इसमें कोई संशय नहीं है।

एतत् भावनं कृत्वा, श्रावगं संमिक दिस्टितं ।
अविरतं सुद्ध दिस्टी च, सार्धं न्यान मयं ध्रुवं ।। ३७७ ।।

अन्वयार्थ - (एतत् भावनं कृत्वा) इसप्रकार की भावना करने वाला **(श्रावगं संमिक दिस्टितं)** सम्यक्दृष्टि श्रावक होता है **(अविरतं सुद्ध दिस्टी च)** वह अविरत शुद्ध दृष्टि है जो **(सार्धं न्यान मयं ध्रुवं)** अपने ज्ञानमयी ध्रुव स्वभाव की श्रद्धा और साधना करता है।

(ब) ग्यारह प्रतिमा एवं पाँच अणुव्रत कथन -

श्रावग धर्म उत्पादंते, आचरनं उत्कृष्टं सदा ।
प्रतिमा एकादसं प्रोक्तं, पंच अनुव्रत सुद्धये ।। ३७८ ।।

अन्वयार्थ - (श्रावग धर्म उत्पादंते) श्रावक धर्म का वर्णन करते हैं [व्रती श्रावक] **(सदा उत्कृष्टं आचरनं)** निरंतर उत्कृष्ट-उत्कृष्ट आचरण करता है [वह प्रतिमाओं के वृद्धिंगत होते हुए आचरण को ग्रहण करता है] **(पंच अनुव्रत सुद्धये)** वह पाँच अणुव्रतों का शुद्धता पूर्वक पालन करता हुआ **(एकादसं प्रतिमा प्रोक्तं)** आगम में जो ग्यारह प्रतिमाएँ कही गईं हैं वह उनका पालन करता है।

दंसन वय सामाइ, पोसह सचित्त चिंतनं ।
अनुरागं बंभचर्यं च, आरंभं परिग्रहस्तथा ।। ३७९ ।।

अन्वयार्थ - (दंसन वय सामाइ) दर्शन प्रतिमा, व्रत प्रतिमा, सामायिक प्रतिमा **(पोसह सचित्त चिंतनं)** प्रोषधोपवास प्रतिमा, सचित्त त्याग प्रतिमा **(अनुरागं बंभचर्यं च)** अनुराग भक्ति प्रतिमा, ब्रह्मचर्य

प्रतिमा **(आरंभं परिग्रहस्तथा)** आरंभ त्याग प्रतिमा, परिग्रह त्याग प्रतिमा।

अनुमतं उदिस्ट देसं च, प्रतिमा एकादसानि च ।
व्रतानि पंच उत्पादंते, श्रूयते जिनागमं ।। ३८० ।।

अन्वयार्थ - (अनुमतं उदिस्ट देसं च) अनुमति त्याग प्रतिमा, उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा यह देशव्रती का आचरण है, वह **(प्रतिमा एकादसानि च)** ग्यारह प्रतिमाओं का पालन करता हुआ **(व्रतानि पंच उत्पादंते)** पाँच अणुव्रतों का आचरण करता है **(श्रूयते जिनागमं)** ऐसा जिनागम में कहा है।

अहिंसा नृतं जेन, स्तेयं बंभ परिग्रहं ।
सुद्ध तत्व हृदयं चिंते, सार्धं न्यान मयं धुवं ।। ३८१ ।।

अन्वयार्थ - (जेन) जो अणुव्रती श्रावक है वह **(अहिंसा नृतं)** अहिंसा, सत्य **(स्तेयं बंभ परिग्रहं)** अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रह परिमाण इन पाँच अणुव्रतों का पालन करते हुए **(सुद्ध तत्व हृदयं चिंते)** शुद्ध तत्व का हृदय में चिंतवन और **(सार्धं न्यान मयं धुवं)** ज्ञानमयी ध्रुव स्वभाव की साधना करता है।

दर्शन प्रतिमा का स्वरूप -

प्रतिमा उत्पादंते जेन, दर्सनं सुद्ध दर्सनं ।
उवंकारं च वेदंते, मल पच्चीस विमुक्तयं ।। ३८२ ।।

अन्वयार्थ - (जेन) जो अणुव्रती श्रावक है उसके आचरण हेतु **(प्रतिमा उत्पादंते)** ग्यारह प्रतिमाओं के स्वरूप का वर्णन किया जाता है [यह श्रावक] **(दर्सनं सुद्ध दर्सनं)** आत्म श्रद्धान सहित शुद्ध सम्यग्दर्शन पूर्वक **(उवंकारं च वेदंते)** पंच परमेष्ठी स्वरूप आत्म तत्त्व का अनुभव करता है और **(मल पच्चीस विमुक्तयं)** सम्यग्दर्शन के पच्चीस दोषों से रहित होता है, यह दर्शन प्रतिमा है।

मूढ़त्रयं उत्पादंते, लोक मूढ़ं न दिस्टते ।
जेतानि मूढ़ दिस्टी च, तेतानि दिस्टि न दीयते ।। ३८३ ।।

अन्वयार्थ - (मूढ़त्रयं उत्पादंते) तीन मूढ़ताओं के स्वरूप का वर्णन करते हैं [दर्शन प्रतिमाधारी श्रावक] **(लोक मूढ़ं न दिस्टते)** लोक मूढ़ता को नहीं देखता [इसके अतिरिक्त] **(जेतानि मूढ़ दिस्टी च)** जितनी जगत में मूढ़ मान्यतायें हैं **(तेतानि दिस्टि न दीयते)** दर्शन प्रतिमाधारी उन पर श्रद्धान नहीं करता और न ही उन पर दृष्टि देता है।

लोक मूढ़ं देव मूढ़ं च, अनृतं अचेत दिस्टते ।
तिक्तते सुद्ध दिस्टी च, सुद्ध संमिक्त रतो सदा ।। ३८४ ।।

अन्वयार्थ - [अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव] **(लोक मूढ़ं देव मूढ़ं च)** लोक मूढ़ता और देव मूढ़ता को तथा **(अनृतं अचेत दिस्टते)** क्षणभंगुर, नाशवान जड़ पदार्थों को देखता है **(तिक्तते सुद्ध दिस्टी च)** सम्यग्दृष्टि इन मूढ़ताओं को छोड़ देता है **(सुद्ध संमिक्त रतो सदा)** वह सदा ही शुद्धात्मा के श्रद्धान रूप सम्यग्दर्शन में तन्मय रहता है।

पाषंडी मूढ उक्तं च, असास्वतं असत्य उच्यते ।
अधर्मं च प्रोक्तं जेन, कुलिंगी पाषंड तिक्तयं ।। ३८५ ।।

अन्वयार्थ - (पाषंडी मूढ उक्तं) अब पाषंडी मूढ़ता अर्थात् गुरू मूढ़ता का स्वरूप कहते हैं **(जेन)**

जो पाषंडी हैं वे **(असास्वतं असत्य उच्यते)** क्षणभंगुर नाशवान पदार्थों की वार्ता करते हैं **(अधर्मं च प्रोक्तं)** अधर्म की चर्चा करते हैं और उसी रूप आचरण करते हैं **(कुलिंगी पाषंड तिक्तयं)** ऐसे कुलिंगधारी झूठे साधु और उनके द्वारा विस्तारित पाषंड को दर्शन प्रतिमाधारी श्रावक त्याग देते हैं।

अनायतन षट्कस्चैव, तिक्तते जे विचष्यना ।
कुदेवं कुदेव धारी च, कुलिंगी कुलिंग मानते ।। ३८६ ।।

अन्वयार्थ - (कुदेवं कुदेव धारी च) कुदेव और कुदेवों को मानने वाले **(कुलिंगी कुलिंग मानते)** कुगुरु और कुगुरुओं को मानने वाले [इस गाथा में चार, आगे की गाथा में शेष दो का कथन है] इस प्रकार **(अनायतन षट्कस्चैव)** अनायतन छह प्रकार के कहे गये हैं **(तिक्तते जे विचष्यना)** जो विचक्षण अर्थात् ज्ञानी पुरुष हैं, वे इनका त्याग कर देते हैं।

कुसास्त्रं विकहा रागं च, तिक्तते सुद्ध दिस्टितं ।
कुसास्त्रं राग विध्नंते, अभव्यं च नरयं पतं ।। ३८७ ।।

अन्वयार्थ - (कुसास्त्रं विकहा रागं च) जिनमें राग वर्धक विकथायें हों ऐसे कुशास्त्र और उनको मानने वाले **(तिक्तते सुद्ध दिस्टितं)** सम्यग्दृष्टि इन सबका त्याग कर देते हैं **(कुसास्त्रं राग विध्नंते)** खोटे शास्त्र राग बढ़ाने वाले होते हैं **(अभव्यं च नरयं पतं)** जो इनको पढ़ते हैं, अनुसरण करते हैं वे अभव्य हैं, उनका नरक में पतन होता है।

अन्यानी मिथ्या संजुक्तं, तिक्तते सुद्ध दिस्टितं ।
सुद्धात्मा चेतना रूपं, सार्धं न्यान मयं ध्रुवं ।। ३८८ ।।

अन्वयार्थ - (अन्यानी मिथ्या संजुक्तं) अज्ञानी जीव मिथ्यात्व में लिप्त रहते हैं **(तिक्तते सुद्ध दिस्टितं)** ज्ञानी शुद्धदृष्टि समस्त अज्ञान रूप आचरण को छोड़ देते हैं, तथा **(सुद्धात्मा चेतना रूपं)** अपने चैतन्यमयी शुद्धात्म स्वरूप **(सार्धं न्यान मयं ध्रुवं)** ज्ञानमयी ध्रुव स्वभाव की साधना करते हैं।

मद अस्टं ससंक अस्टं च, तिक्तते भव्यात्मनं ।
सुद्ध पदं ध्रुवं सार्धं, दर्सनं मल विमुक्तयं ।। ३८९ ।।

अन्वयार्थ - (मद अस्टं ससंक अस्टं) ज्ञानादि आठ मद और शंकादि आठ दोषों को **(तिक्तते भव्यात्मनं)** भव्य जीव त्याग देते हैं, वे **(सुद्ध पदं ध्रुवं सार्धं)** शुद्ध पद ध्रुव स्वभाव की साधना करते हैं **(दर्सनं मल विमुक्तयं)** इस प्रकार सम्यग्दर्शन के पच्चीस मल दोषों से रहित दर्शन प्रतिमा होती है।

जे केवि मल संपूर्नं, कुन्यानं त्रि रतो सदा ।
ते तानि संग तिक्तंते, न किंचिदपि चिंतए ।। ३९० ।।

अन्वयार्थ - (जे केवि मल संपूर्नं) जो कोई जीव इन पच्चीस दोषों से परिपूर्ण होता है **(कुन्यानं त्रि रतो सदा)** तीन कुज्ञान में सदैव रत रहता है **(ते तानि संग तिक्तंते)** सम्यग्दृष्टि ज्ञानी उनका संग त्याग देते हैं **(न किंचिदपि चिंतए)** उनका कभी विचार भी नहीं करते।

मल मुक्तं दर्सनं सुद्धं, आराधते बुधै जनै ।
संमिक दर्सन सुद्धं च, न्यानं चारित्र संजुतं ।। ३९१ ।।

अन्वयार्थ - (बुधै जनै) बुद्धिमान ज्ञानीजन **(मल मुक्तं दर्सनं सुद्धं)** मिथ्यात्व आदि मलों से

रहित शुद्ध सम्यक्त्व की **(आराधते)** आराधना करते हैं **(संमिक दर्सन सुद्धं च)** वे निर्मल सम्यग्दर्शन पूर्वक **(न्यानं चारित्र संजुतं)** सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को धारण करते हैं।

दर्सनं जस्य हृदयं सार्धं, दोषं तस्य न पस्यते ।
विनासं सकल जानंते, स्वप्नं तस्य न दिस्यते ।। ३९२ ।।

अन्वयार्थ - (दर्सनं जस्य हृदयं सार्धं) जिसके हृदय में शुद्धात्मा का श्रद्धान होता है **(दोषं तस्य न पस्यते)** उसके कोई दोष दिखाई नहीं देते **(विनासं सकल जानंते)** वह जगत के समस्त पदार्थों को विनाशीक जानता है **(स्वप्नं तस्य न दिस्यते)** उसे स्वप्न में भी नाशवान पदार्थों का राग पैदा नहीं होता।

संमिक दर्सनं सुद्धं, मिथ्या कुन्यान विलीयते ।
सुद्ध समयं च उत्पादंते, रजनी उदय भास्करं ।। ३९३ ।।

अन्वयार्थ - (रजनी उदय भास्करं) जिस प्रकार सूर्य के उदय से रात्रि विलीन हो जाती है, उसी प्रकार **(संमिक दर्सनं सुद्धं)** शुद्ध सम्यग्दर्शन होने से **(मिथ्या कुन्यान विलीयते)** मिथ्या कुज्ञान का विलय हो जाता है और **(सुद्ध समयं च उत्पादंते)** शुद्धात्म स्वरूप प्रगट हो जाता है।

दर्सनं तत्व सार्धं च, तत्व नित्य प्रकासकं ।
न्यानं तत्वानि वेदंते, दर्सनं तत्व सार्धयं ।। ३९४ ।।

अन्वयार्थ - (दर्सनं तत्व सार्धं च) तत्त्वों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है, यह सम्यग्दर्शन **(तत्व नित्य प्रकासकं)** अविनाशी शुद्ध तत्त्व का प्रकाश करने वाला है **(न्यानं तत्वानि वेदंते)** तत्त्वों का अनुभव प्रमाण ज्ञान, सम्यग्ज्ञान है **(दर्सनं तत्व सार्धयं)** दर्शन सहित तत्त्व की साधना करना चारित्र है।

संमिक दर्सनं सुद्धं, उवंकारं च विंदते ।
धर्म ध्यानं च उत्पाद्यंते, ह्रियंकारेण दिस्टते ।। ३९५ ।।

अन्वयार्थ - (संमिक दर्सनं सुद्धं) शुद्ध सम्यग्दर्शन, निज शुद्धात्मानुभूति के समय में जीव को **(उवंकारं च विंदते)** परमात्म स्वरूप का अनुभव होता है **(धर्म ध्यानं च उत्पाद्यंते)** धर्म ध्यान प्रकट हो जाता है **(ह्रियंकारेण दिस्टते)** जिससे वह केवलज्ञानमयी परमात्म स्वरूप का दर्शन करता है।

उवंकारं ह्रींकारं च, श्रींकारं प्रति पूर्नयं ।
ध्यायंति सुद्ध ध्यानस्य, अनुव्रतं सार्धं धुवं ।। ३९६ ।।

अन्वयार्थ - दर्शन प्रतिमाधारी श्रावक को **(उवंकारं ह्रींकारं च)** पंच परमेष्ठीमयी सिद्ध स्वरूप और केवलज्ञानमयी परमात्म स्वरूप तथा **(श्रींकारं प्रति पूर्नयं)** मोक्षलक्ष्मी स्वरूप निज शुद्धात्म तत्त्व के प्रति पूर्ण श्रद्धान होता है, वह **(ध्यायंति सुद्ध ध्यानस्य)** शुद्ध ध्यान में शुद्धात्म स्वरूप को ध्याता है, इस प्रकार **(अनुव्रतं सार्धं धुवं)** ध्रुव स्वभाव के श्रद्धान पूर्वक अणुव्रतों का पालन करता है।

अन्या वेदकस्चैव, पदवी दुतिय आचार्यं ।
न्यानं मति श्रुतस्चैव, धर्म ध्यानं रतो सदा ।। ३९७ ।।

अन्वयार्थ - (अन्या वेदकस्चैव) आज्ञा सम्यक्त्व तथा वेदक सम्यक्त्व सहित **(पदवी दुतिय आचार्यं)** दूसरी आचार्य पदवी का धारी [प्रतिमाधारी श्रावक] **(न्यानं मति श्रुतस्चैव)** मतिज्ञान श्रुतज्ञान सहित **(धर्म ध्यानं रतो सदा)** हमेशा धर्म ध्यान में रत रहता है।

अनेय व्रत कर्तव्यं, तप संजमं च धारनं ।
दर्सन सुद्धि न जानंते, व्रिथा सकल विभ्रमः ।। ३९८ ।।

अन्वयार्थ – [कोई जीव] **(अनेय व्रत कर्तव्यं)** अनेक व्रतों का पालन करता है **(तप संजमं च धारनं)** तप और संयम को धारण करता है किन्तु **(दर्सन सुद्धि न जानंते)** शुद्ध सम्यग्दर्शन निज शुद्धात्मानुभव को नहीं जानता **(व्रिथा सकल विभ्रमः)** उसका सारा प्रयास वृथा है, विपरीत, भ्रम मात्र है ऐसे आचरण से कभी मोक्ष नहीं होगा।

अनेय पाठ पठनं च, अनेय क्रिया संजुतं ।
दर्सन सुद्धि न जानंते, व्रिथा दान अनेकधा ।। ३९९ ।।

अन्वयार्थ – अज्ञानी जीव **(अनेय पाठ पठनं च)** अनेक पाठ पढ़ता है और अनेक शास्त्रों को जानता है **(अनेय क्रिया संजुतं)** अनेक प्रकार की क्रियाओं का पालन करता है किन्तु **(दर्सन सुद्धि न जानंते)** सम्यग्दर्शन की शुद्धि को नहीं जानता तो **(व्रिथा दान अनेकधा)** उसका अनेक प्रकार का दान आदि करना निरर्थक है, मोक्षमार्ग में कार्यकारी नहीं है।

दर्सनं जस्य हृदयं दिस्टा, सुयं न्यानं उत्पादते ।
कमठी दिस्टि जथा डिंभं, सुयं व्रिधंति जं बुधैः ।। ४०० ।।

अन्वयार्थ – **(दर्सनं जस्य हृदयं दिस्टा)** जिसके हृदय में सम्यग्दर्शन विद्यमान है **(सुयं न्यानं उत्पादते)** वहाँ ज्ञान स्वयं प्रकट होता है **(कमठी दिस्टि जथा डिंभं)** जैसे कछवी की दृष्टि से उसका अंडा स्वयं बढ़ता है **(सुयं व्रिधंति जं बुधैः)** इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि का ज्ञान स्वयं बढ़ता है।

दर्सनं जस्य हिदं श्रुतं, सुयं न्यानं च संभवे ।
मच्छिका अंड जथा रेतं, सुयं व्रिधन्ति जं बुधैः ।। ४०१ ।।

अन्वयार्थ – **(दर्सनं जस्य हिदं श्रुतं)** जिसके हृदय में सम्यग्दर्शन है **(सुयं न्यानं च संभवे)** वहाँ ज्ञान सहज ही प्रकटता है **(मच्छिका अंड जथा रेतं)** जैसे–मछली नदी की रेत में अंडे देती है और पानी में यत्र–तत्र विचरण करती है परंतु अंडों की सुरत नहीं भूलती, उसके सुरत रखने से अंडे स्वयं बढ़ते हैं **(सुयं व्रिधन्ति जं बुधैः)** इसी प्रकार ज्ञानी को अपने आत्म स्वरूप की सुरत रहने से ज्ञान स्वयं बढ़ता है।

दर्सन हीन तपं कृत्वा, व्रत संजम पठं क्रिया ।
चपलता हिंडि संसारे, जह जल सरनि ताल कीटऊ ।। ४०२ ।।

अन्वयार्थ – **(दर्सन हीन तपं कृत्वा)** जो जीव सम्यग्दर्शन से रहित होकर तप करते हैं **(व्रत संजम पठं क्रिया)** व्रत संयम पालते हैं, पठन पाठन आदि क्रियाएँ करते हैं **(चपलता हिंडि संसारे)** अज्ञान भावमय चपलता के कारण वे संसार में परिभ्रमण करते हैं **(जह जल सरनि ताल कीटऊ)** जैसे–तालाब के जल में कीटाणु बिलबिलाते रहते हैं, चारों तरफ उसी में घूमते रहते हैं।

दर्सनं स्थिरं जेन, न्यानं चरनं च स्थिरं ।
संसारे तिक्त मोहंधं, मुक्ति स्थिरं सदा भवेत् ।। ४०३ ।।

अन्वयार्थ – **(दर्सनं स्थिरं जेन)** जो जीव सम्यग्दर्शन में भले प्रकार स्थिर होते हैं **(न्यानं चरनं च स्थिरं)** सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र में स्थिर होते हैं **(संसारे तिक्त मोहंधं)** वे संसार में परिभ्रमण कराने

वाले मोहांधकार का त्याग करके **(मुक्ति स्थिरं सदा भवेत्)** सादि अनंत काल तक मुक्ति में स्थिर रहते हैं।

व्रत प्रतिमा का स्वरूप -

एतत् दर्सनं दिस्टा, न्यानं चरन सुद्धए ।
उत्कृष्टं व्रतं सुद्धं, मोष्यगामी न संसयः ।। ४०४ ।।

अन्वयार्थ - (एतत् दर्सनं दिस्टा) इस प्रकार जो सम्यग्दृष्टि शुद्धात्मा के श्रद्धान सहित होता हुआ **(न्यानं चरन सुद्धए)** ज्ञान और चारित्र से शुद्ध होता है **(उत्कृष्टं व्रतं सुद्धं)** उसके व्रत उत्कृष्ट और शुद्ध होते हैं **(मोष्यगामी न संसयः)** ऐसा व्रत प्रतिमाधारी श्रावक मोक्षगामी होता है इसमें कोई संशय नहीं है।

दर्सनं सार्धनं जस्य, व्रत तपस्य उच्यते ।
व्रत तप नेम संजुक्तं, सार्धं स्वात्म दर्सनं ।। ४०५ ।।

अन्वयार्थ - (दर्सनं सार्धनं जस्य) जिस जीव को आत्म श्रद्धान रूप सम्यग्दर्शन है **(व्रत तपस्य उच्यते)** उसी के व्रत तप यथार्थ कहे जाते हैं **(व्रत तप नेम संजुक्तं)** जो व्रत तप नियम से संयुक्त है **(सार्धं स्वात्म दर्सनं)** स्वात्म दर्शन पूर्वक साधना करता है वह व्रत प्रतिमाधारी है।

सामायिक प्रतिमा का स्वरूप -

सामायिकं नृतं जेन, सम संपूर्न सार्धयं ।
ऊर्ध आर्ध मध्यं च, मन रोधो स्वात्म चिंतनं ।। ४०६ ।।

अन्वयार्थ - (सामायिकं नृतं जेन) जो सामायिक प्रतिमा का सच्चा आचरण करता है **(सम संपूर्न सार्धयं)** वह हमेशा समता भाव में रहने की साधना करता है **(ऊर्ध आर्ध मध्यं च)** प्रातः, मध्यान्ह, सायंकाल के समय में **(मन रोधो स्वात्म चिंतनं)** मन का निरोध कर स्वात्म चिंतन में लीन रहता है।

आलापं भोजनं गच्छं, श्रुतं सोकं च विभ्रमं ।
मनो वय काय ह्दिं सुद्धं, सामाई स्वात्म चिंतनं ।। ४०७ ।।

अन्वयार्थ - (आलापं भोजनं गच्छं) वार्तालाप में, भोजन में, गमन करने में **(श्रुतं सोकं च विभ्रमं)** श्रवण, शोक और विभ्रम अर्थात् शंका संदेह रहित होकर **(मनो वय काय ह्दिं सुद्धं)** मन, वचन, काय और ह्दय से शुद्धता पूर्वक **(सामाई स्वात्म चिंतनं)** अपने शुद्धात्म स्वरूप का चिंतवन करना सामायिक प्रतिमा है।

प्रोषधोपवास प्रतिमा का स्वरूप -

पोसह प्रोषधस्चैव, उववासं जेन क्रीयते ।
संमिक्तं जस्य ह्रदयं सुद्धं, उववासं तस्य उच्यते ।। ४०८ ।।

अन्वयार्थ - (जेन) जो श्रावक **(पोसह प्रोषधस्चैव)** पर्व के दिनों में प्रोषध पूर्वक **(उववासं क्रीयते)** उपवास करते हैं **(संमिक्तं जस्य ह्रदयं सुद्धं)** जिसके ह्रदय में शुद्ध सम्यग्दर्शन होता है **(उववासं तस्य उच्यते)** उसको ही उपवास [अर्थात् प्रोषधोपवास प्रतिमा] कहते हैं।

संसारं विरतिते जेन, सुद्ध तत्वं च सार्धयं ।
सुद्ध दिस्टी स्थिरी भूतं, उववासं तस्य उच्यते ।। ४०९ ।।

अन्वयार्थ - (संसारं विरतिते जेन) जो जीव संसार के राग से विरक्त हो गया है **(सुद्ध तत्वं च**

सार्धयं) अपने शुद्धात्म तत्त्व की साधना करता है **(सुद्ध दिस्टी स्थिरी भूतं)** शुद्ध दृष्टि पूर्वक अपने स्वभाव में स्थिर होने का पुरुषार्थ करता है **(उववासं तस्य उच्यते)** उसको ही उपवास कहते हैं।

उववासं इच्छनं कृत्वा, जिन उक्तं इच्छनं जथा ।
भक्ति पूर्वं च इच्छंते, तस्य हृदय समाचरेत् ।। ४१० ।।

अन्वयार्थ - (उववासं इच्छनं कृत्वा) उपवास रखने की भावना करना **(जिन उक्तं इच्छनं जथा)** जिनेन्द्र भगवान के कहे अनुसार अपने स्वरूप में रहने की इच्छा करना **(भक्ति पूर्वं च इच्छंते)** क्योंकि भक्ति पूर्वक जिस ओर की रुचि होती है **(तस्य हृदय समाचरेत्)** जीव का उसी ओर का पुरुषार्थ काम करता है, वैसा ही हृदय से आचरण होता है।

उववासं व्रतं सुद्धं, सेसं संसार तिक्तयं ।
पछितो तिक्त आहारं, अनसन उववास उच्यते ।। ४११ ।।

अन्वयार्थ - (उववासं व्रतं सुद्धं) शुद्ध उपवास व्रत पालन करने के लिये [प्रथम] **(सेसं संसार तिक्तयं)** समस्त संसार का त्याग करना **(पछितो तिक्त आहारं)** पश्चात् आहार का त्याग करना **(अनसन उववास उच्यते)** इसको अनशन उपवास कहा जाता है, इसी का नाम प्रोषधोपवास प्रतिमा है।

उववासं फलं प्रोक्तं, मुक्ति मार्गं च निस्चयं ।
संसारे दुष नासंति, उववासं सुद्धं फलं ।। ४१२ ।।

अन्वयार्थ - (उववासं फलं प्रोक्तं) उपवास का फल कहा जाता है कि इससे **(मुक्ति मार्गं च निस्चयं)** निश्चय मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती है **(संसारे दुष नासंति)** संसार के दुःख नष्ट हो जाते हैं **(उववासं सुद्धं फलं)** शुद्ध उपवास अर्थात् निश्चय से आत्मा में वास करने और व्यवहार में पापों का त्याग करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है, यही उपवास का फल है।

संमिक्त बिना व्रतं जेन, तपं अनादि कालयं ।
उववासं मास पाषं च, संसारे दुष दारुनं ।। ४१३ ।।

अन्वयार्थ - (जेन) जो जीव **(संमिक्त बिना व्रतं)** सम्यग्दर्शन के बिना [जन्म-जन्म में] व्रत करते हैं **(तपं अनादि कालयं)** अनादिकाल से तप कर रहे हैं **(उववासं मास पाषं च)** महीना-महीना, पन्द्रह-पन्द्रह दिन का उपवास करते हैं **(संसारे दुष दारुनं)** वह सब संसार में दारुण दुःख का ही कारण है।

उववासं एक सुद्धं च, मन सुद्धं तत्व सार्धयं ।
मुक्ति श्रियं पंथं सुद्धं, प्राप्तं तत्र न संसया ।। ४१४ ।।

अन्वयार्थ - (उववासं एक सुद्धं च) यदि एक भी उपवास शुद्ध किया जाये **(मन सुद्धं तत्व सार्धयं)** जिसमें मन पवित्र हो, आत्म तत्त्व की साधना सहित हो **(मुक्ति श्रियं पंथं सुद्धं)** वह मुक्ति श्री के शुद्ध पथ को **(प्राप्तं तत्र न संसया)** प्राप्त कर लेता है इसमें कोई संशय नहीं है।

सचित्त प्रतिमा का स्वरूप -

सचित्त चिंतनं कृत्वा, चेतयंति सदा बुधैः ।
अचेतं असत्य तिक्तं च, सचित्त प्रतिमा उच्यते ।। ४१५ ।।

अन्वयार्थ - (बुधैः) ज्ञानीजन **(सचित्त चिंतनं कृत्वा)** सावचेत होकर अपने स्वरूप का चिंतवन

करते हुए **(चेतयंति सदा)** हमेशा चैतन्य अर्थात् होश में रहते हैं **(अचेतं असत्य तिक्तं च)** अचेतपना और असत्य छोड़ देते हैं **(सचित्त प्रतिमा उच्यते)** इसे सचित्त प्रतिमा कहते हैं।

सचित्तं हरितं जेन, तिक्तंते न विरोधनं ।
चेत वस्तु संमूर्छनं च, तिक्तंते सदा बुधैः ।। ४१६ ।।

अन्वयार्थ - (सचित्तं हरितं जेन) जो हरित सचित्त वनस्पति का **(तिक्तंते न विरोधनं)** त्याग करते हैं वे उसे छूते और तोड़ते भी नहीं हैं **(चेत वस्तु संमूर्छनं च)** सचित्त वस्तु तथा जिसमें संमूर्च्छन जीव होते हैं **(तिक्तंते सदा बुधैः)** ज्ञानी उसे हमेशा के लिये छोड़ देते हैं।

सचित्त हरित तिक्तं च, अचेत सार्धं च तिक्तयं ।
सचित्त चेतना भावं, सचित्त प्रतिमा सदा बुधैः ।। ४१७ ।।

अन्वयार्थ - (सचित्त हरित तिक्तं च) सचित्त वनस्पति का त्याग करने वाला श्रावक **(अचेत सार्धं च तिक्तयं)** अचित्त अर्थात् अचेतन [अनात्मा] का श्रद्धान भी नहीं करता है, उसे भी छोड़ देता है **(सचित्त चेतना भावं)** अपने चैतन्य भाव में सचेत सावधान रहता है यही **(सचित्त प्रतिमा सदा बुधैः)** सचित्त प्रतिमा है जिसका ज्ञानी हमेशा पालन करते हैं।

अनुराग भक्ति प्रतिमा का स्वरूप -

अनुराग भक्ति दिस्टं च, राग दोषं न दिस्टते ।
मिथ्या कुन्यान तिक्तं च, अनुरागं तत्र उच्यते ।। ४१८ ।।

अन्वयार्थ - (अनुराग भक्ति दिस्टं च) अपने आत्म स्वरूप की मग्नता और शुद्धात्म तत्त्व की अतिशय प्रीति होना अनुराग भक्ति है **(राग दोषं न दिस्टते)** जहाँ राग-द्वेष दिखाई नहीं देते **(मिथ्या कुन्यान तिक्तं च)** मिथ्यात्व और कुज्ञान छूट जाते हैं **(अनुरागं तत्र उच्यते)** इसको अनुराग भक्ति प्रतिमा कहते हैं।

सुद्ध तत्वं च आराध्यं, असत्यं तस्य तिक्तये ।
मिथ्या सल्य तिक्तं च, अनुराग भक्ति सार्धयं ।। ४१९ ।।

अन्वयार्थ - (मिथ्या सल्य तिक्तं च) मिथ्या शल्यों का त्याग कर **(असत्यं तस्य तिक्तये)** पर द्रव्यों के समस्त असत् भावों को छोड़कर **(सुद्ध तत्वं च आराध्यं)** शुद्धात्म तत्त्व की आराधना करना **(भक्ति सार्धयं)** आत्म स्वरूप की भक्ति सहित साधना करना **(अनुराग)** अनुराग भक्ति प्रतिमा है।

ब्रह्मचर्य प्रतिमा का स्वरूप -

बंभ अबंभं तिक्तं च, सुद्ध दिस्टि रतो सदा ।
सुद्ध दर्सन समं सुद्धं, अबंभं तिक्त निस्चयं ।। ४२० ।।

अन्वयार्थ - (बंभ अबंभं तिक्तं च) अब्रह्म अर्थात् कुशील का त्याग करना अथवा पर पर्याय की ओर नहीं देखना ब्रह्मचर्य है **(सुद्ध दिस्टि रतो सदा)** हमेशा शुद्धात्म स्वरूप को देखना उसी में रत रहना **(सुद्ध दर्सन समं सुद्धं)** शुद्ध सम्यग्दर्शन सहित शुद्ध स्वभाव की साधना करना **(अबंभं तिक्त निस्चयं)** अब्रह्म भाव, पर्याय दृष्टि को छोड़ना निश्चय से ब्रह्मचर्य प्रतिमा है।

जस्य चितं धुवं निस्चय, ऊर्ध आर्धं च मध्ययं ।
जस्य चितं न रागादि, प्रपंच तस्य न पस्यते ।। ४२१ ।।

अन्वयार्थ - (**जस्य चितं धुवं निस्चय**) जिसके चित्त में अपने ध्रुव स्वभाव का निश्चय श्रद्धान है (**ऊर्ध आर्ध च मध्ययं**) जो तीनों लोक में अपने ब्रह्म स्वरूप को देखता है (**जस्य चितं न रागादि**) जिसके चित्त में कोई राग-द्वेष मोह नहीं होते (**प्रपंच तस्य न पस्यते**) उसको कोई प्रपंच दिखलाई नहीं देते अर्थात् जिसकी दृष्टि ध्रुव स्वभाव पर होती है वह ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी है।

विकहा विसन उक्तं च, चक्र धरनेंद्र इन्द्रयं ।
नरेन्द्रं विभ्रमं रूपं, वर्नते विकहा उच्यते ।। ४२२ ।।

अन्वयार्थ - (**विकहा विसन उक्तं च**) सात व्यसनों के संबंध में राग वर्द्धक चर्चा और विकथा करना (**चक्र धरनेंद्र इन्द्रयं**) चक्रवर्ती धरणेन्द्र इन्द्रों के (**नरेन्द्रं विभ्रमं रूपं**) राजा महाराजाओं के वैभव, रूप आदि तथा राग को बढ़ाने वाले वर्ण, रूपादि सहित कामभोग आदि की (**वर्नते विकहा उच्यते**) चर्चा करना, सुनना विकथा कहलाती है।

व्रत भंगं राग चिंतंते, विकहा मिथ्यात रंजितं ।
अबंभं तिक्त बंभं च, बंभ प्रतिमा स उच्यते ।। ४२३ ।।

अन्वयार्थ - (**व्रत भंगं राग चिंतंते**) राग भाव का चिंतन करने से ब्रह्मचर्य व्रत भंग हो जाता है (**विकहा मिथ्यात रंजितं**) चारों विकथाओं को, मिथ्यात्व में रंजायमान होने को (**अबंभं तिक्त बंभं च**) और अब्रह्म को छोड़कर ब्रह्मचर्य में रत रहने को (**बंभ प्रतिमा स उच्यते**) ब्रह्मचर्य प्रतिमा कहते हैं।

जदि बंभचारिनो जीवो, भाव सुद्धं न दिस्टते ।
विकहा राग रंजंते, प्रतिमा बंभ गतं पुनः ।। ४२४ ।।

अन्वयार्थ - (**जदि बंभचारिनो जीवो**) यदि ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी जीव के (**भाव सुद्धं न दिस्टते**) शुद्ध भाव दिखाई नहीं देते [यदि] (**विकहा राग रंजंते**) वह विकथा और राग में रंजायमान रहता है तो (**प्रतिमा बंभ गतं पुनः**) उसकी ब्रह्मचर्य प्रतिमा भंग हो गई ऐसा समझना चाहिये।

चितं निरोधनं जेन, सुद्ध तत्वं च सार्धयं ।
तस्य ध्यान स्थिरीभूतं, बंभ प्रतिमा स उच्यते ।। ४२५ ।।

अन्वयार्थ - (**चितं निरोधतं जेन**) जो साधक अपने चित्त को एकाग्र करके (**सुद्ध तत्वं च सार्धयं**) शुद्धात्म तत्त्व की साधना करता है (**तस्य ध्यान स्थिरीभूतं**) उसके ध्यान में स्थिर हो जाता है (**बंभ प्रतिमा स उच्यते**) उसे ब्रह्मचर्य प्रतिमा कहते हैं।

आरंभ त्याग प्रतिमा का स्वरूप -

आरंभं मन पसरस्य, दिस्टं अदिस्ट संजुतं ।
निरोधनं च कृतं तस्य, सुद्ध भावं च संजुतं ।। ४२६ ।।

अन्वयार्थ - (**आरंभं मन पसरस्य**) आरंभ के लिये मन फैलता है (**दिस्टं अदिस्ट संजुतं**) वह देखे हुए और बिना देखे हुए कार्यों में लगा रहता है (**निरोधनं च कृतं तस्य**) जो उसके कार्य और अंतर के विचारों का निरोध करके (**सुद्ध भावं च संजुतं**) शुद्ध भाव में लीन रहता है वह आरंभ त्याग प्रतिमाधारी है।

अनृत अचेत असत्यं, आरंभं जेन क्रीयते ।
जिन उक्तं न दिस्टंते, जिनद्रोही मिथ्या तत्परा ।। ४२७ ।।

अन्वयार्थ - **(जेन)** जो जीव **(अनृत अचेत असत्यं)** क्षणभंगुर, अचेतन-धन, वैभव, मकान, मंदिर, मठ आदि असत् पदार्थों के लिये **(आरंभ क्रीयते)** आरंभ करता है, वह **(जिन उक्तं न दिस्टंते)** जिनवाणी में क्या कहा है इसे नहीं देखता, ऐसा जीव **(जिनद्रोही मिथ्या तत्परा)** मिथ्यात्व में तत्पर रहते हुए जिनेन्द्र का द्रोही है, जिनवाणी की विराधना करने वाला है।

अदेवं अगुरं जस्य, अधर्मं क्रियते सदा ।
विस्वासं जेन जीवस्य, दुर्गतिं दुष भाजनं ।। ४२८ ।।

अन्वयार्थ - **(जस्य)** जिस जीव को **(अदेवं अगुरं)** अदेव अगुरु के प्रति श्रद्धा है जो **(अधर्मं क्रियते सदा)** हमेशा अधर्म की क्रियायें करता रहता है **(जेन जीवस्य विस्वासं)** जिस जीव को उन क्रियाओं में विश्वास है, वह **(दुर्गतिं दुष भाजनं)** दुर्गति और दु:खों का पात्र बनता है।

आरंभं परिग्रहं दिस्टा, अनंतानंत चिंतये ।
ते नरा न्यान हीनस्य, दुर्गति पतितं न संसयः ।। ४२९ ।।

अन्वयार्थ - **(आरंभं परिग्रहं दिस्टा)** जो आरंभ और परिग्रह को ही देखते रहते हैं **(अनंतानंत चिंतये)** और इसकी अनंतानंत चिंतायें किया करते हैं **(ते नरा न्यान हीनस्य)** वे मनुष्य ज्ञान से हीन होते हैं **(दुर्गति पतितं न संसयः)** और दुर्गति में जाते हैं इसमें कोई संशय नहीं है।

आरंभं सुद्ध दिस्टी च, संमिक्तं सुद्धं धुवं ।
दर्सनं न्यान चारित्रं, आरंभं सुद्ध सास्वतं ।। ४३० ।।

अन्वयार्थ - **(आरंभं सुद्ध दिस्टी च)** जिस जीव ने शुद्ध दृष्टि का आरम्भ किया है, वह **(संमिक्तं सुद्धं धुवं)** ध्रुव स्वभाव का श्रद्धानी शुद्ध सम्यग्दृष्टि है **(दर्सनं न्यान चारित्रं)** वह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र का **(आरंभं सुद्ध सास्वतं)** आरम्भ कर शुद्ध शाश्वत स्वभाव की आराधना में संलग्न रहता है यही आरंभ त्याग प्रतिमा है।

आरंभं सुद्ध तत्वं च, संसार दुष तिक्तयं ।
मोष्यमार्गं च दिस्टंते, प्राप्तं सास्वतं पदं ।। ४३१ ।।

अन्वयार्थ - **(आरंभं सुद्ध तत्वं)** शुद्ध तत्त्व का आरंभ, विचार, ध्यान **(संसार दुष तिक्तयं)** संसार के दु:ख से छुड़ाने वाला **(मोष्यमार्गं च दिस्टंते)** मोक्षमार्ग को दिखाने वाला **(च)** और **(प्राप्तं सास्वतं पदं)** अविनाशी पद को प्राप्त कराने वाला है।

परिग्रह त्याग प्रतिमा का स्वरूप -

परिग्रहं पर पुद्‌गलार्थं च, परिग्रहं नवि चिंतए ।
ग्रहणं दर्सनं सुद्धं, परिग्रहं नवि दिस्टते ।। ४३२ ।।

अन्वयार्थ - परिग्रह त्याग प्रतिमाधारी **(परिग्रहं पर पुद्‌गलार्थं च)** धन, धान्य आदि परिग्रह को पर पुद्‌गल मानता है **(परिग्रहं नवि चिंतए)** परिग्रह की चिंता नहीं करता **(ग्रहणं दर्सनं सुद्धं)** अपने शुद्धात्म

स्वरूप को देखता है उसी को ग्रहण करता है **(परिग्रहं नवि दिस्टते)** परिग्रह को नहीं देखता यही परिग्रह त्याग प्रतिमा है।

अनुमति त्याग प्रतिमा का स्वरूप -

अनुमतं न दातव्यं, मिथ्या रागादि देसनं ।
अहिंसा भाव सुद्धस्य, अनुमतं न चिंतए ।। ४३३ ।।

अन्वयार्थ - दशम प्रतिमाधारी **(अनुमतं न दातव्यं)** आरम्भ परिग्रह संबंधी पाप कार्य की अनुमति नहीं देता **(मिथ्या रागादि देसनं)** मिथ्यात्व, राग-द्वेष सम्बंधी उपदेश भी नहीं देता **(अहिंसा भाव सुद्धस्य)** अहिंसा और भावों की शुद्धि का ध्यान रखता है **(अनुमतं न चिंतए)** अनुमति देने का चिंतवन भी नहीं करता वह अनुमति त्याग प्रतिमाधारी है।

उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा का स्वरूप -

उद्दिस्टं उत्कृष्ट भावेन, दर्सनं न्यान संजुतं ।
चरनं सुद्ध भावस्य, उद्दिस्टं आहार सुद्धये ।। ४३४ ।।

अन्वयार्थ - जिस साधक का **(उद्दिस्टं उत्कृष्ट भावेन)** उत्कृष्ट भाव सहित आत्म कल्याण का उद्देश्य है, जो **(दर्सनं न्यान संजुतं)** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सहित **(चरनं सुद्ध भावस्य)** सम्यक्चारित्र का शुद्ध भाव सहित पालन करता है **(उद्दिस्टं आहार सुद्धये)** अपने उद्देश्य से नहीं बनाये हुए शुद्ध आहार को ग्रहण करने वाला उद्दिष्ट त्याग प्रतिमाधारी है।

अंतराय मनं कृत्वा, वचनं काय उच्यते ।
मन सुद्धं वच सुद्धं च, उद्दिस्टं आहार सुद्धये ।। ४३५ ।।

अन्वयार्थ - **(अंतराय मनं कृत्वा)** अंतराय मन के **(वचनं काय उच्यते)** वचन के और काय सम्बंधी कहे गये हैं उनको बचाकर **(मन सुद्धं वच सुद्धं च)** शुद्ध मन और शुद्ध वचन सहित **(उद्दिस्टं आहार सुद्धये)** आहार की शुद्धि रखना उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा है।

प्रतिमा एकादसं जेन, जिन उक्तं जिनागमं ।
पालंति भव्य जीवस्य, मन सुद्धं स्वात्म चिंतनं ।। ४३६ ।।

अन्वयार्थ - **(जेन)** जो **(भव्य जीवस्य)** भव्य जीव **(जिन उक्तं जिनागमं)** जिनेन्द्र परमात्मा के कहे अनुसार जिनागम में वर्णित **(प्रतिमा एकादसं)** ग्यारह प्रतिमाओं का **(पालंति)** पालन करते हैं **(मन सुद्धं स्वात्म चिंतनं)** वे शुद्ध मन सहित आत्म चिंतन में निमग्न रहते हैं।

पाँच अणुव्रत कथन -

अनुव्रतं पंच उत्पादंते, अहिंसा नृत उच्यते ।
अस्तेयं बंभ व्रतं सुद्धं, अपरिग्रहं स उच्यते ।। ४३७ ।।

अन्वयार्थ - ग्यारह प्रतिमाओं को धारण करने वाले श्रावक **(अनुव्रतं पंच उत्पादंते)** पाँच अणुव्रतों का पालन करते हैं **(अहिंसा नृत उच्यते)** जिन्हें अहिंसा, सत्य कहते हैं **(अस्तेयं बंभ)** अचौर्य, ब्रह्मचर्य और **(अपरिग्रहं स उच्यते)** परिग्रह प्रमाण को अणुव्रत [तथा परिग्रह के सर्वथा त्याग को अपरिग्रह

महाव्रत] कहा है **(व्रतं सुद्धं)** इस प्रकार पाँच शुद्ध व्रतों का पालन होता है। [यह पाँच अणुव्रत पर्याय में शुद्धि के हेतु हैं]

अहिंसाणुव्रत -

हिंसा असत्य सहितस्य, राग दोष पापादिकं ।
थावरं त्रस आरंभं, तिक्तंते जे विचष्यना ।। ४३८ ।।

अन्वयार्थ - (असत्य सहितस्य) असत्य सहित भावमय होने पर **(राग दोष पापादिकं)** राग-द्वेष, पाप आदि की भावना सहित होने वाली **(थावरं त्रस)** स्थावर व त्रस जीवों की **(हिंसा)** हिंसा रूप **(आरंभं)** आरंभ को **(तिक्तंते जे विचष्यना)** जो विचक्षण [ज्ञानी] पुरुष हैं वे छोड़ देते हैं [अर्थात् अहिंसाणुव्रत का पालन करते हैं]।

सत्याणुव्रत -

अनृतं अनृतं वाक्यं, अनृत अचेत दिस्टते ।
असास्वतं वचन प्रोक्तं च, अनृतं तस्य उच्यते ।। ४३९ ।।

अन्वयार्थ - (अनृतं अनृतं वाक्यं) झूठ बोलना असत्य वचन कहलाता है **(अनृत अचेत दिस्टते)** क्षणभंगुर नाशवान अचेतन पदार्थों को देखना **(असास्वतं वचन प्रोक्तं च)** झूठे मिथ्या वचन कहना **(अनृतं तस्य उच्यते)** यह सब असत्य कहे जाते हैं, इनका त्याग ही सत्याणुव्रत है।

अचौर्याणुव्रत -

अस्तेयं स्तेय कर्मस्य, चौर भावं न क्रीयते ।
जिन उक्तं वचन सुद्धं च, अस्तेयं लोपनं कृतं ।। ४४० ।।

अन्वयार्थ - (जिन उक्तं वचन सुद्धं च) जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित उपदेश का **(अस्तेयं लोपनं कृतं)** लोप करना चोरी है [अचौर्याणुव्रती श्रावक इस प्रकार के] **(स्तेय कर्मस्य)** चोरी के कर्म **(चौर भावं न क्रीयते)** और चोरी के भाव भी नहीं करता **(अस्तेय)** यही अचौर्याणुव्रत है।

ब्रह्मचर्याणुव्रत -

ब्रह्मचर्यं च सुद्धं च, अबंभं भाव तिक्तयं ।
विकहा राग मिथ्यात्वं, तिक्तं बंभ व्रतं ध्रुवं ।। ४४१ ।।

अन्वयार्थ - (अबंभं भाव तिक्तयं) अब्रह्म भाव का छूट जाना ही **(ब्रह्मचर्यं च सुद्धं च)** ब्रह्मचर्य की शुद्धि है **(विकहा राग मिथ्यात्वं)** विकथा, राग और मिथ्यात्व के **(तिक्तं बंभ व्रतं ध्रुवं)** त्याग होने पर ब्रह्मचर्य अणुव्रत यथार्थ रूप में होता है।

मन वचन काय हृदयं सुद्धं, सुद्ध समय जिनागमं ।
विकहा काम सद्भावं, तिक्तंते ब्रह्मचारिना ।। ४४२ ।।

अन्वयार्थ - (मन वयन काय हृदयं सुद्धं) मन, वचन, काय और हृदय की शुद्धता होने पर **(सुद्ध समय जिनागमं)** जिनागम के अनुसार शुद्धात्म स्वरूप में रमण होता है **(ब्रह्मचारिना)** ब्रह्मचारी गण **(विकहा काम सद्भावं)** विकथा और काम के सद्भाव को **(तिक्तंते)** त्याग देते हैं, यही ब्रह्मचर्याणुव्रत है।

परिग्रह प्रमाण अणुव्रत -

परिग्रह प्रमानं कृत्वा, पर द्रव्यं नवि दिस्टते ।
अनृत असत्य तिक्तं च, परिग्रह प्रमानस्तथा ।। ४४३ ।।

अन्वयार्थ - (परिग्रह प्रमानं कृत्वा) परिग्रह का परिमाण करके **(पर द्रव्यं नवि दिस्टते)** जो पर द्रव्य की तरफ नहीं देखता **(अनृत असत्य तिक्तं च)** क्षणभंगुर नाशवान असत् पदार्थों से मूर्च्छा [लगाव, आसक्ति] का त्याग कर देता है, इसको **(परिग्रह प्रमानस्तथा)** परिग्रह प्रमाण अणुव्रत कहा है।

एतत् क्रिया संजुक्तं, सुद्ध संमिक्त सार्धयं ।
ध्यानं सुद्ध समयं च, उत्कुस्टं स्रावगं धुवं ।। ४४४ ।।

अन्वयार्थ - (एतत् क्रिया संजुक्तं) इस प्रकार ऊपर कही हुई क्रियाओं से संयुक्त साधक **(सुद्ध संमिक्त सार्धयं)** शुद्ध सम्यक्त्व की साधना करता है **(ध्यानं सुद्ध समयं च)** और शुद्ध आत्मा के ध्यान में लीन रहता है **(उत्कुस्टं स्रावगं धुवं)** वही निश्चय से उत्कृष्ट श्रावक साधक है।

(स) साधु, अरिहंत और सिद्ध पद का स्वरूप -

साधऊ साधु लोकेन, रत्नत्रयं च संजुतं ।
ध्यानं तिअर्थ सुद्धं च, अवधिं तेन दिस्टते ।। ४४५ ।।

अन्वयार्थ - (साधऊ साधु लोकेन) लोक में जो शुद्धात्म स्वभाव की साधना करते हैं वे साधु **(रत्नत्रयं च संजुतं)** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के धारी होते हैं **(च)** और **(ध्यानं तिअर्थ सुद्धं)** तिअर्थमयी स्वभाव के शुद्ध ध्यान में तल्लीन रहते हैं **(अवधिं तेन दिस्टते)** उन्हें अवधिज्ञान प्रकट हो जाता है।

न्यानं चारित्र संपूर्नं, क्रिया त्रेपन संजुतं ।
तपं च व्रत समिदि च, गुप्ति त्रय प्रतिपालये ।। ४४६ ।।

अन्वयार्थ - वीतरागी साधु **(न्यानं चारित्र संपूर्नं)** सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र से परिपूर्ण होते हैं **(क्रिया त्रेपन संजुतं)** त्रेपन क्रियाओं का पालन करते हैं **(तपं च व्रत समिदि च)** पाँच महाव्रत, पाँच समिति सहित तपश्चरण करते हैं **(गुप्ति त्रय प्रतिपालये)** तीन गुप्तियों के पालन करने वाले होते हैं।

चारित्रं चरनं सुद्धं, समय सुद्धं च उच्यते ।
संपूर्नं ध्यान जोगेन, साधओ साधु लोकयं ।। ४४७ ।।

अन्वयार्थ - वीतरागी साधुजन **(चारित्रं चरनं सुद्धं)** शुद्ध सम्यक्चारित्र का पालन करते हैं **(समय सुद्धं च उच्यते)** वे शुद्धात्म स्वरूप में रमण करने वाले कहे गये हैं **(संपूर्नं ध्यान जोगेन)** सम्पूर्ण ध्यान योग के बल से **(साधओ साधु लोकयं)** साधुजन साधना में तल्लीन रहते हैं ऐसे साधु वंदनीय होते हैं।

संमिक दर्सनं न्यानं, चारित्रं सुद्ध संजमं ।
जिन रूवी सुद्ध दर्वार्थं, साधओ साधु उच्यते ।। ४४८ ।।

अन्वयार्थ - (संमिक दर्सनं न्यान) जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान **(चारित्रं सुद्ध संजमं)** सम्यक्चारित्र

पूर्वक शुद्ध संयम का पालन करते हैं **(जिन रूवी सुद्ध दर्वार्थं)** जिनेन्द्र भगवान के रूप के समान निर्ग्रन्थ वीतरागी मुद्रा धारण कर जो शुद्ध द्रव्यार्थिक नय के विषयभूत ध्रुव तत्त्व, शुद्धात्म स्वरूप की **(साधओ साधु उच्यते)** साधना करते हैं वे साधु कहलाते हैं।

ऊर्ध आर्ध मध्यं च, लोकालोक विलोकितं ।
आत्मनं सुद्धात्मनं, महात्मं च महाव्रतं ।। ४४९ ।।

अन्वयार्थ - (ऊर्ध आर्ध मध्यं च) जो तीन लोक में **(लोकालोक विलोकितं)** लोकालोक को देखने जानने वाले **(आत्मनं सुद्धात्मनं)** आत्मा को शुद्धात्मा, परमात्मा स्वरूप अनुभव करते हैं **(महात्मं च महाव्रतं)** यही महाव्रतों का माहात्म्य है।

धर्म ध्यानं च संजुत्तं, प्रकासनं धर्म सुद्धयं ।
जिन उक्तं जस्य सर्वन्यं, वचनं तस्य प्रकासनं ।। ४५० ।।

अन्वयार्थ - (धर्म ध्यानं च संजुत्तं) वीतरागी साधु धर्म ध्यान में लीन रहते हैं **(प्रकासनं धर्म सुद्धयं)** शुद्धात्म धर्म का प्रकाश करते हैं **(जिन उक्तं जस्य सर्वन्यं)** जिनवाणी में जैसा सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा है **(वचनं तस्य प्रकासनं)** तदनुसार अपने वचनों से धर्म का यथार्थ स्वरूप निरूपित करते हैं।

मिथ्यातं त्रिति सल्यं च, कुन्यानं त्रिति उच्यते ।
राग दोषं च जेतानि, तिक्तंते सुद्ध साधवा ।। ४५१ ।।

अन्वयार्थ - (मिथ्यातं त्रिति सल्यं च) तीन प्रकार के मिथ्यात्व और तीन शल्य **(कुन्यानं त्रिति उच्यते)** तथा तीन कुज्ञान कहे गये हैं [इन विभावों सहित] **(राग दोषं च जेतानि)** राग-द्वेषादि जितने भी विभाव हैं उनको **(तिक्तंते सुद्ध साधवा)** वीतरागी साधु त्याग देते हैं।

अप्पं च तारनं सुद्धं, भव्य लोकैक तारकं ।
सुद्धं लोकलोकांतं, ध्यानारूढ़ं च साधवा ।। ४५२ ।।

अन्वयार्थ - (अप्पं च तारनं सुद्धं) जो यथार्थ में अपने आपको तारते हैं और [निमित्त अपेक्षा] **(भव्य लोकैक तारकं)** संसार में भव्य जीवों को तारने वाले [अर्थात् तरने का मार्ग बतलाने वाले] हैं **(सुद्धं लोकलोकांतं)** जो लोक में [आत्मा सिद्ध परमात्मा है] और लोक के अंत में प्रत्यक्ष सिद्ध परमात्मा हैं ऐसा ही शुद्ध मैं हूँ **(ध्यानारूढ़ं च साधवा)** ऐसे शुद्धात्म स्वरूप के ध्यान में आरूढ़ रहते हैं वही साधु हैं।

मनं च सुद्ध भावं च, सुद्ध तत्वं च दिस्टते ।
संमिक दर्सनं सुद्धं, सुद्धं तिअर्थ संजुतं ।। ४५३ ।।

अन्वयार्थ - (मनं च सुद्ध भावं च) जिनके मन में शुद्ध भाव रहते हैं, जो **(सुद्ध तत्वं च दिस्टते)** शुद्धात्म तत्त्व को देखते हैं और **(संमिक दर्सनं सुद्धं)** शुद्ध सम्यग्दर्शन के धारी हैं **(सुद्धं तिअर्थ संजुतं)** निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र में लीन रहते हैं वे ही सद्गुरु सच्चे साधु हैं।

रत्नत्रयं सुद्ध संपूर्नं, संपूर्नं ध्यानारूढ़यं ।
रिजु विपुलं च उत्पादंते, मन पर्जय न्यानं धुवं ।। ४५४ ।।

अन्वयार्थ - (रत्नत्रयं सुद्ध संपूर्नं) जो साधु शुद्ध रत्नत्रय से परिपूर्ण हैं **(संपूर्नं ध्यानारूढ़यं)**

परिपूर्ण ध्यान में आरूढ़ रहते हैं **(रिजु विपुलं च उत्पादंते)** उनको रिजुमति अथवा विपुलमति मन:पर्यय ज्ञान प्रकट हो जाता है **(मनपर्जय न्यानं धुवं)** इनमें विपुलमति मन:पर्यय ज्ञान शाश्वत होता है। [केवलज्ञान होने तक छूटता नहीं है]

वैराग्यं त्रितियं सुद्धं, संसारे तजंति तृनं ।
भूषन रयनत्तयं सुद्धं, ध्यानारूढ़ स्वात्म दर्सनं ।। ४५५ ।।

अन्वयार्थ - **(वैराग्यं त्रितियं सुद्धं)** जिन साधुओं को संसार, शरीर, भोग तीनों से पूर्ण वैराग्य हो गया, जिन्होंने **(संसारे तजंति तृनं)** संसार के मोह को तृण के समान जानकर छोड़ दिया है **(भूषन रयनत्तयं सुद्धं)** शुद्ध रत्नत्रय ही जिनके आभूषण हैं **(ध्यानारूढ़ स्वात्म दर्सनं)** ऐसे साधु ध्यान में आरूढ़ रहते हुए अपने आत्मा का अनुभव करते हैं।

केवलं भावनं कृत्वा, पदवी अर्हन्त सार्धयं ।
चरनं सुद्ध समयं च, नंत चतुस्टय संजुतं ।। ४५६ ।।

अन्वयार्थ - वीतरागी साधु **(केवलं भावनं कृत्वा)** केवलज्ञान प्राप्ति की भावना भाते हैं **(पदवी अर्हन्त सार्धयं)** चौथी अरिहन्त पदवी की साधना करते हैं [अर्थात् आठवें गुणस्थान से श्रेणी का आरोहण करते हैं] **(चरनं सुद्ध समयं च)** शुद्धात्म स्वरूप में आचरण करते हैं तथा **(नंत चतुस्टय संजुतं)** अनन्त चतुष्टयमयी स्वरूप में लीन रहते हैं।

साधओ साधु लोकेन, तव व्रत क्रिया संजुतं ।
साधओ सुद्ध ध्यानस्य, साधओ मुक्ति गामिनो ।। ४५७ ।।

अन्वयार्थ - **(साधओ साधु लोकेन)** साधु, शुद्धात्मा की साधना करते हुए **(तव व्रत क्रिया संजुतं)** तपश्चरण, व्रताचरण सहित व्यवहारिक क्रियाओं के पालन में रत रहते हैं तथा **(साधओ सुद्ध ध्यानस्य)** शुद्धात्म स्वरूप के शुद्ध ध्यान में लीन होने का पुरुषार्थ करते हैं **(साधओ मुक्ति गामिनो)** ऐसे साधु मुक्ति को प्राप्त करते हैं।

अरिहंत पद -

अर्हन्तं अरहो देवं, सर्वन्यं केवलं धुवं ।
अनंतानंत दिस्टं च, केवलं दर्सन दर्सनं ।। ४५८ ।।

अन्वयार्थ - **(अर्हन्तं अरहो देवं)** अरिहन्त भगवान जगत पूज्य सच्चे आराध्य देव हैं **(सर्वन्यं केवलं धुवं)** जो सर्वज्ञ, केवलज्ञानी ध्रुव स्वभाव में लीन हैं **(अनंतानंत दिस्टं च)** अनंत ज्ञान के धारी लोकालोक के सर्व पदार्थों को देखने जानने वाले हैं **(केवलं दर्सन दर्सनं)** जहाँ दर्शन परिपूर्ण केवलदर्शन मात्र है।

सिद्ध पद -

सिद्धं सिद्धि संजुक्तं, अस्ट गुनं च संजुतं ।
अनाहतं विक्त रूपेन, सिद्धं सास्वतं धुवं ।। ४५९ ।।

अन्वयार्थ - **(सिद्धं सिद्धि संजुक्तं)** सिद्ध भगवान आत्मा की सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं **(अस्ट गुनं च संजुतं)** वे भगवान आठ गुणों से विभूषित हैं **(अनाहतं विक्त रूपेन)** अव्याबाध स्वरूप प्रगट हो

गया है ऐसे **(सिद्धं सास्वतं धुवं)** सिद्ध परमात्मा शाश्वत पद को प्राप्त ध्रुव स्वभाव में लीन हैं।

परमेष्ठी पद की साधना का महत्व -

परमिस्टी साधनं कृत्वा, सुद्ध संमिक्त धारना ।
ते नरा कर्म षिपनं च, मुक्ति गामी न संसयः ।। ४६० ।।

अन्वयार्थ - (परमिस्टी साधनं कृत्वा) जो इष्ट और प्रयोजनीय परमेष्ठी पद की साधना करते हैं **(सुद्ध संमिक्तं धारना)** शुद्ध सम्यक्त्व के धारी हैं **(ते नरा कर्म षिपनं च)** वे मनुष्य कर्मों को क्षय करके **(मुक्ति गामी न संसयः)** मोक्षगामी होते हैं इसमें कोई संशय नहीं है।

त्रिविध ग्रंथं प्रोक्तं च, सार्धं न्यान मयं धुवं ।
धर्मार्थ काम मोष्यं च, प्राप्तं परमेस्टी नमः ।। ४६१ ।।

अन्वयार्थ - [इस प्रकार] **(त्रिविध ग्रंथं प्रोक्तं च)** इस ग्रन्थ में उत्तम, मध्यम, जघन्य तीन प्रकार के पात्रों का स्वरूप कहा गया है **(सार्धं न्यान मयं धुवं)** जो अपने ज्ञानमयी ध्रुव स्वभाव की श्रद्धा और साधना करते हैं **(धर्मार्थ काम मोष्यं च)** उनको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं और उन्हें **(प्राप्तं परमेस्टी नमः)** शाश्वत परमेष्ठी सिद्ध पद प्राप्त होता है, जो तीनों लोक के जीवों के द्वारा नमस्कार करने योग्य है।

(द) ग्रन्थ लेखन का उद्देश्य -

परमानंद आनंदं, जिन उक्तं सास्वतं पदं ।
एकोदेस उवदेसं च, जिन तारण मुक्ति पंथं श्रुतं ।। ४६२ ।।

अन्वयार्थ - (जिन उक्तं सास्वतं पदं) जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित शाश्वत सिद्ध पद **(परमानंद आनंदं)** आनन्द परमानन्दमयी है [उसकी प्राप्ति के उद्देश्य से] **(एकोदेश उवदेसं च)** किंचित् मात्र यह उपदेश किया है [इसका एक मात्र उद्देश्य यह है कि] **(जिन तारण मुक्ति पंथं श्रुतं)** [जिन तारण] यह अंतरात्मा जिनागम के अनुसार मुक्ति मार्ग पर चलते हुए [मोक्ष प्राप्त जिनेन्द्र भगवंतों, तीर्थंकरों की तरह] सिद्ध पद को प्राप्त हो।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न ०१ - षट्कर्म के नाम लिखिये ।

उत्तर - १. देव आराधना, २. गुरु उपासना, ३. शास्त्र स्वाध्याय, ४. संयम, ५. तप, ६. दान।

प्रश्न ०२ - शुद्ध षट्कर्म का पालन कौन और कैसे करते हैं ?

उत्तर - शुद्ध षट्कर्म का पालन अविरत सम्यग्दृष्टि श्रावक करते हैं। ये भव्य जीव देवपूजा आदि षट्कर्मों का यथार्थ स्वरूप समझकर किसी भी प्रकार के फल की प्राप्ति की इच्छा नहीं रखते हुए मात्र अपने आत्म कल्याण के अभिप्राय से इनका पालन करते हैं।

प्रश्न ०३ - अशुद्ध षट्कर्म का पालन कौन और कैसे करते हैं ?

उत्तर - अशुद्ध षट्कर्म का पालन मिथ्यादृष्टि जीव करते हैं। उन्हें देवपूजा आदि षट्कर्मों का यथार्थ बोध नहीं होता, वे कुदेव, अदेव आदि को देव मानकर पूजा करते हैं और कुगुरुओं के कहे

अनुसार चलते हैं तथा कल्पित शास्त्रों को पढ़कर पुण्य बंध की इच्छा रखते हुए संयम, तप, दान करते हैं।

प्रश्न ०४ - शुद्ध षट्कर्म पालन करने से क्या लाभ है ?

उत्तर - शुद्ध षट्कर्म के पालन करने से परिणामों में निर्मलता, कषायों की मंदता सम्यग्दर्शन की प्राप्ति, और आत्म भावना दृढ़ होती है तथा सद्गति की प्राप्ति होती है।

प्रश्न ०५ - अशुद्ध षट्कर्म का पालन करने से क्या हानि है ?

उत्तर - अशुद्ध षट्कर्म का पालन अज्ञानता पूर्वक किया जाता है, इनके पालन करने से दुर्गति प्राप्त होती है।

प्रश्न ०६ - अशुद्ध देव पूजा का स्वरूप बताइये ?

उत्तर - भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों को देव मानकर पूजा करना तथा जिनमें चेतनपना नहीं है ऐसी किसी भी अचैतन्य वस्तु को देव मानकर पूजा करना अशुद्ध देव पूजा है। आत्म स्वरूप के यथार्थ श्रद्धान बिना अरिहंत और सिद्ध परमात्मा का स्वरूप जाने बिना की गई पूजा अशुद्ध देव पूजा है।

प्रश्न ०७ - अशुद्ध गुरु उपासना किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो धन धान्यादि परिग्रह में राग करते हैं और क्रोधादि कषायों से सदा संयुक्त रहते हैं, शुद्धात्म तत्त्व को नहीं जानते वे कुगुरु हैं, उन्हें गुरु मानना, उनकी पूजा आराधना करना अशुद्ध गुरु उपासना है।

प्रश्न ०८ - अशुद्ध स्वाध्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर - आत्म श्रद्धान के बोध रहित अनेक शास्त्रों को पढ़ना, सामायिक को मिथ्या मानना, यथार्थ वस्तु स्वरूप की समझ न होना अशुद्ध स्वाध्याय कहलाता है।

प्रश्न ०९ - अशुद्ध संयम किसे कहते हैं ?

उत्तर - आत्म स्वरूप के श्रद्धान ज्ञान से रहित होकर व्रत, नियम, संयम, तप आदि का पालन करते हुए अहिंसा दया से रहित आचरण करना अशुद्ध संयम कहलाता है।

प्रश्न १० - अशुद्ध तप किसे कहते हैं ?

उत्तर - आत्मज्ञान के बिना अनशन आदि तप करना, क्षुधा, तृषा आदि परीषह सहना, उपसर्ग सहना तथा अन्य अनेक क्रियाएँ करना अशुद्ध तप है। मिथ्यात्व सहित द्रव्यलिंगी मुनि का तप भी अशुद्ध तप कहलाता है।

प्रश्न ११ - अशुद्ध दान किसे कहते हैं ?

उत्तर - १. जिस दान से विषय-कषाय मिथ्यात्व की वृद्धि व पुष्टि हो वह दान अशुद्ध दान कहलाता है।

२. कुपात्रों को दिया गया दान अशुद्ध दान है।

प्रश्न १२ - शुद्ध देवपूजा का स्वरूप क्या है ?

उत्तर - वीतरागी, सर्वज्ञ, हितोपदेशी अरिहंत और सिद्ध परमात्मा सच्चे देव हैं, ७५ गुणों के द्वारा उनके

स्वरूप का चिंतन-मनन करते हुए अपने शुद्धात्म स्वरूप की आराधना करना तथा आत्म गुणों को प्रगट करने का पुरुषार्थ करना शुद्ध देव पूजा है।

प्रश्न १३ - शुद्ध गुरु उपासना का स्वरूप क्या है ?

उत्तर - समस्त आरम्भ परिग्रह से रहित निर्ग्रंथ वीतरागी साधु रत्नत्रय के धारी होते हैं वे सद्गुरु हैं। उनके रत्नत्रयादि गुणों की उपासना, वंदना भक्ति करना तथा उनके उपदेशानुसार अपनी अंतरात्मा की आराधना करना शुद्ध गुरु उपासना है।

प्रश्न १४ - शुद्ध स्वाध्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर - १. ध्रुव स्वभाव का चिंतवन करना, परिपूर्ण शुद्ध स्वभाव पर दृष्टि रखना और अपने ज्ञानमयी ध्रुव स्वभाव की साधना करना शुद्ध स्वाध्याय है, यह शुद्ध तत्व का प्रकाश करने वाला है।

२. मन, वचन, काय का निरोध करके शुद्ध स्वभाव का चिंतन करना और तीन लोक में प्रयोजनीय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र से शुद्ध शाश्वत ध्रुव स्वभाव में स्थिर होना स्वाध्याय है।

प्रश्न १५ - संयम कितने प्रकार का होता है ?

उत्तर - संयम दो प्रकार का होता है - १. इंद्रिय संयम २. प्राणी संयम।

प्रश्न १६ - इन्द्रिय संयम तथा प्राणी संयम को परिभाषित कीजिये ?

उत्तर - १. पाँच स्थावर और एक त्रस इन छह काय के जीवों की रक्षा करने को प्राणी संयम कहते हैं।

२. पाँच इन्द्रिय और मन को वश में करना इंद्रिय संयम है।

प्रश्न १७ - शुद्ध संयम किसे कहते हैं ?

उत्तर - आत्म बोध पूर्वक इन्द्रिय संयम और प्राणी संयम का पालन करते हुए रत्नत्रयमयी आत्म स्वभाव के प्रति सजग सावधान रहना, स्वरूप का स्मरण रखना शुद्ध संयम कहलाता है।

प्रश्न १८ - शुद्ध तप किसे कहते हैं ?

उत्तर - १. आत्म श्रद्धान पूर्वक अनशन, ऊनोदर आदि बाह्य तप का और प्रायश्चित, विनय आदि अंतरंग तप का पालन करना व्यवहार से शुद्ध तप है।

२. शुद्धात्म तत्व का भले प्रकार चिन्तन करना, अपने ज्ञानमयी शुद्ध स्वभाव में ठहरना शुद्ध तप कहलाता है।

३. 'समस्त रागादिपरभावेच्छा त्यागेन स्वस्वरूपे प्रतपनं विजयनं इति तपः' समस्त रागादि भाव और इच्छाओं का त्याग करके निज स्वरूप में प्रतपन करना, लीन रहना शुद्ध तप है।

प्रश्न १९ - शुद्ध दान किसे कहते हैं ?

उत्तर - १. स्व-पर के कल्याण की पवित्र भावना से उत्तम, मध्यम, जघन्य पात्रों को ज्ञानदान, आहारदान, अभयदान और औषधिदान देना व्यवहार से शुद्ध दान है। विवेक पूर्वक आवश्यकतानुसार सत्पात्रों को उपयोगी वस्तु शुभ भाव सहित दान देना व्यवहार दान है, जो पुण्य बंध का कारण है।

२. आत्म बोध पूर्वक स्वरूप का चिंतन-मनन करते हुए अपने उपयोग को स्वभाव में लगाना निश्चय से शुद्ध दान है।

प्रश्न २० - जिनवाणी के बारह अंगों (द्वादशांग) का संक्षेप में वर्णन कीजिये ?

उत्तर - श्री अष्टपाहुड़ ग्रन्थ में सूत्र पाहुड़ की गाथा क्रमांक ०२ के भावार्थ से देखकर लिखें।

प्रश्न २१ - जिनबिंब किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिणबिंबं णाणमयं संजम सुद्धं सुवीयरायं च ।

जं देइ दिक्ख सिक्खा, कम्मक्खय कारणे सुद्धा ।। (बोध पाहुड् गाथा - १६)

जो ज्ञानमयी हो, संयम से शुद्ध हो, वीतरागी हो, शिक्षा दीक्षा देता हो तथा कर्मों को क्षय करने में कारण हो ऐसे वीतरागी आचार्य परमेष्ठी को जिनबिम्ब कहते हैं। [दर्शन पा. गाथा -] मंदिरविधि में यह गाथा प्रमाण गाथाओं के क्रम में पढ़ी जाती है, जिसका आशय है कि आगम में आचार्य परमेष्ठी को जिनबिंब कहा है। अन्य कोई जिनबिंब नहीं है।

प्रश्न २२ - सम्यग्दर्शन होने पर कौन से आठ अंग प्रगट होते हैं ? नाम लिखिये।

उत्तर - १. नि:शंकित, २. नि:कांक्षित, ३. निर्विचिकित्सा, ४. अमूढ़दृष्टि, ५. उपगूहन, ६. स्थितिकरण, ७. वात्सल्य, ८. प्रभावना।

प्रश्न २३ - नि:शंकित अंग का स्वरूप लिखिये ?

उत्तर - आत्मा के त्रिकाली स्वरूप का जो अनुभवयुत ज्ञान, श्रद्धान हुआ उसमें ऐसी दृढ़ता होना कि तत्त्व यही है, इसी प्रकार है, अन्य नहीं है, अन्य प्रकार नहीं है, इस तरह की अकम्प रुचि होना नि:शंकित अंग है, और देव, गुरु, शास्त्र का यथार्थ स्वरूप सहित दृढ़ श्रद्धान करना व्यवहार नि:शंकित अंग है।

प्रश्न २४ - नि:कांक्षित अंग का स्वरूप स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर - सम्पूर्ण सांसारिक आकांक्षाओं से रहित आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का भोक्ता होना परमार्थ से नि:कांक्षित अंग है और सांसारिक सुख, भोगों में रागादि कषायों का आलम्बन रहने से वे पाप बंध के कारण हैं इसलिये ऐसे दु:खान्त फल वाले सांसारिक सुख की चाह नहीं करना व्यवहार नि:कंाक्षित अंग है।

प्रश्न २५ - निर्विचिकित्सा अंग का स्वरूप बताइये ?

उत्तर - निर्विचिकित्सा का अर्थ है ग्लानि घृणा नहीं करना, चित्त को मलिन नहीं बनाना। वस्तु को उसके स्वरूप से देखना, अपने आत्म स्वभाव में विचिकित्सा नहीं है इसलिये रागादि परिणामों से दृष्टि हटाकर अभेद स्वरूप में दृढ़ रहना निश्चय निर्विचिकित्सा अंग है। किसी से ग्लानि, घृणा, द्वेष न होना, साधर्मी धर्मात्माजनों की सेवा करना, सभी के प्रति प्रीति होना व्यवहार निर्विचिकित्सा अंग है।

प्रश्न २६ - अमूढ़ दृष्टि अंग की व्याख्या कीजिये ?

उत्तर - स्व-पर का यथार्थ निर्णय होना। अपने सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रमयी आत्म स्वभाव में रुचि

होना अर्थात् कर्मधारा से नहीं जुड़ना अमूढ़दृष्टि अंग है। मिथ्यामार्ग और मिथ्यामार्गियों की मन, वचन, काय से सराहना नहीं करना तथा लोक में प्रचलित किसी मूढ़ता पर विश्वास नहीं करना व्यवहार अमूढ़ दृष्टि अंग है।

प्रश्न २७ - निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि अंग की साधना से क्या लाभ है ?

उत्तर - निःशंकितादि चार अंगों की साधना से जीव का आंतरिक व्यक्तित्व संस्कारित हो जाता है।

प्रश्न २८ - उपगूहन अंग की व्याख्या कीजिये ?

उत्तर - ज्ञानी अपने गुणों को बाहरी विकारी भावों से बचाता है। अपने भीतर अन्तर्गर्भगृह में ही छिपाकर रखता है। स्वरूप को अंतर में प्रगट करता है जिससे कर्म क्षय होते हैं। पर्याय में अनंत दोष हैं पर वह उन्हें नहीं देखता, अपने ममल स्वरूप की अनुमोदना करता है यही परमार्थतः उपगूहन अंग है। स्वयं के गुणों को व धर्मात्मा गुणी पुरुषों के दोषों को छिपाना व्यवहार से उपगूहन अंग है। (उपगूहन - छिपाना, उपबृंहण - बढ़ाना)

प्रश्न २९ - स्थितिकरण अंग किसे कहते हैं ?

उत्तर - अपने ज्ञानमयी स्वसमय की अनुमोदना करना, उसी में स्थिर रहना स्थितिकरण अंग है। अन्य कोई साधर्मी जीव यदि किसी कारण से धर्ममार्ग से चलित हो रहे हों तो उन्हें धर्म मार्ग में स्थित करना व्यवहार स्थितिकरण अंग है।

प्रश्न ३० - वात्सल्य अंग किसे कहते हैं ?

उत्तर - अपने आत्मस्वरूप के प्रति अनुराग होना निश्चय वात्सल्य अंग है। धर्मात्मा जीवों के प्रति गाय बछड़े के समान निश्छल अनुराग होना व्यवहार वात्सल्य अंग है।

प्रश्न ३१ - प्रभावना अंग की व्याख्या कीजिये ?

उत्तर - संयममय जीवन का होना, आत्मा में निरंतर रत्नत्रय धर्म के तेज को बढ़ाना प्रभावना अंग है। दया, दान, संयम, तप, धार्मिक उत्सव कराना समय और सामर्थ्य को वीतराग धर्म की प्रभावना में लगाना, जिन धर्म की महिमा करना व्यवहार प्रभावना अंग है।

प्रश्न ३२ - श्रुत पूजा की क्या विधि है ?

उत्तर - ज्ञान गुण को बढ़ाने वाले चार अनुयोग हैं। इन शास्त्रों का बहुमान करते हुए, स्वाध्याय, मनन चिंतवन पूर्वक धर्म ध्यान में रत रहना श्रुत पूजा की विधि है।

प्रश्न ३३ - अहिंसा को परम धर्म क्यों कहा है ?

उत्तर - जैन धर्म अहिंसा प्रधान है, पर अहिंसा का क्षेत्र इतना संकुचित नहीं है जितना कि लोक में समझा जाता है। इसका व्यापार बाहर और भीतर दोनों ओर होता है, बाहर में तो किसी भी छोटे या बड़े जीव को मन, वचन, काय से किसी भी प्रकार की पीड़ा न पहुँचाना तथा उसका दिल न दुःखाना अहिंसा है और अंतरंग में राग-द्वेष परिणामों से निवृत्त होकर साम्यभाव में स्थित होना अहिंसा है। बाह्य अहिंसा को व्यवहार और अंतरंग अहिंसा को निश्चय कहते हैं। वास्तव में अंतरंग में आंशिक शुद्धता आये बिना अहिंसा सम्भव नहीं है, इस प्रकार इसके अति व्यापक

रूप में सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य आदि सभी गुण समा जाते हैं इसीलिये अहिंसा को परमधर्म कहा गया है।

प्रश्न ३४ – सम्यग्दृष्टि का ज्ञान स्वयं कैसे बढ़ता है ?

उत्तर – जैसे मछली अपने अंडे रेत पर देकर पानी में चली जाती है परन्तु अंडों की सुरत रखने से अंडे स्वयं बढ़ते हैं। उसी तरह सम्यग्दृष्टि द्वारा आत्म स्वरूप की सुरत रखने से ज्ञान स्वयं बढ़ता है।

प्रश्न ३५ – अहिंसाणुव्रत का लक्षण क्या है ?

उत्तर – १. असत्य सहित भावमय होने पर राग–द्वेष, पाप आदि की भावना सहित होने वाली स्थावर व त्रस जीवों की हिंसा रूप आरंभ का त्याग करना अहिंसाणुव्रत कहलाता है।

२. जो श्रावक दयापूर्ण व्यवहार करता है, अपने ही समान दूसरों को मानता है, अपनी निंदा गर्हा करते हुए आरम्भ को नहीं करता तथा जो मन, वचन, और काय से त्रस जीवों का घात न स्वयं करता है, न दूसरों से कराता है, और न करने वालों की अनुमोदना करता है। उस श्रावक को प्रथम अहिंसाणुव्रत होता है।

प्रश्न ३६ – निश्चय अहिंसा को अहिंसा कहने का कारण क्या है?

उत्तर – 'रागाद्यभावो निश्चयेनाहिंसा भण्यते। कस्मात् निश्चय शुद्ध चैतन्य प्राणस्य रक्षाकारणात्।' रागादि के अभाव को निश्चय से अहिंसा कहते हैं, क्योंकि यह निश्चय शुद्ध चैतन्य प्राण की रक्षा का कारण है। (परमात्मप्रकाश टीका)

प्रश्न ३७ – सर्व व्रतों में कौन सा व्रत प्रधान है।

उत्तर – १. इस जगत में अणु से छोटी कोई दूसरी वस्तु नहीं है। और आकाश से भी बड़ी कोई चीज नहीं है। इसी प्रकार अहिंसा व्रत से बड़ा कोई दूसरा व्रत नहीं है। यह अहिंसा धर्म सर्व शास्त्रों का मर्म है और सर्व व्रतों का सार है।

२. इन पाँचों व्रतों में अहिंसा व्रत को प्रारम्भ में रखा गया है क्योंकि वह सबमें मुख्य है। धान्य के खेत के लिये जैसे उसके चारों ओर कांटों का घेरा होता है, उसी प्रकार सत्यादिक सभी व्रत उसकी रक्षा के लिये हैं।

प्रश्न ३८ – अहिंसा को सभी उत्तम कार्यों की माता क्यों कहा गया है ?

उत्तर – अहिंसा महाव्रत सत्यादिक चार महाव्रतों का कारण है क्योंकि वे बिना अहिंसा के नहीं हो सकते, और शीलादि उत्तर गुणों का स्थान भी अहिंसा ही है। यही सिद्धांत का रहस्य है। सभी मतों के शास्त्रों में यही सुना जाता है कि अहिंसा लक्षण धर्म है और इसका प्रतिपक्षी हिंसा करना पाप है। तप, व्रत, श्रुत, यम, ज्ञान, ध्यान और दान करना तथा सत्य शील व्रतादिक जितने भी श्रेष्ठ कार्य हैं, उन सबकी माता एक अहिंसा ही है।

प्रश्न ३९ – निश्चय से हिंसा और अहिंसा किसे कहते हैं ?

उत्तर – निश्चय से रागादि का उत्पन्न होना हिंसा है और उनका उत्पन्न न होना अहिंसा है।

प्रश्न ४० – सर्वत्र जीवों के सद्भाव में अहिंसा का पालन कैसे हो ?

उत्तर – साधक और साधुजन यत्नाचार से गमन करें, यत्न से तिष्टें, शोधकर यत्न से बैठें, शोधकर रात्रि

में यत्न से सोवें, यत्न से दोष रहित आहार करें, यत्न पूर्वक बोलें, इस प्रकार अहिंसा का पालन होता है।

प्रश्न ४१ – अहिंसाणुव्रती की दया किस प्रकार की होती है ?

उत्तर – अहिंसाणुव्रत को निर्मल करने की इच्छा रखने वाला श्रावक कषाय, विकथा, निद्रा, मोह और इन्द्रियों के विधि पूर्वक निग्रह करने एवं पाप रूपी अंधकार को नष्ट करने के लिये सूर्य की प्रभा के समान सदैव कल्याणकारी धर्मरूप दया को धारण करता है।

प्रश्न ४२ – अहिंसाणुव्रत का महत्व क्या है ?

उत्तर – १. स्वल्पकाल के लिये पाले जाने पर भी यह अहिंसाणुव्रत प्राणी पर महान उपकार करता है।

२. एक जीव की रक्षा करने वाला पुरुष भी संसार में श्रेष्ठ माना जाता है।

३. एक जीव दया के द्वारा ही चिंतामणि की भाँति अन्य सकल धार्मिक क्रियाओं के फल की प्राप्ति हो जाती है। आयुष्मान होना, सुभगपना, धनवानपना, सुंदर रूप, कीर्ति ये सब कुछ मनुष्य को एक अहिंसा व्रत के महात्म्य से ही प्राप्त हो जाते हैं।

प्रश्न ४३ – अहिंसा महाव्रत का लक्षण क्या है ?

उत्तर – काय, इन्द्रिय, गुणस्थान, मार्गणास्थान, कुल, आयु, योनि इनमें सब जीवों को जानकर कायोत्सर्गादि क्रियाओं में हिंसा आदि का त्याग करना अहिंसा महाव्रत है। सब देश और सब काल में मन, वचन, काय से एक इन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय प्राणियों के प्राण, पाँच प्रकार के पापों से डरने वाले मनुष्य को नहीं घातने चाहिये। वस्तुत: जीवों की रक्षा करना अहिंसा महाव्रत है।

प्रश्न ४४ – सत्य किसे कहते हैं ?

उत्तर – जैसा हुआ हो वैसा ही कहना सत्य का सामान्य लक्षण है, परन्तु अध्यात्म मार्ग में स्व और पर की अहिंसा की प्रधानता होने से हितमित वचन को सत्य कहा जाता है।

प्रश्न ४५ – सत्याणुव्रत का लक्षण क्या है ?

उत्तर – हिंसा रूप वचन नहीं कहना, कठोर वचन नहीं कहना, निष्ठुर वचन नहीं कहना और दूसरों की गुप्त बात को प्रकट नहीं करना तथा हितमित वचन बोलना, सब जीवों के प्रति संतोषकारक धर्म का प्रकाशन करने वाला वचन बोलना सत्याणुव्रत है।

क्षणभंगुर नाशवान अचेतन पदार्थों पर दृष्टि रखना और झूठे मिथ्या वचन कहना इनका त्याग सत्याणुव्रत है।

प्रश्न ४६ – असत्य वचन का त्याग क्यों करना चाहिये ?

उत्तर – असत्यवादी का कोई विश्वास नहीं करता। वह इस लोक में जिह्वा छेद आदि दु:खों को प्राप्त होता है तथा असत्य बोलने से दु:खी रहता है और जिन्होंने बैर बांध लिया है उनसे बहुत प्रकार की आपत्तियों को सहता है तथा परलोक में अशुभ गति को प्राप्त होता है इसलिये असत्य वचन का त्याग श्रेयस्कर है।

प्रश्न ४७ – सत्य का महत्व क्या है ?

उत्तर – १. हृदय से निकली मधुर वाणी और ममतामयी स्निग्ध दृष्टि में ही धर्म का निवास स्थान है।

नम्रता और प्रिय सम्भाषण मनुष्य के आभूषण हैं। असत्य भाषण मत करो, यदि मनुष्य इस आदेश का पालन कर सके तो इसी में सारे धर्म समाहित हो जाते हैं।

२. सत्य व्रत श्रुत और यम का स्थान है। विद्या और विनय का भूषण है, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र सत्य वचन से ही उत्पन्न होते हैं। तीनों लोकों में चन्द्रमा के समान आनंद को बढ़ाने वाली सत्य वचन से उत्पन्न हुई मनुष्यों की कीर्ति को देवता भी मस्तक पर धारण करते हैं।

प्रश्न ४८ - सत्य महाव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर - राग - द्वेष मोह के कारणभूत असत्य वचन, दूसरों को संताप देने वाले वचन और द्वादशांग के अर्थ कहने में अपेक्षा रहित वचन को छोड़ना सत्य महाव्रत है।

प्रश्न ४९ - अचौर्याणुव्रत का लक्षण क्या है ?

उत्तर - १. बिना दी हुई वस्तु का लेना चोरी है, इस कथन का अभिप्राय है कि बाह्य वस्तु ली जाय या न ली जाय किन्तु जहाँ संक्लेश परिणाम के साथ प्रवृत्ति होती है वहाँ स्तेय अर्थात् चोरी है।

२. जो रखे हुए तथा गिरे हुए अथवा भूले हुए या धरोहर रखे हुए पर द्रव्य को नहीं हरता है, न दूसरों को देता है इस प्रकार स्थूल चोरी से विरक्त होना अचौर्याणुव्रत है।

३. जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित उपदेश का लोपन न करना अचौर्याणुव्रत है।

प्रश्न ५० - चोरी का त्याग श्रेयस्कर क्यों है ?

उत्तर - पर द्रव्य का हरण करने वाले चोर का सब तिरस्कार करते हैं, इस लोक में वह ताड़ना, मारना, बांधना तथा हाथ, पैर, नाक, कान ऊपर के ओष्ठ का छेदना-भेदना आदि दु:खों को भोगता है और परलोक में अशुभ गति को प्राप्त होता है, इसलिये चोरी का त्याग श्रेयस्कर है।

प्रश्न ५१ - अस्तेय का माहात्म्य बताइये ?

उत्तर - चोरी का दोष जिसने त्याग किया है, ऐसे महापुरुष में दोष नहीं रहते हैं परन्तु गुण ही उत्पन्न होते हैं यही अस्तेय अथवा अचौर्याणुव्रत का माहात्म्य है।

प्रश्न ५२ - अस्तेय महाव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर - ग्राम आदि में पड़ा हुआ, भूला हुआ, दूसरे का इकट्ठा किया हुआ इत्यादि स्थूल सूक्ष्म पर द्रव्य को ग्रहण नहीं करना अदत्त त्याग अथवा अचौर्य महाव्रत है।

प्रश्न ५३ - महाव्रती के लिये अचौर्य व्रत की भावनाएँ कौन सी हैं ?

उत्तर - १. उपकरणों को उसके स्वामी की अनुमति के बिना ग्रहण न करना।

२. उनकी अनुज्ञा से भी यदि ग्रहण करे तो उनमें आसक्ति नहीं करना।

३. अपने प्रयोजन को बताते हुए कोई वस्तु मांगना।

४. अपनी मर्जी से यदि दातार देगा तो वह सबकी सब ग्रहण कर लूंगा ऐसी भावना न करना।

५. ज्ञान व चारित्र में उपयोगी ही वस्तुएँ या उपकरण ग्रहण करना, अन्य नहीं तथा अनुपयोगी वस्तु की याचना न करना।

६. घर के स्वामी द्वारा घर में प्रवेश की मनाही होने पर उसके घर में प्रवेश नहीं करना।

७. आगम से अविरुद्ध ही संयमोपकरण की याचना करना, यह अचौर्य महाव्रत की भावना हैं।

प्रश्न ५४ - ब्रह्मचर्य व्रत के सम्बंध में आगम क्या कहता है ?

उत्तर - अध्यात्म मार्ग में ब्रह्मचर्य को सर्वप्रधान माना जाता है, क्योंकि ब्रह्म स्वरूप में रमणता ही वास्तविक ब्रह्मचर्य है। निश्चय से देखने पर क्रोधादि निग्रह का भी इसी में अंतर्भाव हो जाने से इसके १८००० भंग हो जाते हैं, परन्तु स्त्री के त्याग रूप ब्रह्मचर्य की भी लोक व परमार्थ क्षेत्र दोनों में बहुत महत्ता है। ब्रह्मचर्य अणुव्रत और महाव्रत रूप से ग्रहण किया जाता है। अब्रह्म सेवन से चित्त भ्रम आदि अनेक दोष होते हैं अत: विवेकीजनों को सदा ही अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार दुराचारिणी स्त्रियों के तथा परस्त्री व स्वस्त्री के साये से बचकर रहना चाहिये और इसी प्रकार स्त्रियों को पुरुषों से बचकर रहना चाहिये।

आचार्य श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी ने कहा है कि विकथा और राग के समस्त प्रपंचों का त्याग कर ब्रह्म स्वरूप में आचरण करना ब्रह्मचर्य है।

प्रश्न ५५ - निश्चय ब्रह्मचर्य किसे कहते हैं ?

उत्तर - ब्रह्म शब्द का अर्थ निर्मल ज्ञान स्वरूप आत्मा है, उस आत्मा में लीन होने का नाम ब्रह्मचर्य है। जिस मुनि का मन अपने शरीर के सम्बंध में भी निर्ममत्व हो चुका है, उसी को ब्रह्मचर्य होता है।

प्रश्न ५६ - व्यवहार ब्रह्मचर्य किसे कहते हैं ?

उत्तर - १. जो अपने शरीर से निर्ममत्व हो चुका है, वह इन्द्रिय विजयी होकर वृद्धा आदि स्त्रियों को क्रम से माता, बहिन और पुत्री के समान समझता है इसको व्यवहार ब्रह्मचर्य कहते हैं।

२. जो मुनि स्त्रियों के संग से बचते हैं, उनके रूप को नहीं देखते, कामकथादि नहीं करते उनको नवधा ब्रह्मचर्य होता है।

प्रश्न ५७ - ब्रह्मचर्य व्रत और ब्रह्मचर्य प्रतिमा में क्या अंतर है ?

उत्तर - १. जो प्रथम आश्रम वाले (ब्रह्मचर्याश्रमी) बंधन पूर्वक व्रत ग्रहण करने वाले उपनय आदि पाँच प्रकार के ब्रह्मचारी कहे गये हैं वे सब नैष्ठिक के बिना शेष सब शास्त्रों को पढ़कर वैवाहिक जीवन को अंगीकार करते हैं।

२. द्वितीय प्रतिमा ग्रहण किये हुए ब्रह्मचर्य अणुव्रत में स्वदार संतोष व्रत का पालन होता है किन्तु ब्रह्मचर्य प्रतिमा को ग्रहण करने पर नौबाड़ पूर्वक तीनों काल सम्बंधी स्त्री मात्र के सेवन का त्याग हो जाता है।

शील की नौ बाड़ -

०१. स्त्रियों के सहवास में नहीं रहना। ०२. स्त्रियों को प्रेम रुचि से नहीं देखना।
०३. स्त्रियों से रीझ - रीझकर मीठे - मीठे वचन नहीं बोलना।
०४. पूर्व में भोगे हुए भोगों का चिंतवन नहीं करना। ०५. गरिष्ठ भोजन नहीं करना।
०६. शरीर का श्रृंगार विलेपन नहीं करना। ०७. स्त्रियों की आसन पर नहीं बैठना।
०८. काम कथा नहीं करना। ०९. भरपेट भोजन नहीं करना।

(नोट : यह कथन पुरुषों की अपेक्षा किया गया है, महिला वर्ग को पुरुषों की अपेक्षा समझना चाहिये। शेष यथावत हैं।)

प्रश्न ५८ – शील का परिवार क्या है ?

उत्तर – जीव दया, इन्द्रिय दमन, कषायों का शमन, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और तप यह सब शील के परिवार हैं।

प्रश्न ५९ – ब्रह्मचर्य महाव्रत की व्याख्या कीजिये ?

उत्तर – जो वृद्धा बाला यौवन वाली स्त्री को देखकर अथवा उनकी तस्वीरों को देखकर उनको माता, पुत्री, बहिन समान समझ स्त्री सम्बंधी कथादि का अनुराग छोड़ता है वह तीनों लोकों का पूज्य ब्रह्मचर्य महाव्रत है।

प्रश्न ६० – परिग्रह क्या है इसे स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर – परिग्रह दो प्रकार का है – अंतरंग व बाह्य। जीवों का राग भाव अंतरंग परिग्रह है और जीवों को नित्य ही जो बाह्य पदार्थों का ग्रहण व संग्रह होता है वह सब बाह्य परिग्रह है। बाह्य परिग्रह का मूल कारण होने से वास्तव में अंतरंग परिग्रह ही प्रधान है। उसके न होने से बाह्य पदार्थ परिग्रह संज्ञा को प्राप्त नहीं होते क्योंकि ये साधक को हठात् राग बुद्धि कराने में सामर्थ्यवान नहीं हैं, फिर भी अंतरंग परिग्रह का निमित्त होने से कल्याण के मार्ग में इनका त्याग करना इष्ट है।

प्रश्न ६१ – परिग्रह का लक्षण क्या है ?

उत्तर – 'परिग्रह्यते इति परिग्रह:' अर्थात् जो ग्रहण किया जाता है इस निरुक्ति के अनुसार क्षेत्रादि रूप बाह्य पदार्थ परिग्रह कहे जाते हैं तथा 'परिग्रह्यते अनेनेति परिग्रह:' जिसके द्वारा ग्रहण किया जाता है वह परिग्रह है, इस निरुक्ति के अनुसार यहाँ बाह्य पदार्थ के ग्रहण में कारणभूत परिणाम परिग्रह कहे जाते हैं। 'मूर्च्छा परिग्रह:' मूर्च्छा है वही परिग्रह है। यह मेरा है मैं इसका स्वामी हूँ, इस प्रकार का ममत्व परिणाम परिग्रह है।

प्रश्न ६२ – परिग्रह परिमाण अणुव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर – १. धन, धान्य आदि दस प्रकार के परिग्रह को परिमित अर्थात् उसका परिमाण करके कि इतना रखेंगे इससे अधिक में इच्छा नहीं रखना वह परिग्रह परिमाण व्रत है तथा यही इच्छा परिमाण वाला व्रत भी कहा जाता है।

२. जो लोभ कषाय को कम करके संतोषरूपी रसायन में संतुष्ट होता हुआ सबको विनश्वर जानकर दुष्ट तृष्णा का घात करता है और अपनी आवश्यकता को जानकर धन, धान्य, स्वर्ण और क्षेत्र आदि का परिमाण करता है उसको परिग्रह प्रमाण अणुव्रत होता है।

प्रश्न ६३ – बाह्य त्याग के बिना अंतरंग त्याग असक्य कैसे है ?

उत्तर – जैसे ऊपर का छिलका निकाले बिना चावल का अंतरंग मल नष्ट नहीं होता उसी प्रकार बाह्य परिग्रह रूप मल जिसके आत्मा में उत्पन्न हुआ है ऐसे आत्मा का कर्म मल नष्ट होना असक्य है।

प्रश्न ६४ – क्या परिग्रह सहित मुनि जितेन्द्रिय हो सकते हैं ?

उत्तर – कदाचित् सूर्य अपना स्थान छोड़ दे और सुमेरु पर्वत स्थिरता छोड़ दे यह सम्भव है परन्तु परिग्रह सहित मुनि कदापि जितेन्द्रिय नहीं हो सकता। जो पुरुष बाह्य परिग्रह को छोड़ने में असमर्थ है

वह पुरुषार्थहीन कर्मों की सेना का हनन नहीं कर सकता।

प्रश्न ६५ - क्या बाह्य परिग्रह दु:ख व इच्छा का कारण है ?

उत्तर - जैसे ह्रद में पाषाण पड़ने से तल भाग में दबा हुआ कीचड़ भी क्षुब्ध होकर ऊपर आता है, उसी प्रकार परिग्रह जीव के उपशमित कषाय भावों को भी प्रकट करता है।

प्रश्न ६६ - निश्चय व व्यवहार से निर्ग्रन्थता का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर - निश्चय नय की अपेक्षा मिथ्यादिक ग्रन्थ (परिग्रह) हैं क्योंकि वे कर्म बंध के कारण हैं और इनका त्याग करना निर्ग्रन्थता है। व्यवहार नय की अपेक्षा क्षेत्रादि ग्रन्थ हैं क्योंकि वे अभ्यंतर ग्रन्थ (परिग्रह) के कारण हैं और इनका त्याग करना निर्ग्रन्थता है।

प्रश्न ६७ - परिग्रह त्याग महाव्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर - चेतन, अचेतन और मिश्र परिग्रह का पूर्णतया त्याग करना तथा इनसे अन्य जो संयम, ज्ञान और शौच के उपकरण हैं इनमें ममत्व का न होना परिग्रह त्याग महाव्रत है।

प्रश्न ६८ - परिग्रह त्याग की महिमा क्या है ?

उत्तर - चक्रवर्ती का सुख राग भाव को तथा तृष्णा को बढ़ाने वाला है इसलिये परिग्रह का त्याग करने पर राग-द्वेष रहित मुनि को जो सुख होता है, चक्रवर्ती का सुख उसके अनंत भाग की बराबरी नहीं कर सकता।

प्रश्न ६९ - ध्यान की धुरा को कौन धारण कर सकता है ?

उत्तर - समस्त परिग्रह से जो रहित हो और इन्द्रियों को संवर रूप करने वाला हो ऐसा स्थिर चित्त संयमी मुनि ही वर्द्धमान भगवान की कही हुई ध्यान की धुरा को धारण कर सकता है।

प्रश्न ७० - किस भावना से परिग्रह का त्याग होता है ?

उत्तर - 'न किंचन: इति आकिंचन:' आकिंचन्य भावना से परिग्रह का त्याग होता है। किंचित् भी बाह्य पदार्थ मेरा नहीं है और न मैं कभी इनका हो सकता हूँ ऐसा विचार कर योगी निस्पृह भाव पूर्वक समस्त पर से अपने को भिन्न अनुभव करता है ऐसे आत्म ज्ञान के बल से वैराग्य भाव पूर्वक परिग्रह का त्याग होता है।

....

(ब) जीव समास

सिद्धं सुद्धं पणमिय, जिणिंदवर णेमिचंदमकलंकं ।
गुण रयण भूषणुदयं, जीवस्स परूवणं बोच्छं ।।

अर्थ – सिद्धावस्था या स्वात्मोलब्धि को जो प्राप्त हो चुका हो अथवा न्याय के प्रमाणों से जिसकी सत्ता सिद्ध है और जो चार घातिया द्रव्यकर्मों के अभाव से शुद्ध तथा मिथ्यात्वादि भावकर्मों के नाश से अकलङ्क हो चुका है एवं जिसके सदा ही सम्यक्त्वादि गुणरूपी रत्नों के भूषणों का उदय रहता है, इस प्रकार के श्री जिनेश्वर नेमिचन्द्र स्वामी को नमस्कार करके जो उपदेश पूर्वाचार्य परम्परा से चला आ रहा है वह सिद्ध और पूर्वापर विरोधादि दोषों से रहित होने के कारण शुद्ध और दूसरों की निंदा आदि न करने के कारण तथा रागादि का उत्पादक न होने से निष्कलंक हैं, जो विकथा आदि की तरह राग का कारण नहीं है, इस प्रकार के जीव प्ररुपण नामक ग्रंथ को अर्थात् जिसमें अशुद्ध जीव के स्वरूप भेद-प्रभेद आदि दिखाये गये हैं इस प्रकार के ग्रंथ को कहूँगा।

– गोम्मटसार जीवकांड पृ. १ प्रतिज्ञा

प्रश्न ०१ – जीव समास किसे कहते हैं ?

उत्तर – १. जिनके द्वारा अनेक जीव तथा उनकी अनेक प्रकार की जाति जानी जाये उन धर्मों को अनेक पदार्थों का संग्रह करने वाले होने से जीव समास कहते हैं ।

२. उन धर्म विशेषों को जीव समास कहते हैं जिनके द्वारा अनेक जीव अथवा जीव की अनेक जातियों का संग्रह किया जा सके । क्योंकि केवलज्ञान के बिना जीवों का स्वरूप व भेद प्रत्यक्ष नहीं जाना जा सकता । अतएव छद्मस्थों को उनका बोध कराना ही इस प्ररुपणा का प्रयोजन है।

३. संग्रहनय से जिन पर्यायाश्रित अनेक जीवों में पाये जाने वाले समान धर्मों के द्वारा उनका संक्षेप में ज्ञान कराया जा सके उनको ही जीव समास कहते हैं ।

प्रश्न ०२ – जीव समास का लक्षण क्या है ?

उत्तर – त्रस-स्थावर, बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त और प्रत्येक-साधारण इन चार युगलों से अविरुद्ध त्रसादि कर्मों से युक्त जाति नामकर्म का उदय होने पर जीवों में होने वाले ऊर्ध्वतासामान्य रूप या तिर्यक् सामान्य रूप धर्मों को जीवसमास कहते हैं ।

ऊर्ध्वतासामान्य – एक पदार्थ की कालक्रम से होने वाली अनेक पर्यायों में रहने वाले समान धर्म को ऊर्ध्वतासामान्य या तद्भव सामान्य कहते हैं ।

तियक् सामान्य – एक समय में अनेक पदार्थगत सदृश धर्म को तिर्यक् सामान्य या सादृश्य सामान्य कहते हैं ।

प्रश्न ०३ – जीव समास के कितने भेद हैं ?

उत्तर – आचार्यों ने जीव समास का चार प्रकार से ज्ञान कराया है। ये भेद केवल श्रोता या शिष्य की संक्षिप्त विस्तार और मध्यम रुचि के अनुसार समझने की दृष्टि से किये गये हैं। ये भेद निम्न हैं

०१. स्थानभेद अपेक्षा – १. चौदह जीव समास. २. सत्तावन जीवसमास.
३. अन्ठानवे जीव समास. ४. चार सौ छह जीव समास।

०२. योनि की अपेक्षा – चौरासी लाख योनियों में जीव की चौरासी लाख जातियाँ हैं।

०३. कुलकोडि की अपेक्षा – शरीर भेद (कुल) अपेक्षा एक करोड़ निन्यानवे लाख पचास हजार करोड़ १९९५०००००००००००० कुलों की संख्या है ।

०४. शरीर की अवगाहना अपेक्षा – चौंसठ अवगाहना जीव राशि है ।

प्रश्न ०४ – जीव समास के भेद-प्रभेद किस तरह के जीवों में सम्भव है ?

उत्तर – जीव समास के ये भेद–प्रभेद संसारी जीवों की अपेक्षा से हैं, मुक्त जीवों की अपेक्षा से नहीं क्योंकि सभी मुक्त जीव एक समान धर्म वाले होते हैं ।

प्रश्न ०५ – जीव समास के भेद-प्रभेद संख्या अपेक्षा बताइये ?

उत्तर – गोम्मटसार जीवकाण्ड की गाथा ७५, ७६, ७७ के अनुसार जीव समास के भेद –प्रभेद संख्या अपेक्षा निम्नानुसार हैं –

संख्या		**भेद प्रभेद विवरण**
एक	०१	जीव सामान्य (द्रव्यार्थिक नय से) 'जीव' मात्र का ग्रहण हो जाता है ।
दो	०२	संसारी जीवों के त्रस + स्थावर।
तीन	०३	एकेन्द्रिय + विकलेन्द्रिय (२,३,४ इन्द्रिय) + सकलेन्द्रिय (पंचेन्द्रिय)।
चार	०४	एकेन्द्रिय + विकलेन्द्रिय + संज्ञी पंचेन्द्रिय + असंज्ञी पंचेन्द्रिय।
पाँच	०५	(इन्द्रिय अपेक्षा) एकेन्द्रिय + द्वीन्द्रिय + त्रीन्द्रिय + चतुन्द्रिय + पंचेन्द्रिय।
छः	०६	(काय अपेक्षा) स्थावर (पृथ्वीकायिक + जलकायिक +अग्निकायिक + वायुकायिक + वनस्पतिकायिक) + त्रस
सात	०७	स्थावर (पृथ्वी + जल + अग्नि + वायु + वनस्पति) + त्रस (विकलेन्द्रिय + सकलेन्द्रिय)।
आठ	०८	स्थावर (पृथ्वी + जल + अग्नि + वायु + वनस्पति) + त्रस (विकलेन्द्रिय + संज्ञी + असंज्ञी)।
नौ	०९	स्थावर = पृथ्वी + जल + अग्नि + वायु + वनस्पति। त्रस = द्वीन्द्रिय + त्रीन्द्रिय + चतुरिन्द्रिय + पंचेन्द्रिय।
दस	१०	स्थावर = पृथ्वी + जल + अग्नि + वायु + वनस्पति। त्रस = द्वीन्द्रिय + त्रीन्द्रिय + चतुरिन्द्रिय + असंज्ञीपंचेन्द्रिय + संज्ञीपंचेन्द्रिय।

ग्यारह ११	स्थावर युगल – पृथ्वी (बादर + सूक्ष्म), जल (बादर + सूक्ष्म), अग्नि (बादर + सूक्ष्म), वायु (बादर + सूक्ष्म), वनस्पति (बादर + सूक्ष्म), त्रस (सामान्य)।
बारह १२	स्थावर युगल = पृथ्वी (बादर + सूक्ष्म), जल (बादर + सूक्ष्म), अग्नि (बादर + सूक्ष्म), वायु (बादर + सूक्ष्म), वनस्पति (बादर + सूक्ष्म), त्रस = विकलेन्द्रिय + सकलेन्द्रिय।
तेरह १३	स्थावर युगल = पृथ्वी (बादर + सूक्ष्म), जल (बादर + सूक्ष्म), अग्नि (बादर + सूक्ष्म), वायु (बादर + सूक्ष्म), वनस्पति (बादर + सूक्ष्म), त्रस = विकलेन्द्रिय + संज्ञी + असंज्ञी
चौदह १४	स्थावर युगल = पृथ्वी (बादर + सूक्ष्म), जल (बादर + सूक्ष्म), अग्नि (बादर + सूक्ष्म), वायु (बादर + सूक्ष्म), वनस्पति (बादर + सूक्ष्म), त्रस = द्वीन्द्रिय + त्रीन्द्रिय + चतुरिन्द्रिय + पंचेन्द्रिय ।
पंद्रह १५	स्थावर युगल = पृथ्वी (बादर + सूक्ष्म), जल (बादर + सूक्ष्म), अग्नि (बादर + सूक्ष्म), वायु (बादर + सूक्ष्म), वनस्पति (बादर + सूक्ष्म), । त्रस = द्वीन्द्रिय + त्रीन्द्रिय + चतुरिन्द्रिय + असंज्ञी + संज्ञी
सोलह १६	पृथ्वी + जल + अग्नि + वायु + नित्यनिगोद + इतरनिगोद × (बादर + सूक्ष्म), = (६ × २ = १२) प्रत्येक वनस्पति + विकलेन्द्रिय + असंज्ञी + संज्ञी = ०४
सत्रह १७	पृथ्वी + जल + अग्नि + वायु + नित्यनिगोद + इतरनिगोद × (बादर + सूक्ष्म) = १२ द्वीन्द्रिय + त्रीन्द्रिय + चतुरिन्द्रिय + पंचेन्द्रिय + प्रत्येक वनस्पति = ०५ = १७
अठारह १८	पृथ्वी + जल + अग्नि + वायु + नित्यनिगोद + इतरनिगोद × (बादर + सूक्ष्म) = १२ + प्रत्येक वनस्पति + द्वीन्द्रिय + त्रीन्द्रिय + चतुरिन्द्रिय + संज्ञी + असंज्ञी
उन्नीस १९	स्थावर युगल = पृथ्वी (बादर + सूक्ष्म)+ जल (बादर + सूक्ष्म) + अग्नि (बादर + सूक्ष्म) + वायु (बादर + सूक्ष्म) + नित्य निगोद (बादर + सूक्ष्म) + इतर निगोद (बादर + सूक्ष्म) = १२ + प्रत्येक वनस्पति (प्रतिष्ठित + अप्रतिष्ठित) ०२ त्रस = द्वीन्द्रिय + त्रीन्द्रिय + चतुरिन्द्रिय + असंज्ञी + संज्ञी = ०५, १२ + २ + ५ = १९

इस प्रकार एक से लेकर उन्नीस तक जो जीव समास के भेद गिनाये हैं इनका एक, दो, तीन के साथ गुणा करने पर क्रम से उन्नीस, अड़तीस, सत्तावन, अवांतर भेद जीव समास के होते हैं। इसमें एक दो (पर्याप्त + अपर्याप्त) तथा तीन (पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त, लब्ध्यपर्याप्त) हैं ।

प्रश्न ०६ – स्थान भेद अपेक्षा जीव समास के भेद कैसे किये गये हैं बतलाइये ।

उत्तर – स्थान भेद अपेक्षा जीव समास के चार प्रकार से भेद किये गये हैं।

(अ) चौदह जीव समास –

गोम्मटसार जीवकाण्ड की गाथा ७२ और द्रव्यसंग्रह गाथा १२ के अनुसार १४ जीव समास की भेद विवक्षा सामान्यतया की गई है।

स्थान अपेक्षा चौदह जीव समास

मुक्त जीव						
संसारी जीव	स्थावर	एकेंद्रिय	बादर	पर्याप्त	अपर्याप्त	२
			सूक्ष्म	पर्याप्त	अपर्याप्त	२
	त्रस	द्वीन्द्रिय		पर्याप्त	अपर्याप्त	२
		त्रींद्रिय		पर्याप्त	अपर्याप्त	२
		चतुरिंद्रिय		पर्याप्त	अपर्याप्त	२
		पंचेंद्रिय	संज्ञी	पर्याप्त	अपर्याप्त	२
			असंज्ञी	पर्याप्त	अपर्याप्त	२

इन चौदह जीवसमास में आचार्यों ने अक्षय अनंतानंत जीवों को गर्भित कर दिया है।

प्रश्न ०७ - इन चौदह प्रकार के जीव समासों में कौन सा भेद उपादेय है ?

उत्तर - इनमें से एक भी प्रकार का भेद उपादेय नहीं है, क्योंकि ये सब जीव की कर्मजनित विकृत पर्याय हैं इनका आकुलताओं से जन्म होता है और ये आकुलताओं की जनक हैं।

प्रश्न ०८ - तब कौनसी अवस्था उपादेय है ? और उसका क्या उपाय है ?

उत्तर - अतीत जीव समास (मुक्त) अवस्था उपादेय है क्योंकि वहाँ आत्मा के सम्पूर्ण गुण स्वाभाविक पर्याय रूप से परिणत हो जाते हैं। जीवसमास से पृथक् अनादि अनंत निज चैतन्य स्वभाव, कारण परमात्मा की उपासना अतीत जीव समास होने का बीज है।

(ब) सत्तावन जीव समास -

गोम्मटसार जीवकांड जी गाथा ७३ और चरचा शतक के कवित्त ४० के अनुसार - पृथ्वी, जल, अग्नि (तेज), वायु, नित्यनिगोद, इतरनिगोद के बादर सूक्ष्म के भेद से बारह भेद होते हैं। प्रत्येक के दो भेद - एक प्रतिष्ठित, दूसरा अप्रतिष्ठित। त्रस के पाँच भेद हैं - द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय। सब मिलाकर उन्नीस भेद हुए। ये सभी पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त, लब्ध्यपर्याप्त के भेद से तीन-तीन प्रकार के हुए इसलिए उन्नीस का तीन में गुणा करने पर जीवसमास के ५७ भेद होते हैं। [चार्ट अगले पृष्ठ पर देखें]

सत्तावन जीवसमास

एकेंद्रिय	पृथ्वीकायिक		बादर	पर्याप्त निर्वत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त	३
			सूक्ष्म	पर्याप्त निर्वत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त	३
	जलकायिक		बादर	पर्याप्त निर्वत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त	३
			सूक्ष्म	पर्याप्त निर्वत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त	३
	अग्निकायिक		बादर	पर्याप्त निर्वत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त	३
			सूक्ष्म	पर्याप्त निर्वत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त	३
	वायुकायिक		बादर	पर्याप्त निर्वत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त	३
			सूक्ष्म	पर्याप्त निर्वत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त	३
	वनस्पतिकायिक	साधारण	बादर	पर्याप्त निर्वत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त	३
		नित्यनिगोद	सूक्ष्म	पर्याप्त निर्वत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त	३
		इतरनिगोद	बादर	पर्याप्त निर्वत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त	३
			सूक्ष्म	पर्याप्त निर्वत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त	३
		प्रत्येक	सप्रतिष्ठित	पर्याप्त निर्वत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त	३
			अप्रतिष्ठित	पर्याप्त निर्वत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त	३
दो इंद्रिय	-	-	-	पर्याप्त निर्वत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त	३
तीन इंद्रिय	-	-	-	पर्याप्त निर्वत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त	३
चार इंद्रिय	-	-	-	पर्याप्त निर्वत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त	३
पंचेंद्रिय	-	-	संज्ञी	पर्याप्त निर्वत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त	३
			असंज्ञी	पर्याप्त निर्वत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त	३

प्रश्न ०९ – त्रस और स्थावर जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर – त्रस नाम कर्म के उदय से जीव त्रस तथा स्थावर नाम कर्म के उदय से जीव स्थावर कहलाते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु , वनस्पति कायिक जीव स्थावर हैं। इनके एक स्पर्शन इन्द्रिय होती है।

प्रश्न १० – बादर और सूक्ष्म किसे कहते हैं ।

उत्तर – बादर और सूक्ष्म की अपेक्षा संपूर्ण संसारी जीव दो प्रकार के होते हैं बादर और सूक्ष्म दोनों नाम कर्म की प्रकृतियाँ हैं। बादर पुण्य प्रकृति है और सूक्ष्म पाप प्रकृति है।

बादर – बादर नाम कर्म के उदय से जीव बादर होते हैं। इनका शरीर प्रतिघात युक्त होता है अन्य पुद्गलों से रहित जीव सूक्ष्म हैं। बादर जीव सूक्ष्म जीवों की तरह लोक में सर्वत्र नहीं हैं। बादर जीव आठों पृथ्वियों और अन्य जीवों के आश्रित पाये जाते हैं। जीवों में त्रस जीव अर्थात् दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, त्रिर्यंच, देव, नारकी, मनुष्य ये सभी बादर नाम कर्म के उदय से बादर ही होते हैं। एकेन्द्रिय जीव बादर भी होते हैं और सूक्ष्म भी एकेन्द्रियों में सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति बादर ही होती है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु कायिक, नित्यनिगोद, इतरनिगोद ये छह जीव बादर और सूक्ष्म होते हैं और एकेंद्रिय प्रत्येक वनस्पति बादर ही होती है।

सूक्ष्म – सूक्ष्म नाम कर्म के उदय से जो जीव उत्पन्न होते हैं उन्हें सूक्ष्म जीव कहा है। ये जीव वज्र, अग्नि, जल, पर्वत, मेरू से अटकते नहीं हैं। अग्नि आदि से इनका कदलीघात मरण (अकाल मरण) नहीं होता

अपनी आयु के अंत में ही मरण होता है, ये किसी को मारते नहीं, इन्हें कोई नहीं मारता, इनका कोई आधार नहीं होता। लोकाकाश का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं जहाँ सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म नित्यनिगोद, सूक्ष्म इतरनिगोद ये छह प्रकार के जीव न पाये जायें। इनका शरीर औदारिक होता है किन्तु ये सूक्ष्म नाम कर्म के उदय से सूक्ष्म जीव कहलाते हैं।

प्रश्न ११ - क्या त्रस जीवों के भी प्रभेद हैं ?

उत्तर - हाँ। त्रस जीवों में दो इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीव आते हैं। इनमें भी इन्द्रिय अपेक्षा भेद किये गये हैं संसारी जीवों को इन्द्रियों की अपेक्षा आचार्यों ने तीन भेदों में गिनाया है।

१. एकेन्द्रिय - जिनके एक स्पर्शन इन्द्रिय पायी जाये पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक।

२. सकलेन्द्रिय - सकल माने संपूर्ण इंद्रिय अर्थात् पाँचों इन्द्रिय जिनके पायी जायें उनको सकलेन्द्रिय या पंचेन्द्रिय जीव कहते हैं। देव, नारकी, मनुष्य गति के जीवों के अतिरिक्त तिर्यंचों में शेष जलचर, थलचर, नभचर आदि पंचेन्द्रिय तिर्यंच भी होते हैं।

३. विकलेन्द्रिय - जिनके न केवल एक और न ही पाँचों इन्द्रियाँ पायी जायें अर्थात् दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चारइन्द्रिय पायी जावें वे विकलेन्द्रिय हैं।

इस तरह त्रस जीवों के विकलेन्द्रिय (दो, तीन, चारइन्द्रिय) तथा सकलेन्द्रिय (पंचेन्द्रिय, सैनी, असैनी) ऐसे दो भेद हैं।

प्रश्न १२ - वनस्पति काय के भेद-प्रभेद समझाइये ।

उत्तर - गोम्मटसार जीवकांड की गाथा १८५ से १९७ तक वनस्पति काय का स्वरूप बताया गया है । जिसमें वनस्पति काय के भेद-प्रभेद निम्नानुसार हैं -

वनस्पति काय - स्थावर नामकर्म का अवांतर विशेष भेद वनस्पति नामकर्म है, उसके उदय से जीव वनस्पति होते हैं । इसके दो भेद हैं - प्रत्येक और साधारण।

प्रत्येक वनस्पति - जो एक ही जीव प्रत्येक वनस्पति नाम कर्म के उदय से युक्त होकर पूरे एक शरीर का मालिक हो उस जीव को प्रत्येक वनस्पति कहते हैं। इसके दो भेद हैं - सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित

१. सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति - जिस एक ही जीव के उस विवक्षित शरीर में मुख्य रूप से व्यापक होकर रहने पर भी उसके आश्रय से दूसरे अनेक निगोदिया जीव भी रहें। उसे सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कहते हैं।

प्रश्न १३ - सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति की पहिचान कैसे हो ?

उत्तर - १. जिनकी शिरा, बहि: स्नायु, संधि रेखा बंध, पर्व, गांठ प्रकट न हों।

२. जिनका भंग (तोड़ना) करने पर समान भंग हों।

३. दोनों भंगों में परस्पर हीरुक अंतर्गत तंतु सूत्र न लगा रहे।

४. छेदन करने पर भी जिसकी पुन: वृद्धि हो जाये। उनको सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कहते हैं।

– जिस वनस्पति के कंदमूल, क्षुद्र शाखा या स्कंध की छाल मोटी हो उसको अनंत जीव सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कहते हैं।

२. अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति – एक ही जीव की मुख्यता रहते हुए भी उसके आश्रय से दूसरे निगोदिया जीव नहीं रहते उसे अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कहते हैं। सप्रतिष्ठित के पहचान चिह्नों से रहित वनस्पति अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति है।

– सम्मूर्छन वनस्पति वह है जिसकी उत्पत्ति का कोई बीज निश्चित न हो, जिसकी छाल पतली हो उसको अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कहते हैं।

प्रश्न १४ – क्या वनस्पतियों के भी प्रकार आचार्यों ने गिनाये हैं ?

उत्तर – हाँ ! गोम्मटसार जीवकांड गाथा १८६ में आचार्यों ने वनस्पति के प्रकार निम्नानुसार बताये हैं –

१. मूल से उत्पन्न	–	अदरक, हल्दी, आदि।
२. अग्र से उत्पन्न	–	गुलाब, आर्यका, उदीचि आदि ।
३. पर्व पंगोली से उत्पन्न	–	ईख बेंत आदि।
४. कंद से उत्पन्न	–	पिंडालू, सूरण, आदि।
५. स्कंध से उत्पन्न	–	सल्लकी, कटकी, पलाश, ढाक आदि।
६. अपने बीज से उत्पन्न	–	गेहूं , चना, धान आदि।
७. सम्मूर्छन जन्म (मिट्टी, जलादि के संबंध से) उत्पन्न – घास आदि।		

ये सब वनस्पति सप्रतिष्ठित प्रत्येक और अप्रतिष्ठित प्रत्येक दोनों प्रकार की होती है। सम्मूर्छन वनस्पति वह है जिसकी उत्पत्ति का कोई बीज निश्चित न हो।

जिस वनस्पति के कंद मूल, क्षुद्र शाखा या स्कंध की छाल मोटी हो उसको अनंत जीव सप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं जिसकी छाल पतली हो उसको अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कहते हैं।

साधारण वनस्पति – जिन जीवों का शरीर साधारण नामकर्म के उदय के कारण निगोद रूप होता है उन्हीं को सामान्य या साधारण कहते हैं। उनका शरीर इस प्रकार होता है कि जो अनंतानंत जीवों को समान रूप से आश्रय दे सके। इस शरीर में एक जीव मुख्य नहीं रहता, अनंतानंत जीव रहते हैं इसलिए इन जीवों का नाम सामान्य या साधारण है। साथ ही उत्पन्न होने वाले जिन अनंतानंत साधारण जीवों की आहारादि पर्याप्ति आदि साथ ही होती है। जहाँ एक जीव का मरण होता है वहाँ पर अनंत जीवों का मरण और साथ ही उत्पत्ति होती है उनके समान कर्मोदय का नियम होता है।

साधारण वनस्पति के बादर और सूक्ष्म के भेद से दो भेद हैं। ये पर्याप्तक या अपर्याप्तक होते हैं। किन्तु मिश्र रूप नहीं होते इन्हें ही निगोद कहते हैं। निगोद के दो भेद – **नित्यनिगोद, चतुर्गति निगोद** – ''ऐसे अनंतानंत जीव हैं जिन्होंने त्रसों की पर्याय अभी तक कभी भी नहीं पायी है और जो निगोद अवस्था में होने वाले दुर्लेश्या रूप परिणामों से अत्यंत अभिभूत रहने के कारण निगोद स्थान को कभी नही छोड़ते।''(गोम्मटसार जीवकांड गाथा १९७) अर्थात् अभी तक कभी भी त्रस पर्याय को न पाया हो अथवा जो भविष्य में भी कभी त्रस पर्याय को नहीं पायेंगे उसको **नित्य निगोद** कहते हैं। इन्हें **अनादि अनंत निगोद**

भी कहते हैं जिन्होंने अभी तक त्रस पर्याय प्राप्त नहीं की है किन्तु आगे अन्य पर्याय पायेंगे यानि निगोद से निकल कर जायेंगे उन्हें **अनादि सांत नित्य निगोद** कहते हैं।

जिसने कभी त्रस पर्याय को प्राप्त कर लिया हो उसको **इतर निगोद या चतुर्गति निगोद** कहते हैं। ये जीव **सादि सांत निगोद** भव धारण करने वाले भी हुआ करते हैं अतएव **छह महीना आठ समय में छह सौ आठ जीवों के उसमें से निकल कर मोक्ष चले जाने पर भी कोई बाधा नहीं आती।**

प्रश्न १५ - एक निगोद शरीर में द्रव्य की अपेक्षा से जीवों का प्रमाण (संख्या) कितना है ?

उत्तर - गोम्मटसार जीवकांड गाथा १९६ में काल के आश्रय से एक शरीर में पाये जाने वाले जीवों की संख्या बताई है। समस्त सिद्धराशि का और सम्पूर्ण अतीत काल के समयों का जितना प्रमाण है द्रव्य की अपेक्षा से उनसे अनंतगुणे जीव एक निगोद शरीर में रहते हैं। बनारसी विलास के दोहा ९७-८८ के अनुसार -

एक निगोद शरीर में ऐते जीव बखान, तीन काल के सिद्ध सब एक अंश प्रमाण ।
बढ़े न सिद्ध अनन्तता, घटै न राशि निगोद, जैसी की तैसी रहे या जिनवचन विनोद ।।

प्रश्न १६ - पर्याप्त, अपर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त, लब्ध्यपर्याप्त क्या होता है ?

उत्तर - गोम्मटसार जीवकांड अधिकार - ३ गाथा ११८ से १२८ में विशेष वर्णन है।

पर्याप्त - नामकर्म के उदय से युक्त जीव पर्याप्त है। ग्रहीत आहार वर्गणा को खल-रस भाग आदि रूप परिणमाने की जीव की शक्ति के पूर्ण हो जाने को पर्याप्ति कहते हैं। ये पर्याप्ति जिनकी पायी जाती हैं वह पर्याप्त है। पर्याप्तियाँ छह हैं -

१. आहार पर्याप्ति - एक शरीर को छोड़कर दूसरे नवीन शरीर के लिये कारणभूत जिन नोकर्म वर्गणाओं को जीव ग्रहण करता है उनको खलरस भाग रूप परिणमाने की पर्याप्त नामकर्म के उदय से युक्त जीव की शक्ति के पूर्ण हो जाने को आहार पर्याप्ति कहते हैं।

२. शरीर पर्याप्ति - उनमें से खल भाग को हड्डी आदि कठोर अवयव तथा रस भाग को खून आदि द्रव अवयव रूप परिणमाने की शक्ति के पूर्ण होने को शरीर पर्याप्ति कहते हैं।

३. इन्द्रिय पर्याप्ति - उसी नोकर्म वर्गणा के स्कंधों में से कुछ वर्गणाओं को अपनी-अपनी इन्द्रिय के स्थान पर उस-उस द्रव्येन्द्रिय के आकार परिणमाने की आवरण ज्ञानावरण, दर्शनावरण और वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम तथा जाति नाम कर्म के उदय से युक्त जीव की शक्ति के पूर्ण होने को इन्द्रिय पर्याप्ति कहते हैं।

४. श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति - उनमें से कुछ स्कंधों को श्वासोच्छ्वास रूप परिणमाने की जो जीव की शक्ति की पूर्णता है वह श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति है।

५. भाषा पर्याप्ति - उनमें से वचन रूप होने के योग्य पुद्गल स्कंधों (भाषा वर्गणा) को वचन रूप परिणमाने की स्वर नामकर्म के उदय से युक्त जीव की शक्ति के पूर्ण होने को भाषा पर्याप्ति कहते हैं।

६. मनः पर्याप्ति - उनमें से द्रव्य मन होने के योग्य पुद्गल स्कंधों (मनोवर्गणाओं) को द्रव्यमन के अनुसार परिणमाने की नो इन्द्रियावरण और वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से युक्त जीव की शक्ति के पूर्ण होने को मनः पर्याप्ति कहते हैं।

प्रश्न १७ - क्या प्राण और पर्याप्ति एक ही है ?

उत्तर - नहीं, क्योंकि गृहीत पुद्गल स्कंध विशेषों को इन्द्रिय वचन आदि रूप परिणमाने की शक्ति की पूर्णता को पर्याप्ति और वचन व्यापार आदि की कारण भूत योग्यता शक्ति को तथा वचन आदि रूप प्रवृत्ति को प्राण कहते हैं। ये प्राण पर्याप्तियों के कार्य रूप हैं अर्थात् पर्याप्ति कारण है प्राण कार्य हैं।

प्रश्न १८ - किस जीव की कितनी पर्याप्ति होती हैं।

उत्तर - जिन जीवों की पर्याप्ति पूर्ण होती हैं उन्हें पर्याप्त तथा जिनकी पूर्ण नहीं होती उन्हें अपर्याप्त कहते हैं। उनमें भी - एकेन्द्रिय जीवों की - आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास ये चार। द्विन्द्रिय से असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों की - आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास भाषा ये पाँच पर्याप्ति। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों की आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास भाषा, मन ये छः पर्याप्ति होती हैं।

अपर्याप्त - अपर्याप्त नामकर्म के उदय से युक्त जिस जीव के पर्याप्ति पूर्ण होने की शक्ति नहीं होती उसे अपर्याप्त कहते हैं। अपर्याप्त जीवों के दो भेद हैं -

१. निर्वृत्यपर्याप्त - जिनकी पर्याप्ति अभी तक पूर्ण नहीं हुई हैं किंतु अंतर्मुहूर्त में नियम से पूर्ण हो जायेंगी उनको निर्वृत्यपर्याप्त कहते हैं। इन जीवों के पर्याप्त नामकर्म का उदय होता है। तथापि जब तक उनके शरीर पर्याप्ति पूर्ण न हुई हो तब तक उसे निर्वृत्यपर्याप्त कहते हैं।

२. लब्ध्यपर्याप्त - अपर्याप्त नामकर्म का उदय होने से जो जीव अपने-अपने योग्य पर्याप्तियों को पूर्ण न करके अंतर्मुहूर्त काल में ही मरण को प्राप्त हो जाये उन्हें लब्ध्यपर्याप्तक कहते हैं। लब्ध्यपर्याप्तक अर्थात् लब्धि अपर्याप्त। इन जीवों की जघन्य व उत्कृष्ट आयुस्थिति अंतर्मुहूर्त मात्र ही होती है। यह अंतर्मुहूर्त एक श्वास के अठारहवें भाग प्रमाण होता है। इस प्रकार के लब्ध्यपर्याप्तक जीव एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक सबमें पाये जाते हैं।

प्रश्न १९ - एक जीव एक अंतर्मुहूर्त में लब्ध्यपर्याप्तक अवस्था में अधिक से अधिक कितने भवों को धारण कर सकता है ?

उत्तर - गोम्मटसार जी गाथा १२३ के अनुसार - एक लब्ध्यपर्याप्तक जीव यदि निरंतर जन्म मरण करे तो अंतर्मुहूर्त काल में **६६३३६** जन्म और उतने ही मरण कर सकता है, इससे अधिक नहीं। इन भवों को क्षुद्रभव कहा गया है क्योंकि इनसे अल्प स्थिति वाला अन्य कोई भी नहीं पाया जाता। इन भवों में प्रत्येक काल का प्रमाण श्वास का अठारहवाँ भाग होता है। फलतः त्रैराशिक के अनुसार - **६६३३६** भवों के श्वासों का प्रमाण **३६८५** $^{१}/_{३}$ होता है।

३७७३ उच्छ्वासों का एक मुहूर्त होता है । अंतर्मुहूर्त उससे कम इतने उच्छ्वासों के समूह प्रमाण अंतर्मुहूर्त में पृथ्वीकायिक से लेकर पंचेन्द्रिय तक लब्ध्यपर्याप्त जीवों के क्षुद्रभव **६६३३६** हो जाते हैं।

[प्रश्न क्र. १८ अगले पृष्ठ पर......]

प्रश्न २० - ६६३३६ भवों में से किसके कितने भव होते हैं ?

उत्तर -

विकलेन्द्रिय १८० -	द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	-	८० भव
	त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	-	६० भव
	चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	-	४० भव
सकलेन्द्रिय २४ -	असंज्ञी पंचेंद्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	-	०८ भव
	संज्ञी पंचेंद्रिय लब्ध्यपर्याप्तक	-	०८ भव
	मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तक	-	०८ भव
एकेन्द्रिय ६६१३२ -	स्थूल पृथ्वीकायिक लब्ध्यपर्याप्तक	-	६०१२ भव
	सूक्ष्म पृथ्वीकायिक लब्ध्यपर्याप्तक	-	६०१२ भव
	स्थूल जलकायिक लब्ध्यपर्याप्तक	-	६०१२ भव
	सूक्ष्मजलकायिक लब्ध्यपर्याप्तक	-	६०१२ भव
	स्थूल अग्निकायिक लब्ध्यपर्याप्तक	-	६०१२ भव
	सूक्ष्म अग्निकायिक लब्ध्यपर्याप्तक	-	६०१२ भव
	स्थूल वायुकायिक लब्ध्यपर्याप्तक	-	६०१२ भव
	सूक्ष्म वायुकायिक लब्ध्यपर्याप्तक	-	६०१२ भव
	स्थूल साधारण लब्ध्यपर्याप्तक	-	६०१२ भव
	सूक्ष्म साधारण लब्ध्यपर्याप्तक	-	६०१२ भव
	प्रत्येक वनस्पति लब्ध्यपर्याप्तक	-	६०१२ भव
	इस तरह एक अंतर्मुहूर्त काल में क्षुद्रभव (लब्ध्यपर्याप्तक) = ६६३३६ भव		

प्रश्न २१ - सयोग केवली पर्याप्त हैं या अपर्याप्त ?

उत्तर - सयोग केवली पर्याप्त नाम कर्म के उदय से युक्त पर्याप्त हैं। उनके काययोग भी है किन्तु समुद्घात अवस्था में उनके कपाट, प्रतर, लोकपूर्ण तीनों ही अवस्था में योग पूर्ण नहीं हैं अत: आगम में गौणता से उन्हें अपर्याप्त कहा है ।

प्रश्न २२ - किस-किस गुणस्थान में पर्याप्ति-अपर्याप्ति अवस्था पाई जाती है ?

उत्तर -

प्रथम गुणस्थान	-	लब्ध्यपर्याप्तक,	निर्वृत्यपर्याप्तक,	पर्याप्त
दूसरा सासादन गुणस्थान	-	-	निर्वृत्यपर्याप्तक,	पर्याप्त
चौथा असंयत गुणस्थान	-	-	निर्वृत्यपर्याप्तक,	पर्याप्त
छटवाँ प्रमत्तविरत गुणस्थान	-	-	निर्वृत्यपर्याप्तक,	पर्याप्त
शेष सभी गुणस्थानों में	-	-	-	पर्याप्त

(स) अन्ठानवे जीव समास - ये भेद निम्नलिखित चार्ट के अनुसार हैं -

(अ) एकेंद्रिय ४२						
पृथ्वीकायिक ६			बादर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त
			सूक्ष्म	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त
जलकायिक ६			बादर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त
			सूक्ष्म	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त
अग्निकायिक ६			बादर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त
			सूक्ष्म	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त
वायुकायिक ६			बादर	पर्याप्त	निर्वृत्य पर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त
			सूक्ष्म	पर्याप्त	निर्वृत्य पर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त
वनस्पतिकायिक १८						
साधारणवनस्पति१२	नित्यनिगोद ६		बादर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त
			सूक्ष्म	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त
	इतर निगोद ६		बादर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त
			सूक्ष्म	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त
प्रत्येक वनस्पति ६	अप्रतिष्ठित ३			पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त
	सप्रतिष्ठित ३			पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त
(ब) विकलेंद्रिय ९	दो इंद्रिय ३			पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त
	तीन इंद्रिय ३			पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त
	चार इंद्रिय ३			पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त
(स) पंचेंद्रिय ४७						
देवगति २				पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	-
नरकगति २				पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	-
मनुष्यगति ८	भोगभूमि २			पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	-
	कुभोगभूमि २			पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	-
	आर्यखंड ३			पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	सम्मू.(ल.प)
	म्लेच्छखंड २			पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	-
तिर्यंचगति ३४	भोगभूमि ४		थलचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	-
			नभचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	-
	कर्मभूमि ३०	गर्भजसंज्ञी ६	जलचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	-
			थलचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	-
			नभचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	-
		गर्भजअसंज्ञी ६	जलचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	-
			थलचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	-
			नभचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	-
		सम्मूर्च्छन संज्ञी	जलचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त
			थलचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त
			नभचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त
	सम्मूर्च्छन असंज्ञी		जलचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त
			थलचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त
			नभचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त

इस तरह एकेंद्रिय ४२ + विकलेंद्रिय ९ + पंचेंद्रिय ४७ = ९८ जीवसमास हैं।

प्रश्न २३ - क्या ९८ जीव समास की संक्षिप्त गणना की जा सकती है ?

उत्तर - हाँ। उपरोक्त गणना इन्द्रिय अपेक्षा की गई है। इसी तरह गति अपेक्षा गणना करने पर संक्षेप में ९८ जीव समास होते हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है –

तिर्यंच गति के	८५ जीवसमास
देवगति के	०२ जीवसमास
नरकगति के	०२ जीवसमास
मनुष्यगति के	०९ जीवसमास = ९८ जीव समास

प्रश्न २४ - तिर्यंच गति के ८५ जीव समास कैसे ?

उत्तर -

एकेन्द्रिय के	४२ जीवसमास
विकलेन्द्रिय के	०९ जीवसमास
पंचेन्द्रिय के	३४ जीवसमास = ८५ जीवसमास

इसी तरह त्रस के ५६ + स्थावर के ४२ = ९८ जीवसमास हैं ।

प्रश्न २५ - जन्म क्या होता है ?

उत्तर - पूर्व शरीर का त्याग कर नये शरीर का ग्रहण करना जन्म है। जब जीव की भुज्यमान आयु पूर्ण हो जाती है, तो वह नये भव को धारण करता है।

प्रश्न २६ - जन्म की अपेक्षा जीव के भेद बताइये ?

उत्तर - संसारी जीवों के जन्म की अपेक्षा तीन भेद हैं –

१. सम्मूर्च्छन जन्म – चारों ओर से पुद्‌गलों का ग्रहण करके अवयव गढ़ (बन) जाना सम्मूर्च्छन जन्म है जैसे – सड़े हुए फल, मूत्र, मल, दाल आदि में जीवों का सम्मूर्च्छन जन्म होता है। एकेन्द्रिय से लेकर चार इन्द्रिय तक के सभी जीवों का सम्मूर्च्छन जन्म होता है। पंचेन्द्रिय में भी असंख्यात बहुभाग सम्मूर्च्छन तिर्यंचों का तथा मनुष्यों में लब्ध्यपर्याप्त मनुष्यों का सम्मूर्च्छन जन्म होता है। सम्मूर्च्छन जीव पर्याप्त अपर्याप्त दोनों होते हैं किन्तु मनुष्यों में सम्मूर्च्छन मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तक ही होते हैं।

२. गर्भजन्म – यह तीन प्रकार का होता है –

१. जरायुज – माँस रक्त के पत्तर (जाल) से आवरण वाला जो जरायु से उपजता है।

२. अण्डज – अण्डे से उत्पन्न जीव अण्डज कहलाते हैं ।

३. पोतज – जो न जरायु से लिपटे हैं, न ही अण्डे से उत्पन्न हैं, जो आवरण विहीन जन्म लेते हैं वे पोतज हैं।

३. उपपाद जन्म – देव नारकियों का उपपाद जन्म होता है इनकी उत्पत्ति का नियत स्थान होता है। देव जन्म हेतु उपपाद शैया होती है।

नारकियों के जन्म हेतु बिलों के ऊपर के भाग में उपपाद स्थान बने हैं। उत्पत्ति स्थानों में स्थित वैक्रियक पुद्‌गलों को शरीर रूप से परिणमाते हुए जन्म उपपाद जन्म है।

प्रश्न २७ - सम्मूर्च्छन मनुष्यों की उत्पत्ति कहाँ होती है ?

उत्तर - १७० कर्म भूमि संबंधी ८५० म्लेच्छखंडों को छोड़कर (म्लेच्छखंड में केवल स्त्री वेद, पुरुष वेद होता है और सम्मूर्च्छन मनुष्य नपुंसक वेदी होते हैं इसलिये इन्हें छोड़कर) १७० आर्यखंड की स्त्रियों में चक्रवर्ती की पटरानी को छोड़कर शेष आर्यखंड की स्त्रियों की योनि स्थान, काँख, आँचल तले, अंतराल, नाभि तथा मुर्दा शरीर में अन्य अशुचि स्थानों में सम्मूर्च्छन मनुष्यों की उत्पत्ति होती है।

(द) स्थान अपेक्षा चार सौ छः जीव समास -

एकेन्द्रिय	पृथ्वीकायिक	मृदुपृथ्वीकायिक	बादर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
७२ भेद			सूक्ष्म	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
साधारण		कठोर पृथ्वीकायिक	बादर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
४२ भेद			सूक्ष्म	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
	जलकायिक		बादर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
			सूक्ष्म	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
	अग्निकायिक		बादर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
			सूक्ष्म	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
	वायुकायिक		बादर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
			सूक्ष्म	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
	नित्यनिगोद		बादर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
			सूक्ष्म	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
	इतरनिगोद		बादर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
			सूक्ष्म	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
प्रत्येक	तृण		सप्रतिष्ठित	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
वनस्पति			अप्रतिष्ठित	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
३०	लता		सप्रतिष्ठित	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
भेद			अप्रतिष्ठित	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
	छोटे वृक्ष		सप्रतिष्ठित	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
			अप्रतिष्ठित	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
	बड़े वृक्ष		सप्रतिष्ठित	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
			अप्रतिष्ठित	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
	कंदमूल		सप्रतिष्ठित	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
			अप्रतिष्ठित	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
विकलेंद्रिय	दो इंद्रिय			पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
९ भेद	तीन इंद्रिय			पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
	चतुरिंद्रिय			पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
पंचेन्द्रिय	कर्मभूमि	सम्मूर्छन संज्ञी	जलचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
३२५	तिर्यंच		थलचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
भेद			नभचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
तिर्यंच		सम्मूर्छन असंज्ञी	जलचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३

४२ भेद			थलचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
			नभचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	लब्ध्यपर्याप्त	३
	गर्भज तिर्यंच	संज्ञी	जलचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
	कर्मभूमि		थलचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
	तिर्यंच		नभचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
		असंज्ञी	जलचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
			थलचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
			नभचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
	भोगभूमि	उत्तमभोग भूमि	थलचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
	तिर्यंच १२		नभचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
	भेद	मध्यम भूमि	थलचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
			नभचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
		जघन्य भूमि	थलचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
			नभचर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
मनुष्य १३	आर्यखंड	गर्भज संज्ञी		पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
भेद	म्लेच्छखंड	गर्भज संज्ञी		पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
	भोगभूमि	उत्तम		पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
		मध्यम		पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
		जघन्य		पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
		कुभोगभूमि		पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
	कर्मभूमि	सम्मूर्छन मनुष्य			लब्ध्यपर्याप्त		१
देव	भवनत्रिक	भवनवासी	असुरकुमार	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
१७२	४६ भेद	२० भेद	नागकुमार	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
	(देव और		विद्युतकुमार	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
	नारकी में		सुवर्णकुमार	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
	उपपाद		अग्निकुमार	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
	जन्म होने से		वातकुमार	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
	लब्ध्यपर्याप्त		स्तनितकुमार	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
	नहीं होते)		उदधिकुमार	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
			द्वीपकुमार	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
			दिक्कुमार	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
		व्यंतर देव	किन्नर	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
		१६ भेद	किंपुरुष	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
			महोरग	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
			गंधर्व	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
			यक्ष	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
			राक्षस	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
			भूत	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२
			पिशाच	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त		२

		ज्योतिषी देव	सूर्य	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	२
		१० भेद	चंद्र	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	२
			ग्रह	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	२
			नक्षत्र	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	२
			तारे	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	२
		वैमानिकदेव ६३	पटल	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	१२६
नारकी	९८ भेद	नारकियों के ४९	पटल	पर्याप्त	निर्वृत्यपर्याप्त	९८

इस तरह एकेन्द्रिय के ७२ + विकलेन्द्रिय के ०९ + पचेन्द्रिय तिर्यंच ४२ + मनुष्य के १३ + देव के १७२ + नारकी के ९८ भेद मिलाकर ४०६ जीवसमास स्थान अपेक्षा कहे गये हैं।

प्रश्न २८ - यह स्थान क्या है ?

उत्तर - एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि जाति भेद अथवा एक, दो, तीन, चार आदि विकल्पों को स्थान कहते हैं।

प्रश्न २९ - नरक भूमि तो सात हैं यहाँ ४९ पटल क्यों कहे गये हैं ।

उत्तर - रत्नप्रभा आदि सात नरक पृथ्वियाँ हैं जिनमें चौरासी लाख नरक हैं। इन सात पृथ्वी में ४९ पाथड़े (मंजिल) हैं जिनको पटल (प्रस्तर) कहते हैं। प्रत्येक मंजिल में बीचों बीच कूप के आकार का गोल इंद्रक नरक हैं इसलिये इनकी संख्या ४९ हैं।

पहली भूमि में १३ पाथड़े हैं। उनमें पहला सीमातंक पटल है। उसकी चारों दिशाओं में ४९-४९ और विदिशाओं में ४८-४८ श्रेणीबद्ध नरक हैं। दिशाओं के १९६ और विदिशाओं के १९२ इस तरह ३८८ नरक हुए। यह एक पटल का वर्णन है। शेष ४८ पटलों में उनके नरकों की संख्या क्रम से ८-८ घटती जाती है दूसरे नरक की ३८०, तीसरे की ३७२, चौथे की ३६४, इस तरह क्रमश: घटते हुए अंत में चार नरक रह जाते हैं। अंतिम पटल का नाम अप्रतिष्ठान या अवधि स्थान इंद्रक है। इसकी विदिशाओं में नरक नहीं हैं केवल चार दिशाओं में चार नरक हैं। इन ४९ पटलों के श्रेणीबद्ध नरकों की संख्या ९६०४ है जिनका विस्तार असंख्यात योजन है। इन्द्रक और श्रेणीबद्ध नरकों के अतिरिक्त शेष प्रकीर्णक नरक हैं इस तरह ४९ इन्द्रक नरक + ९६०४ श्रेणीबद्ध नरक + ८३९०३४७ प्रकीर्णक नरक = कुल मिलाकर ८४००००० चौरासी लाख नरक हैं । जो जीव दया भाव धारण करते हैं, अहिंसा धर्म का पालन करते हैं, वे इन नरकों के महान दु:खों से बच सकते हैं।

प्रश्न ३० - योनि क्या होती है ?

उत्तर - उत्पत्ति के स्थान को योनि कहते हैं। कंद, मूल, अंडा, गर्भ, रस, स्वेद आदि उत्पत्ति के आधार को योनि कहते हैं।

प्रश्न ३१ - योनि के कितने प्रकार हैं ? समझाइये।

उत्तर - गोम्मटसार जीवकांड गाथा -८१ से ९३ तक में योनियों का वर्णन किया गया है जो इस प्रकार है। योनियों के दो भेद हैं - १. आकृति योनि २. गुणयोनि।

आकृति योनि के तीन भेद –

१. **शंखावर्त आकृति योनि** – जिसके भीतर शंक के समान चक्कर पड़े हों उसको शंखावर्त योनि कहते हैं। इसमें नियम से गर्भ नहीं रहता।

२. **कूर्मोन्नत आकृति योनि** – जो कछवा की पीठ की तरह उठी हुई हो उसको कूर्मोन्नत योनि कहा है। इस योनि में तीर्थंकर, चक्रवर्ती, अर्धचक्री, बलभद्र तथा अन्य भी, महापुरुष उत्पन्न होते हैं।

३. **वंशपत्र आकृति योनि** – जो बांस के पत्ते के समान लम्बी हो उसको वंशपत्र योनि कहा है। इसमें साधारण पुरुष ही उत्पन्न होते हैं।

गुणयोनि के नौ भेद हैं – जन्म तीन होते हैं – सम्मूर्च्छन, गर्भ और उपपाद। इन तीनों जन्मों की आधारभूत नौ गुणयोनि हैं –

१. सचित्त गुण योनि – आत्म प्रदेशों से युक्त पुद्‌गल पिंड को सचित्त गुण योनि कहते हैं।

२. अचित्त गुण योनि – आत्म प्रदेशों से रहित पुद्‌गल पिंड को अचित्त उपपाद जन्म कीअचित्त योनि कहते हैं।

३. सचित्त अचित्त गुण योनि – जन्म के आधारभूत स्थान के कुछ पुद्‌गल सचित्त और कुछ अचित्त हों उसे सचित्ताचित्त मिश्र योनि कहा है। सम्मूर्च्छन जन्म की सचित्त, अचित्त, सचित्ताचित्तमिश्र तीनों योनि होती हैं।

४. शीत गुण योनि – जिस योनि का स्पर्श शीत हो।

५. उष्णगुण योनि – जिस योनि का स्पर्श उष्ण हो।

६. शीतोष्ण मिश्र गुण योनि – जिस योनि का कुछ भाग शीत और कुछ भाग उष्ण हो उसे शीतोष्ण मिश्र योनि कहा है। उपपाद जन्म में शीत और उष्ण दो प्रकार की योनि हैं, शेष गर्भ और सम्मूर्च्छन जन्मों में शीत, उष्ण शीतोष्ण मिश्र तीनों ही योनि हैं।

७. संवृत गुण योनि – संवृत का अर्थ है ढँका हुआ। जो योनि ढँकी हुई हो उसे संवृत योनि कहा है।

८. विवृत गुण योनि – विवृत का अर्थ है खुला हुआ। जो योनि खुली हुई हो उसे विवृत योनि कहा है।

९. संवृत विवृत मिश्र गुण योनि – जो योनि कुछ ढँकी हुई, जो योनि कुछ खुली हुई हो उसे मिश्र संवृत विवृत गुणयोनि कहा है।

उपपाद जन्म और एकेन्द्रिय जीवों की योनि संवृत ही होती है । विकलेन्द्रियों की योनि विवृत ही होती है। गर्भज जीवों की योनि नियम से संवृत–विवृत मिश्र योनि होती है। पचेन्द्रिय सम्मूर्च्छन जीवों की विकलेन्द्रियों की तरह विवृत योनि ही होती है।

प्रश्न ३२ – किस जन्म की कौन–कौन सी योनि हैं ?

उत्तर – **उपपाद जन्म** – अचित्त, शीत, उष्ण, संवृत योनि। **सम्मूर्च्छन जन्म** – सचित्त, अचित्त, मिश्र,

शीत, उष्ण, मिश्र। **पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छन** - विवृत योनि। **गर्भजन्म** - शीत, उष्ण, मिश्र, संवृत- विवृत, मिश्र।

प्रश्न ३३ - किन जीवों का कौन सा जन्म होता है ?

उत्तर - पोतज, जरायुज, अंडज जीवों का गर्भ जन्म होता है।

देवों का शय्या उपपाद और नारकियों का उष्ट्रकादि उपपाद जन्म होता है। शेष जीवों का सम्मूर्च्छन जन्म होता है। एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय जीवों के शरीर सम्मूर्च्छन ही होते हैं।

प्रश्न ३४ - किस गति में कौन सा जन्म होता है ?

उत्तर - १. देवगति और नरक गति में उपपाद जन्म।

२. मनुष्य और तिर्यंचों में यथासंभव गर्भ और सम्मूर्च्छन जन्म।

३. लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य और एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय का सम्मूर्च्छन जन्म।

४. कर्मभूमि के पचेन्द्रिय तिर्यंच गर्भज और सम्मूर्च्छन ही होते हैं।

५. भोगभूमि के तिर्यंच गर्भज ही होते हैं।

६. पर्याप्त मनुष्य गर्भज ही होते हैं।

७. लब्ध्यपर्याप्तक उपपाद और गर्भ जन्म में नियम से नहीं होते।

८. सम्मूर्च्छन मनुष्य नियम से लब्ध्यपर्याप्तक ही होते हैं।

९. देव नारकी पर्याप्त, निर्वृत्य पर्याप्त ही होते हैं।

प्रश्न ३५ - योनि आधारित जीव समास के भेद-प्रभेद बताइये ?

उत्तर - विस्तार अपेक्षा योनियाँ चौरासी लाख हैं।

क्र.	**जीव समास**	**योनि संख्या**
०१.	पृथ्वीकायिक जीवों की	७ लाख
०२.	जलकायिक जीवों की	७ लाख
०३.	अग्निकायिक जीवों की	७ लाख
०४.	वायुकायिक जीवों की	७ लाख
०५.	प्रत्येक वनस्पति	१० लाख
०६.	साधारण वनस्पति नित्य निगोद	७ लाख
०७.	साधारण वनस्पति इतर निगोद	७ लाख
०८.	द्वीन्द्रिय जीवों की	२ लाख
०९.	तीन इन्द्रिय जीवों की	२ लाख
१०.	चतुरिन्द्रिय जीवों की	२ लाख
११.	देवों की	४ लाख
१२.	नारकियों की	४ लाख
१३.	पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की	४ लाख

१४.	मनुष्यों की	१४ लाख
	योग	**८४ लाख योनियाँ**

योनि और जन्म अपेक्षा ये ८४ लाख योनियाँ और जीवों की जातियाँ हैं।

प्रश्न ३६ - कुल कोडि अपेक्षा जीव समास के भेद प्रभेद बताइये ?

उत्तर - गोम्मटसार जीवकांड गाथा ११३ से ११७ में कुल के अनुसार जीवसमास का वर्णन है। शरीर के भेद के कारणभूत नोकर्म वर्गणाओं इन कुलों का वर्गीकरण निम्नानुसार है –

एकेन्द्रिय	पृथ्वीकायिक	–	२२ लाख कोटि
	जलकायिक	–	०४ लाख कोटि
	अग्निकायिक	–	०३ लाख कोटि
	वायुकायिक	–	०७ लाख कोटि
	वनस्पतिकायिक	–	२८ लाख कोटि
विकलेन्द्रिय	द्वीन्द्रिय जीव	–	०४ लाख कोटि
	तीन इन्द्रिय जीव	–	०८ लाख कोटि
	चतुरिन्द्रिय जीव	–	०९ लाख कोटि
सकलेन्द्रिय	पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीव	–	४३ १/२ लाख कोटि
	इनमें–जलचर जीव	–	१२ १/२ लाख कोटि
	पक्षियों के	–	१२ लाख कोटि ४३ १/३ लाख कोटि
	पशुओं के	–	१० लाख कोटि
	छाती के सहारे चलने वाले दुमुही आदि के (सरीसृप)	–	०९ लाख कोटि
	देवों के	–	२६ लाख कोटि
	नारकी के	–	२५ लाख कोटि
	मनुष्य के	–	१२ लाख कोटि

इस प्रकार पृथ्वीकायिक से लेकर मनुष्य पर्यन्त समस्त संसारी जीवों के कुलों की संख्या एक करोड़, संत्तानवे लाख, पचास हजार को एक करोड़ से गुणा करने पर एक कोड़ाकोड़ी संत्तानवे लाख, पचास हजार करोड़ है।

२२ + ७ + ३ + ७ = ३९ लाख करोड़ (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु)

७ + ८ + ९ + २८ = ५२ लाख करोड़ (दो, तीन, चार इन्द्रिय, वनस्पति काय)

१२ १/२ + १२ + १० + ९ = साढ़े ४३ लाख करोड़ (जल, नभ, पशु, सरीसृप)

२६ + २५ + १२ = ६३ लाख करोड़ (देव, नारकी, मनुष्य)

= एक सौ साढ़े सत्तानवे लाख करोड़ × १ करोड़ = १९७५०००००००००००

प्रश्न ३७ - कुल और योनि में क्या अन्तर है ?

उत्तर - उत्पत्ति स्थान को योनि और शरीर के भेदों को कुल कहते हैं। सचित्त अचित्त आदि नौ मूल

योनियों के तारतम्य में ८४ लाख योनियाँ होती हैं। कुल के मूल भेद चार हैं – १. नारक शरीर २. तिर्यंच शरीर ३. मनुष्य शरीर ४. देव शरीर। एकेन्द्रिय में वट, पीपल, दो इन्द्रिय में शंख, सीप, तीन इन्द्रिय में चींटी, खटमल, चार इन्द्रिय में भौंरा, मक्खी, पंचेन्द्रिय में गाय, भैंस, घोड़ा आदि तिर्यंचों के भेद कई तरह के हैं। ऐसे ही मनुष्यादि के शरीरों के भी कई प्रकार हैं। जिन्हें रागवश यह जीव धारण करता आया है।

प्रश्न ३८ – इन्हें क्यों जानना चाहिए ?

उत्तर – भव्य जीवों को सिद्धांत शास्त्र के अनुसार जीवों के कुल भेदों को जानना चाहिए क्योंकि इन्हें जाने बिना मोक्षमार्ग रूप चारित्र तथा दयामय धर्म वास्तव में पालन नहीं किया जा सकता।

दया-दया सब ही कहें, दया न जाने कोय ।
जीव जाति जाने बिना, दया कहाँ से होय ।।

प्रश्न ३९ – मनुष्यों के चौदह लाख करोड़ कुल कहाँ पाये जाते हैं ?

उत्तर – ढाई द्वीप में १७० विजयार्ध पर्वत हैं जिनमें प्रत्येक पर्वत पर ११०-११० विद्याधरों की नगरी हैं। इस प्रकार १७० × ११० = १८७०० विजयार्ध नगरी हैं तथा १० जघन्य भोगभूमि, १० मध्यम भोगभूमि, १० उत्कृष्ट भोगभूमि एवं ९६ कुभोगभूमि हैं, जिनमें मनुष्यों के १४ लाख करोड़ कुल संभव हैं।

प्रश्न ४० – पृथ्वीकाय, पृथ्वीकायिक, पृथ्वीजीव में क्या अन्तर है ?

उत्तर – पृथ्वीकाय – काय शब्द का अर्थ शरीर होता है। पृथ्वीजीव जिस काय को छोड़कर अन्यत्र जन्म लेने चला गया है, ऐसा जो पृथ्वी कायिक का शरीर है वह पृथ्वीकाय है। जैसे – ईंट आदि। ये भी अचेतन हैं इसके स्थावर पृथ्वीकाय नाम का कर्मोदय नहीं है। इसकी विराधना में दोष नहीं है। वे निर्जीव हैं उनमें पुनः जीव उत्पन्न नहीं हो सकता। जैसे – सीमेंट, चूना, ईंट आदि।

पृथ्वीकायिक – जिसमें पृथ्वी जीव विद्यमान है, वह पृथ्वीकायिक है। इसकी विराधना में दोष है, इनके स्थावर नामकर्म का उदय है, यह सजीव है।

पृथ्वीजीव – जिसके पृथ्वी स्थावर नामकर्म का उदय है, परन्तु अभी तक पृथ्वी को अपना शरीर नहीं बनाया है, ऐसे विग्रहगति स्थित जीव को पृथ्वीजीव कहते हैं, इसके कार्माण काययोग होता है।

इसी तरह जलकाय, जलकायिक, जलजीव, अग्निकाय, अग्निकायिक, अग्निजीव, वायुकाय, वायुकायिक, वायुजीव ऐसे तीन-तीन भेद हैं। चौथा भेद सामान्य अपेक्षा भी कहा गया है। जैसे – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति।

प्रश्न ४१ – शरीर अवगाहना अपेक्षा जीव समास के भेद बताइये ?

उत्तर – आकाश के जितने क्षेत्र में शरीर रहे, उसका नाम अवगाहना है। स्थूल रूप से अवगाहना के ६४ भेद हैं। वैसे तो अवगाहना के भेद संख्यात घनांगुल प्रमाण असंख्यात होते हैं जिन्हें जीव क्रमशः धारण करता है। यहाँ जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट अवगाहना के भेद से विभाजन किया है।

१. जघन्य अवगाहना – ऋजुगति से उत्पन्न होने वाले सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीवों की उत्पत्ति से तीसरे समय में शरीर की जघन्य अवगाहना होती है। इसका प्रमाण घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

प्रश्न ४२ - ऋजुगति से उत्पन्न होने वाले की ही जघन्य अवगाहना क्यों है।

समाधान - गोम्मटसार जी गाथा ९४ भावार्थ के अनुसार विग्रहगति से उत्पन्न होने वाले के योगों में वृद्धि होने से अवगाहना में भी वृद्धि का प्रसंग आता है।

प्रश्न ४३ - ऋजुगति, विग्रहगति, को कृपया स्पष्ट कीजिए।

उत्तर - जब जीव दूसरे भव में गमन करे (मरण के बाद जन्म के पहले) तब विदिशाओं से वर्जित (रहित) चार दिशा तथा अधो-उर्ध्व दिशा में गमन होता है। यह गमन गति है जो चार प्रकार की है -

(१)	ऋजुगति	-	जहाँ सीधा गमन करे वह ऋजुगति है।
(२)	पाणिमुक्ता	-	जिसमें बीच में एक बार मुड़े । (एक समय में)
(३)	लाँगलिका गति	-	जिसमें बीच में दो बार मुड़े । (दो समय में)
(४)	गो मूत्रिका	-	जिसमें तीन बार मुड़े । (तीन समय में)

- संसारी जीवों की छहों दिशाओं (चार दिशा + अधो + ऊर्ध्व) में गति होती है। सिद्ध भगवान की ऋजु गति होती है।
- संसारी जीवों की भी अनेक बार जब समदिशा में जन्म लेना हो तो यह ऋजुगति हो सकती है।

प्रश्न ४४ - जन्म के तीसरे समय में ही जघन्य अवगाहना क्यों होती है ?

उत्तर - उत्पत्ति के प्रथम समय में निगोदिया शरीर (यहाँ आयत का आकार बनाना है) आयत चतुष्क (लंबा ज्यादा + चौड़ा कम) तथा दूसरे समय में वर्ग (लंबा + चौड़ा सम) होता है तथा तीसरे समय में कोण रहित **O** होने से जघन्य अवगाहना होती है।

२. सर्वोत्कृष्ट अवगाहना - स्वयंभूरमण समुद्र के मध्य में होने वाले महामत्स्य की उत्कृष्ट अवगाहना होती है । इसका प्रमाण है - १००० योजन लंबा × ५०० योजन चौड़ा तथा २५० योजन मोटा। यह उत्कृष्ट अवगाहना स्वयंभूरमण समुद्र के मध्यवर्ती मत्स्य के ही होती है, अन्य तटवर्ती मत्स्य के नहीं। इस तरह उत्कृष्ट अवगाहना १२५०,००००० साढ़े बारह करोड़ घन योजन प्रमाण हैं।

३. मध्यम अवगाहना - जघन्य से लेकर उत्कृष्ट पर्यंत एक-एक प्रदेश की वृद्धि के क्रम से मध्यम अवगाहना के (असंख्यात) भेद हैं। अवगाहना के सम्पूर्ण विकल्प संख्यात घनांगुल प्रमाण असंख्यात होते हैं।

प्रश्न ४५ - इन्द्रिय अपेक्षा शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण क्या है ?

उत्तर - इन्द्रिय अपेक्षा उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण - (गोम्मटसार जी गाथा ९५)

[चार्ट अगले पृष्ठ पर........]

क्र.	जीव	धारक जीव	उत्कृष्ट अवगाहना (लम्बाई)
१.	एकेन्द्रिय	कमल (पद्म)	एक अधिक एक हजार योजन
२.	द्वीन्द्रिय	शंख	बारह योजन
३.	त्रीन्द्रिय	ग्रैष्मी (चींटी)	तीन कोस
४.	चतुरिन्द्रिय	भ्रमर	एक योजन
५.	पंचेन्द्रिय	महामत्स्य	एक हजार योजन

प्रश्न ४६ - इन्द्रिय अपेक्षा शरीर की जघन्य अवगाहना का प्रमाण क्या है ?

उत्तर - इन्द्रिय अपेक्षा पर्याप्तक द्विन्द्रियादिक शरीर की जघन्य अवगाहना का प्रमाण - (गो.सा.९६)

क्र.	जीव	धारक जीव	जघन्य अवगाहना
०१.	द्वीन्द्रिय	अनुंधरी	घनांगुल के संख्यातवें भाग मात्र
०२.	त्रीन्द्रिय	कुंथु	इससे संख्यात गुणी जघन्य
०३.	चतुरिंद्रिय	काणमक्षिका	इससे संख्यात गुणी जघन्य
०४.	पंचेंद्रिय	सिक्थमत्स्य	इससे संख्यात गुणी जघन्य

यह अवगाहना घन फल रूप है। ल. चौ. का प्रमाण नहीं।

प्रश्न ४७ - जीव समास का ज्ञान करने से क्या लाभ होगा ?

उत्तर - जीव समास का ज्ञान आवश्यक है क्योंकि इसके बिना मोक्षमार्ग रूप चारित्र तथा दयामयी धर्म का वास्तव में पालन नहीं किया जा सकता जो जीव पहले तो जीव समासादि जीवों के विशेष को जानकर पश्चात् हिंसादि का त्यागी बनकर व्रत करे वह व्रती है। जीव जाति जाने बिना दया कहाँ से होय। हिंसा से बचने के लिये जीवों के प्रकार जाति, उत्पत्ति, काय, इंद्रियाँ, गुणस्थान, कुल, स्थान, आयु, योनि आदि जानना जरूरी है। तभी तो दैनिक क्रियाओं में छह काय के जीवों के हिंसादि प्रमाद से बचा जा सकता है।

१. जैसे - नल के टपकते हुए पानी में कितने जीवों की हिंसा है यह जीव समास जानने से ही पता लग सकता है।

२. निगोदिया जीवों के अतिरिक्त भी अन्य एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तिर्यंच (देव, नारकी छोड़कर) सम्मूर्च्छन मनुष्य गति के जीव एक श्वास में अठारह बार जन्म-मरण करते हैं। यह जानकारी जीव समास पढ़ने से मिलती है।

३. जीवसमास का ज्ञान होने से ज्ञात होता है कि स्थावर जीवों की हिंसा से त्रस की हिंसा असंख्यात गुनी ज्यादा है।

४. त्रस जीवों के भक्षण से माँस भक्षण का दूषण लगता है क्योंकि इनके संहनन नामकर्म का उदय होता है। जबकि स्थावरों के संहनन में नामकर्म का उदय नहीं होता।

५. जिस तरह पानी की एक बूंद में असंख्यात जीव होते हैं इसी तरह पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु में भी असंख्यात जीव होते हैं।

६. जीव समास के ज्ञान बिना अनर्थ दंड के वज्र पापों से भी नहीं बचा जा सकता।

प्रश्न ४८ - जीव समास के ज्ञान से क्या शिक्षाएँ लेना चाहिए ?

उत्तर - जीव समास का ज्ञान कराने के निमित्त यह आंशिक पाठ यहाँ दिया गया है विशेष तो धवला जी ग्रंथ की टीकाओं से पढ़ना योग्य है।

गोम्मटसार, पंचसंग्रह, सम्यग्ज्ञानचंद्रिका आदि मूल ग्रंथों से इस विषय का विशेष ज्ञान करना योग्य है, जिन्हें पढ़कर हम निम्नलिखित शिक्षाएँ ग्रहण करें -

१. संसार के सभी जीव सुखी हों। सभी निरोगी हों। कल्याण करें और संसार में कभी दुखी न हों इसका प्रयत्न करना।

२. मैं सर्व जीवों से क्षमाभाव धारण करता हूँ सब जीव मुझे क्षमा करें मेरा सब जीवों से मैत्रीभाव हो बैरभाव न हो ऐसा भाव धारण करना।

३. जिनेन्द्र देव की वह शरण है जिनसे दु:खों, कर्मों का क्षय होकर समाधि मरण अैर रत्नत्रय की उपलब्धि हो सकती है ऐसी अनन्य श्रद्धा धारण करना।

४. जो गति अरिहंत सिद्धों की है वही छद्मस्थों की है। वही गति मुझे प्राप्त हो ऐसी आकांक्षा धारण करना या भावना भाना।

५. ज्ञान दर्शनमयी मेरी आत्मा शाश्वत है अन्य सभी संयोग लक्षण हैं। ऐसा विचार कर विषय कषाय से विमुखता और चैतन्य स्वरूप की उन्मुखता की भावना निरंतर करना।

६. शक्ति अनुसार योग्य तप धारण करने की प्रतिज्ञा करना। शक्ति से ज्यादा तप प्रतिज्ञा भंग का कारण बनता है जो पाप बंध का भी कारण है। अत: अपनी तप शक्ति को पहचान कर तप करना और असक्षम होने पर तप की अनुमोदना करना।

७. व्रत, तप, संयम क्रमश: व्रद्धिगत हों ऐसी जिसकी भावना हो वह जीव दया का पालन करने वाला भव्य ही अंत में समाधि पूर्वक शांत परिणाम धारण कर सकता है। [गो.जी.कां.से साभार]

....

अध्याय २

[अ]

श्री योगसार जी ग्रन्थ - आचार्य श्री योगीन्दुदेव

श्री योगसार ग्रन्थ परिचय एवं ०१ - १०८ गाथा

[पूर्ण]

[ब]

श्री सिद्ध स्वभाव जी - आचार्य श्री तारण स्वामी जी

श्री सिद्ध स्वभाव जी ग्रन्थ परिचय एवं सूत्र ०१ - २०

विवेचन [पूर्ण]

(अ) योगसार - परिचय

आचार्य योगीन्दुदेव विरचित योगसार एक परम आध्यात्मिक ग्रंथ है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की एकतारूप शुद्धात्मसाधना या शुद्धात्मयोग का सार भलीभाँति प्रकट करने वाला होने से इसका **'योगसार'** नाम सार्थक है। इसमें १०८ प्राकृत (अपभ्रंश) दोहे हैं। आचार्य योगीन्दुदेव स्वयं ही ग्रंथारम्भ में लिखते हैं कि उन्होंने संसार से भय रखने वाले तथा मोक्ष प्राप्त करने की भावना रखने वाले मुमुक्षुओं के लिए आत्मस्वरूप समझाने के प्रयोजन से इन दोहों की रचना की है ।

ग्रंथकार पर प्रकाश -

आचार्य योगीन्दुदेव, आचार्य कुन्दकुन्द की अध्यात्म परम्परा के अत्यन्त विरक्त चित्त आचार्य थे। वे अध्यात्म के अनुभवी, तलस्पर्शी वेत्ता थे। आचार्य कुन्दकुन्द की भाँति आचार्य पूज्यपाद भी उनके प्रेरणास्रोत रहे हैं। उन्होंने संस्कृत एवं प्राकृत जैसी विद्वद् ग्राह्य भाषा के स्थान पर अपभ्रंश जैसी लोकग्राह्य एवं जन प्रचलित भाषा में ग्रंथ की रचना की है। इससे स्पष्ट है कि उनकी भावना जनसामान्य को आत्मबोध कराकर आत्महित में लगाने की थी ।

नाम -

आपके योगीन्दुदेव के अतिरिक्त, जोइन्दु, जोगिचन्द, योगेन्द्र, तथा योगीन्द्रचन्द्र नामों का उल्लेख मिलता है। अपभ्रंश के जोइन्दु का समानार्थी संस्कृत का योगीन्दु है। इन्हीं का पर्यायवाची जोगिचन्द्र है, किन्तु योगीन्द्रचन्द्र तथा योगेन्द्र दोनों ही नाम न तो पर्यायवाची हैं और न ही सही प्रतीत होते हैं।

रचनाएँ -

आचार्य योगीन्दुदेव की प्रसिद्ध कृतियाँ - परमात्मप्रकाश, योगसार एवं नौकार श्रावकाचार अपभ्रंश भाषा में तथा अध्यात्मसंदोह, सुभाषिततंत्र एवं तत्त्वार्थटीका संस्कृत में प्राप्त हैं। इनके अतिरिक्त दोहापाहुड़ (अपभ्रंश), अमृताशीति (संस्कृत) तथा निजात्माष्टक (प्राकृत) ये तीनों कृतियाँ भी आचार्य योगीन्दुदेव के नाम पर प्रकाश में आई हैं, परन्तु इन तीनों के रचयिता उक्त योगीन्दु ही हैं या कोई अन्य हैं यह अभी तक सुनिर्णीत नहीं है ।

योगसार का प्रतिपाद्य -

योगसार का प्रतिपाद्य विषय परमात्मप्रकाश के समान ही है। प्रारंभ में सिद्धों तथा अर्हन्तों को नमस्कार करके, ग्रंथ रचना का उद्देश्य संसार से भयभीत मुमुक्षुओं को आत्मस्वरूप का बोध कराना बतलाया है, क्योंकि अनादिकाल से जीव मुख्यत: मिथ्यादर्शन के कारण दु:खी रहता है, अत: यदि अब चतुर्गति के दु:खों से डर लगा हो तो समस्त परभावों को छोड़कर एकमात्र निजशुद्धात्मा का चिंतवन करना ही सच्चे मोक्षसुख का उपाय है। आत्मा की अवस्थाएँ बहिरात्मा, अंतरात्मा तथा परमात्मा हैं । बहिरात्मा देहादि पर को अपने रूप मानता हुआ संसार परिभ्रमण करता है तथा अंतरात्मा स्व-पर के भेदज्ञान द्वारा उन्हें भिन्न मानकर मोक्षमार्ग में आरूढ़ होकर परमात्मा बन जाता है। आचार्य कुन्दकुन्द ने भावपाहुड़ में परमात्मा के जो नाम बताये हैं, लगभग उसी प्रकार नाम योगीन्दुदेव ने भी योगसार में बताये हैं। इसी प्रकार निश्चय की मुख्यता से

वर्णन करते हुए गाथा ४३ में वे लिखते हैं- **देवालयों (मंदिरों) तथा तीर्थों में देव नहीं हैं, वास्तव में शरीररूप देवालय में निजचैतन्य देव विराजमान हैं।**

एक स्थल पर आचार्य योगीन्दुदेव लिखते हैं कि **तत्त्व को जानने वाले विरले हैं, तत्त्व की बात को सुनने वाले भी विरले हैं, तत्त्व के यथार्थ ज्ञानी भी विरले हैं, तथा तत्त्व को धारण करने वाले तो अति विरले हैं,** अन्यत्र उन्होंने पदस्थ, पिंडस्थ, रूपस्थ, एवं रूपातीत ध्यानों का भी उल्लेख किया है। आगे संयम के भेदों में सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि तथा सूक्ष्मसाम्पराय का स्वरूप दर्शाया है। पश्चात् अंत में लिखा है कि '**अनंतकाल में जितने सिद्ध हो चुके हैं, वर्तमान में जो सिद्ध हो रहे हैं, तथा भविष्य में जितने सिद्ध होंगे, वे सभी आत्म दर्शन से ही हुए हैं, हो रहे हैं और होंगे।**' इस प्रकार योगसार ग्रंथ का मूल प्रतिपाद्य विषय आत्मदर्शन है।

- योगसार -

प्रथम मंगल स्वरूप सिद्ध परमात्मा को नमस्कार करते हैं -

णिम्मल झाण परिट्ठिया कम्म कलंक डहेवि ।
अप्पा लद्धउ जेण परु ते परमप्प णवेवि ।। १ ।।

अर्थ - जिन्होंने शुद्ध ध्यान में स्थित होते हुए कर्मों के मल को जला दिया है तथा उत्कृष्ट परमात्म पद को प्राप्त कर लिया है, उन सिद्ध परमात्माओं को नमस्कार करता हूँ।

प्रश्न - योगसार किसे कहते हैं ?

उत्तर - प्रत्येक आत्मा स्वभाव से शुद्ध चिदानंद मूर्ति सिद्ध परमात्मा के समान है। उसके श्रद्धान, ज्ञान, चारित्र के द्वारा सार अर्थात् सिद्ध दशा प्राप्त करने को योगसार कहते हैं।

प्रश्न - सिद्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिन्होंने शुद्ध ध्यान में स्थित होकर कर्म मल को जला दिया है तथा उत्कृष्ट परमात्म पद को प्राप्त कर लिया है उन्हें सिद्ध कहते हैं।

अरिहंत भगवान को नमस्कार -

घाइ चउक्कहँ किउ विलउ णंत चउक्क पदिट्ठु ।
तहिं जिणइंदहँ पय णविवि अक्खमि कब्बु सु इट्ठु ।। २ ।।

अर्थ - जिन्होंने चार घातिया कर्मों का क्षय किया है तथा अनन्त चतुष्टय का लाभ प्राप्त कर लिया है उन जिनेन्द्र के पदों को नमस्कार करके सुन्दर प्रिय काव्य को कहता हूँ।

प्रश्न - अरिहंत भगवान को नमस्कार करने का प्रयोजन क्या है ?

उत्तर - अनादिकाल से आत्मा के साथ आठ कर्मों का संयोग है, अरिहंत भगवान ने चार घातिया कर्मों का नाश कर अनंत चतुष्टय प्रकट किये हैं। आचार्य कहते हैं कि हे प्रभो! अनादिकाल से आत्मा में ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य जो शक्ति रूप में हैं उन्हें आपने पर्याय में व्यक्त किया। आप पूर्ण परमात्मा हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ, ऐसा विकल्प उठा वह व्यवहार नमस्कार और स्वरूप में एकाग्रता हुई यह निश्चय नमस्कार है। मैं भी अपने आत्म स्वरूप में स्थित रहते हुए कर्मों का नाश कर परम पद को प्राप्त करूँ यही

अरिहंत भगवान को नमस्कार करने का प्रयोजन है।

ग्रन्थ को कहने का निमित्त व प्रयोजन -

संसारहँ भय भीयहँ मोक्खहँ लालसियाहँ ।
अप्पा संबोहण कयइ कय दोहा एक्कमणाहँ ।। ३ ।।

अर्थ - संसार का भय रखने वालों के लिये व मोक्ष की लालसा धारण करने वालों के लिये आत्मा का स्वरूप समझाने के प्रयोजन से एकाग्र मन से दोहों की रचना की है।

प्रश्न - योगसार ग्रन्थ की रचना किन भव्य जीवों के निमित्त से हुई ?

उत्तर - जो जीव संसार से भयभीत हैं अर्थात् जिन्हें चार गति का भय लगा है, स्वर्ग, नरक, तिर्यंच और मनुष्य गति आदि के समस्त दुःखों से जो संत्रस्त हैं, ये दुःख अब मुझे नहीं चाहिये, चार गति में जन्म-मरण करना, संयोगों का मिलना दुखरूप है, मुझे इस संसार से मुक्त होना है ऐसी भावना पूर्वक मोक्ष की जिन्हें अभिलाषा है, उन भव्य जीवों के निमित्त से इस ग्रन्थ की रचना हुई है।

संसार का कारण - मिथ्यादर्शन -

काल अणाइ अणाइ जिउ भव सायरु जि अणंतु ।
मिच्छा दंसण मोहियउ णवि सुह दुक्ख जि पत्तु ।। ४ ।।

अर्थ - काल अनादि है, संसारी जीव अनादि है। संसार सागर भी अनादि अनंत है । मिथ्यादर्शन के कारण मोही होता हुआ जीव सुख नहीं पाता, दुःख ही पाता है।

श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी ने श्री श्रावकाचार जी ग्रन्थ में कहा है कि -

अनादि भ्रमते जीवा, संसार सरन संगते ।
मिथ्या त्रिति संपूर्नं, संमिक्तं सुद्ध लोपनं ।। १८ ।।

अर्थ - जीव संसार का आश्रय लेकर संसार की संगति करता है, शुद्ध सम्यक्त्व का लोप करके तीन प्रकार के मिथ्यात्व [मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्व] से पूर्ण हो रहा है इसलिये अनादिकाल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है।

प्रश्न - संसार का कारण क्या है ?

उत्तर - संसार का कारण मिथ्यादर्शन है, जीव अपने आत्म स्वरूप को भूलकर संसार में परिभ्रमण कर रहा है। जिसे स्वयं आनन्दकंद अतीन्द्रिय महापदार्थ परम तत्त्व की खबर नहीं है और कर्मजन्य उपाधि के लक्ष्य से उसमें ही अपना अस्तित्व स्वीकार कर, बहिर्मुख दृष्टि में जो इन्द्रियाँ, अल्पज्ञता, राग-द्वेष आदि का अस्तित्व दिखता है, उसे अपना मानता है यही मिथ्या श्रद्धान संसार का कारण है।

मोक्ष सुख का कारण : आत्म ध्यान -

जइ वीहउ चउ गइ गमणु तो पर भाव चएवि ।
अप्पा झायहि णिम्मलउ जिम सिव सुक्ख लहेवि ।। ५ ।।

अर्थ - यदि चारों गतियों के भ्रमण से भयभीत है तो परभावों को छोड़ दे। निर्मल आत्मा का ध्यान कर जिससे मोक्ष के सुख को तू पा सके।

प्रश्न – मोक्ष का उपाय क्या है ?

उत्तर – मोक्ष का उपाय शुद्धात्मा का ध्यान है। आत्मा अनादि अनंत सच्चिदानंदमयी केवलज्ञान से परिपूर्ण तत्त्व है। जिसमें अनंत निर्मल गुण भरे हुए हैं, उसका ध्यान करना। आत्मा वस्तु है, ध्यान पर्याय है। अपनी शुद्ध सत्ता का ध्यान करना यही मोक्षमार्ग अर्थात् मोक्ष का उपाय है।

आत्मा के तीन भेद –

ति पयारो अप्पा मुणहि परु अंतरु बहिरप्पु ।
पर झायहि अंतर सहिउ बाहिरु चयहि णिभंतु ।। ६ ।।

अर्थ – आत्मा के तीन प्रकार जानो। परमात्मा, अन्तरात्मा, बहिरात्मा। भ्रांति या शंका रहित होकर बहिरात्मापना छोड़ दे, अन्तरात्मा होकर परमात्मा का ध्यान कर।

श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी ने श्री श्रावकाचार जी ग्रन्थ में कहा है कि –

आत्मा त्रिविधि प्रोक्तं च, परु अंतरु बहिरप्पयं ।
परिणामं जं च तिस्टंते, तस्यास्ति गुन संजुतं ।। ४७ ।।

अर्थ – आत्मा को तीन प्रकार से कहा गया है – परमात्मा, अंतरात्मा और बहिरात्मा। जो जीव जिस प्रकार के परिणाम में स्थित रहता है वह उन्हीं गुणों से संयुक्त रहता है।

श्री न्यानसमुच्चयसार जी ग्रन्थ में कहा है –

आत्मा त्रिविधि प्रोक्तं च, परु अंतर बहिरप्पयं ।
आत्मा सुद्धात्मानं, परमात्मा परमं पदं ।। १७३ ।।

अर्थ – परमात्मा, अंतरात्मा और बहिरात्मा इस प्रकार आत्मा को तीन प्रकार से कहा गया है। निश्चय से आत्मा शुद्धात्मा परमात्मा परम पद का धारी है।

प्रश्न – आत्मा कितने प्रकार का होता है ?

उत्तर – द्रव्य अपेक्षा तो आत्मा त्रिकाल एक ही है। पर्याय अपेक्षा आत्मा तीन प्रकार का कहा गया है। पर्याय में भूल बहिरात्मा का लक्षण है, भूल का टलना अंतरात्मा का लक्षण है और पूर्ण निर्मलता की प्राप्ति परमात्मा का लक्षण है। ये सब पर्याय में है।

बहिरात्मा का स्वरूप –

मिच्छा दंसण मोहियउ परु अप्पा ण मुणेइ ।
सो बहिरप्पा जिण भणिउ पुण संसारु भमेइ ।। ७ ।।

अर्थ – मिथ्यादर्शन से मोहित जीव परमात्मा को नहीं जानता है। यही बहिरात्मा है। वह बारंबार संसार में भ्रमण करता है, ऐसा श्री जिनेन्द्र ने कहा है।

आचार्य श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज ने श्री श्रावकाचार जी ग्रन्थ में कहा है –

बहिरप्पा पुद्गलं दिस्टा, रचनं अनन्त भावना ।
परपंचं जेन तिस्टंते, बहिरप्पा संसार स्थितं ।। ५० ।।

अर्थ – बहिरात्मा पुद्गल आदि पर पदार्थों को करने की अनन्त भावना भाता है, जो पर के कर्तृत्व आदि विकल्पों सहित नाना प्रकार के प्रपंच करता है ऐसा बहिरात्मा जीव संसार में जन्म-मरण करता है।

प्रश्न - बहिरात्मा का स्वरूप क्या है ?

उत्तर - मिथ्यादर्शन से मोहित हुआ जीव राग को, पुण्य-पाप को, उनके फल को अपना स्वरूप मानता है। पाप के फल में, मैं दु:खी हूँ। ज्ञान के क्षयोपशम का थोड़ा विकास हुआ कि अपने को पंडित मानने लगता है। कर्म के उदय से प्राप्त बाह्य-अभ्यंतर सामग्री में मिथ्या श्रद्धा के कारण अहंपना करता है, ये मैं हूँ, ये मेरे हैं, ऐसा मानता हुआ मिथ्यात्व से मोहित जीव परमात्मा को नहीं जानता। जैसे शराब पीने से जितनी भी चेष्टायें होतीं हैं, उन्हें शराबी अपनी मानता है। उसी प्रकार कर्म के संयोग से जितनी भी चेष्टायें होतीं हैं, उन सबको मिथ्यात्व रूपी शराब के कारण अपनी मानता है। आत्मा ज्ञान-आनन्द का धाम है, ऐसी महान सत्ता को स्वीकार नहीं करके अल्प अवस्था और बाह्य चीजों को अपनी मानता है उसे बहिरात्मा कहते हैं।

अन्तरात्मा का स्वरूप -

जो परियाणइ अप्प परु जो परभाव चएइ ।
सो पंडिउ अप्पा मुणहु सो संसारु मुएइ ।। ८ ।।

अर्थ - जो कोई आत्मा और पर को अर्थात् आपसे भिन्न पदार्थों को भले प्रकार पहचानता है तथा जो आत्मा के स्वभाव को छोड़कर अन्य सब भावों को त्याग देता है। वही पंडित भेदविज्ञानी अन्तरात्मा है। वह अपने आपका अनुभव करता है, और संसार सागर से छूट जाता है।

आचार्य श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज ने श्री श्रावकाचार जी ग्रन्थ में कहा है -

विन्यानं जेवि जानंते, अप्पा पर परषये ।
परचिये अप्प सद्भावं, अंतर आत्मा परषये ।। ४९ ।।

अर्थ - जो जीव भेदविज्ञान पूर्वक आत्मा और पर को जानते हैं, जिनके परिचय में अर्थात् अनुभव में आत्म स्वभाव है उन्हें अंतरात्मा जानो।

प्रश्न - अंतरात्मा किसे कहते हैं और उसकी भावना कैसी होती है ?

उत्तर - सम्यग्दृष्टि को अंतरात्मा कहते हैं। मिथ्यादृष्टि अज्ञानी पहले गुणस्थान से चढ़कर जब चौथे वा एकदम पाँचवें या सातवें गुणस्थान पर आता है, तब सम्यग्दृष्टि अंतरात्मा हो जाता है। पंच लब्धियों की प्राप्ति कर मिथ्यात्व को लांघकर सम्यक्त्व की भूमि पर आता है। अंतरात्मा पंडित को कहते हैं क्योंकि उसको भेदविज्ञान की बुद्धि प्राप्त हो जाती है। उसको अपने आत्म स्वरूप के अनुभव करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। वह नि:शंक होकर तत्त्वज्ञान का मनन करता है। चारित्र मोहनीय के उदय से गृहस्थ योग्य कार्यों को भले प्रकार करता है तो भी उनमें लिप्त नहीं होता। भीतर से ज्ञाता दृष्टा रहता है, उसे अंतरात्मा कहते हैं। उसकी यही भावना रहती है कि कब कर्म का उदय हटे और मैं वीतराग भाव में रमण करूँ। यह अंतरात्मा प्रशम, संवेग, अनुकंपा, आस्तिक्य लक्षणों से युक्त होता है।

परमात्मा का स्वरूप -

णिम्मलु णिक्कलु सुद्धु जिणु विण्हु बुद्धु सिव संतु ।
सो परमप्पा जिण भणिउ एहउ जाणि णिभंतु ।। ९ ।।

अर्थ - जो कर्ममल व रागादि मल रहित है जो निकल अर्थात् शरीर रहित है जो शुद्ध व अभेद एक

है, जिसने आत्मा के सर्व शत्रुओं को जीत लिया है, जो विष्णु है अर्थात् ज्ञान की अपेक्षा सर्व लोकालोक व्यापी है, सर्व का ज्ञाता है, जो बुद्ध है अर्थात् स्व-पर तत्त्व को समझने वाला है, जो शिव है, परम कल्याणकारी है, जो परम शांत व वीतरागी है, वही परमात्मा है ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है, इस बात को शंका रहित जान।

आचार्य श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज ने श्री श्रावकाचार जी ग्रन्थ में कहा है -

आत्मा परमात्म तुल्यं च, विकल्पं चित्त न क्रीयते ।
सुद्ध भाव स्थिरी भूतं, आत्मनं परमात्मनं ।। ४८ ।।

अर्थ - आत्मा परमात्मा के समान है, जब अपने चित्त में कोई भी विकल्प नहीं करके शुद्ध भाव में स्थिर हुआ आत्मा ही परमात्मा है।

प्रश्न - परमात्मा का स्वरूप क्या है ?

उत्तर - मोह, राग-द्वेष के भावरहित परमात्मा होते हैं। सर्वज्ञ भगवान एक समय में तीन काल और तीन लोक के पदार्थों को जानते हैं। अरिहंत भगवान चार घातिया कर्मों से और सिद्ध भगवान अष्ट कर्मों से रहित होते हैं उन्हें परमात्मा कहते हैं।

बहिरात्मा पर को आप मानता है -

देहादिउ जे पर कहिया ते अप्पाणु मुणेइ ।
सो बहिरप्पा जिणभणिउ पुणु संसार भमेइ ।। १० ।।

अर्थ - शरीरादि जिनको आत्मा से भिन्न कहा गया है, उन रूप ही अपने को मानता है वह बहिरात्मा है। ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है कि वह बारंबार संसार में भ्रमण करता रहता है।

प्रश्न - संसार परिभ्रमण का कारण क्या है ?

उत्तर - अज्ञानी जीव अनादि से आत्मा का यथार्थ स्वरूप नहीं जानता और विकृत भाव को, पर को अपना मानता आ रहा है, इसलिए बारम्बार संसार में भ्रमण कर रहा है।

ज्ञानी पर को आत्मा नहीं मानता है -

देहादिउ जे पर कहिया ते अप्पाणु ण होहिं ।
इउ जाणेविणु जीव तुहुँ अप्पा अप्प मुणेहिं ।। ११ ।।

अर्थ - शरीर आदि अपने आत्मा से भिन्न कहे गये हैं, वे पदार्थ आत्मा नहीं हो सकते व उन रूप आत्मा नहीं हो सकता अर्थात् आत्मा के नहीं हो सकते, ऐसा समझ कर हे जीव ! तू आत्मा को पहचान, यथार्थ आत्मा का बोध कर।

आत्मा और शरीर त्रिकाल भिन्न हैं, भेदज्ञान पूर्वक दोनों की भिन्नता का बोध रूप पुरुषार्थ ही जीवन में कल्याणकारी है।

प्रश्न - पुरुषार्थ क्या है ?

उत्तर - प्रथम सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा का आश्रय लेकर पर्याय में सर्वज्ञपने का निर्णय करना। सर्वज्ञ स्वभावी आत्मस्वरूप का निर्णय होते ही क्रमबद्ध पर्याय का निर्णय हो जायेगा और वीतराग पर्याय भी प्रकट हो जावेगी इसका नाम पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ का अर्थ सांसारिक कार्य करना नहीं है। अन्तर की दशा जो पर

कर्तृत्व रूप थी, वह अकर्तृत्व रूप, ज्ञाता रूप हो गई यही पुरुषार्थ है।

आत्मज्ञानी ही निर्वाण पाता है -

अप्पा अप्पउ जइ मुणहि तउ णिव्वाणु लहेहि ।
पर अप्पा जइ मुणहि तुहुँ तहु संसार भमेहि ।। १२ ।।

अर्थ - यदि आत्मा को आत्मा समझेगा तो निर्वाण को प्राप्त करेगा। यदि पर पदार्थों को आत्मा मानेगा, तो तू संसार में भ्रमण करेगा। आत्मा ज्ञान आनन्द का पिंड, ज्ञाता दृष्टा है, यही मेरा स्वरूप है, ऐसा मैं आत्मा हूँ, ऐसा आत्मा को समझेगा तो मुक्ति पावेगा।

प्रश्न - निर्वाण को कौन प्राप्त करता है ?

उत्तर - निर्वाण को आत्मज्ञानी ही प्राप्त करता है। आत्मा, ज्ञान आनंद आदि अनंत गुणों का पिंड ज्ञाता दृष्टा है, यही मेरा स्वरूप है। ऐसा ही मैं आत्मा हूँ। जिसने आत्मा को जाना, उसमें दृष्टि लगाकर एकाकार हुआ वही पूर्णानंद पद निर्वाण को प्राप्त करता है।

इच्छा रहित तप ही निर्वाण का कारण है -

इच्छा रहियउ तव करहि अप्पा अप्पु मुणेहि ।
तउ लहु पावइ परम गइ पुण संसारु ण एहि ।। १३ ।।

अर्थ - हे आत्मन्! यदि तू इच्छा रहित होकर तप करे व आत्मा का अनुभव करे तो तू शीघ्र ही परम गति को पावे फिर कभी संसार में नहीं आवे।

प्रश्न - निर्वाण की प्राप्ति का उपाय क्या है ?

उत्तर - आत्मा स्वभाव से इच्छा रहित ज्ञानानंद स्वरूपी, अनन्त आनन्द की मूर्ति है। उसमें इच्छा है ही नहीं इसलिए इच्छा का लक्ष्य छोड़कर ज्ञान, दर्शन आनन्दमयी आत्मा के श्रद्धान, ज्ञान और लीनता से शुद्धोपयोग पूर्वक संवर निर्जरा होती है। इच्छा रहित तप निर्वाण का कारण है। अपने पवित्र शुद्ध आनन्दमयी स्वरूप को जानकर शुभाशुभ भाव अर्थात् इच्छाओं को रोककर स्वरूप में तपना, लीन होना ही तप है ऐसे तप से निर्वाण की प्राप्ति होती है।

परिणामों से ही बंध व मोक्ष होता है -

परिणामे बंधु जि कहिउ मोक्ख वि तह जि वियाणि ।
इउ जाणेविणु जीव तुहुँ तहभाव हु परियाणि ।। १४ ।।

अर्थ - परिणामों से ही कर्म का बंध कहा गया है वैसे ही परिणामों से ही मोक्ष को जान हे आत्मन्! ऐसा समझकर तू उन भावों की पहिचान कर।

आचार्य श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज श्री ज्ञानसमुच्चयसार जी ग्रन्थ में कहते हैं-

प्रथमं भाव सुद्धं च, असुद्धं तिक्त पराङ्मुषं ।
परिनाम बंध मुक्तं च, उपभोगं तिक्त मनः स्रुतं ।। ९६ ।।

अर्थ - सर्वप्रथम शुद्ध भाव होना चाहिये, अशुद्ध भावों को त्यागकर उनसे मुख मोड़ लेना चाहिये अर्थात् दृष्टि हटा लेना चाहिये क्योंकि जीव के परिणामों से ही कर्मों का बंध होता है और परिणामों से ही

मुक्ति होती है इसलिये अशुद्ध भावों में रस लेनेरूप उपभोग का त्याग करके मन को श्रुत के चिंतन में लगाना चाहिये, निरंतर वस्तु स्वरूप का चिंतन करना यही साधक का विवेक है।

प्रश्न – बंध और मोक्ष का कारण क्या है ?

उत्तर – अपने अशुद्ध परिणाम, मिथ्यात्व के परिणाम, शुभाशुभ भाव, अव्रत के भाव, प्रमाद, कषाय के परिणाम यह सब कर्म बंध के कारण हैं। जबकि अपने शुद्ध स्वभाव की सन्मुखता रूप निश्चय रत्नत्रय के परिणाम मोक्ष के कारण हैं। इस प्रकार जीव के परिणाम ही बंध और मोक्ष के कारण हैं।

पुण्य कर्म मोक्ष सुख नहीं दे सकता –

अह पुणु अप्पा णवि मुणहि पुण्णु वि करहि असेस ।
तो वि ण पावहि सिद्धि सुहु पुणु संसारु भमेस ।। १५ ।।

अर्थ – यदि तू आत्मा को नहीं जानेगा सर्व कर्म को ही करता रहेगा, तो भी तू सिद्ध सुख को नहीं पावेगा पुनः पुनः संसार में ही भ्रमण करेगा।

प्रश्न – धर्म और अधर्म का आधार किस पर है ?

उत्तर – एक ओर संयोग और दूसरी ओर स्वभाव, दोनों एक ही समय में हैं, विचारणीय यह है कि दृष्टि किस पर है ? संयोग पर या स्वभाव पर ? यही धर्म–अधर्म का आधार है। संयोग पर दृष्टि है तो अधर्म होता है और स्वभाव पर दृष्टि है तो धर्म होता है। पुण्य, कर्म है वह मोक्ष का कारण नहीं है।

आत्मदर्शन ही मोक्ष का कारण है –

अप्पा दंसणु एक्कु परु अण्णु ण किं पि वियाणि ।
मोक्खहँ कारण जोइया णिच्छइँ एहउ जाणि ।। १६ ।।

अर्थ – हे योगी ! एक आत्मा का दर्शन ही मोक्ष का मार्ग है, अन्य अपने से भिन्न कुछ भी मोक्षमार्ग नहीं है निश्चय नय से तू ऐसा समझ।

प्रश्न – क्या आत्म दर्शन से मोक्ष सुख मिल सकता है ?

उत्तर – आत्मा अनंत गुण सम्पन्न प्रभु है, उसे सर्वज्ञ देव के कथन द्वारा बताई हुई रीति से पहले जानो। आत्मा मन, वचन और काय से भिन्न है। पुण्य–पाप के राग से तथा गुण–गुणी के भेद से भी रहित है। ऐसे आत्मा के दर्शन से ही मोक्ष सुख मिलता है।

मार्गणा व गुणस्थान आत्मा नहीं है –

मग्गण गुण ठाणइ कहिया विवहारेण वि दिट्ठि ।
णिच्छइणइ अप्पा मुणहि जिम पावहु परमेट्ठि ।। १७ ।।

अर्थ – केवल व्यवहार नय की दृष्टि से ही जीव को मार्गणा व गुणस्थान कहा है। निश्चय नय से अपने आत्मा को आत्मरूप ही समझ, जिससे तू सिद्ध परमेष्ठी के पद को पा सके।

प्रश्न – क्या मार्गणा गुणस्थान में आत्मा है ?

उत्तर – जिनेन्द्र भगवान ने गुणस्थान और मार्गणाएँ कही हैं। यह जीव किस गति में है ? किस लेश्या में है ? भव्य है या अभव्य ? किस ज्ञान में है ? इत्यादि भेद व्यवहार नय के विषय होने से जानने योग्य तो हैं किन्तु मार्गणा गुणस्थान में आत्मा नहीं है, आत्मा अपने असंख्यात प्रदेशों में है।

प्रश्न – आश्रय करने योग्य क्या है ?

उत्तर – गुणस्थान, मार्गणास्थान वर्तमान पर्याय में अस्ति रूप हैं, परन्तु यह व्यवहार नय का विषय है, निश्चय नय से अर्थात् त्रिकाल अभेद दृष्टि की अपेक्षा यह सर्व भेद अभूतार्थ, असत्यार्थ कहने में आते हैं। मैं भव्य हूँ, मति-श्रुतज्ञान, क्षायिक सम्यक्त्व, पाँच इन्द्रिय वाला हूँ, यह पर्याय अपेक्षा से सत्य हैं, परन्तु यह भेद स्वभाव में नहीं हैं इसलिए आश्रय करने योग्य नहीं, आश्रय करने योग्य तो त्रिकाल अभेद स्वभाव ही है।

गृहस्थ भी निर्वाण पथ पर चल सकता है –

गिहि वावार परिट्ठिया हेयाहेउ मुणंति ।
अणुदिणु झायहिं देउ जिणु लहु णिव्वाणु लहंति ।। १८ ।।

अर्थ – जो गृहस्थ व्यापार में लगे हुए हैं तथा हेय-उपादेय (त्यागने योग्य व ग्रहण करने योग्य) को जानते हैं, तथा रात-दिन जिनदेव का ध्यान करते हैं वे शीघ्र निर्वाण को पाते हैं।

प्रश्न – गृहस्थ अवस्था में रहते हुए क्या निर्वाण का पथ प्रारम्भ हो सकता है ?

उत्तर – आचार्य श्री योगीन्दुदेव कहते हैं कि गृहस्थ दशा में भी आत्मानुभव हो सकता है। घर में रहते हुए जो गृहस्थ श्रावक मोक्षमार्ग पर चलते हैं, वही मुनिराज होकर उग्र पुरुषार्थ पूर्वक मोक्ष का उत्कृष्ट साधन करते हैं, गृहस्थ सम्यग्दृष्टि अपने योग्य साधन करते हैं, उनका पुरुषार्थ मंद होता है। उनको भी प्रति क्षण राग का हेयपना ज्ञान में वर्तता है।

आत्मा स्वयं निर्वाण स्वरूप है, मोक्ष स्वरूप है, उसका साधन आत्मा है। एक समय का विकार है वह हेय है, उसे छोड़कर अनंत गुणों का अखंड पिंड पूर्णानंद प्रभु उपादेय है। जो गृहस्थ परिपूर्ण परमात्म स्वरूप को उपादेय मानता है उसका निर्वाण पथ गृहस्थ अवस्था में ही प्रारम्भ हो जाता है।

जिनेन्द्र देव का स्मरण परमपद का कारण है –

जिण सुमिरहु जिण चिंतवहु जिण झायहु सुमणेण ।
सो झायंतह परम पउ लब्भइ एक्क खणेण ।। १९ ।।

अर्थ – शुद्ध भाव से जिन का स्मरण, जिन का चिंतवन और जिन का ध्यान करो, ऐसा ध्यान करने से एक क्षण में परम पद प्राप्त हो जाता है।

प्रश्न – परम पद का कारण क्या है ?

उत्तर – आत्म स्वभाव और भगवान के स्वभाव में अंतर नहीं है। केवलज्ञानी परमेश्वर ने जैसा आत्मा देखा है वैसा ही आत्मा जिसके श्रद्धान, ज्ञान में बैठा है वह धर्मी जीव बारम्बार निज परमात्म स्वरूप का स्मरण करता है।

आत्मा साक्षात् स्वभाव से जिनेन्द्र प्रभु है, उसकी दशा में जिनेन्द्रपना प्रकट करने के लिये अपने ही अपने परमात्म स्वरूप में एकाग्र होकर ध्यान करना ही परम पद की प्राप्ति का कारण है।

अपनी आत्मा में और जिनेन्द्र में कोई भेद नहीं –

सुद्धप्पा अरु जिणवरहँ भेउ म किं पि वियाणि ।
मोक्खहँ कारण जोइया णिच्छइ एउ विजाणि ।। २० ।।

अर्थ – हे योगी! अपने शुद्धात्मा और जिनेन्द्र में कोई भेद मत समझो। मोक्ष का साधन निश्चय नय

से यही मानो।

प्रश्न – मोक्ष का साधन क्या है ?

उत्तर – वीतराग परमात्मा का जैसा स्वभाव है, वैसा ही मेरा स्वभाव है, ऐसी प्रतीति करके उसमें स्थिर होना पुरुषार्थ है। ध्यान द्वारा आत्मा में एकाग्र होना, परमात्मा और आत्मा को अभेद जानना।

परमात्मा पूर्ण वीतरागी पर्याय सहित हैं और मैं भी पूर्ण वीतरागी पर्याय प्रकट करने की सामर्थ्य वाला आत्मा हूँ। वीतराग परमात्मा और अपने स्वभाव में अंतर नहीं है ऐसी मान्यता मोक्ष का साधन है।

आत्मा ही जिन है यही सिद्धान्त का सार है –

जो जिणु सो अप्पा मुणहु इहु सिद्धंतहँ सारु।
इउ जाणेविण जोइयहु छंडहु मायाचारु।। २१ ।।

अर्थ – जो जिनेन्द्र हैं वही यह आत्मा है ऐसा मनन करो। यह सिद्धान्त का सार है। ऐसा जानकर हे योगीजन! मायाचार छोड़ो।

प्रश्न – सिद्धांत का सार क्या है ?

उत्तर – भगवान की वाणी चार अनुयोग रूप है, उसमें वस्तु स्वरूप का निरूपण इस प्रकार आया है कि जो जिनेन्द्र है वही आत्मा है, ऐसा मनन करो। वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकीनाथ समवशरण में सौ इन्द्रों की तथा लाखों करोड़ों देवों की उपस्थिति में ऐसा दिव्य संदेश देते हैं कि तू परमात्मा है, ऐसा निश्चय कर। निश्चय का निर्णय हुए बिना व्यवहार का सच्चा निर्णय नहीं होगा। द्रव्य स्वभाव से मैं स्वयं परमात्मा हूँ ऐसा जहाँ विश्वास आया कि पूर्ण वीतरागता प्रकट होती है यही सिद्धांत का सार है।

मैं ही परमात्मा हूँ –

जो परमप्पा सो जि हउँ जो हउँ सो परमप्पु ।
इउ जाणेविणु जोइया अण्णु म करहु वियप्पु ।। २२ ।।

अर्थ – हे योगी! जो परमात्मा है वही मैं हूँ तथा जो मैं हूँ सो ही परमात्मा है, ऐसा जानकर और कुछ भी विकल्प मत कर।

प्रश्न – भगवान का उपदेश क्या है ?

उत्तर – भगवान कहते हैं कि तू परमात्मा है। यदि स्वभाव से परमात्मा न होता तो पर्याय में कैसे प्रकट होता ? अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत वीर्य, अनंत प्रभुता आदि अनंत गुणों से भरपूर पूर्णानंद का नाथ महान परमात्म स्वरूप आत्मा स्वयं है। उसे देख, उसे जान, उसी को स्वीकार कर यही भगवान का उपदेश है।

आत्मा असंख्यात प्रदेशी लोक प्रमाण है –

सुद्ध पएसहँ पूरियउ लोयायास पमाणु ।
सो अप्पा अणुदिण मुणहु पावहु लहु णिव्वाणु ।। २३ ।।

अर्थ – जो लोकाकाश प्रमाण असंख्यात शुद्ध प्रदेशों से पूर्ण है यही अपना आत्मा है। रात-दिन ऐसा ही मनन करो व निर्वाण शीघ्र प्राप्त करो।

प्रश्न - आत्मा कहाँ रहता है ?

उत्तर - आत्मा इस जड़ माटी के पिंडमय देह में, देह, राग-द्वेषादि परिणाम, कर्म के रजकणादि से भिन्न अपने असंख्यात प्रदेशी क्षेत्र में रह रहा है। असंख्यात प्रदेशी क्षेत्र में अनन्त गुणों से भरा परिपूर्ण प्रभु विराज रहा है। निश्चय से तो आत्मा, आत्मा में ही रहता है। असंख्यात प्रदेशी क्षेत्र यह आत्मा का स्व क्षेत्र है। एक-एक प्रदेश ज्ञान तथा निर्मलानंद से भरा हुआ है, जिसमें केवलज्ञान अनंत आनंदरूप सिद्ध पर्यायें उत्पन्न हों ऐसा आत्मा का शुद्ध क्षेत्र है।

व्यवहार से आत्मा शरीर प्रमाण है -

णिच्छइ लोय पमाणु मुणि ववहारइ सुसरीरु ।
एहउ अप्प सहाउ मुणि लहु पावहि भवतीरु ।। २४ ।।

अर्थ - निश्चय से आत्मा को लोक प्रमाण और व्यवहार नय से शरीर के प्रमाण जानो, ऐसे अपने आत्मा के स्वभाव का मनन करते हुए यह जीव संसार के तट को शीघ्र ही पा लेता है।

आचार्य श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज ने श्री मालारोहण जी ग्रन्थ में कहा है -

काया प्रमानं त्वं ब्रह्म रूपं, निरंजनं चेतन लष्यनेत्वं ।
भावे अनेत्वं जे न्यान रूपं, ते सुद्ध दिस्टी संमिक्त वीर्जं ।। ३ ।।

अर्थ - हे आत्मन्! तुम शरीर के बराबर, ब्रह्म स्वरूपी, कर्म मलों से रहित, चैतन्य लक्षणमयी हो, जो जीव अनित्य, क्षणभंगुर, नाशवान भाव में, अशुद्ध पर्यायी परिणमन में ज्ञान रूप ज्ञायक रहते हैं वे सम्यक्दृष्टि सच्चे पुरुषार्थी हैं।

प्रश्न - व्यवहार से आत्मा शरीर प्रमाण कैसे है ?

उत्तर - आत्मा में संकोच विस्तार की शक्ति है जो नाम कर्म के उदय निमित्त से कार्य करती है। यह आत्मा नाम कर्म के उदय से प्राप्त शरीर प्रमाण रहता है। लोक में सबसे छोटा शरीर लब्ध्यपर्याप्तक सूक्ष्म निगोदिया जीव का होता है, जो घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। तथा सबसे बड़ा शरीर अंतिम स्वयंभूरमण समुद्र में रहने वाले महामत्स्य का होता है। एक सूक्ष्म निगोद शरीर धारी जीव संसार में भ्रमण करते हुए कभी महामत्स्य तथा महामत्स्य भ्रमण करते हुए निगोदिया होता है। शरीर की अवगाहना प्रमाण आत्मा के प्रदेश होने पर भी आत्मा के असंख्यात प्रदेश कम नहीं होते। इस तरह निश्चय नय से आत्मा असंख्यात प्रदेशी और व्यवहार नय से शरीर प्रमाण होता है।

सम्यक्त्व के बिना ८४ लाख योनियों में भ्रमण -

चउरासी लक्खहिँ फिरिउ कालु अणाइ अणंतु ।
पर सम्मत्तु ण लद्धु जिय एहउ जाणि णिभंतु ।। २५ ।।

अर्थ - अनादिकाल से यह जीव चौरासी लाख योनियों में फिरता आ रहा है तथा अनंत काल तक सम्यक्त्व बिना फिर सकता है परन्तु अब तक इसने सम्यग्दर्शन को नहीं पाया। हे जीव! निःसंदेह इस बात को जान।

प्रश्न - चौरासी लाख योनियों का भ्रमण कैसे मिटता है ?

उत्तर - मिथ्यात्व के कारण यह जीव चार गति चौरासी लाख योनियों में भटक रहा है। आत्म

स्वभाव का आश्रय करने से जो सम्यक्त्व प्रकट होता है उसी से चौरासी लाख योनियों का भ्रमण मिटता है।

शुद्ध आत्मा का मनन ही मोक्षमार्ग है -

सुद्धु सचेयणु बुद्धु जिणु केवल णाण सहाउ ।
सो अप्पा अणुदिणु मुणहु जइ चाहहु सिव लाहु ।। २६ ।।

अर्थ - यदि मोक्ष का लाभ चाहते हो तो रात दिन उस आत्मा का मनन करो जो शुद्ध वीतराग निरंजन कर्म रहित, ज्ञान चेतनामय, स्वयं बुद्ध है जो संसार विजयी जिनेन्द्र है व जो पूर्ण निरावरण केवलज्ञान का धारी है।

प्रश्न - मोक्षार्थी का कर्तव्य क्या है ?

उत्तर - वीतराग शुद्ध चैतन्यमूर्ति आत्मा का ध्यान और अनुभव करना मोक्षार्थी का कर्तव्य है।

निर्मल आत्मा की भावना करके ही मोक्ष होगा -

जाम ण भावहि जीव तुहुँ णिम्मल अप्प सहाउ ।
ताम ण लब्भइ सिव गमणु जहिँ भावइ तहिँ जाउ ।। २७ ।।

अर्थ - हे जीव! जब तक तू निर्मल आत्मा के स्वभाव की भावना नहीं करता तब तक तू मोक्ष नहीं पा सकता, जहाँ चाहे वहाँ तू जा।

प्रश्न - मुक्ति का उपाय क्या है ?

उत्तर - निर्मल आत्मा की भावना भाने से मोक्ष होता है। आत्मा के अनुभवरूप दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता ही मोक्षमार्ग है। स्वभाव में एकाग्रता कर आत्मा का निर्विकल्प ध्यान करना मुक्ति का उपाय है।

त्रिलोक पूज्य जिन आत्मा ही है -

जो तइलोयहँ झेउ जिणु सो अप्पा णिरु बुत्तु ।
णिच्छय णइ एमइ भणिउ एहउ जाणि णिभंतु ।। २८ ।।

अर्थ - जो तीन लोक के प्राणियों द्वारा ध्यान करने योग्य जिन हैं वह यह आत्मा ही है, निश्चय नय से ऐसा ही कहा गया है, इस बात को संदेह रहित जान।

प्रश्न - इस लोक में सर्वोत्कृष्ट पदार्थ क्या है ?

उत्तर - तीन लोक के प्राणियों को ध्यान करने योग्य,भक्ति करने योग्य यदि कोई है तो जिन स्वरूप निज आत्मा ही है, इस लोक में सर्वोत्कृष्ट पदार्थ निज आत्मा ही है।

मिथ्यादृष्टि के व्रतादि मोक्षमार्ग नहीं -

वय तव संजम मूल गुण मूढहँ मोक्ख ण वुत्तु ।
जाम ण जाणइ इक्क परु सुद्धउ भाउ पवित्तु ।। २९ ।।

अर्थ - जब तक एक परम शुद्ध व पवित्र भाव का अनुभव नहीं होता, तब तक मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जीव के द्वारा किये गये व्रत, तप, संयम व मूलगुण पालन को मोक्ष का उपाय नहीं कहा जा सकता।

आचार्य श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज ने श्री श्रावकाचार जी ग्रन्थ में कहा है -

अनेय व्रत कर्तव्यं, तप संजमं च धारनं ।
दर्सन सुद्धि न जानंते, व्रिथा सकल विभ्रमः ।। ३९८ ।।

अर्थ - कोई अज्ञानी जीव अनेक प्रकार के व्रत करते हैं, तप और संयम को धारण करते हैं किन्तु सम्यग्दर्शन की शुद्धि को नहीं जानते, उनके समस्त विभ्रम व्यर्थ हैं।

प्रश्न - अज्ञानी के व्रत आदि बंध के कारण हैं किन्तु ज्ञानी के व्रत आदि तो मोक्ष के कारण हैं न ?

उत्तर - ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी, किन्तु व्रत आदि का शुभ रूप आचरण दोनों को ही बंध का कारण है, मोक्ष का नहीं। क्योंकि वह पर के आश्रय से होने वाला भाव है। ज्ञानी को जो व्रत आदि शुभ राग आता है, उसमें भी आकुलता है इसलिये बंध का कारण है। स्व सन्मुख होने पर जो शुद्ध परिणाम होता है वह मोक्ष का कारण है।

जइ णिम्मल अप्पा मुणइ वय संजमु संजुत्तु ।
तो लहु पावइ सिद्धि सुहु इउ जिणणाहहँ वुत्तु ।। ३० ।।
वय तव संजमु सीलु जिय ए सव्वइँ अकयत्थु ।
जाव ण जाणइ इक्क परु सुद्धउ भाउ पवित्तु ।। ३१ ।।

अर्थ - जो व्रत संयम सहित निर्मल आत्मा का अनुभव करे तो सिद्ध या मुक्ति का सुख शीघ्र ही पावे, ऐसा जिनेन्द्र का कथन है।

हे जीव! जब तक एक उत्कृष्ट शुद्ध वीतराग भाव का अनुभव न करे तब तक व्रत, तप, संयम, शील ये सब पालना वृथा है, ये सभी कार्य पुण्य बांधकर संसार बढ़ाने वाले हैं।

प्रश्न - व्यवहार और निश्चय चारित्र का स्वरूप स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर - शुभाशुभ परिणाम से निवृत्ति और आत्मा की दृष्टि सहित शुद्धोपयोग रूप रमणता निश्चय चारित्र है। उसके साथ अशुभ से निवृत्ति और शुभ में प्रवृत्ति होती है वह व्यवहार चारित्र है। व्यवहार चारित्र बंध का कारण और निश्चय चारित्र संवर-निर्जरा का उपाय है।

पुण्य पाप दोनों संसार है -

पुण्णिं पावइ सग्ग जिउ पावइ णरय णिवासु ।
बे छंडिवि अप्पा मुणइ तउ लब्भइ सिववासु ।। ३२ ।।

अर्थ - यह जीव पुण्य से स्वर्ग पाता है, पाप से नरक जाता है, पुण्य-पाप दोनों में ममता छोड़कर जो अपने आत्मा का मनन करे तो शिव महल में वास पा जावे।

प्रश्न - पुण्य भाव संसार का कारण है या मोक्ष का कारण है ?

उत्तर - पुण्य - पाप, शुभाशुभ भाव दोनों दु:खमय हैं, संसार के कारण हैं। इन्हें छोड़कर ज्ञानानन्द स्वभावी आत्मा के सन्मुख होकर आत्मा का आश्रय करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

जहाँ निश्चय होता है वहाँ साथ में व्यवहार होता है, किन्तु है वह बंध का कारण। शास्त्रों में उसे सहकारी कहा है, वस्तुत: अबंध रूप शुद्धोपयोग ही मोक्ष का कारण है, पुण्य भाव संसार का कारण है।

निश्चय चारित्र ही मोक्ष का कारण है -

वउ तउ संजमु सील जिय इय सव्वइ ववहारु ।
मोक्खह कारण एक्क मुणि जो तइलोयहँ सारु ।। ३३ ।।

अर्थ - हे जीव! व्रत, तप, संयम, शील ये सब व्यवहार चारित्र हैं। मोक्ष का कारण एक निश्चय चारित्र को जानो जो तीन लोक में सार वस्तु है।

प्रश्न - कौन सा चारित्र मोक्ष का कारण है ?

उत्तर - आत्मा के आश्रय से जो वीतरागता प्रकट होती है ऐसा निश्चय चारित्र मोक्ष का कारण है।

आपसे आपको ध्याओ -

अप्पा अप्पइ जो मुणइ जो परभाउ चएइ ।
सो पावइ सिवपुरि गमणु जिनवरु एउ भणेइ ।। ३४ ।।

अर्थ - जो परभाव को छोड़ देता है व जो अपने से ही अपने आत्मा का अनुभव करता है वही मोक्षनगर में पहुँच जाता है, श्री जिनेन्द्र ने यह कहा है।

प्रश्न - जन्म-मरण को मिटाने का उपाय क्या है ?

उत्तर - अनादिकाल से इस जीव ने संसार में अनंत भव धारण किये हैं और एक आत्मा के भान के बिना अनंत दु:खों को पाया है। आचार्य देव कहते हैं कि पर भावों को छोड़कर अपने से अपने आत्म स्वभाव का अनुभव करना जन्म-मरण को मिटाने का उपाय है।

व्यवहार में नौ पदार्थों का ज्ञान आवश्यक है -

छह दव्वइ जे जिण कहिया णव पयत्थ जे तत्त ।
विवहारे जिण उत्तिया ते जाणियहि पयत्त ।। ३५ ।।

अर्थ - जिनेन्द्र ने जो छह द्रव्य, नौ पदार्थ और सात तत्त्व कहे हैं वे सब व्यवहार नय से कहे हैं प्रयत्न करके उनको जानना योग्य है।

प्रश्न - ६ द्रव्य, ९ पदार्थ, ७ तत्त्व प्रयत्न पूर्वक जानने योग्य हैं, इसका आशय क्या है ?

उत्तर - प्रयत्न पूर्वक जानने योग्य हैं, इसका आशय यह है कि छह द्रव्यों में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, काल और जीव अरूपी हैं, पुद्गल द्रव्य रूपी है। सभी द्रव्यों का, उनकी शक्तियों का, उनकी अवस्थाओं का जैसा स्वरूप है वैसा जानना चाहिये। जब छह द्रव्य कहे तो इसका अर्थ यह हुआ छह द्रव्य भिन्न-भिन्न हैं। छहों द्रव्यों की पर्यायें भी स्वतंत्र अपने से ही होती हैं ऐसा जानना इसका नाम व्यवहार है। ऐसे व्यवहार को व्यवहार जाने बिना निश्चय नहीं होता। पुण्य - पाप, आस्रव भाव, बंध भाव यह आत्मा से विपरीत अन्य भाव हैं, उनका ज्ञान करना चाहिये और अभेद आत्मा की दृष्टि करना ही सर्व तत्त्वों को जानने का आशय है।

सब पदार्थों में चेतना वाला एक जीव ही है -

सव्व अचेयण जाणि जिय एक्क सचेयण सारु ।
जो जाणेविणु परममुणि लहु पावइ भवपारु ।। ३६ ।।

अर्थ - पुद्गलादि सर्व पाँचों द्रव्यों को अचेतन या जड़ जानों, एक अकेला जीव ही सचेतन है व

सारभूत परम पदार्थ है। उस जीव तत्त्व को अनुभव करके परम मुनि शीघ्र ही संसार से पार हो जाते हैं।

प्रश्न - सब पदार्थों को जानने वाला कौन है ?

उत्तर - पुद्‌गलादि पाँच द्रव्य, पुद्‌गल परमाणु, धर्म, अधर्म, आकाश, काल तथा शरीर, मन, वाणी, कर्म यह सभी जड़ हैं, अचेतन हैं। एक आत्मा ही चैतन्य लक्षण वाला ज्ञान स्वभावी है। अन्य पाँच द्रव्यों में ज्ञान नहीं तथा सभी का जिसे ज्ञान है, हे आत्मन्! ऐसा सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा है। यही एक परम पदार्थ आत्मा सार है। जानना, जानना, जानना एक ही सार है। इस प्रकार सब पदार्थों को जानने वाला मैं ही हूँ।

व्यवहार का मोह त्यागना जरूरी है -

जइ णिम्मलु अप्पा मुणहि छंडिवि सहु ववहारु ।
जिण सामिउ एमइ भणइ लहु पावहु भवपारु ।। ३७ ।।

अर्थ - जिनेन्द्र भगवान कहते हैं, यदि तू सर्व व्यवहार छोड़कर निर्मल आत्मा का अनुभव करेगा तो शीघ्र भव से पार होगा।

प्रश्न - व्यवहार का मोह त्यागना जरूरी क्यों है ?

उत्तर - निर्मल आत्मा का अनुभव करना जिनेन्द्र भगवान का उपदेश है। यह अनुभव तभी होगा जब सर्व पर के आश्रित व्यवहार का मोह त्यागा जायेगा। व्यवहार धर्म, व्यवहार सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का जितना विषय है, वह सब त्यागने योग्य है।

सम्यग्दृष्टि ग्रहस्थ हो या साधु, केवल अपने शुद्धात्मा को ही अपना हितकारी जानता है, अन्य सभी को त्यागने योग्य परिग्रह जानता है। व्यवहार में सावधान रहने वाला मोक्षमार्गी नहीं इसलिये व्यवहार का मोह त्यागना जरूरी है।

जीव अजीव का भेद जानो -

जीवाजीवहँ भेउ जो जाणइ तिं जाणियउ ।
मोक्खहँ कारण एउ भणइ जोइ जोइहि भणिउ ।। ३८ ।।

अर्थ - हे योगी! योगियों ने कहा है जो कोई जीव तथा अजीव का भेद जानता है उसी ने मोक्षमार्ग जाना है। ऐसा कहा गया है।

प्रश्न - जीव - अजीव का भेदज्ञान करने से क्या लाभ है ?

उत्तर - संसारी दशा में जीव-अजीव का अनादि सम्बंध है और मोक्ष दशा में अबंध है। छह द्रव्यों में जीव चेतन है, शेष पाँच अचेतन या अजीव हैं। इनमें धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, काल द्रव्य व आकाश द्रव्य का सदा स्वभाव रूप परिणमन होता है तथा जीव और पुद्‌गल में विभाव परिणमन होता है।

जीव पुद्‌गल के बंध से जीव में विभाव होता है और जीव के विभाव परिणमन से पुद्‌गल में विभाव परिणमन होता है। पुद्‌गल स्वयं भी स्कंधरूप विभाव परिणमन करते हैं। योगीजन भेदविज्ञान करते हैं कि मैं जीव द्रव्य हूँ, मेरा स्वभाव परम शुद्ध, निरंजन पूर्ण ज्ञानदर्शन और आनंदमयी है। बंध का संबंध विभाव से है और मोक्ष का संबंध स्वभाव से है, अत: बंध और मोक्ष के स्वरूप को जानना चाहिये। आत्मा ज्ञायक स्व है और संसार, राग बंध ये पर हैं ऐसा जीव और अजीव का जिसे भेदज्ञान हुआ हो वही मुक्ति का पात्र है अन्य

नहीं।

आत्मा केवलज्ञान स्वभाव का धारी है -

केवल णाण सहाउ सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ ।
जइ चाहहि सिव लाहु भणइ जोइ जोइहिँ भणिउँ ।। ३९ ।।

अर्थ - हे योगी ! योगियों ने कहा है कि तू केवलज्ञान स्वभावी जो आत्मा है उसे ही जीव जान, यदि तू मोक्ष का लाभ चाहता है, ऐसा कहा है।

प्रश्न - आत्मा को केवलज्ञान स्वभावी क्यों कहा गया है ?

उत्तर - केवलज्ञान स्वभावी कहने से केवलज्ञान पर्याय की अपेक्षा नहीं है, बल्कि यहाँ ज्ञान स्वभाव अपेक्षित है। ज्ञान गुण में ही अनंत गुणों का प्रतिभास होता है। अन्य गुणों का अस्तित्व है, परन्तु ये दूसरे गुणों को जानते नहीं है। ज्ञान गुण स्वयं को जानता है और अन्य गुणों को भी जानता है। ज्ञान आत्मा का असाधारण गुण है, यह गुण अपने आपमें परिपूर्ण है, इसी ज्ञान सामान्य को केवलज्ञान स्वभाव कहा गया है। आत्मा को ऐसे ज्ञान सामान्य वाला होने से केवलज्ञान स्वभावी कहा गया है।

ज्ञानी को हर जगह आत्मा ही दिखता है -

को सुसमाहि करउ को अंचउ छोपु अछोपु करिवि को वंचउ ।
हल सहि कलहु केण समाणउ जहिँ कहिँ जोवउ तहिँ अप्पाणउ ।। ४० ।।

अर्थ - कौन तो समाधि करे, कौन अर्चा या पूजन करे, कौन स्पर्श-अस्पर्श करे, कौन वंचना या मायाचार करे, कौन किसके साथ मैत्री या कलह करे, जहाँ देखो वहाँ आत्मा ही आत्मा दृष्टिगोचर होता है।

प्रश्न - ज्ञानी की दृष्टि कहाँ होती है ?

उत्तर - 'मैं ज्ञान की मूर्ति हूँ' ऐसा भान होते ही ज्ञानी सर्वत्र ज्ञान अर्थात् आत्मा को ही देखता है। जैसे-खेत में चना बोया हो तो किसान की नजर चने के ऊपर होती है, डाली, पत्तों पर नहीं होती। जैसे-सोने में मणि जड़ी हो और जौहरी के पास जाओ तो उसकी दृष्टि मणि पर होती है, सोने पर नहीं। क्योंकि उसे मणि से प्रयोजन है। सुनार के पास जाओ तो उसकी दृष्टि सोने पर ही होती है। वैसे ही जिसे आत्मा का श्रद्धान ज्ञान हुआ उसे जहाँ देखो वहाँ आत्मा ही दिखाई देता है 'मैं तो मात्र जानने देखने वाला हूँ अन्य मैं नहीं हूँ।' इस प्रकार ज्ञानी की दृष्टि अपने स्वभाव पर होती है।

अनात्मज्ञानी कुतीर्थों में भ्रमता है -

ताम कुतित्थइँ परिभमइ धुत्तिम ताम करेइ ।
गुरुहु पसाएँ जाम णवि अप्पा देउ मुणेइ ।। ४१ ।।

अर्थ - गुरु महाराज के प्रसाद से जब तक एक अपने आत्मा रूपी देव को नहीं पहिचानता है तब तक मिथ्या तीर्थों में घूमता है और तब तक ही धूर्तता करता है।

प्रश्न - कुतीर्थों में कौन भ्रमता है ?

उत्तर - गुरु के प्रसाद से देह देवल में विराजमान अपने आत्म देव को नहीं जानता तथा सच्चे देव, गुरु, शास्त्र का श्रद्धान नहीं होता तब तक अज्ञानी जीव कुतीर्थों में भ्रमता, भटकता है।

शरीर ही निश्चय से तीर्थ व मंदिर है -

तित्थहिँ देवलि देउ णवि इम सुइकेवलि वुत्तु ।
देहा देवलि देउ जिणु एहउ जाणि णिरुत्तु ।। ४२ ।।

अर्थ - श्रुतकेवली ने ऐसा कहा है कि तीर्थक्षेत्रों में व देवमंदिर में परमात्म देव नहीं हैं निश्चय से ऐसा जान कि शरीर रूपी देवालय में जिनदेव हैं।

आचार्य श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज ने श्री श्रावकाचार जी ग्रन्थ में कहा है -

देवो परमिस्टी मइयो, लोकालोक लोकितं जेन ।
परमप्पा ज्ञानं मइयो, तं अप्पा देह मज्झंमि ।। ३२४ ।।

अर्थ - लोकालोक को आलोकित करने वाला जो परमेष्ठीमयी देव ज्ञानमयी परमात्मा है वह मैं इस देह में स्थित आत्मा हूँ।

देह देवलि देवं च, उवइट्ठो जिनवरेंदेहि ।
परमिस्टी च संजुत्तो, पूजं च सुद्ध संमत्तं ।। ३२५ ।।

अर्थ - देह देवालय में विराजमान आत्मा ही देव है, तीर्थंकर भगवंतों ने ऐसा उपदिष्ट किया [बताया] है। वही पंचपरमेष्ठी के गुणों सहित है और उसकी पूजा ही शुद्ध सम्यक्त्व है [जो सम्यग्दृष्टि करता है।]

प्रश्न - देव का यथार्थ स्वरूप कब जानने में आता है ?

उत्तर - भगवान और श्रुतकेवली कहते हैं कि शरीर रूपी देह-देवल में परमात्मा अर्थात् तेरा आत्मा विराजमान है ऐसा जानकर उसकी श्रद्धा करना यह देव की आराधना है। देवमंदिर में परमात्म देव नहीं हैं, सच्चे देव तो अरिहंत परमात्मा हैं, उनके दर्शन से भी निजात्म देव का दर्शन नहीं होता, वहाँ उनका शरीर ही दिखाई देता है, निज आत्मा के दर्शन से ही देव का यथार्थ स्वरूप जानने में आता है।

देवालय में साक्षात देव नहीं -

देहा देवलि देउ जिणु जणु देवलिहिँ णिएइ ।
हासउ महु पडिहाइ इहु सिद्धे भिक्ख भमेइ ।। ४३ ।।

अर्थ - श्री जिनेन्द्र देव देहरूपी देवालय में हैं, अज्ञानी मानव मंदिरों में देखता-फिरता है, मुझे हँसी आती है जैसे इस लोक में धनादि की सिद्धि होने पर भी कोई भीख माँगता फिरे।

प्रश्न - अज्ञानी मानव मंदिरों में देव को देखता फिरता है तो आचार्यों को हंसी क्यों आती है ?

उत्तर - वास्तव में देह ही तीर्थ और मंदिर है, क्योंकि आत्मा उसमें बसता है। बाह्य मंदिर में आत्मा नहीं बसता, प्रतिमा में आत्मा नहीं, उसी प्रकार साक्षात् भगवान में भी तेरा आत्मा नहीं। निजात्मा को देखना-जानना हो तो इस देह रूपी तीर्थ और मंदिर में ही दिखेगा। अपना आत्मा कहीं भगवान के पास नहीं। इतना होने पर भी अज्ञानी जीव मंदिरों में भगवान को देखता है, यह देखकर कि जैसे बड़ा राजा होकर घर-घर भीख मांगे वैसे ही स्वयं चैतन्य राजा होकर भी मंदिरों में भ्रमता फिरता है इसलिये आचार्यों को हंसी आती है।

समभाव से अपने देह में जिनदेव को देख -

मूढ़ा देवलि देउ णवि णवि सिलि लिप्पइ चित्ति ।
देहा देवलि देउ जिणु सो बुज्झहि समचित्ति ।। ४४ ।।

अर्थ - हे मूर्ख! देव किसी मंदिर में नहीं है, न देव किसी पाषाण लेप या चित्र में हैं, जिनेन्द्रदेव परमात्मा शरीर रूपी देवालय में हैं, उस देव को समभाव से पहचान या उसका साक्षात्कार कर।

प्रश्न - देव कहाँ है ?

उत्तर - देव कहीं मंदिर में, पाषाण की मूर्ति में अथवा किसी शिल्प में नहीं हैं। जिनदेव तो देह रूपी देवालय में विराजमान हैं। आत्मा स्वयं वीतराग स्वभावी चिदानंद, अत्यंत शांत, निराकुल सुख स्वरूप है। इसलिये स्वभाव में जिनेन्द्रपना होने से पर्याय में जिनेन्द्रपना प्रकट होता है अत: निश्चित होता है कि आत्मा स्वयं स्वभाव से जिनेन्द्र है अर्थात् देह देवालय में देव विराजमान है।

ज्ञानी ही शरीर मंदिर में परमात्म देव को देखता है -

तित्थइ देउलि देउ जिणु सव्वु वि कोइ भणेइ ।
देहा देउलि जो मुणइ सो बुहु को वि हवेइ ।। ४५ ।।

अर्थ - सब कोई कहते हैं कि तीर्थ में या मंदिर में जिनदेव हैं, किन्तु ज्ञानी देह रूपी मंदिर में जिनदेव को देखता है या मानता है।

प्रश्न - ज्ञानी परमात्मा को कहाँ देखता है ?

उत्तर - सम्यग्दृष्टि जानता है और मानता है कि जब मैं अंतर्दृष्टि करता हूँ तब मुझे मेरा आत्मा ही परमात्मा के समान जानने में आता है। इस प्रकार ज्ञानी देह देवालय में आत्मा को ही परमात्मा के समान देखता है।

धर्म रसायन पीने से अमर होता है -

जइ जर मरण करालियउ तो जिय धम्म करेहि ।
धम्म रसायणु पियहि तुहुँ जिम अजरामर होहि ।। ४६ ।।

अर्थ - हे जीव! यदि तू जन्म, जरा व मरण के दु:खों से भयभीत है तो धर्म कर, तू धर्म रसायन को पी जिससे तू अजर अमर हो जावे।

प्रश्न - धर्म किसे कहते हैं, धर्म का फल क्या है ?

उत्तर - आत्मा सच्चिदानंद स्वरूप है उसके श्रद्धान, ज्ञान और रमणता को धर्म कहा है। जो जीव संयोगों के दु:ख तथा चौरासी के अवतार के दु:खों से भयभीत हैं वे धर्म धारण करके इस धर्म रूपी उत्तम औषधि का सेवन कर अजर-अमर पद को प्राप्त करते हैं।

बाह्य क्रिया में धर्म नहीं है -

धम्मु ण पढियइँ होइ धम्मु ण पोत्था पिच्छियइँ ।
धम्मु ण मढिय पएसि धम्मु ण मत्था लुंचियइँ ।। ४७ ।।

अर्थ - शास्त्रों के पढ़ने मात्र से धर्म नहीं हो जाता, पुस्तक व पीछी रखने मात्र से धर्म नहीं होता,

किसी मठ में रहने से धर्म नहीं होता, केशलोंच करने से भी धर्म नहीं होता। कोई बड़े-बड़े शास्त्र पढ़कर पंडित हो जाये इससे धर्म नहीं होता इसी प्रकार नग्नपने में, मोरपिच्छि और कमंडलु रखने से धर्म नहीं होता है।

प्रश्न - बाह्य तप आदि क्रिया धर्म का साधन है ?

उत्तर - आत्मा ज्ञाता दृष्टा है, जगत रूप दृश्य को देखने वाला है, ज्ञेयों को जानने वाला है, ऐसे आत्म वैभव को अनुभव में न लेकर बाह्य तप आदि क्रिया रूप व्यवहार का जो आचरण करता है और मानता है कि मैं धर्म का साधन करता हूँ, वह धर्म का साधन नहीं है, शुभ रूप आचरण मात्र पुण्य बंध का कारण है।

प्रश्न - धर्माचरण क्या है ?

उत्तर - स्वभाव के साथ सम्बंध जोड़ना और पर के साथ सम्बंध तोड़ना अर्थात् जैसा अपना स्वभाव है वैसा जानकर श्रद्धान, ज्ञान में स्वीकार करना दर्शन व ज्ञान का आचरण है। तत्पश्चात् उसी स्वभाव में उपयोग की एकाग्रता अर्थात् स्वभाव में रमणता चारित्र का आचरण है, इसी आचरण से धर्म होता है, अन्य कोई धर्म का आचरण नहीं है।

राग-द्वेष त्याग कर आत्मस्थ होना धर्म है -

राय रोस बे परिहरिवि जो अप्पाणि वसेइ ।
सो धम्मु वि जिण उत्तियउ जो पंचम गइ णेइ ।। ४८ ।।

अर्थ - राग-द्वेष दोनों को छोड़कर वीतराग होकर जो अपने आत्मा में वास करता है, आत्मा में विश्राम करता है, उसी को जिनेन्द्र ने धर्म कहा है, यही धर्म पंचम गति मोक्ष में ले जाता है।

प्रश्न - शुद्ध भाव ही धर्म है, इसको स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर - सर्वज्ञदेव त्रिलोकीनाथ वीतराग परमात्मा की वाणी में यह आया है कि जीव अपने आत्मा में जितना बसेगा उतना धर्म और जितना पुण्य-पाप भाव में जावेगा उतना अधर्म। आत्म स्वरूप कर्म, शरीर, वाणी से रहित है क्योंकि कर्मादि अजीव हैं। इसी तरह पुण्य-पाप भाव आस्रव बंध के कारण हैं, इसलिये वे आत्मा नहीं हैं। आत्मा तो शुद्ध वीतरागी विज्ञानघन तत्त्व है। उसमें जितना लीन होगा उतना शुद्ध भाव प्रकट होगा, यही धर्म है।

आशा - तृष्णा ही संसार भ्रमण का कारण है -

आउ गलइ णवि मणु गलइ णवि आसा हु गलेइ ।
मोहु फुरइ णवि अप्प हिउ इम संसार भमेइ ।। ४९ ।।

अर्थ - आयु गलती जाती है, परन्तु मन नहीं गलता है और न आशा तृष्णा ही गलती है, मोह भाव फैलता रहता है किन्तु अपने आत्मा का हित करने का भाव नहीं होता, इस तरह यह जीव संसार में भ्रमण किया करता है।

प्रश्न - आशा तृष्णा संसार भ्रमण का कारण क्यों है ?

उत्तर - इच्छा, आकुलता यह रोग है। अज्ञानी विषय सामग्री को इच्छा मिटाने का इलाज मानता है। जब एक प्रकार की विषय सामग्री की प्राप्ति से एक प्रकार की इच्छा पूरी हो जाती है उसी समय दूसरी इच्छा तुरंत खड़ी हो जाती है। तृष्णा अर्थात् इच्छा रोग तो अंतरंग से मिटता नहीं है और दूसरी अन्य प्रकार की इच्छायें उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार इच्छाओं की पूर्ति करते-करते आयु पूर्ण हो जाती है। पश्चात् अन्य

पर्याय प्राप्त करता है, वहाँ उस पर्याय सम्बंधी कार्यों की इच्छा उत्पन्न होती है, इस तरह अज्ञानी जीव आशा तृष्णा के कारण अनादिकाल से चौरासी लाख योनियों में भटक रहा है।

प्रश्न - मनुष्य जन्म में क्या करना चाहिये ?

उत्तर - मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभता से मिला है इसलिये इस जन्म में सच्चे देव, गुरु, शास्त्र का यथार्थ श्रद्धान कर सम्यग्दर्शन को प्राप्त करके जन्म, जरा, मरण को टालने का उपाय करना चाहिये।

आत्म प्रेमी ही निर्वाण का पात्र है -

जेहउ मणु विसयहँ रमइ तिमु जइ अप्प मुणेइ ।
जोइउ भणइ हो जोइयहु लहु णिव्वाणु लहेइ ।। ५० ।।

अर्थ - योगी आत्मा कहते हैं, हे योगीजनो ! मन जैसा विषयों में रमता है, यदि वैसा मन आत्मा में रमण करे तो शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त करले।

प्रश्न - निर्वाण का पात्र कौन होता है ?

उत्तर - हिरण की नाभि में कस्तूरी है किन्तु वह कस्तूरी पाने के लिये बाहर ही भटकता है। वैसे ही यह आत्मा आनन्द का महासागर है, परन्तु स्वयं को उसका भान नहीं है, इस कारण बाहर में आनन्द प्राप्त करने की चेष्टा किया करता है। जैसे - हाथी स्पर्शन इन्द्रिय के विषय में, मछली रसनेन्द्रिय के विषय में, भौंरा घ्राणेन्द्रिय के विषय में, पतंगा चक्षु इन्द्रिय के विषय में और हिरण कर्णेन्द्रिय के विषय में लीन होकर प्राण गंवा देते हैं, उसी प्रकार मनुष्य का मन पाँच इन्द्रियों के विषयों में लीन रहता है, इससे अनंत पाप का बंध होता है। जैसे मन पाँच इन्द्रियों के विषयों में लीन रहता है, उसी प्रकार मन यदि आत्मा में रमण करे तो शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त हो, सम्यक् पुरुषार्थ द्वारा अपनी आत्मा से प्रेम करने वाला ज्ञानी ही निर्वाण का पात्र होता है।

शरीर को नरक घर जानो -

जेहउ जज्जरु णरय घरु तेहउ बुज्झि सरीरु ।
अप्पा भावहि णिम्मलउ लहु पावहि भवतीरु ।। ५१ ।।

अर्थ - जैसे नरक का वास आपत्तियों से जर्जरित है पूर्ण है, वैसे ही शरीर के वास को समझ, निर्मल आत्मा की भावना कर, जिससे शीघ्र ही संसार से पार हो।

प्रश्न - शरीर को नरक को उपमा क्यों दी है ?

उत्तर - जिस प्रकार नरक की दुर्गन्ध युक्त भूमि में नरकायुबद्ध होने के कारण जीव को महान दुःख भोगना पड़ते हैं, उसी प्रकार शरीर भी नरकों के समान दुर्गन्ध का उद्‌गम है। जैसे-नरक में अत्यंत ग्लानिकारक वस्तुएँ भरी हैं, वैसे ही यह शरीर भी अत्यंत ग्लानिकारक वस्तुएँ से भरा हुआ है इसलिये शरीर को नरक की उपमा दी है।

जगत प्रपंचों में उलझा प्राणी आत्मा को नहीं पहचानता -

धंधइ पडियउ सयल जगि णवि अप्पा हु मुणंति ।
तहिँ कारणि ए जीव फुडु ण हु णिव्वाणु लहंति ।। ५२ ।।

अर्थ - सब जग के प्राणी अपने-अपने धंधों में, लोक व्यवहार में फंसे हुए हैं, तल्लीन हैं इसलिए

निश्चय से आत्मा को नहीं मानते हैं, यही कारण है जिससे ये जीव निर्वाण को नहीं पाते यह बात स्पष्ट है।

प्रश्न – आत्मा को कौन नहीं पहचानता ?

उत्तर – संसारी जीव धंधा व्यापार में, खाने में, पीने में, मान प्राप्त करने में, इज्जत सम्हालने में ऐसे अनेक प्रकार के सांसारिक कार्यों में जीव लगे हुए हैं। अपने को धर्मात्मा कहलाने वाले भी पुण्य, दया, दान, व्रत करने में लगे हुए हैं। इस तरह कोई अशुभ कार्यों में तो कोई शुभ में फंस गये हैं। चौबीस घंटों में आत्मा कौन है, कैसा है, उसे देखने को एक घड़ी की भी फुरसत नहीं मिलती। जगत प्रपंचों में उलझा हुआ प्राणी आत्मा को नहीं पहचानता।

आत्म ज्ञान बिना शास्त्रपाठ निष्फल है –

सत्थ पठंतह ते वि जड अप्पा जे ण मुणंति ।
तहिँ कारणि ए जीव फुडु ण हु णिव्वाणु लहंति ।। ५३ ।।

अर्थ – शास्त्रों को पढ़ते हुए जो आत्मा को नहीं पहचानते हैं वे भी अज्ञानी हैं, यही कारण है कि ऐसे शास्त्र पाठी जीव भी निर्वाण को नहीं पाते, यह बात स्पष्ट है।

प्रश्न – शास्त्र पढ़ने से तो ज्ञान होता है, यहाँ शास्त्र पढ़ने को निष्फल क्यों कहा ?

उत्तर – शास्त्र पठन, पर सन्मुखता का ज्ञान है। आत्म ज्ञान के बिना अज्ञानी जीव नाना प्रकार के शास्त्रों का अध्ययन करता है, व्याकरण, न्याय, ज्योतिष, वैद्यक आदि अनेक विषयों को जानता है। परन्तु शुद्ध निजात्म स्वरूप की ओर लक्ष्य नहीं करता। स्वभाव का पुरुषार्थ नहीं करता इसलिये शास्त्र पठन को निष्फल कहा है।

प्रश्न – शास्त्रों के स्वाध्याय का सार क्या है ?

उत्तर – शास्त्र पठन में भी लक्ष्य आत्मा का ही रखना चाहिये। जिनवाणी पढ़ने का फल निश्चय सम्यग्दर्शन आदि प्राप्त करना है। इसलिए चारों अनुयोगों का अध्ययन करके वस्तु स्वरूप को यथार्थ जानकर छह द्रव्य रूप जगत से मेरा आत्म तत्त्व पृथक् है ऐसा स्वीकार करना शास्त्रों के स्वाध्याय का सार है। शास्त्र स्वाध्याय मोक्षमार्ग का साधन है।

इन्द्रिय व मन के निरोध से सहज ही आत्मानुभव –

मणु इंदिहि वि छोडियइ बुहु पुच्छियइ ण कोइ ।
रायहँ पसरु णिवारियइ सहज उपज्जइ सोइ ।। ५४ ।।

अर्थ – यदि बुद्धिमान मन व इन्द्रियों से छुटकारा पा जावे तब किसी से कुछ पूछने की जरूरत नहीं है। जब राग का फैलना दूर कर दिया जाता है तब यह आत्म ज्ञान सहज ही पैदा हो जाता है।

प्रश्न – पर में सुख है या आनंद है ऐसी विपरीत मान्यता कब नष्ट होती है ?

उत्तर – आत्मानुभव करने वाला आत्मा स्वयं ही है। उस आनंद में पर से कुछ लेना नहीं है। वह स्वयं ही अनाकुल शांति का सिंधु है। आत्मा की गाढ़ श्रद्धा और प्रीति होने पर आनंद के लिये पर से कुछ पूछने को रहता नहीं है। सम्यक् श्रद्धा होते ही 'पर में सुख या आनंद है' ऐसी विपरीत मान्यता नष्ट हो जाती है। कुटुम्ब पैसा आदि में सुखबुद्धि नहीं रहती। अपने में प्रीति होते ही पर की प्रीति अपने आप छूट जाती है।

पुद्गल व जगत के व्यवहार से आत्मा को भिन्न जानो -

पुग्गलु अण्णु जि अण्णु जिउ अण्णु वि सहु ववहारु ।
चयहि वि पुग्गलु गहहि जिउ लहु पावहि भवपारु ।। ५५ ।।

अर्थ - पुद्गल मूर्तिक का स्वभाव जीव से अन्य है, जीव का स्वभाव पुद्गलादि से न्यारा है, तथा सब जगत का व्यवहार प्रपंच भी अपने आत्मा से न्यारा है। पुद्गलादि को त्यागकर यदि अपने आत्मा को ग्रहण करे तो शीघ्र ही संसार से पार हो जावे।

प्रश्न - भेदज्ञान किस प्रकार करना चाहिये ?

उत्तर - भेदज्ञान ही एक मात्र संसार से पार होने का उपाय है। असद्भूत व्यवहार नय के विषय में जो कर्म, शरीरादि पुद्गल हैं वे सब आत्मा से भिन्न हैं। अशुद्ध निश्चय नय के विषयभूत पुण्य-पाप रागादि भाव भी आत्मा से भिन्न हैं। पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष इन सभी पदार्थों से आत्म तत्त्व कथंचित् जुदा है। विकारी पर्याय से तो आत्मा भिन्न है ही परन्तु अविकारी पर्याय से भी आत्मा कथंचित् भिन्न है। गुण-गुणी का भेद व्यवहार है। आत्मा ज्ञान आनन्द आदि अनन्त गुणों का अखंड पिंड है। ऐसा भेद करना यह भी व्यवहार है। संकल्प-विकल्प की समस्त क्रियायें भी आत्मवस्तु से भिन्न हैं। मन, वचन, काय ये तीनों योग तथा शुभ-अशुभ उपयोग जितना भी व्यवहार है उसका मेरे स्वभाव में अभाव है।

सच्चिदानंद अखंड पिंड आत्मा मन, वचन, काय से भी पृथक् है उसे भिन्न मानना और अनुभवन करना यही भेदज्ञान है। भेदज्ञान अर्थात् जो वस्तु जैसी है उसे वैसी जानना, मेरे में पर का अभाव है और पर में मेरा अभाव है, इस प्रकार भेदज्ञान करना चाहिये।

आत्मानुभवी ही संसार से मुक्त होता है -

जे णवि मण्णहिँ जीव फुडु जे णवि जीउ मुणंति ।
ते जिणणाहहँ उत्तिया णउ संसार मुचंति ।। ५६ ।।

अर्थ - जो स्पष्ट रूप से अपने आत्मा को नहीं जानते हैं व जो अपने आत्मा का अनुभव नहीं करते हैं वे संसार से मुक्त नहीं होते, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

प्रश्न - संसार से मुक्त कौन होता है ?

उत्तर - जिनेन्द्र भगवान ने दिव्य ध्वनि में यह उपदेश दिया है कि निज शुद्धात्मा के श्रद्धान, ज्ञान और ध्यान से वीतरागता की अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठती है, जो कर्म रूपी ईंधन को भस्म कर देती है। ऐसा वीतराग भाव जिसके जीवन में प्रकट होता है वह आत्मानुभवी ज्ञानी संसार से मुक्त होता है।

आत्मा के ज्ञान के लिये नौ दृष्टान्त हैं -

रयण दीउ दिणयर दहिउ दुद्धु घीव पाहाणु ।
सुण्णउ रूउ फलिहउ अगिणि णव दिट्ठंता जाणु ।। ५७ ।।

अर्थ - रत्न, दीप, सूर्य, दही दूध घी, पाषाण, सुवर्ण, चांदी, स्फटिक मणि, आग इन नौ दृष्टान्तों से जीव को जानना चाहिये।

प्रश्न - आत्मा के ज्ञान के लिये नौ दृष्टांत कौन से विस्तृत वर्णन कीजिये ?

उत्तर - आत्मा के ज्ञान के लिये यहाँ नौ दृष्टांत इस प्रकार कहे गये हैं - रत्न, दीप, सूर्य, दही दूध घी,

पाषाण, सुवर्ण, चांदी, स्फटिक मणि, आग इन नौ दृष्टान्तों से जीव को जानना चाहिये।

१. रत्न – यह आत्मा रत्न समान है। जैसे रत्न प्रकाशमय है, वैसे यह आत्मा भी ज्ञान–प्रकाशमय है। रत्न जैसे नित्य कायम रहने वाला है वैसे आत्मा ज्ञान स्वरूप से अविनाशी कायम रहने वाला है। जैसे रत्न कीमती वस्तु है, वैसे ही आत्मा अलौकिक अचिंत्य सम्यग्ज्ञान स्वरूप अमूल्य वस्तु है। आत्मज्ञान रूपी रत्न का स्वामी सम्यग्दृष्टि जौहरी है। चाहे जैसा रत्न हो किन्तु उसकी परख जौहरी के बिना नहीं हो सकती, वैसे ही समकिती जौहरी बिना मिथ्यादृष्टि ज्ञानरत्न को परख नहीं सकते।

२. दीप – आत्मा दीपक के समान स्व–पर प्रकाशक है, दीपक जैसे स्वयं को और अन्य पदार्थों को प्रकाशित करता है परन्तु पर रूप होता नहीं, वैसे ही चैतन्य दीपक निज और पर द्रव्यों को, उनके गुण तथा पर्यायों को प्रकाशित करने वाला है, परन्तु पर द्रव्य रूप हो नहीं जाता। शरीर, कर्म, राग आदि सबको जानता है किन्तु उन रूप होता नहीं।

३. सूर्य – आत्मा सूर्य के समान प्रकाशमान और प्रतापवान है। अपनी प्रभुता से भरा तत्त्व स्वतंत्रपने अपने अखंड प्रताप से शोभायमान हो रहा है। आत्म सूर्य अनंत बल का धारक है। जड़ सूर्य तो आताप वाला (उष्णता वाला) है, परन्तु चैतन्य सूर्य परम शांत है। जगत में सूर्य अनेक हैं और उपमा युक्त हैं, किन्तु अपना चैतन्य सूर्य एक है और अनुपम है।

४. दूध दही घी – आत्मा दूध समान है, अर्थात् शुद्ध चैतन्य तत्त्व तो दूध है। दूध को जमाने से दही होता है, वैसे ही आत्मा में एकाग्र होते ही सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूपी दही प्रकट होता है। दही को मथने से घी निकलता है, वैसे ही आत्मा में विशेष एकाग्र होने से केवलज्ञान रूप मक्खन मिलता है, पीछे मुक्ति रूपी घी प्राप्त होता है।

५. पाषाण – आत्मा पत्थर के समान दृढ़ और अमिट है। जैसे एक कण भी न खिरे ऐसा चिकना पत्थर होता है वैसे ही आत्मा असंख्यात प्रदेशी अनंत गुणों का पिंड है, उसमें से एक भी प्रदेश या एक भी गुण खिरता नहीं। अर्थात् ज्ञानादि गुणों में से एक भी गुण कभी कम नहीं होता।

६. स्वर्ण – आत्मा शुद्ध स्वर्ण समान, परमप्रकाशमान, ज्ञानधातु से निर्मित अनादि अनंत है। मलिन स्वर्ण अपनी योग्यता से ही अग्नि के संग में सौ टंच का शुद्ध स्वर्ण बनता है। उसी प्रकार मोह, राग–द्वेष की कालिमा संयुक्त आत्म स्वर्ण भी अपनी योग्यता से ही स्वयं में एकाग्रता रूप अग्नि से सौ टंच का शुद्धात्मा बन जाता है, स्वभाव से तो शुद्ध था ही, पर्याय में भी शुद्ध हो जाता है।

७. चांदी – आत्मा चांदी के समान परम शुद्ध और निर्मल है। वीतरागता रूपी निर्मलता आत्मा में भरी है। संसारियों को प्रिय सोना चांदी है अतः उसकी उपमा देकर समझाते हैं– अन्यथा आत्मा को तो कोई उपमा लागू नहीं पड़ती, ऐसा अनुपम आत्माराम है।

८. स्फटिक मणि – आत्मा स्फटिक मणि के समान निर्मल और परिणमनशील है। जैसे स्फटिक मणि लाल–पीली वस्तु के संयोग से लाल–पीले रंग की दिखाई देने पर भी अपनी निर्मलता को छोड़ती नहीं, वैसे ही आत्मा रागादि पर्यायों रूप होने पर भी स्वभाव से निर्मल और शुद्ध ही रहता है।

स्फटिक मणि के समान निर्मल आत्म स्वभाव की दृष्टि करने से पर्याय में भी निर्मलता प्रकट होती है।

९. अग्नि- आत्मा अग्नि समान सदा ही प्रज्ज्वलित ज्योति है। जैसे अग्नि में पाचक, प्रकाशक और दाहक गुण हैं वैसे ही आत्मा में श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र त्रिकाली गुण हैं।

अग्नि अनाज को पचाती है, पदार्थों को प्रकाशित करती है और ईधन को जलाती है। 'मैं त्रिकाली भगवान हूँ' ऐसा स्वीकार करना यह श्रद्धा गुण के पचाने का कार्य है।

स्व-पर के गुण पर्यायों को जानना, यह ज्ञान गुण का प्रकाशन कार्य है। मोह, राग-द्वेष का नाश कर वीतरागता प्रकट करना यह चारित्र गुण की दाहकता है। इन नौ दृष्टान्तों से आत्मा को पहचान कर अपने स्वभाव का पूर्ण विश्वास करने योग्य है, ऐसा आचार्य देव ने इस गाथा में कहा है।

देहादि रूप मैं नहीं हूँ, यही ज्ञान मोक्ष का बीज है -

देहादिउ जो परु मुणइ जेहउ मुण्णु अयासु ।
सो लहु पावइ बंभु परु केवलु करइ पयासु ।। ५८ ।।

अर्थ - जैसे आकाश पर पदार्थों के साथ सम्बंध रहित है, असंग अकेला है वैसे ही शरीरादि को जो आत्मा से पर जानता है वही परम ब्रह्म स्वरूप का अनुभव करता है व केवलज्ञान का प्रकाश करता है।

प्रश्न - कौन सा ज्ञान मोक्ष का बीज है ?

उत्तर - जैसे - आकाश के साथ आकाश में स्थित पदार्थों का सम्बंध दिखाई देने पर भी किसी भी पदार्थ के साथ उसका सम्बंध नहीं है, उसी प्रकार आत्मा के साथ शरीर, मन, वाणी, माता-पिता, कुटुम्ब, घर, क्षेत्र, काल आदि का संयोग दिखाई देने पर भी आत्मा का उनके साथ कुछ भी सम्बंध नहीं है। आकाश सदा अकेला, निर्लेप है, आत्मा भी त्रिकाल असंग और निर्लेप है। आकाश के समान निर्मल अपने आत्म ज्ञान का प्रकट हो जाना ही मोक्ष का बीज है।

आकाश के समान होकर भी मैं सचेतन हूँ -

जेहउ सुद्ध अयासु जिय तेहउ अप्पा वंतु ।
आयासु वि जडु जाणि जिय अप्पा चेयणुवंतु ।। ५९ ।।

अर्थ - हे जीव! जैसा आकाश शुद्ध है वैसा ही आत्मा कहा गया है। आकाश को जड़ अचेतन जान तथा आत्मा को सचेतन जान।

प्रश्न - आकाश और आत्मा में क्या अंतर है और उसको जानने से क्या लाभ है ?

उत्तर - आकाश क्षेत्र से सर्वव्यापी है और आत्मा ज्ञान से सर्व को जानने वाला है इसलिये सर्वव्यापी है। यह आत्मा के ज्ञान गुण की विशेषता है। इसलिये कहते हैं कि सामान्य गुणों की अपेक्षा आकाशादि सभी द्रव्य समान हैं, परन्तु विशेष गुणों की अपेक्षा प्रत्येक द्रव्य में अन्तर है।

आकाश शुद्ध है और आत्मा भी शुद्ध है। परन्तु आकाश जड़ है, उसमें चेतना नहीं है, जबकि आत्मा चेतन है। आकाश, आकाश का ध्यान नहीं कर सकता क्योंकि उसमें ज्ञान नहीं है। जबकि आत्मा अपना ध्यान कर सकता है क्योंकि आत्मा ज्ञानवान है।

हे जीव! इन दोनों में महान अन्तर जानकर तू ज्ञान स्वरूपी आत्मा का ध्यान कर। निज शुद्धात्मा को जाग्रत कर ध्यान करने से पर्याय में शुद्धता प्रगट होती है।

अपने भीतर ही मोक्षमार्ग है -

णासग्गिँ अब्भिंतरहँ जे जीवहिँ असरीरु ।
बाहुडि जम्मि ण संभवहिँ पिवहिँ ण जणणी खीरु ।। ६० ।।

अर्थ - जो ज्ञानी नासिका पर दृष्टि रखकर भीतर शरीरों से रहित शुद्धात्मा को देखते हैं, वे फिर बार-बार जन्म नहीं पायेंगे, वे फिर माता का दूध नहीं पियेंगे।

प्रश्न - जन्म-मरण का अभाव किसका होता है ?

उत्तर - जो ज्ञानी अंतर्मुख दृष्टि करके ज्ञानानन्द स्वभावी आत्मा को शरीर रहित शुद्ध कुंदन समान निर्मल जानकर ध्याता है, अनुभवता है वह मोक्षमार्गी है। जो ज्ञानी साधक स्वयं की पूर्ण निर्मल ज्ञान दशा प्रकट करने के लिये अभ्यंतर दृष्टि का साधन करता है, समस्त विकारों से रहित शुद्धात्म स्वभाव का ध्यान करता है ऐसे ज्ञानी को जन्म-मरण का अभाव होता है।

निर्मोही होकर अपनी अमूर्तीक आत्मा को देख -

असरीरु वि सुसरीरु मुणि इहु सरीरु जडु जाणि ।
मिच्छा मोहु परिच्चयहि मुत्ति णियं वि ण माणि ।। ६१ ।।

अर्थ - शरीर रहित निज आत्मा को ही उत्तम ज्ञान शरीर समझ, इस पुद्गल रचित शरीर को जड़ व ज्ञान रहित जान, मिथ्या मोह का त्याग कर, मूर्तिक इस शरीर को भी अपना नहीं मान।

प्रश्न - अमूर्तिक आत्मा को देखने वाला कौन है ?

उत्तर - आत्मा जड़ शरीर से रहित है, किन्तु उत्तम ज्ञान रूपी सुन्दर शरीर सहित है। आत्मा का परमभाव ही उसका शरीर है, बाहर का शरीर जड़ है। इस जड़ शरीर से ममत्व छोड़कर मिथ्या मोह का नाश करने वाला निर्मोही जीव अमूर्तिक आत्मा को देखता है।

आत्मानुभव का फल केवलज्ञान व अविनाशी सुख है -

अप्पइँ अप्पु मुणंतयहँ किं णेहा फलु होइ ।
केवल णाणु वि परिणवइ सासय सुक्खु लहेइ ।। ६२ ।।

अर्थ - आत्मा को आत्मा के द्वारा अनुभव करते हुए कौन सा फल है जो नहीं मिलता है, और तो क्या इससे केवलज्ञान का प्रकाश हो जाता है तथा अविनाशी सुख को पा लेता है।

प्रश्न - ध्यान का फल क्या है ?

उत्तर - आत्मा के द्वारा आत्मा का अनुभव करना मोक्षमार्ग है। जो भव्य जीव आत्मानुभव का अभ्यास करता है, उसको महान फल की प्राप्ति होती है। जब तक केवलज्ञान न हो तब तक यह आत्म ध्यानी ध्यान के समय चार फल प्राप्त करता है -

०१. आत्मीक सुख का वेदन होता है। यह सुख अरिहंत सिद्ध परमात्मा के अतीन्द्रिय सुख जैसा होता है।

०२. अंतराय कर्म का क्षयोपशम बढ़ने से आत्मवीर्य बढ़ता है जिससे अंतरंग में उत्साह व पुरुषार्थ में वृद्धि होती है।

०३. पाप कर्मों का अनुभाग कम होता है, पुण्य कर्मों का अनुभाग बढ़ता है।

०४. आयु कर्म के सिवाय सर्व कर्मों की स्थिति कम होती है।

प्रश्न – आत्मानुभव का फल केवलज्ञान कैसे है ?

उत्तर – आत्मानुभव का प्रथम फल अतीन्द्रिय आनंद का वेदन है। दूसरा फल आत्मवीर्य बढ़ता है, जिससे स्वरूप में रमणता का पुरुषार्थ जाग्रत होता है। यह आत्मानुभव केवलज्ञान की प्राप्ति का मूल है। आत्मानुभवी जीव अल्पकाल में सिद्ध पद प्राप्त करेगा, जाग्रत हुआ वीर्य कभी पीछे नहीं हटता, क्षयोपशम सम्यग्दर्शन हो तो क्षायिक होगा, क्षायिक हो तो शुक्ल ध्यान प्रकट होगा तथा शुक्ल ध्यान हो तो केवलज्ञान नियम से प्राप्त होगा इस प्रकार अतीन्द्रिय आत्मानुभव का फल केवलज्ञान की प्राप्ति है।

पर भाव का त्याग संसार त्याग का कारण है –

जे परभाव चएवि मुणि अप्पा अप्प मुणंति ।
केवल णाण सरूव लइ (लहि) ते संसारु मुचंति ।। ६३ ।।

अर्थ – जो मुनिराज पर भावों का त्याग कर आत्मा के द्वारा आत्मा का अनुभव करते हैं, वे केवलज्ञान सहित अपने स्वभाव को झलका कर संसार से छूट जाते हैं।

प्रश्न – पर भावों के त्याग पूर्वक निजात्मा के अनुभव का फल क्या है ?

उत्तर – पर भावों के त्याग पूर्वक अपने परम पारिणामिक भाव रूप जीवत्व स्वरूप में एकत्व करके उसका अनुभव करना, वह सदा के लिये आनंदामृत का पान कराने वाला मोक्षमार्ग है। ऐसा मोक्षमार्ग प्रकट होने के बाद बाहर में चाहे जैसा उपसर्ग आवे, कोल्हू में पिलते समय मुनिराज अंदर के अतीन्द्रिय आनंद में रमते रहते हैं।

कोई बैरी देव साधु को लवण समुद्र में पटके वहाँ भी मुनिराज श्रेणी आरोहण कर केवलज्ञानी होकर सिद्ध दशा को प्राप्त कर लेते हैं, इसलिये तो कहते हैं कि पर भावों का त्याग कर चैतन्य रत्नाकर की ओर दृष्टि करके अनुभव करे तो कौन सा फल प्राप्त नहीं होता ? अल्पकाल में सिद्ध पद अर्थात् मुक्ति की प्राप्ति होती है।

त्यागी आत्मध्यानी महात्मा ही धन्य हैं –

धण्णा ते भयवंत बुह जे परभाव चयंति ।
लोयालोय पयासय अप्पा विमल मुणंति ।। ६४ ।।

अर्थ – जो परभावों का त्याग करते हैं और लोकालोक प्रकाशक निर्मल अपने आत्मा का अनुभव करते हैं वे भगवंत ज्ञानी महात्मा धन्य हैं।

प्रश्न – इस लोक में कौन जीव प्रशंसनीय और धन्य है ?

उत्तर – जिन्होंने अपने निर्मल शुद्ध स्वभाव को साध्य बनाकर साधा है, ऐसे सम्यक्त्वी जीव ही धन्य हैं। संसार के सर्व प्रपंच जालों से विरक्त होकर सप्त तत्त्व और नौ पदार्थों आदि के विकल्पों को भी त्यागकर धर्मी जीव एक शुद्धात्मा को ही ध्याते हैं तथा परमानंद स्वरूपी अमृत का पान करते हैं, आचार्यदेव कहते हैं ऐसे धर्मी जीव प्रशंसनीय और धन्य हैं।

गृहस्थ या मुनि दोनों के लिये आत्मरमणता ही सिद्धि सुख का उपाय है -

सागारु वि णागारु कु वि जो अप्पाणि वसेइ ।
सो लहु पावइ सिद्धि सुहु जिणवरु एम भणेइ ।। ६५ ।।

अर्थ - गृहस्थ हो या मुनि कोई भी हो, जो अपनी आत्मा के भीतर वास करता है वह शीघ्र ही सिद्धि के सुख को पाता है, जिनेन्द्र देव ने ऐसा कहा है।

प्रश्न - सिद्धि सुख का उपाय क्या है ?

उत्तर - जिनेन्द्र देव ने कहा है कि गृहस्थ हो या मुनि दोनों के लिये आत्मरमणता ही सिद्धि सुख का उपाय है। चतुर्थ, पंचम गुणस्थानवर्ती गृहस्थ भी आत्मा में बसता है, बस सकता है। गृहस्थाश्रम में राग होने पर भी उससे निवृत्त होकर धर्मी जीव स्वरूप में बसते हैं। मुनिराज उग्ररूप से आत्मा में रमते हैं। सम्यक्त्वी जीव को तीन कषाय चौकड़ियाँ हैं, श्रावक को दो कषाय चौकड़ियाँ व मुनिराज को मात्र एक कषाय की चौकड़ी है, परन्तु निश्चय से तीनों आत्मा में ही बसे हुए हैं। वे कषाय और राग में नहीं बसते क्योंकि उनकी दृष्टि एक आत्मा पर ही है, रागादि हैं वे उन्हें मात्र जानते हैं। जहाँ जिसकी रुचि वहाँ उसका वास होता है, जहाँ जिसकी रुचि नहीं वहाँ उसका वास नहीं होता। जिसने आत्मा में रुचि करके आत्मा में ही वास किया है, वे भले गृहस्थ हों या मुनि दोनों अल्पकाल में सिद्धि सुख को प्राप्त करेंगे।

तत्त्वज्ञानी विरले होते हैं -

विरला जाणहिँ तत्तु बुह विरला णिसुणहिँ तत्तु ।
विरला झायहिँ तत्तु जिय विरला धारहिँ तत्तु ।। ६६ ।।

अर्थ - विरले ही पंडित तत्त्व को जानते हैं, विरले ही श्रोता तत्त्व को सुनते हैं, विरले जीव ही तत्त्व को ध्याते हैं, विरले ही तत्त्व को धारण करके स्वानुभवी होते हैं।

प्रश्न - तत्त्वज्ञान की विरलता को स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर - मन रहित असैनी पंचेन्द्रिय तक के जीवों में विचार करने की शक्ति नहीं है तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में नारकी रात-दिन कषाय के कार्यों में लगे हैं। पशुओं में भी आत्मज्ञान अति दुर्लभ है। देवों में विषयों की अति तीव्रता है तथा वैराग्य भावना की दुर्लभता है।

मनुष्य गति में ही आत्मज्ञान प्राप्ति का साधन सुगम है तब भी उसकी प्राप्ति अति दुर्लभ है, क्योंकि मनुष्यों में कितने तो रात-दिन शरीर की अनुकूलता बनाये रखने में ही संलग्न रहते हैं। कितने ही लोग क्रियाकांड से धर्म मानते हैं, जबकि क्रियाकांड से धर्म होता नहीं है। आत्मा और आनंद स्वरूप के भेद के लक्ष्य से भी धर्म नहीं होता। ऐसा कहने वाले विरले ज्ञानी कदाचित् मिल जावें तो सुनने वाले रुचिवंत श्रोता मिलना दुर्लभ है।

आत्मा शुद्ध आनंद पिंड है, इसे कोई पंडित ही जानता है। शुद्ध आत्म तत्त्व की बात सुनने वाले भी विरले ही होते हैं, इस तत्त्व का ध्यान भी कोई विरले ही करते हैं। आत्म ज्ञान प्राप्त होना बहुत कठिन है, इसलिये अति अल्प जीव ही आत्मज्ञान का लाभ पा सकते हैं। आत्म तत्त्व की बात कहने वाले तो दुर्लभ हैं। परन्तु उसे सुनने वाले भी दुर्लभ ही हैं। अंतर में आत्मा की ओर झुकाव करके स्वरूप को ध्येय बनाकर उसका

ध्यान करने वाले जीव भी विरले हैं। राग रहित वीतराग आत्मा की वीतरागी परिणति प्रकट करके उसकी धारणा करना महा दुर्लभ है। इस धारणा को स्मृति में लेकर बारम्बार अनुभव करने वाले जीव बहुत ही विरले हैं। बहुत ही थोड़े जीव इस अनुपम तत्त्व का लाभ ले सकते हैं।

कुटुम्ब मोह त्यागने योग्य है -

इहु परियण ण हु महुतणउ इहु सुहु-दुक्खहँ हेउ ।
इम चिंतंतहँ किं करइ लहु संसारहँ छेउ ।। ६७ ।।

अर्थ - यह कुटुम्ब परिवार मेरा निश्चय से नहीं है यह भाव सुख-दु:ख का ही कारण है, इस प्रकार विचार करने से संसार का छेद शीघ्र ही हो जाता है।

प्रश्न - कुटुम्ब मोह त्यागने योग्य क्यों है ?

उत्तर - संसार में सब जीव अपनी-अपनी आयु पर्यंत रहते हैं। आयु क्षय होते ही स्वोपार्जित पाप-पुण्य कर्म के अनुसार कोई देवगति, कोई मनुष्य गति, कोई तिर्यंच गति और कोई नरक गति में जाते हैं। किसी का किसी से सम्बंध नहीं रहता है। मोह स्वार्थ के वशीभूत होता है। स्वार्थ न सधने पर कुटुम्बी भी विरोधी हो जाते हैं। इन्द्रिय सुख न सधने पर दु:ख और द्वेष होता है इसलिये कुटुम्ब त्यागने योग्य है। ज्ञानी सम्यग्दृष्टि गृहस्थ होते हुए भी जल में कमल के समान निर्लिप्त रहता है। मोह न करते हुए अपने कर्तव्य का निर्वाह करता है।

कुटुम्ब के मोह में पड़कर आत्मध्यान की उपेक्षा करना योग्य नहीं है। स्त्री, पुत्र, परिवार आदि लौकिक सुख-दु:ख के अर्थात् दु:ख के ही निमित्त हैं इसलिये कुटुम्ब मोह त्यागने योग्य है।

संसार में कोई अपना नहीं है -

इंद फणिंद णरिंदय वि जीवहँ सरणु ण होंति ।
असरणु जाणिवि मुणि धवला अप्पा अप्प मुणंति ।। ६८ ।।

अर्थ - इन्द्र, धरणेन्द्र व चक्रवर्ती कोई भी संसारी प्राणियों के लिये शरणभूत नहीं हो सकते, उत्तम मुनि अपने को अशरण (मुझे काई शरण नहीं है ऐसा) जानकर अपने आत्मा द्वारा आत्मा का अनुभव करते हैं।

प्रश्न - संसार में अपना कौन है ?

उत्तर - आत्मज्ञानी ध्यानी महामुनि संत योगीन्दुदेव जगत के समक्ष करुणा पूर्वक कहते हैं कि इन्द्र, धरणेन्द्र या चक्रवर्ती कोई भी इस संसारी जीव का रक्षक नहीं है। प्रत्येक को अपना-अपना आत्मा ही शरण है, दातार, रक्षक है इसलिये मुनिराज स्वयं अपनी शरण लेकर निज को ध्याते हैं। संसार में धर्म के अतिरिक्त कोई अपना नहीं है।

जीव सदा अकेला है -

इक्क उपज्जइ मरइ कु वि दुहु सुहु भुंजइ इक्कु ।
णरयहँ जाइ वि इक्क जिउ तह णिव्वाणहँ इक्कु ।। ६९ ।।

अर्थ - जीव अकेला ही जन्मता है व अकेला ही मरता है, अकेला ही दु:ख व सुख भोगता है,

अकेला ही जीव नरक जाता है तथा अकेला जीव ही निर्वाण को प्राप्त होता है।

प्रश्न - जीव सदा अकेला है, कैसे ?

उत्तर - चार गतियों के भ्रमण में अनेक जन्मों में इस जीव को अनेक माता-पिता, भाई-बहिन, स्त्री-पुत्र, मित्र तथा जड़ वस्तुओं का संयोग प्राप्त हुआ और छूटा किन्तु आत्मा अकेला ही रहा। जीव जैसे शुभ-अशुभ भाव करते हैं, वैसे कर्मों का बंध होता है और वैसा ही उनका फल मिलता है।

जीव संसार में अकेला आता है और अकेला ही जाता है। कोई स्वजन जीव के साथ नहीं जाते। जीवन पर्यन्त जैसे भाव किये थे उनके अनुसार जीव मरकर अकेला ही अन्य गति में जाता है। स्वभाव दृष्टि करके आत्मा में लीन होकर सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके मुक्ति में भी जीव अकेला ही जाता है। वहाँ देव, शास्त्र, गुरु या संघ साथ में नहीं जाता। स्वरूप में एकाग्रता करके अपना आत्मा ही अपने को मुक्ति प्राप्त कराता है। इस प्रकार सर्वत्र जीव अकेला है।

निर्मोही होकर आत्मा का ध्यान कर -

एक्कुलउ जइ जाइसिहि तो परभाव चएहि ।
अप्पा झायहि णाणमउ लहु सिव सुक्ख लहेहि ।। ७० ।।

अर्थ - यदि तू अकेला ही जायेगा तो राग-द्वेष, मोहादि परभावों को त्याग दे। ज्ञानमय आत्मा का ध्यान कर तो शीघ्र ही मोक्ष का सुख पायेगा।

प्रश्न - ध्यान में लीन होने का उपाय क्या है ?

उत्तर - मोह, राग-द्वेषादि सर्व परभावों को त्याग कर सदा शुद्ध पवित्र ज्ञानमयी निज आत्मा का ध्यान करने से मुक्ति का सुख मिलता है। जानना आत्मा का स्वभाव है। जहाँ आत्मा-जहाँ ज्ञान, वहाँ-वहाँ मैं हूँ और जहाँ-जहाँ ज्ञान नहीं, वहाँ-वहाँ मैं नहीं हूँ। भक्ति में, रागादि भावों में ज्ञान नहीं, इसलिये वे मैं नहीं, मैं चैतन्यमात्र हूँ। ऐसे ज्ञानमय आत्मा को जानकर उसी में एकाग्र होना ध्यान में लीन होने का उपाय है।

पुण्य को पाप जाने वही ज्ञानी है -

जो पाउ वि सो पाउ मुणि सव्वु इ को वि मुणेइ ।
जो पुण्णु वि पाउ वि भणइ सो बुह को वि हवेइ ।। ७१ ।।

अर्थ - जो पाप है उसको पाप जान, सब कोई उसे पाप ही मानते हैं, जो कोई पुण्य को भी पाप कहता है वह बुद्धिमान कोई विरला ही है।

प्रश्न - ज्ञानी पुण्य को क्या मानते हैं ?

उत्तर - हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म, परिग्रह आदि के भावों को तो सारा जगत पाप कहता है परन्तु दया, दान, अहिंसा, सत्य आदि पुण्य भावों को भी पाप कहने वाले विरले ही ज्ञानी हैं। पुण्य, पाप है ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं।

ज्ञानी को भी अशुभ से बचने के लिए शुभ भाव आते हैं परन्तु चैतन्यमयी अमृत स्वरूप से च्युत होकर पुण्य भाव में आना, बंध का कारण होने से यह निश्चय से पाप है। पुण्य के फल में संसार ही फलता है। इसलिये ज्ञानी पुण्य को भी पाप कहते हैं।

साधारणतया सभी जीव पाप भाव को हेय और पुण्य भाव को उपादेय मानते हैं। पुण्य के फल में सुख की आशा रखते हैं क्योंकि पुण्य से इन्द्र, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, आदि महावैभव युक्त पदवियाँ प्राप्त होती हैं। ये पदवियाँ भी दु:ख स्वरूप हैं। पुण्य-पाप भाव दोनों एक ही जाति के हैं। दोनों का फल संसार और दु:ख ही है। ऐसा जानने वाले तो कोई विरले विद्वान ज्ञानी ही होते हैं। जिसके कारण संसार में रहना पड़े, विषय भोगों में फंसना पड़े, स्वाधीनता का घात हो ऐसा पुण्य भी पाप ही है ऐसा ज्ञानी मानते हैं।

पुण्य कर्म सोने की बेड़ी है -

जह लोहम्मिय णियड बुह तह सुण्णम्मिय जाणि ।
जे सुह असुह परिच्चयहिँ ते वि हवंति हु णाणि ।। ७२ ।।

अर्थ - हे पंडित! जैसे लोहे की बेड़ी है वैसे ही स्वर्ण की बेड़ी है ऐसा समझ। जो शुभ-अशुभ दोनों प्रकार के भावों का त्याग करते हैं वे ही निश्चय से ज्ञानी हैं।

प्रश्न - पुण्य कर्म को सोने की बेड़ी क्यों कहा है ?

उत्तर - पुण्य-पाप कर्म दोनों ही बंधन हैं। पुण्य को सोने की बेड़ी और पाप को लोहे की बेड़ी कहा है, दोनों ही कर्म संसार में वास कराने वाले हैं। आचार्य श्री तारण स्वामी पंडितपूजा ग्रन्थ में कहते हैं - पुण्य पाप प्रक्षालितं अर्थात् जब पुण्य-पाप दोनों का विघटन होता है, तब यह जीव स्वाधीन मोक्ष सुख को प्राप्त करता है। पुण्य कर्म भी बंधन ही है, संसार का ही कारण है इसलिये पुण्य कर्म को सोने की बेड़ी कहा है।

भाव निर्ग्रन्थ ही मोक्षमार्गी है -

जइया मणु णिग्गंथु जिय तइया तुहुँ णिग्गंथु ।
जइया तुहुँ णिग्गंथु जिय तो लब्भइ सिवपंथु ।। ७३ ।।

अर्थ - हे जीव ! जब तेरा मन निर्ग्रन्थ है तब तू सच्चा निर्ग्रन्थ है। जब तू निर्ग्रन्थ है तो तूने मोक्षमार्ग पा लिया।

प्रश्न - मोक्षमार्गी कौन है ?

उत्तर - भाव निर्ग्रन्थ ही मोक्षमार्गी है। जिसने आत्म सम्पदा में एकत्व किया है उसका मन वास्तव में निर्ग्रन्थ है। उसने मोक्षपंथ प्राप्त कर लिया है। श्रद्धा अपेक्षा से सम्यग्दृष्टि भी भाव निर्ग्रन्थ है। निज शुद्ध स्वभाव की प्रीति, दृष्टि और अनुभव करने वाले सम्यग्दृष्टि को राग के प्रति प्रीति न होने से वास्तविक भाव निर्ग्रन्थता है।

प्रथम तो अन्तरंग में मन को ग्रंथि रहित करना चाहिए। मन में दया, दान के विकल्प उठते हैं वह भी राग की ग्रंथि है। उस ग्रंथि को भेद कर प्रथम मन को निर्ग्रन्थ करना ही मोक्षमार्ग है। आत्म वस्तु स्वयं निर्ग्रन्थ है तो उसकी दृष्टि करने वाला भी भाव से निर्ग्रन्थ है तथापि मात्र बाह्य में द्रव्य से निर्ग्रन्थ का एक भी भव घटता नहीं। जैसे-चावल के ऊपर का छिलका तो निकले परन्तु उसकी अन्तर की ललाई न निकले तो चावल का असली स्वाद आता नहीं। वैसे ही कोई जीव बाह्य संयोगों को त्याग दे, परन्तु अन्तर में शुद्धात्मा की दृष्टि, अनुभव न करे, समदर्शी-समताभाव प्राप्त न करे, आत्मिक आनंद का पिपासु न बने और मोह, राग-द्वेष रूपी अन्तरंग परिग्रह को धारण किये रहे तो उसे मोक्ष प्राप्त नहीं होता, वह सच्चा निर्ग्रन्थ नहीं, मात्र द्रव्य से निर्ग्रन्थ है। भाव निर्ग्रन्थ ही सच्चा मोक्षमार्गी है।

देह में भगवान होता है -

जं वउमज्झहँ बीउ फुडु बीयहं बडु वि हु जाणु ।
तं देहहँ देउ वि मुणहि जो तइलोय पहाणु ।। ७४ ।।

अर्थ - जैसे बरगद (बड़) के वृक्ष में उसका बीज स्पष्टपने व्यापक है, वैसे बरगद (बड़) के बीज में बरगद के वृक्ष को जानो। तैसे इस शरीर में उस देव को अनुभव करो जो तीन लोक में प्रधान है।

प्रश्न - आत्मा ही परमात्मा होता है, उदाहरण सहित बताइये ?

उत्तर - जैसे-बीज में वट वृक्ष प्रकट है और वटवृक्ष में बीज व्याप्त है, वैसे ही आत्मबीज में परमात्म शक्ति विद्यमान है। यदि शक्ति में विद्यमान नहीं हो तो पर्याय में प्रकट कैसे हो ? त्रिलोक में आत्मा ही प्रधान देव है। जैसे-परमात्मा पर्याय में भी पूर्ण हैं वैसे ही प्रत्येक जीव शक्ति अपेक्षा पूर्ण है। ऐसी निज शक्ति का जब तक विश्वास नहीं करता, तब तक दृष्टि सम्यक् नहीं होती अर्थात् सम्यग्दर्शन नहीं होता। मोक्षार्थी को ऐसा विचारना चाहिए कि मेरे आराधने योग्य, सेवने योग्य मेरा आत्मा ही है। जो आनन्दादि अनन्त गुणों से युक्त देह में भगवान विराजमान है वही मेरे लिये ध्याने योग्य है।

जैसे-लेड़ीपीपर कद में छोटी, रंग में काली होने पर भी उसमें ६४ पहरी अर्थात् पूरी-पूरी चिरपराहट भरी है जो उसके पीसने से व्यक्त होती है। अन्दर में चिरपराहट थी तो बाहर आई। इसलिये प्राप्त की ही प्राप्ति है, वैसे ही प्रत्येक आत्मा में ज्ञान आनंद आदि अनंत गुण अन्तर में शक्ति रूप से पड़े हैं तो उसमें प्रकट होते हैं।

आप ही जिन है यह अनुभव मोक्ष का उपाय है -

जो जिण सो हउँ सो जि हउँ एहउ भाउ णिभंतु ।
मोक्खहँ कारण जोइया अण्णु ण तंतु ण मंतु ।। ७५ ।।

अर्थ - जो जिनेन्द्र परमात्मा हैं, वह मैं हूँ, वही मैं हूँ ऐसी शंका रहित होकर भावना कर। हे योगी ! मोक्ष का उपाय यही है और कोई तंत्र या मंत्र नहीं है।

प्रश्न - आत्मा ही जिन है ऐसा अनुभव कैसे हो ?

उत्तर - जिसने आत्मा में से राग-द्वेष और अल्पज्ञता का नाश करके वीतराग सर्वज्ञपना प्रकट किया उन परमात्मा के समान ही मैं हूँ। मेरी और परमात्मा की जाति में कोई अन्तर नहीं है। जैसे-बर्फ की शिला के किसी भी अंश में ऊपर, नीचे, मध्य में कहीं भी गर्मी का अंश नहीं होता, वैसे ही अविकारी चैतन्य पिंड में कहीं भी मोह, राग-द्वेष नहीं है। परमात्मा के समान ही मेरा आत्मा है, ऐसा निर्भ्रान्त होकर चैतन्य सत्ता को स्वीकार करके अपने उपयोग को स्वभाव में एकाग्र करने पर आत्मा ही जिन है ऐसा अनुभव होता है।

आत्मा के गुणों की भावना करे -

बे ते चउ पंच वि णवह सत्तहँ छह पंचाहँ ।
चउगुण सहियउ सो मुणह एयइँ लक्खण जाहँ ।। ७६ ।।

अर्थ - उस अपने आत्मा को दो, तीन, चार, पाँच, नव, सात, छः, पाँच और चार गुण सहित जाने उस परमात्मा के या आत्मा के ये ही लक्षण हैं।

प्रश्न - 'बे ते चउ पंच वि णवह' इस ७६ वीं गाथा का सार क्या है ?

उत्तर - अनंत गुणों का पिंड एक रूप आत्मा है, उसका लक्ष्य करके उसी में स्थिर होना वह निश्चय

है और उसमें स्थिर होने से पहले अपना विविध गुणों से विचार करना वह व्यवहार है।

स्वरूप में स्थिर न हो सके तब धर्मी दो, तीन, चार आदि गुणों के द्वारा विचार करता है, भावना भाता है वह व्यवहार है। गुण पर्याय दो रूप अथवा आत्मा ज्ञान, दर्शन स्वरूप है, ऐसा दोपने से आत्मा का विचार कर सकता है। धर्मी जीव लोक में प्रत्येक को जाने, देखे किन्तु कहीं भी अपनापन नहीं करता। धर्मी जीव उत्पाद, व्यय, ध्रुव ऐसे तीन प्रकार से आत्मा का विचार करता है।

सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और परमानंद की उत्कृष्ट वीतराग दशा अर्थात् सम्यक् तप इन चार आराधना रूप अथवा अनंत चतुष्टय स्वरूप आत्मा का विचार धर्मी करता है।

अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पाँच परमेष्ठी पद वाला आत्मा एक ही है। पाँचों पद रूप होने की शक्ति प्रत्येक आत्मा में है। नौ क्षायिक लब्धियाँ, स्याद्वाद के सात भंग अथवा नैगम आदि सात नय, अस्तित्व आदि छह सामान्य गुण या छह दिशाओं में गमन करने की शक्ति, पाँच भाव और स्वचतुष्टय के द्वारा आत्म स्वरूप का चिंतन करना चाहिये यही 'बे ते चउ पंच वि णवह' ७६ वीं गाथा का सार है।

दो को छोड़कर दो गुण विचारें -

बे छंडिवि बे गुण सहिउ जो अप्पाणि वसेइ ।
जिणु सामिउ एमइँ भणइ लहु णिव्वाणु लहेइ ।। ७७ ।।

अर्थ - जो दो को अर्थात् राग-द्वेष छोड़कर ज्ञान, दर्शन दो गुणधारी आत्मा में तिष्ठता है वह शीघ्र ही निर्वाण पाता है ऐसा जिनेन्द्र भगवान कहते हैं।

प्रश्न - वह कौन से दोष हैं, जिनको त्याग करने की और वह कौन से गुण हैं जिनको ग्रहण करने की प्रेरणा आचार्य दे रहे हैं ?

उत्तर - बंध के कारण राग-द्वेष हैं। ज्ञेयों में यह इष्ट और अनिष्ट ऐसे दो खण्ड करना, ये राग-द्वेष हैं इनको त्याग करने की तथा आत्मा ज्ञान दर्शनमयी है इन दो गुणों को ग्रहण करने की प्रेरणा आचार्य योगीन्दुदेव दे रहे हैं।

प्रश्न - मिथ्याबुद्धि क्या है ?

उत्तर - आत्मा के अलावा अनंत पर पदार्थों में इष्ट-अनिष्टपने की मान्यता करना वह अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ है। उसमें से क्रोध और मान ये द्वेष रूप हैं और माया तथा लोभ ये राग रूप हैं। मिथ्यादृष्टि जीव पर पदार्थों में अहंकार और ममकार करता है। अर्थात् ये मैं हूँ और ये मेरे हैं ऐसा मिथ्यात्व का सेवन करना यह मिथ्याबुद्धि है।

तीन को छोड़कर तीन गुण विचारें -

तिहिँ रहियउ तिहिँ गुण सहिउ जो अप्पाणि वसेइ ।
सो सासय सुह भायणु वि जिणवरु एम भणेइ ।। ७८ ।।

अर्थ - तीन राग, द्वेष, मोह से रहित होकर तीन गुण सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र सहित आत्मा में जो निवास करता है सो अविनाशी सुख का भाजन होता है, जिनेन्द्र देव ऐसा कहते हैं।

प्रश्न - जिन्हें निज आत्म प्रगति की चाहना है, उन्हें क्या करना चाहिये ?

उत्तर - जिन्हें निज आत्म प्रगति की चाहना है उन्हें मोह, राग-द्वेष, इन तीन दोषों को छोड़कर श्रद्धान, ज्ञान, चारित्र रूप रत्नत्रय के द्वारा आत्मा में स्थिर होना चाहिये।

पं. बनारसीदास जी ने हिन्दी पद्य में लिखा है कि धर्मी अपने स्वरूप को ऐसा विचारता है-

कहे विचक्षण पुरुष सदा मैं एक हूँ, अपने रस सों भर्‌यो अनादि टेक हूँ ।
मोहकर्म मम नहीं, नाहिं भ्रम कूप है, शुद्ध चेतना सिंधु हमारो रूप है ।।

मोह तो भ्रम का कुंआ है और भगवान आत्मा शुद्ध चेतना का सागर है ऐसी दृष्टि ही आत्म प्रगति का उपाय है।

चार को छोड़कर चार गुण विचार -

चउ कसाय सण्णा रहिउ चउ गुण सहियउ वुत्तु ।
सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ जिम परु होहि पवित्तु ।। ७९ ।।

अर्थ - चार क्रोधादि कषायें, चार संज्ञा- आहार, भय, मैथुन तथा परिग्रह रहित व दर्शन, ज्ञान, सुख और वीर्य चार गुण सहित आत्मा कहा गया है। हे जीव ! तू उसका ऐसा मनन कर जिससे तू परम पवित्र हो जावे।

प्रश्न - परम पवित्र दशा प्राप्त करने का उपाय क्या है ?

उत्तर - आत्मानुशासन ग्रन्थ में कहा है - जहाँ मगरमच्छ होता है वहाँ अन्य जीव नहीं रह सकते। वैसे ही जब तक गंभीर और निर्मल मन रूपी सरोवर में क्रोध, मान, माया, लोभ रूपी मगरमच्छों का वास है तब तक गुणों का समूह वहाँ नहीं रह सकता इसलिये समता और इन्द्रिय दमन द्वारा चार कषायों और चार संज्ञाओं को जीतने का प्रयत्न करना चाहिये और मनन करना चाहिये कि मेरा आत्मा क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायों से तथा आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन चार संज्ञाओं से रहित है और अनंत ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य इन चार गुणों से सहित है ऐसा मनन करते हुए शुद्धात्म स्वभाव का आश्रय लेना ही परम पवित्र दशा प्राप्त करने का उपाय है।

पाँच के जोड़ों से रहित व दश गुण सहित आत्मा को ध्यावे -

बे पंचहँ रहियउ मुणहि बे पंचह संजुत्तु ।
बे पंचहँ जो गुण सहिउ सो अप्पा णिरु वुत्तु ।। ८० ।।

अर्थ - दो प्रकार के पाँचों से रहित होकर अर्थात् पाँच इन्द्रियों को रोककर व पाँच अव्रतों को त्यागकर, दो प्रकार के पाँच अर्थात् पाँच इन्द्रिय दमन रूप संयम व पाँच महाव्रत सहित होकर आत्मा का मनन करो, जो दस गुण उत्तम क्षमादि सहित है व अनंत ज्ञानादि दस गुण सहित है उसको निश्चय से आत्मा कहा जाता है।

प्रश्न - दस गुणों से आत्मा का विचार कैसे करना चाहिये ?

उत्तर - दस गुणों से आत्मा का विचार निम्नानुसार करना चाहिये - यह आत्मा क्रोध रूप विकार से रहित पृथ्वी के समान क्षमा गुण का धारी है, शास्त्र में पृथ्वी को क्षमा की उपमा दी है। जैसे - पृथ्वी को कोई

खोदे, पीटे उस पर कुछ भी उपद्रव करे तो भी पृथ्वी क्रोध नहीं करती, वैसे ही आत्मा क्षमा गुण का भंडार ज्ञाता दृष्टा रहता है। क्रोध नहीं करता।

आत्मा मार्दव धर्म का धारी है अर्थात् निर्मानता-कोमलता का पिंड है। माया के अभाव में आत्मा उत्तम आर्जव धर्म धारी सरल परमात्मा है। महा सत्य स्वरूप को धरने वाला है। लोभ के अभाव में आत्मा उत्तम शौचधर्म धारी है, पवित्र है, संतोष स्वरूप है।

आत्मा संयम धर्म धारी है, उसमें असंयम का अभाव है। सर्व इच्छाओं के अभाव स्वरूप वीतराग स्वरूप में, शुद्धात्मा में एकाकार होकर तपना उत्तम तप धर्म है।

बाहर की वस्तुओं का त्याग करना या शास्त्र, औषध आदि दान देना यह व्यवहार त्याग है, शुद्ध स्वरूप में एकाग्र होकर पर्याय में शुद्धता प्रकट करना और अशुद्धता का त्याग करना उत्तम त्याग धर्म है।

मेरे स्वरूप में अन्य आत्माओं का तथा पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल का अभाव है। राग, शरीर, मन, वाणी आदि मेरे नहीं, ऐसी अन्तर में भावना करने का नाम आकिंचन्य धर्म है। आत्मा त्रिकाल अपरिग्रहवान है। उसका ध्यान करके पर्याय में अपरिग्रह दशा प्राप्त करना वह आकिंचन्य धर्म है।

उत्तम ब्रह्म रूप आत्मा अनादि-अनंत है, उसमें लीन होना उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म है तथा काया से ब्रह्मचर्य पालना वह व्यवहार ब्रह्मचर्य धर्म है।

दशलक्षण धर्म से निज स्वरूप का विचार अथवा दस गुणों से अपने स्वरूप का विचार करना चाहिये।

आत्मा अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, अनंतदान, अनंत लाभ, अनंत भोग, अनंत उपभोग, अनंत वीर्य और अनंत सुख ऐसे दस विशेषणों सहित परमात्म स्वरूप है।

आत्म रमण में तप त्यागादि सब कुछ है -

अप्पा दंसणु णाणु मुणि अप्पा चरणु वियाणि ।
अप्पा संजमु सील तउ अप्पा पच्चक्खाणि ।। ८१ ।।

अर्थ - आत्मा ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान जानो, आत्मा को सम्यक्‌चारित्र समझो, आत्मा ही संयम, शील और तप है, आत्मा ही प्रत्याख्यान या त्याग है।

प्रश्न - आत्म रमणता में तप त्यागादि सब कुछ है, स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर - आत्मा को ही संयम, शील, तप और त्याग कहा है क्योंकि आत्म स्वभाव में रमणता होते ही निश्चय से मोक्ष के सभी साधन प्रकट हो जाते हैं।

सच्चे देव, गुरु, शास्त्र तथा सात तत्त्वों की श्रद्धा व्यवहार सम्यग्दर्शन है परन्तु वह शुभराग रूप है। निर्मल वीतराग स्वरूप आत्मा की रुचि करने से पर्याय में जो निर्मल प्रतीति होती है वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। ज्ञान में अपना शुद्ध स्वभाव झलकना शुद्ध स्वभाव का प्रकट होना सम्यग्ज्ञान है। शुद्ध स्वभाव में लीन होने पर जो निर्विकल्प आनंद का अनुभव होता है वह सम्यक्‌चारित्र है।

पाँच इन्द्रिय और मन का निरोध करना तथा छह काय के जीवों की रक्षा का भाव होना व्यवहार संयम है, और अपने शुद्ध स्वभाव में स्थिर रहना, तथा राग-द्वेष नहीं करना वह निश्चय संयम है।

मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना इस प्रकार नौ प्रकार से कामविकार को टालना वह

व्यवहार ब्रह्मचर्य है और अपने ब्रह्म अर्थात् आनंद स्वरूप निजात्मा में चरना, रमना वह निश्चय ब्रह्मचर्य है।

देह की क्रिया तप नहीं, क्योंकि वह जड़ है। पुण्य-पाप भाव भी तप नहीं, क्योंकि वे अनात्मा हैं, आत्म प्रतपन ही निश्चय तप है। निजात्मा को सर्व पर द्रव्य और परभावों से भिन्न अनुभव करना यह निश्चय प्रत्याख्यान है। इस प्रकार आत्म रमणता में ही श्रद्धान, ज्ञान, चारित्र, तप और त्याग आदि सब कुछ है।

परभावों का त्याग ही सन्यास है -

जो परियाणइ अप्प परु सो परु चयइ णिभंतु ।
सो सण्णासु मुणेहि तुहुँ केवल णाणिं उत्तु ।। ८२ ।।

अर्थ - जो आत्मा व पर को पहचान लेता है वह बिना किसी भ्रान्ति के पर को त्याग देता है तू उसे ही सन्यास या त्याग जान ऐसा केवलज्ञानी ने कहा है।

प्रश्न - सन्यासी किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो आनंद स्वरूप शुद्धात्मा को स्व जानता है और शरीर, कर्म, पुण्य-पाप आदि पर द्रव्य, परभाव को पर रूप जानता है, वह जीव किसी भी प्रकार की भ्राँति बिना पर को त्याग देता है और स्वरूप में स्थिर होता है, वही जीव सन्यासी है। ऐसे सन्यास का प्रारम्भ अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से हो जाता है। ऐसा ज्ञानी, दृष्टि की अपेक्षा सन्यासी है, परन्तु स्थिरता की अपेक्षा मुनिराज ही सन्यासी हैं।

रत्नत्रय धर्म ही उत्तम तीर्थ है -

रयणत्तय संजुत्त जिउ उत्तिमु तित्थु पवित्तु ।
मोक्खहँ कारण जोइया अण्णु ण तंतु ण मंतु ।। ८३ ।।

अर्थ - हे योगी ! रत्नत्रय सहित जीव उत्तम व पवित्र तीर्थ है। यही मोक्ष का उपाय है और कोई तन्त्र या मन्त्र नहीं है।

प्रश्न - उत्तम तीर्थ किसे कहा है ?

उत्तर - उत्तम तीर्थ रत्नत्रय युक्त जीव ही है। भवसागर से तारने वाला तीर्थ शुद्ध आत्मा का दर्शन, ज्ञान और चारित्र है। निश्चय रत्नत्रय ही साक्षात, उत्तम, पवित्र तीर्थ है। उसकी यात्रा करने से ही जन्म, जरा, मरण का नाश होकर मुक्ति प्राप्त होती है।

रत्नत्रय का स्वरूप -

दंसणु जं पिच्छियइ बुह अप्पा विमल महंतु ।
पुणु पुणु अप्पा भावियए सो चारित्त पवित्तु ।। ८४ ।।

अर्थ - यह आत्मा मल रहित शुद्ध व महान परमात्मा है ऐसी श्रद्धा करना सो सम्यग्दर्शन है, ऐसा जानना सो सम्यग्ज्ञान है। बारबार इस आत्मा के भाव में रहना अर्थात् आत्म स्वभाव में लीन रहना सो पवित्र या निश्चय शुद्ध चारित्र है।

प्रश्न - रत्नत्रय का स्वरूप क्या है ?

उत्तर - आत्मा - मल, दोष रहित विमल ज्ञान स्वरूप है, धुव-शाश्वत स्वयं ही है। उसकी श्रद्धा करना वह सम्यग्दर्शन है। कैसे श्रद्धा करना ? पर सन्मुखता तथा भेद के विकल्प छोड़कर, स्वसन्मुखता पूर्वक

आत्मा को देखना श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। अपने आत्मा को ज्ञेय बनाकर उसका यथार्थ ज्ञान करना सम्यग्ज्ञान है। पर सत्तावलंबी ज्ञान वह ज्ञान ही नहीं है। स्वसत्तावलंबी ज्ञान जो त्रिकाल ज्ञान स्वरूप में से प्रकटता है, वही सच्चा ज्ञान है। जैसे अभेद, अखंड, एक रूप आत्मा को दृष्टि ज्ञान में लिया था, उसी आत्मा में स्थिरता, लीनता करना अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करना, उसी को सर्वज्ञदेव ने यथार्थ चारित्र कहा है।

आत्मानुभव में सब गुण हैं -

जहिँ अप्पा तहिँ सयल गुण केवलि एम भणंति ।
तिहिँ कारणएँ जोइ फुडु अप्पा विमलु मुणंति ।। ८५ ।।

अर्थ - जहाँ आत्मा है वहाँ उसके सर्व गुण हैं, केवली भगवान ऐसा कहते हैं इस कारण योगीगण निर्मल आत्मा का अनुभव करते हैं।

प्रश्न - आत्मा में कितने गुण हैं और उनका ग्रहण कब होता है ?

उत्तर - जैसे आम का ग्रहण करते ही उसके स्पर्श आदि सभी गुणों का ग्रहण हो जाता है वैसे ही आत्मा का ग्रहण होते ही उसके सभी गुणों का ग्रहण हो जाता है। आत्मा एक समय में अनन्त गुण सम्पन्न एक वस्तु है। अनन्त गुण अर्थात् कितने ? आकाश प्रदेशों से अनन्त गुणे गुण प्रत्येक आत्मा में हैं।

आकाश के प्रदेश अनन्त हैं। अनन्त अर्थात् कितने ? छह महिना आठ समय में छह सौ आठ जीव मोक्ष में जाते हैं। अभी तक जितने जीव मुक्त हुए हैं उनसे अनन्त गुणे जीव एक निगोद शरीर में हैं। ये सभी मिलकर सिद्धों से अनन्त गुणे जीव हैं। जीव से अनन्त गुणे पुद्‌गल हैं। पुद्‌गल से अनन्त गुणे तीन काल में समय हैं, उन समयों से अनन्त गुणे आकाश के प्रदेश हैं, उन प्रदेशों से अनन्त गुणे गुण एक-एक जीव में हैं।

भगवान कहते हैं कि प्रत्येक जीव में अनन्तानन्त गुण हैं। जो दोष दिखाई देते हैं वे तो किसी गुण की कोई पर्याय में अल्पदोष हैं। अनन्त गुणों में दोष नहीं हैं। अनन्तानन्त गुण हैं। ये प्रत्येक गुण आत्मा के असंख्यात प्रदेशों में व्यापक हैं। एक-एक गुण को ग्रहण करने में पूरे आत्मा का ग्रहण नहीं होता। परन्तु अखंड अभेद आत्मा के ग्रहण में अनन्त गुणों का ग्रहण हो जाता है।

एक आत्मा का ही मनन कर -

एक्कलउ इंदिय रहियउ मण वय काय ति सुद्धि ।
अप्पा अप्पु मुणेहि तुहुँ लहु पावहि सिव सिद्धि ।। ८६ ।।

अर्थ - एकाकी निर्ग्रन्थ होकर पाँचों इन्द्रियों से रहित होकर मन, वचन, काय की शुद्धि से तू आत्मा के द्वारा आत्मा का मनन कर इससे मोक्ष की सिद्धि शीघ्र ही कर सकेगा।

प्रश्न - आत्मा का मनन किस प्रकार किया जाये और उससे क्या लाभ है ?

उत्तर - कर्म के लक्ष्य से उत्पन्न हुई कर्मधारा है, वह ज्ञानधारा में विघ्न करने वाली है। तीन काल और तीन लोक में वस्तु का जैसा स्वरूप है वैसा बताया गया है- 'एक होय त्रिकाल मां परमार्थनो पंथ' उसमें शिथिलता या फेरफार नहीं की जा सकती। ज्ञान से देख तो तू अकेला ज्ञान का ही पुंज है। आनन्द से देख तो तू अकेले आनन्द का ही पिंड है। आत्मा अनन्त गुणों का समूह है।

परमार्थ दृष्टि से आत्मा कर्म, विकार और शरीरादि से रहित है। अतः मन, वचन, काय की शुद्धि

पूर्वक स्वभाव सन्मुख होकर आत्मा का मनन करना इससे मोक्षमार्ग प्रशस्त होता है।

सहज स्वरूप में रमण -

जइ बद्धउ मुक्कउ मुणहि तो बंधियहिं णिभंतु ।
सहज सरूवइ जइ रमहि तो पावहि सिव संतु ।। ८७ ।।

अर्थ - यदि तू बंध मोक्ष की कल्पना करेगा तो नि:संदेह बंधेगा। यदि तू सहज स्वरूप में रमण करेगा तो शान्त स्वरूप मोक्ष को पावेगा।

प्रश्न - निर्विकल्प समाधि किसे कहते हैं ?

उत्तर - जहाँ मन के विचार, विकल्प आदि सब बंद हो जाते हैं और स्वानुभव का प्रकाश होता है, उसे निर्विकल्प समाधि कहते हैं।

सम्यग्दृष्टि सुगति पाता है -

सम्माइट्ठी जीवडहँ दुग्गइ गमणु ण होइ ।
जइ जाइ वि तो दोसु णवि पुव्वक्किउ खवणेइ ।। ८८ ।।

अर्थ - सम्यग्दृष्टि जीव का गमन खोटी गतियों में नहीं होता है यदि कदाचित् खोटी गति में जावे तो हानि नहीं, वह पूर्वकृत कर्म का क्षय करता है।

प्रश्न - सम्यग्दृष्टि का अशुभ गति में गमन क्यों नहीं होता ?

उत्तर - सम्यग्दृष्टि की दृष्टि में अपने पूर्ण स्वभाव का ही बहुमान है और संसार की ओर उपेक्षाभाव है। वह एक अपने शुद्ध स्वभाव को ही ग्रहण करता है, बाकी शुभ विकल्प से लेकर सम्पूर्ण संसार को ज्ञानी ग्रहण नहीं करता इसलिये ज्ञानी अशुभ गति में नहीं जाता और कदाचित् सम्यग्दर्शन से पूर्व आयु बांध ली हो तो जाता भी है फिर भी उसमें ज्ञानी को हानि नहीं क्योंकि उसके पूर्व कर्म का क्षय ही होता है।

प्रश्न - मोक्ष का पथिक कौन है और उसकी क्या विशेषता है ?

उत्तर - मोक्ष स्वरूप आत्मा की जिसे रुचि और प्रतीति हुई वह मोक्ष का पथिक है। उसे आत्मा के शुद्ध स्वरूप की गाढ़ रुचि है और अतीन्द्रिय सुख में परम प्रीति है, वह सम्यग्दृष्टि है। उसे समस्त संसार के प्रति कोई रुचि नहीं होती।

सम्यग्दृष्टि किसी के साथ अन्याय युक्त व्यवहार नहीं करता। उसको इकतालीस प्रकृतियों का बंध नहीं होता। वह मरकर देव व मनुष्य गति में ही जन्मता है। कदाचित् सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के पहले नरक, तिर्यंच आयु का बंध हो गया हो तो वहाँ समभाव से दु:ख सहनकर अपने पूर्व में बांधे हुए कर्म की निर्जरा करता है।

सम्यग्दृष्टि का श्रेष्ठ कर्तव्य -

अप्प सरूवहँ जो रमइ छंडिवि सहु ववहारु ।
सो सम्माइट्ठी हवइ लहु पावइ भवपारु ।। ८९ ।।

अर्थ - जो सर्व व्यवहार को छोड़कर अपने आत्मा के स्वरूप में रमण करता है वही सम्यग्दृष्टि है, वह शीघ्र संसार से पार हो जाता है।

प्रश्न - सम्यग्दर्शन कैसे होता है ?

उत्तर - स्व द्रव्य में अनंत शुद्धता है, उसके आश्रय के बिना धर्म का प्रारम्भ अर्थात् सम्यग्दर्शन कदापि नहीं हो सकता इसलिये सर्व प्रथम श्रद्धा में ऐसा निर्णय होना चाहिये कि स्वाश्रय से ही धर्म का प्रारम्भ और पूर्णता होती है, पराश्रय से नहीं। क्योंकि सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्यायों का पिण्ड स्व द्रव्य है। स्व के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।

प्रश्न - धर्म का मूल क्या है ?

उत्तर - धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है। कहा भी है - दंसण मूलो धम्मो।

सम्यक्त्वी ही पंडित और प्रधान है -

जो सम्मत्त पहाण बुहु सो तइलोय पहाणु ।
केवल णाण वि लहु लहइ सासय सुक्ख णिहाणु ।। ९० ।।

अर्थ - जो सम्यग्दर्शन का स्वामी है वह पंडित है, तीन लोक में प्रधान है, वह अविनाशी सुख के निधान केवलज्ञान को शीघ्र पा लेता है।

प्रश्न - सम्यक्त्वी ही पंडित और प्रधान है, बताइये ?

उत्तर - जो सम्यग्दर्शन का स्वामी है, जिसने आत्म स्वरूप को समझा है, वही पंडित है। इसके अतिरिक्त जिसने ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़ लिया हो तो भी वह पंडित नहीं है। आत्मा के आश्रय के बिना ग्यारह अंग आदि के पाठी का ज्ञान भी नष्ट हो जाता है और वह संसार में परिभ्रमण करता रहता है। निगोद में अक्षर के अनन्तवें भाग प्रमाण क्षयोपशम रह जाता है। इसलिये आत्मज्ञान बिना अकेला ग्यारह अंग का ज्ञान कुछ कल्याणकारी नहीं, क्योंकि पराश्रित है। जिसने शुद्ध तत्त्व के सन्मुख होकर स्वाश्रय से सम्यग्दर्शन प्रकट किया है वही पंडित और प्रधान है।

आत्मा में स्थिरता संवर व निर्जरा का कारण है -

अजरु अमरु गुण गण णिलउ जहिँ अप्पा थिरु ठाइ ।
सो कम्मेहिँ ण बंधियउ संचिय पुव्व विलाइ ।। ९१ ।।

अर्थ - जहाँ अजर अमर गुणों का निधान आत्मा स्थिर हो जाता है वहाँ वह आत्मा नवीन कर्मों से नहीं बंधता है, पूर्व में संचित कर्मों का क्षय करता है।

प्रश्न - संवर निर्जरा का कारण क्या है ?

उत्तर - अनादि से जीव को पुण्य-पाप के राग और विकल्पों में स्थिर होने से कर्मों का बंधन है किन्तु जो जीव शुद्ध चैतन्य स्वरूप की प्राप्ति करके उसी में स्थिर होता है, उसे नये कर्म नहीं बंधते और पुराने कर्मों का नाश हो जाता है। अपने स्वभाव में स्थिरता ही संवर निर्जरा का कारण है।

आत्मरमी जीव कर्मों से नहीं बंधता -

जह सलिलेण ण लिप्पियइ कमलणि पत्त कया वि ।
तह कम्मेहिं ण लिप्पियइ जइ रइ अप्प सहावि ।। ९२ ।।

अर्थ - जैसे कमलिनी का पत्ता कभी भी पानी से लिप्त नहीं होता, वैसे ही यदि जीव आत्म स्वभाव

में रत हो तो कर्मों से लिप्त नहीं होता है।

प्रश्न - कर्मों से कौन नहीं बंधता है ?

उत्तर - वीतराग स्वरूप आत्मा और उसमें से उत्पन्न हुआ वीतराग भाव, बंध का नाश करने वाला है। सम्यग्दर्शन भी आँशिक वीतराग भाव रूप है।

सम्यग्दृष्टि कर्म संयोगी जीवन में भी वह जिन कर्मों से बंधता नहीं है, उन्हीं कर्मों से पर द्रव्य में अहंबुद्धि करने वाला अज्ञानी बंधता है। अज्ञानी अनन्त संसार को बढ़ाने वाले कर्मों से बंधता है, सम्यग्ज्ञानी भव्य जीव मोक्षमार्गी है। उसने ही रत्नत्रय की एकता को धारण किया है। वह वीतराग स्वभाव में लीन होता है और राग-द्वेष से भिन्न रहता है इसलिये कर्मों से बँधता नहीं है।

समसुख भोगी निर्वाण का पात्र है -

जो सम सुक्ख णिलीणु बुहु पुण पुण अप्पु मुणेइ ।
कम्मक्खउ करि सो वि फुडु लहु णिव्वाणु लहेइ ।। ९३ ।।

अर्थ - जो ज्ञानी समता सुख में लीन होकर बार-बार आत्मा का अनुभव करता है वही प्रकटपने कर्मों का क्षय करके शीघ्र ही निर्वाण को पाता है।

प्रश्न - बारम्बार आत्मा का अनुभव किसे होता है ?

उत्तर - जिसने एक बार अपने अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लिया अर्थात् सम्यग्दर्शन प्रकट किया वह जीव ज्ञानी और धर्मी है, फिर भले वह छह खण्ड का राजा चक्रवर्ती हो या इन्द्र हो लेकिन वह स्वभाव के सिवाय कहीं सुख नहीं मानता। ऐसा ज्ञानी ही समभाव में लीन होकर बारम्बार आत्मा का अनुभव करता है।

आत्मा को पुरुषाकार ध्यावे -

पुरिसायार पमाणु जिय अप्पा एहु पवित्तु ।
जोइज्जइ गुण गण णिलउ णिम्मल तेय फुरंतु ।। ९४ ।।

अर्थ - हे जीव! इस अपने आत्मा को पुरुषाकार प्रमाण, पवित्र गुणों से युक्त व निर्मल तेज से प्रकाशमान देखना चाहिये।

प्रश्न - आत्मा का ध्यान कैसे करना चाहिये ?

उत्तर - भगवान आत्मा क्षेत्र से पुरुषाकार है और भाव से गुणगणधाम-गुणों की खान-गुणगण निलय अर्थात् गुणों के समूह का घर है और निर्मल तेज से स्फुरायमान, अति पवित्र है। ऐसे आत्मा को अन्तर ज्ञान और श्रद्धा से देखना चाहिये। आत्मा परम निर्मल चैतन्य तेज से चमक रहा है। ऐसे आत्मा में चित्त को स्थिर करके ध्यान करना चाहिये।

प्रश्न - सच्चा आत्म ध्यान कौन कर सकता है ?

उत्तर - छटवें-सातवें गुणस्थान में झूलने वाले मुनिराज उत्कृष्ट ध्यान करते हैं। देशव्रती श्रावक मध्यम और अविरत सम्यग्दृष्टि जघन्य ध्याता है। सम्यग्दृष्टि को स्वरूप की दृष्टि हुई है अर्थात् ध्यान करने की योग्यता प्रकट हुई है। सम्यग्दृष्टि को स्वरूपाचरण चारित्र होता है। इसलिये चौथे गुणस्थान से ध्यान की शुरुआत हो जाती है। इसके पहले ध्यान होता नहीं है।

आत्मज्ञानी ही सब शास्त्रों का ज्ञाता है -

जो अप्पा सुद्धु वि मुणइ असुइ सरीर विभिण्णु ।
सो जाणइ सत्थइँ सयल सासय सुक्खहँ लीणु ।। ९५ ।।

अर्थ - जो कोई इस अपवित्र शरीर से भिन्न व अविनाशी सुख में लीन शुद्ध आत्मा का अनुभव करता है वही सर्व शास्त्रों को जानता है।

प्रश्न - सब शास्त्रों का ज्ञाता कौन है ?

उत्तर - त्रिकाली आनन्द आदि अनन्त गुण रूप धर्म को धारण करने वाला आत्मा स्वयं धर्मी है। ऐसे अपने स्वभाव को जिसने अनुभव सहित जाना, उसने द्वादशांग को जान लिया।

परभाव का त्याग कार्यकारी है -

जो णवि जाणइ अप्पु परु णवि परभाउ चएइ ।
सो जाणउ सत्थइँ सयल ण हु सिवसुक्खु लहेइ ।। ९६ ।।

अर्थ - जो कोई आत्मा को व पर पदार्थ को नहीं जानता है व परभावों का त्याग नहीं करता है वह सर्व शास्त्रों को जानता है तो भी मोक्ष के सुख को नहीं पायेगा।

प्रश्न - पर भावों का त्याग कार्यकारी क्यों है ?

उत्तर - एक ओर अपना आत्मा है और दूसरी ओर राग-द्वेष आदि विकारी परभाव हैं। जानना तो दोनों को है परन्तु स्वभाव को जानकर ग्रहण करना है और परभाव को जानकर छोड़ना है। परभाव कर्म के उदय निमित्त से होते हैं, क्षणवर्ती हैं वे आत्मा के स्वभाव भाव नहीं हैं। विभाव कभी आत्म स्वभाव रूप नहीं होते अत: अपने स्वभाव में रमण करने के लिये परभावों का त्याग कार्यकारी है।

परम समाधि शिवसुख का कारण है -

वज्जिय सयल वियप्पइँ परम समाहि लहंति ।
जं विंदहिँ साणंदु क वि स सिव सुक्ख भणंति ।। ९७ ।।

अर्थ - सर्व विकल्पों को त्यागने पर जो परमसमाधि को पाते हैं, तब कुछ आनन्द अनुभव करते हैं इसी सुख को मोक्ष का सुख कहते हैं।

प्रश्न - मोक्ष सुख किसे कहते हैं ?

उत्तर - वस्तु, स्वभाव से सदा निर्दोष है, सदोष तो पर्याय होती है। स्वभाव को निर्दोष कहो, समाधि स्वरूप कहो या वीतराग समरस स्वरूप कहो, ऐसे स्वभाव का अनुभव करने से जीव को आनन्द प्राप्त होता है। इसमें परिपूर्ण लीनता ही मोक्ष का सुख है।

आत्म ध्यान के चार प्रकार -

जो पिंडत्थु पयत्थु बुह रूवत्थु वि जिण उत्तु ।
रूवातीतु मुणेहि लहु जिम परू होहि पवित्तु ।। ९८ ।।

अर्थ - हे पण्डित! जिनेन्द्र द्वारा कहे गये जो पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ व रूपातीत ध्यान हैं उनका मनन कर जिससे तू शीघ्र ही परम पवित्र हो जावे।

आचार्य श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज ने श्री मालारोहण जी ग्रन्थ में कहा है –

पदस्त पिंडस्त रुपस्त चेतं, रूपा अतीतं जे ध्यान जुक्तं ।
आरति रौद्रं मय मान मुक्तं, ते माल दिस्टं ह्रिदै कंठ रुलितं ।। २८ ।।

अर्थ – जो ज्ञानी योगी पदस्थ ध्यान, पिण्डस्थ ध्यान, रूपस्थ ध्यान में चित्त लगाते हैं और रूपातीत ध्यान में लीन होते हैं। आर्तध्यान, रौद्रध्यान और मद मान का त्याग कर देते हैं, वे ज्ञानी योगी ज्ञान गुण माला को हृदय कंठ में झुलती हुई देखते हैं।

प्रश्न – वीतराग भगवान ने ध्यान के कितने भेद कहे हैं ?

उत्तर – वीतराग भगवान ने चार प्रकार के ध्यान कहे हैं –

पदस्थ ध्यान – पदस्थ अर्थात् पाँच पदों में हुए पंच परमेष्ठी का विचार करके अन्दर का ध्यान करना।

पिंडस्थ ध्यान – पिंडस्थ अर्थात् शरीर में रहने वाले ज्ञान पिण्ड आत्मा का ध्यान करना।

रूपस्थ ध्यान – रूपस्थ अर्थात् अरिहंत परमात्मा का ध्यान करना।

रूपातीत ध्यान – रूपातीत अर्थात् रूप से रहित सिद्ध भगवान का विचार करके अन्दर में जाना। इन चार प्रकार के ध्यान द्वारा स्वरूप में एकाग्र होने वाला जीव अल्पकाल में ही सिद्ध हो जाता है।

सामायिक चारित्र कथन –

सव्वे जीवा णाणमया जो सम भाव मुणेइ ।
सो सामाइउ जाणि फुडु जिणवर एम भणेइ ।। ९९ ।।

अर्थ – सर्व ही जीव ज्ञान स्वरूपी हैं ऐसा जो कोई समभाव का मनन करता है, उसी के प्रकटपने सामायिक जानो ऐसा श्री जिनेन्द्र कहते हैं।

प्रश्न – सामायिक चारित्र कब होता है ?

उत्तर – मैं आत्मा ज्ञानमय हूँ और पर जीव भी ज्ञानमय हैं ऐसा जानते ही समभाव प्रकट होता है। पर द्रव्य की या राग की अपेक्षा बिना, स्व के सामर्थ्य से जो ज्ञान होता है वह समभाव है। समभाव ही सच्ची सामायिक है। मेरा स्वभाव ज्ञानमय और आनन्दमय है, ऐसा जानकर जो आत्मस्थ होता है उसे समभाव प्राप्त होता है। वह जीव आत्मानुभव में आ जाता है तब ही परम निर्जरा के कारणरूप सामायिक चारित्र का प्रकाश होता है।

राग-द्वेष का त्याग सामायिक है –

राय रोस बे परिहरिवि जो समभाउ मुणेइ ।
सो सामाइउ जाणि फुडु केवलि एम भणेइ ।। १०० ।।

अर्थ – जो कोई राग-द्वेष का त्याग करके समभाव की भावना करता है, उसको प्रकटपने सामायिक जानो, ऐसा केवली भगवान ने कहा है।

प्रश्न – सामायिक किसे कहते हैं ?

उत्तर – विकल्प रहित भाव में रहना ही सामायिक है। रागादि भावों का त्याग कर अर्थात् एक रूप शुद्धात्मा की दृष्टि पूर्वक विषमता को त्यागकर समताभाव धारण करने को सामायिक कहते हैं।

छेदोपस्थापना चारित्र -

हिंसादिउ परिहारु करि जो अप्पा हु ठवेइ ।
सो बियऊ चारित्तु मुणि जो पंचम गइ णेइ ।। १०१ ।।

अर्थ - जो कोई हिंसादि पापों का त्याग करके आत्मा को आत्मा में स्थिर करता है सो दूसरे चारित्र का धारी है ऐसा जानो, यह चारित्र पंचम गति को ले जाता है। [यहाँ साधकों द्वारा साधने योग्य पाँच चारित्र में से दूसरे छेदोपस्थापना चारित्र का स्वरूप बताया है।]

प्रश्न - छेदोपस्थापना चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो जीव हिंसा आदि पाप के परिणामों का अभाव करके स्वरूप में रमण करता है उसे दूसरा चारित्र होता है जो कि पंचम गति का कारण है। विकार का छेद करके आत्मा को आत्मा में स्थापित करना छेदोपस्थापना नाम का द्वितीय चारित्र है। सामायिक में बैठे हैं, बीच में कोई विकल्प आ जावे, दोष लगे उसका छेदन करके पुनः आत्मा में स्थिर होना उसे छेदोपस्थापना चारित्र कहते हैं।

परिहार विशुद्धि चारित्र -

मिच्छादिउ जो परिहरणु सम्मद्दंसण सुद्धि ।
सो परिहार विसुद्धि मुणि लहु पावहि सिवसिद्धि ।। १०२ ।।

अर्थ - जो मिथ्यात्वादि का त्याग करके सम्यग्दर्शन की शुद्धि प्राप्त करना है उसे परिहार विशुद्धि संयम जानो जिससे शीघ्र मोक्ष की सिद्धि मिलती है।

प्रश्न - परिहार विशुद्धि चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर - परिहार विशुद्धि संयम का व्यवहार में प्रचलित रूप यह है कि विशेष संयम उस साधु को प्राप्त होता है जो तीस वर्ष तक सुख से घर में रहा हो फिर दीक्षा लेकर आठ वर्ष तक तीर्थंकर की संगति में रहे व प्रत्याख्यान पूर्व का अभ्यास करे। ऐसा साधु विशेष हिंसा का त्यागी होता है और छटवें व सातवें गुणस्थान में होता है। इसमें मुनिराज ने अध्यात्म से परिहार विशुद्धि की व्याख्या की है। जिसने मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय आदि का परिहार करके सम्यग्दर्शन की शुद्धि प्रकट की है उसे परिहार विशुद्धि कहते हैं।

यहाँ अध्यात्म की अपेक्षा परिहार विशुद्धि का शब्दार्थ किया है। वास्तव में तो परिहार विशुद्धि संयम मुनिराज को ही होता है। परन्तु यहाँ सम्यग्दर्शन की शुद्धि और मिथ्यात्व के परिहार को परिहार विशुद्धि कहा है। कहा है कि -

गगन मंडल में गौआ वियाणी, वसुधा दूध जमाया ।
माखण था सो विरला पाया, छाछ जगत भरमाया ।।

कहते हैं मक्खन तो विरला ज्ञानी पाता है और सारा जगत छाछ में भरमाया है।

इसके समाधान में कहा गया है कि -

आत्म गगन में ज्ञान की गंगा, जामें अमृत वासा ।
सम्यग्दृष्टि भर-भर पीवे, मिथ्यादृष्टि जावे प्यासा ।।

ऐसे स्वरूप में लीन ज्ञानी को कभी पर पदार्थ में इष्ट अनिष्टपने का राग आ जाता है, उसका परिहार

करके वह पुन: स्वरूप में लीन होता है उसका नाम परिहार विशुद्धि है।

श्री अमृतचन्द्राचार्य ने तत्त्वार्थसार में कहा है- 'जहाँ प्राणियों के घात का विशेष रूप से त्याग हो और चारित्र की विशुद्धि हो उसे परिहार विशुद्धि चारित्र कहते हैं।'

यथाख्यात चारित्र -

सुहुमहँ लोहहँ जो विलउ सो सुहुमु वि परिणामु ।
सो सुहुमु वि चारित्त मुणि सो सासय सुह धामु ।। १०३ ।।

अर्थ - सूक्ष्म लोभ का नाश होने से जो सूक्ष्म वीतराग भाव होता है उसे सूक्ष्म चारित्र या यथाख्यात चारित्र जानो वही अविनाशी सुख का स्थान है।

प्रश्न - सूक्ष्म सांपराय चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर - जब अति सूक्ष्म लोभ कषाय का उदय हो तब जो चारित्र होता है वह सूक्ष्म सांपराय है। यह चारित्र दसवें गुणस्थान में होता है।

प्रश्न - यथाख्यात चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर - कषायों की मंदता और वीतरागता की वृद्धि से दसवें सूक्ष्म लोभ गुणस्थान में सूक्ष्म लोभ का क्षय करता है तब बारहवें गुणस्थान में जाकर यथाख्यात चारित्र को प्रकट करके शुद्ध सुख का अनुभव करता है। मोहनीय कर्म की २८ प्रकृतियों का क्षय होने से न मिटने वाला सुख प्रकट हो जाता है।

यथाख्यात चारित्र अर्थात् पूर्ण चारित्र, उत्कृष्ट चारित्र। यथाख्यात अर्थात् जैसा अन्तर स्वभाव में अकषाय-अविकारी, वीतराग समभाव स्वरूप चारित्र है वैसा ही पर्याय में यथार्थ प्रसिद्ध होना उसे यथाख्यात नाम का वीतराग चारित्र कहते हैं और यह चारित्र ही अविनाशी सुख का स्थान है।

चारित्र की शुरूआत होने के बाद समय-समय शुद्धि की वृद्धि होती जाती है उसी को सामायिक छेदोपस्थापन, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म साम्पराय, यथाख्यात चारित्र आदि नामों से कहा जाता है।

आत्मा ही पंच परमेष्ठी है -

अरहंतु वि सो सिद्धु फुडु सो आयरिउ वियाणि ।
सो उवझायउ सो जि मुणि णिच्छइँ अप्पा जाणि ।। १०४ ।।

अर्थ - निश्चय नय से आत्मा ही अरिहंत है ऐसा जानो, वही आत्मा प्रकटपने सिद्ध है उसी को आचार्य जानो, वही उपाध्याय है, वह आत्मा ही साधु है।

प्रश्न - पंच परमेष्ठी पद कहाँ गर्भित हैं ?

उत्तर - अरिहंत जीवन्मुक्त परमात्मा हैं, उनके अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनंत वीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व व क्षायिक चारित्र का विचार कर अंतरंग शुद्धि का ध्यान करने से आत्मा का स्वरूप ध्यान में आता है। पुरुषाकार अमूर्तीक कर्म रहित आत्मा को सिद्ध कहते हैं। वे आठ कर्मों से रहित निकल परमात्मा हैं। उनके सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, अगुरुलघुत्व, अव्याबाधत्व, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व इन आठ गुणों के विभूषण का ध्यान करके अपने आत्मा में एकतान हो जाने से आत्म स्वरूप में एकाग्रता बढ़ती है।

आचार्य शुद्ध रत्नत्रय, शुद्ध तप व परम वीर्य के धनी हैं। उनके निश्चय रत्नत्रय तथा शुद्धात्मानुभव

दशा का ध्यान करने से अपने ही आत्मा का स्वरूप समझ में आता है। उपाध्याय अप्रमत्त दशा में स्वानुभव में एकाग्र होकर आत्मरस का पान करते हैं। इस आत्मरस का ध्यान करने से अपने आत्मानुभव सुख का आनंद आता है। साधु परमेष्ठी बाह्य चर्या का पालन करते हुए भी शुद्ध आत्मीक भाव में गुप्त होकर निर्विकल्प समाधि करते हैं। ऐसी एकाग्रता का ध्यान करने से अपने ही आत्म शक्तियों पर दृढ़ता आती है। इस तरह आत्मा पंच परमेष्ठीमय है और आत्मा के ध्यान में पंच परमेष्ठी गर्भित हैं।

आत्मा ही ब्रह्मा विष्णु महेश है -

सो सिउ संकरु विण्हु सो सो रुद्द वि सो बुद्धु ।
सो जिणु ईसरु बंभु सो सो अणंतु सो सिद्धु ।। १०५ ।।

अर्थ - वही शिव है, वही विष्णु है, वही रुद्र है, वही बुद्ध है, वही जिन है, ईश्वर है, वही ब्रह्मा है, वही अनन्त है, वही सिद्ध है।

प्रश्न - ब्रह्मा विष्णु महेश कौन है ?

उत्तर - आत्मा ही शिव है क्योंकि आत्मा का श्रद्धान, ज्ञान और ध्यान करने से कल्याण होता है। आत्मा आनन्द देने वाला है इसलिये आत्मा ही शंकर है। आत्मा ज्ञान प्रमाण है और ज्ञान ज्ञेय प्रमाण इसलिये आत्मा लोकालोक प्रमाण है अर्थात् क्षेत्र की अपेक्षा नहीं, केवलज्ञान की अपेक्षा आत्मा लोकालोक व्यापक है इसलिये आत्मा ही विष्णु है। आत्मा ही रुद्र है क्योंकि रुद्र अन्य का नाश करता है, वैसे ही आत्मा आठ कर्मों का नाश करता है। आत्मा ही बुद्ध है क्योंकि एक समय में पूर्णानंद का नाथ आत्मा पूर्ण ज्ञान रूप परिणमता है और ऐसी अनन्त शक्तियाँ आत्मा में विद्यमान हैं इसलिये आत्मा को ही बुद्ध कहा जाता है।

जो परम कृतकृत्य, सर्व प्रकार की इच्छा से रहित और अविनाशी शक्ति के धारक हैं वे परमात्मा ही सच्चे ब्रह्मा हैं, वे अतीन्द्रिय आनन्द स्वरूप में लीन हैं और निज स्वरूप के कर्ता हैं इसलिये ब्रह्मा हैं।

जैसे निर्मल क्षीरसमुद्र में निर्मल ही तरंग उठती है वैसे ही शुद्धात्मा का सर्व प्रवर्तन शुद्ध ही होता है। आत्मा शुद्ध गुण स्वरूप है तो उसका परिणमन भी शुद्ध ही होता है। जैसे गुण हैं वैसी ही पूर्ण निर्मल पर्यायें प्रकट हों तब उसे बुद्ध, जिन, ईश्वर आदि नाम दिये जाते हैं।

परमात्म देव अपने देह में भी है -

एव हि लक्खण लक्खियउ जो परु णिक्कलु देउ ।
देहहँ मज्झहिँ सो वसइ तासु ण विज्जइ भेउ ।। १०६ ।।

अर्थ - इस प्रकार ऊपर कहे लक्षणों से लक्षित जो परमात्मा निरंजन देव है तथा जो इस शरीर में बसने वाला आत्मा है उन दोनों में कोई भेद नहीं है। पिछली गाथा में जो ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शंकर आदि लक्षणों से परमात्मा का स्वरूप कहा है, उनके समान ही आत्म देव इस देह में बसता है। परमात्मा और देह देवालय में विराजमान आत्मदेव में वास्तविक कोई अन्तर नहीं।

आचार्य श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज ने श्री श्रावकाचार जी ग्रन्थ में कहा है -

दर्सन न्यान संजुक्तं, चरनं वीर्ज अनंतयं ।
मय मूर्ति न्यान संसुद्धं, देह देवलि तिस्टिते ।। ४५ ।।

अर्थ - अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख और अनंत वीर्य से संयुक्त परम शुद्ध ज्ञानमयी मूर्ति इस

देह रूपी देवालय में स्थित है।

प्रश्न - साधक जीव की दृष्टि कैसी होना चाहिये ?

उत्तर - परमात्मा का जैसा स्वरूप है वैसा ही स्वरूप प्रत्येक आत्मा का है। पर्याय अपेक्षा से परमात्मा और आत्मा में अन्तर हो, परन्तु वस्तु दृष्टि से देह में स्थित आत्म देव और निरंजन परमात्मा में कोई अन्तर नहीं है। आत्मा में कर्म के निमित्त से विविधता विचित्रता पर्याय में है तथापि उसको गौण करके चैतन्य बिम्ब आत्मा ही परमात्मा है, साधक जीव की ऐसी निश्चयदृष्टि होना चाहिये।

आत्मा का दर्शन ही सिद्ध होने का उपाय है -

जे सिद्धा जे सिज्झिहिहिँ जे सिज्झहिँ जिण उत्तु ।
अप्पा दंसणिँ ते वि फुडु एहउ जाणि णिभंतु ।। १०७ ।।

अर्थ - श्री जिनेन्द्र ने कहा है जो सिद्ध हो चुके हैं, जो सिद्ध होंगे, जो सिद्ध हो रहे हैं वे सब प्रकटपने आत्मा के दर्शन से हैं इस बात को सन्देह रहित जानो।

आचार्य श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज ने श्री मालारोहण जी ग्रन्थ में कहा है -

जे सिद्ध नंतं मुक्ति प्रवेसं, सुद्धं सरूपं गुन माल ग्रहितं ।
जे केवि भव्यात्म संमिक्त सुद्धं, ते जांति मोष्यं कथितं जिनेन्द्रं ।।

अर्थ - जो अनन्त सिद्ध परमात्मा मुक्ति को प्राप्त हुए हैं, उन्होंने शुद्ध स्वरूपी ज्ञान गुणमाला को ग्रहण किया है। जो कोई भी भव्यात्मा (भव्य जीव) सम्यक्त्व से शुद्ध होंगे वे मुक्ति को प्राप्त करेंगे ऐसा जिनेन्द्र भगवंतों का दिव्य संदेश है।

प्रश्न - सिद्ध होने का उपाय क्या है ?

उत्तर - वस्तु त्रिकाल मुक्त स्वरूप ही है, उसे बंध कैसा और आवरण कैसा ? ऐसे मुक्त स्वरूप की शरण लेने पर जो अनुभव होता है वही कल्याणकारी है। मोक्ष का उपाय आत्मानुभव है। आत्मा का पूर्ण स्वभाव मोक्ष है। आत्मा का आत्मा के द्वारा आत्मा को जानना और अपने स्वरूप में लीन होना ही सिद्ध होने का उपाय है।

अनंतकाल में जितने सिद्ध हो चुके हैं, वर्तमान में जो सिद्ध हो रहे हैं, तथा भविष्य में जितने सिद्ध होंगे, वे सभी आत्म दर्शन से ही हुए हैं, हो रहे हैं और होंगे, इसमें कोई संशय नहीं है।

ग्रन्थकर्ता की अन्तिम भावना -

संसारह भय भीयएण जोगिचंद मुणिएण ।
अप्पा संबोहण कया दोहा इक्क मणेण ।। १०८ ।।

अर्थ - संसार के भ्रमण से भयभीत योगिचन्द्राचार्य मुनि ने आत्म संबोधन के लिए एकाग्र चित्त से इन दोहों की रचना की है।

प्रश्न - ग्रन्थकर्ता की अंतिम भावना क्या है ?

उत्तर - आचार्यदेव ने ग्रन्थारम्भ में कहा था कि मैने आत्मसंबोधन के लिये यह रचना की है। हे आत्मन्! तू परमानंद की मूर्ति है, उसी में स्थिर हो। दृष्टि और ज्ञान तो हुआ है परन्तु अब उसी में पूर्ण रूप से

स्थिर हो ऐसे संबोधन के लिये योगसार ग्रन्थ की रचना की है।

बाहर की अनुकूलता में उल्लसित वीर्य है वह आत्मा का रोग है। उस रोग को टालने का उपाय आत्मा की शरण है। आचार्य कहते हैं मुझे संसार का भय है, मुझे राग-द्वेष विकार का भय है। मैं उनमें पड़ना नहीं चाहता। मैं तो राग-द्वेष रहित स्वभाव में रहना चाहता हूँ।

आत्मीक आनन्द का ही भोग करने योग्य है। निराकुल अतीन्द्रिय सुख ही भोगने लायक है। ऐसी शुद्धात्मा की भावना करके आचार्य ने अपना हित किया है तथा शब्दों में भावों की स्थापना करके जो दोहों की रचना की है, वह पाठकों के अति उपकार का निमित्त बने, यही ग्रन्थकर्ता की अंतिम भावना है।

....

(ब) श्री सिद्ध स्वभाव - परिचय

श्री सिद्ध स्वभाव जी केवलमत का ग्रन्थ है। केवलमत पाँचवें क्रम पर है। पाँच मत के मूल अभिप्राय पर विचार करने से ज्ञात होता है कि आचार्य श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज ने आत्म साधना के अंतर्गत पाँच मतों में चौदह ग्रन्थों का सृजन किया है। सर्व प्रथम विचारमत में - साध्य, आचारमत में - साधन, सारमत में - साधना, ममलमत में - सम्हाल और केवलमत में - सिद्धि, इस प्रकार साध्य अर्थात् लक्ष्य, उद्देश्य से प्रारम्भ करके आचार्य देव ने लक्ष्य की प्राप्ति अर्थात् सिद्धि तक की यात्रा इन ग्रन्थों के माध्यम से स्वयं तो की ही है, हम सभी भव्य जीवों के भी कल्याण का पथ प्रशस्त कर महान - महान उपकार किया है।

केवलमत विशिष्ट साधना और अनुभूति से परिपूर्ण आयाम है। यहाँ एक मात्र आत्मा ही है अन्य पर पदार्थ कुछ भी नहीं है। श्री गुरुदेव की आत्म साधना से निष्पन्न अनुभूतियों का भंडार है यह केवलमत। सिद्ध स्वभाव इसका एक सोपान है।

इस ग्रन्थ में आचार्य ने शुद्धात्म स्वरूप के अमृतमयी स्वाद को अनुभव में प्रकट कर ज्ञानानन्द स्वभाव की रसानुभूति का पर्याय में आनंद लिया है।

आत्मा स्वभाव से सिद्ध परमात्मा के समान ज्ञान स्वरूपी है। आचार्य कुन्दकुन्द देव ने नियमसार ग्रन्थ में कहा है कि "जैसे सिद्ध परमात्मा मुक्ति में विराजमान हैं, उनके समान ही आत्मा है जन्म, जरा, मरण आदि अठारह दोषों से रहित है। जैसे - सिद्ध भगवान जन्म - मरण से रहित और क्षायिक भाव के धारी अनंत गुणों सहित हैं। आत्मा सिद्ध के समान होने से अनंत चतुष्टय, अव्याबाधत्व, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व, अगुरुलघुत्व आदि गुणों से सहित है।"

सिद्ध स्वभाव का साधक कैसा होता है ? सिद्ध स्वभाव की साधना कैसे होती है, आदि अनेकों रहस्यों को श्री गुरुदेव ने इस ग्रन्थ में स्पष्ट किया है। आत्म प्रभुता को झलकाने वाला यह अलौकिक ग्रन्थ है। जगत में परम सार वस्तु एक शुद्धात्मा ही है। यह शुद्धात्मा सर्व पर भावों से रहित है। शुद्धात्मा के ध्यान से परम सिद्धि की प्राप्ति होती है। आत्मज्ञानी भव्य जीव अपने परमानंदमयी स्वभाव में निमग्न होकर अविनाशी सत् स्वरूप की अनिर्वचनीय स्वानुभूति का रसपान करते हैं।

सिद्ध स्वभाव मन, वाणी, कर्म से अगोचर, स्वसंवेदन गम्य, परम सत्य पदार्थ है। ऐसे सुखधाम की अनुभूति से इस ग्रन्थ का प्रारम्भ हुआ है। गाथा, सूत्र आदि के प्रमाण की अपेक्षा चौदह ग्रन्थों में यह सबसे लघुकाय ग्रन्थ है, इसमें कुल २० सूत्र हैं, किन्तु सार इतना है कि एक ही सूत्र की अनुभूति परमात्मा बनाने में सामर्थ्यवान है। यह ग्रन्थ सिद्ध प्रभु के समान अपने स्वभाव की अनुभूति कराने वाला प्रयोगात्मक ग्रन्थ है। प्रत्येक सूत्र अंतरंग आत्म वैभव स्वरूप स्वभाव की महिमा और स्वानुभूति को दर्शाता है। इस ग्रन्थ को शब्दों से समझने के बजाय अनुभव से यथार्थ समझा जा सकता है। शब्द अनुभव के पास पहुँचते ही मौन हो जाते हैं। जहाँ शब्द हैं वहाँ अनुभव नहीं है और जहाँ अनुभव है वहाँ शब्द नहीं हैं। ऐसी वचनातीत स्वानुभूति ही जीवन का सार तत्त्व है।

स्वसंवेदन गम्य बोध की महिमा बतलाते हुए आचार्य स्वयं कहते हैं कि "उव उवन न्यान अन्मोय सिद्धि संपत्तं" आत्म स्वभाव की अनुभूति उत्पन्न होने पर ज्ञानमयी स्वरूप की अनुमोदना करके अर्थात् स्वरूप

में रमण करके ज्ञानी सिद्धि की सम्पत्ति को प्राप्त करता है।

सिद्ध स्वभाव कहीं बाहर नहीं है। उसे कहीं से लाना नहीं है। वह अपनी ही निधि है, अंतर में ही विद्यमान है। रागादि भावों से एक समय के लिये विराम लेकर हे भव्य! अनंत ज्ञान सम्पदा का दर्शन, अनुभव तो कर। तुझे इस ओर देखने का अवकाश ही कहाँ है ? जो जीव एक बार अपने वैभव को देख लेते हैं, उन्हें संसार नीरस प्रतीत होने लगता है। एक बार सूर्य को देखने पर नीचे बाह्य जगत का कुछ भी दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार अपने ज्ञान सूर्य से एक बार दृष्टि मिला लेने पर संसार कुछ भी दिखाई नहीं देता। ऐसा अद्‌भुत महिमामय तत्त्व है - सिद्ध स्वभाव।

इस ग्रन्थ के आद्योपांत स्वाध्याय से सिद्ध स्वभाव की महिमा का बोध तो होगा ही, जो क्षयोपशम बुद्धि में रस पड़ा हुआ है, वह भी शिथिल होगा। पर में रस बुद्धि होने पर यह आत्म तत्त्व समझ में नहीं आ सकता। बाहर सर्व पर की महिमा का मन से मोचन हो जाये और स्वभाव बहुमान अंतरंग हृदय में जाग्रत होवे तभी सिद्ध स्वभाव की साधना आराधना का आनंद प्रकट हो सकता है।

अंतिम वर्ष के स्वाध्याय के माध्यम से ऐसे महान ग्रन्थ का चिंतवन मनन करना यह महान सौभाग्य का विषय है। सिद्ध स्वभाव की दृष्टि करके निरंतर उसी के आनंद में आनंदित रहना यही इस ग्रन्थ का प्रयोजन है।

आचार्य श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज द्वारा विरचित
श्री सिद्ध स्वभाव जी

सूत्र - १

सिद्ध स्वभाव का साधक कैसा होता है ?

सिद्धह सिद्ध सुभाउ, देषै न कहइ, सुनी न कहइ, हित उपजाइ न कहइ, बोलै तौ न बोलै।

अर्थ - (सिद्धह सिद्ध सुभाउ) अनन्त जीवों ने आत्म पुरुषार्थ के द्वारा कर्म रहित सिद्ध पद प्राप्त किया है, उन परमात्मा के समान आत्मा का सिद्ध स्वभाव है। ऐसे सिद्ध स्वभाव में रमण करने वाला साधक (देषै न कहइ) देखते हुए भी कुछ नहीं कहता (सुनी न कहइ) सुनी हुई भी कुछ नहीं कहता (हित उपजाइ न कहै) हितकारी बात भी नहीं कहता (बोलै तौ न बोलै) बोलता हुआ भी नहीं बोलता।

भावार्थ - जब ज्ञानी जीव अपने सिद्ध स्वभावी आत्मा में रमण करता है तो वह न तो किसी को देखता है, न किसी से उसे बोलने का भाव रहता है, न ही किसी के लिये हितकारी बात कहता है, वह मात्र अपने आत्म स्वरूप में रमण कर अतीन्द्रिय आनंद अमृत रस का पान करता है। सिद्ध स्वभाव के आनंद को बतलाने की सामर्थ्य शब्दों में नहीं है।

प्रश्न - देखी न कहै, सुनी न कहै, हित उपजी न कहै ऐसी दशा जीव की कब होती है ?

उत्तर - सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान पूर्वक जो ज्ञानी सम्यक्‌चारित्र की साधना में तल्लीन रहता हुआ, ज्ञान के बल से राग भाव को क्षीण करता है, वीतराग प्रधान भावना और चर्या में निमग्न रहता है, अंतर में अपने आत्मा को सिद्ध भगवान के समान अनुभव करता है, इस प्रकार वीतराग समरसी भाव से समुत्पन्न आत्म वैभव में रमण करने पर ज्ञानी जीव देखता हुआ भी नहीं देखता, सुनता हुआ भी नहीं सुनता और राग भाव छूट जाने से हित की बात भी नहीं कहता, उसके अंतर में देखने, सुनने और बोलने का भाव ही समाप्त हो जाता है।

सूत्र - २

सिद्ध स्वभाव का साधक कौन होता है ?

औकास समल न कहै ।।

अर्थ - (औकास - अवकाश, आकाश) जो आकाश के समान निर्मल आत्मा को (समल) मलिन (न कहै) नहीं कहता, आत्मा को अशुद्ध नहीं मानता वह ज्ञानी सिद्ध स्वभाव का साधक है।

भावार्थ - अनंत चतुष्टय से युक्त आत्मा आकाश के समान निर्मल है, कर्म कालिमा से रहित है। जो अपने आत्मा को अशुद्ध नहीं मानता है अर्थात् शुद्धात्म तत्त्व को निरावरण शुद्ध प्रकाशमयी अनुभवन करता है वही सिद्ध स्वभाव की साधना करता है।

प्रश्न - आत्मा की तुलना किससे की है ?

उत्तर - ०१. आत्मा की तुलना आकाश से की है, जिस प्रकार आकाश अपने में जीव, अजीव, धर्म, अधर्म और काल द्रव्य को स्थान दिये हुए है परन्तु तदनुकूल परिणत नहीं होता, उसी प्रकार यह आत्मा जड़ शरीर के सम्बंध से उत्पन्न राग - द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि विकार रूप नहीं होता, विकार एक समय की पर्याय मात्र में होता है, अज्ञान दशा में होता है। यही आकाशवत् निर्मल स्वभाव आत्मा का स्वभाव है।

०२. संसारी आत्मा राग-द्वेष आदि वैभाविक भावों से संश्लेषित होता हुआ भी शुद्ध ही रहता है।

०३. आत्मा का स्वभाव आकाश के समान निर्मल व स्वच्छ है।

०४. आकाश की सत्ता पृथक् और आकाश में रहने वाले पदार्थों की सत्ता पृथक् है। इसी प्रकार धनादि पर पदार्थों की सत्ता अलग और आत्मा की सत्ता अलग है। तैजस कार्माण शरीर की सत्ता भी आत्मा से अलग है। कषायों की तीव्रता या मंदता तथा मन, वचन, काय की सभी क्रियायें आत्मा से एकदम भिन्न हैं।

सूत्र - ३

अरिहंत सिद्ध पद किस प्रकार प्राप्त होता है ?

उत्पन्न आयरन साधू अरहंत सिद्ध ।।

अर्थ - (साधू आयरन उत्पन्न) साधु पद का आचरण उत्पन्न होने पर ही (अरहंत सिद्ध) अरिहंत और सिद्ध पद की प्राप्ति होती है।

भावार्थ - वीतराग साधु पद को धारण करने पर ही जीव संसार सागर से पार होता है। साधु पद से ही अरिहंत और सिद्ध पद की प्राप्ति होती है इसलिये वीतरागता ही धर्म है। वीतरागता ही श्रद्धेय और पूज्य है।

प्रश्न - साधु कैसे होते हैं ?

उत्तर - ०१. परम संयमी महात्मा होने से तथा त्रिकाल निरावरण निरंजन शुद्धात्मा का ध्यान करते हैं एवं २८ मूलगुणों का निरतिचार पालन करते हुए शुद्धोपयोग में तल्लीन रहने का पुरुषार्थ करते हैं।

०२. सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और परम तप नाम की चतुर्विध आराधना में सदा अनुरक्त रहते हैं। ०३. बाह्य-अभ्यंतर समस्त परिग्रह के ग्रहण से रहित होने के कारण निर्ग्रन्थ होते हैं।

प्रश्न - साधु कैसी भावना भाते हैं ?

उत्तर - साधु अरिहंत, सिद्ध पद प्राप्त करने की भावना भाते हैं। अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनंत वीर्य इन चार अनंत चतुष्टय का प्रकाश हो जावे इसलिये वे शुद्ध आत्मा का निश्चय चारित्र पालते हैं

अर्थात् शुद्धोपयोग में तल्लीन रहते है, धर्म ध्यान करते हैं फिर शुक्ल ध्यान ध्याते हैं, जिससे चार घातिया कर्मों का नाश होता है, साधु ऐसी वैराग्य भावना भाते हैं।

सूत्र - ४

सिद्ध स्वभाव कैसे प्राप्त होता है -

इच्छा भोजन जसु उछाह ऐसो सिद्ध सुभाउ ।।

अर्थ - (इच्छा भोजन जसु उछाह) इच्छा [प्रीतिकर, रुचिकर] भोजन के प्रति जैसा उत्साह रहता है (ऐसो सिद्ध स्वभाव) ऐसा ही उत्साह सिद्ध स्वभाव को प्राप्त करने का हो तो अवश्य ही सिद्ध स्वभाव की प्राप्ति होती है।

भावार्थ - किसी व्यक्ति को भोजन में कुछ खाने की रुचि हो और वह वस्तु मिल जाये तो वह अत्यंत उत्साहित होकर भोजन ग्रहण करता है। उसी प्रकार प्रगाढ़ रुचि पूर्वक अनंत उत्साह पूर्वक सिद्ध स्वभाव को ग्रहण करे तो इसी समय सिद्ध स्वभाव स्वानुभूति में प्रकट होगा। (देखिये - श्री योगसार ग्रन्थ, गाथा - ५०)

प्रश्न - सिद्ध स्वभाव कैसा है ?

उत्तर - अनंत निधियों से सम्पन्न परम तृप्ति दायक, अनंत असीम शक्तियों का संग्रहालय, गुणों का भंडार, स्वकीय अर्थात् जिसे किसी ने बनाया नहीं है, स्वयं सिद्ध और अविनाशी परमात्म स्वरूप है जिसमें से प्रतिक्षण आनंद की गंगा प्रवाहित हो रही है, ऐसा महिमामय सिद्ध स्वभाव है।

सूत्र - ५

सिद्ध स्वभाव की महिमा -

उत्पन्न प्रवेस उपजै लहई तहां षिपइ, क्रोध षिपइ, देषी षिपइ, सुनी षिपइ, ऐसो सिद्ध सुभाउ ।।

अर्थ - (ऐसो सिद्ध सुभाउ) ऐसे सिद्ध स्वभाव के (उत्पन्न) उत्पन्न होने से (प्रवेस) सिद्ध स्वभाव में प्रवेश करने से (उपजै लहइ) निज वैभव का उदय हुआ (तहां षिपइ) वहाँ समस्त संकल्प-विकल्प क्षय हो जाते हैं (क्रोध षिपइ) क्रोध के भाव नष्ट हो जाते हैं (देषी षिपइ सुनी षिपइ) पर को देखने - सुनने के भाव भी नष्ट हो जाते हैं।

भावार्थ - जब सिद्ध स्वभाव में रमणता होती है, सिद्ध स्वभाव का निज वैभव अनुभूति में प्रकट होता है तब समस्त संकल्प-विकल्प, कषाय भाव एवं पर पदार्थों को देखने-सुनने का भाव समाप्त हो जाता है, ऐसी सिद्ध स्वभाव की महिमा है।

प्रश्न - सिद्ध स्वभाव में प्रवेश करने का मार्ग क्या है ?

उत्तर - सिद्ध स्वभाव को मुख्य करके मैं सिद्ध के समान शुद्ध ही हूँ ऐसी सच्ची समझ के साथ आगे बढ़ना अर्थात् निस्पृह असंगत्व भाव धारण करना ही सिद्ध स्वभाव में प्रवेश करने का मार्ग है।

सूत्र - ६

उत्पन्न रंज रमण आनंद स्वानुभव में निहित हैं -

पूर्व सहकार उत्पन्न रंज रमन आनंद बाधा रहित सिद्ध सुभाउ ।।

अर्थ - (पूर्व सहकार) पूर्व में जो सहकार किया या प्रवेश किया था (सिद्ध सुभाउ) सिद्ध स्वभाव में

(उत्पन्न रंज रमन आनंद) वह आनंद रमणता के साथ रंजायमान [रंगा हुआ] उत्पन्न हुआ है (बाधा रहित) बाधा से रहित अतीन्द्रिय आनंद उत्पन्न हुआ है।

भावार्थ - जो साधक अपने सिद्ध स्वभाव का सहकार करते हैं उन्हें उत्पन्न अर्थ [स्वभाव जागरण], उत्पन्न रंज [स्वरूप में रति], भय षिपक रमण [सम्यक् श्रद्धान] उत्पन्न होता है, वे एकाग्र चित्त होकर स्वानुभूति में रमण करने वाले साधक अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव करते हैं वह आनंद बाधा रहित होता है।

प्रश्न - बाधा रहित आनंद किसे कहते हैं ?

उत्तर - अतीन्द्रिय आनंद को ही बाधा रहित आनंद कहते हैं, अतीन्द्रिय आनंद जब उत्पन्न होता है तब उसको बाधा पहुँचाने में जगत में कोई भी समर्थ नहीं है। प्रथमानुयोग में अनेक उदाहरण मिलते हैं। जैसे - ०१. गजकुमार मुनिराज के सिर पर धधकती हुई सिगड़ी जलती रही और वे अतीन्द्रिय आनंद का रस पान करते रहे। ०२. गुरुदत्त मुनिराज को रुई में लपेटकर जलाया गया और वे अपने अतीन्द्रिय आनंद का भोग करते रहे। ०३. सुकुमाल और सुकौशल मुनिराज को स्यालनी और व्याघ्रनी भक्षण करती रही और वे अपने अतीन्द्रिय आनंद का भोग करते रहे, इस प्रकार सिद्ध स्वभाव के आश्रय से प्रकट होने वाला आनंद सर्व बाधाओं से रहित होता है।

सूत्र - ७

ज्ञानी सच्चा दातार है -

तिहि को दान देइ, सिद्ध पहिचान लेइ, रली आनंद देइ ।।

अर्थ - (तिहि को दान देइ) ज्ञानी साधक अपने स्वभाव को ही शुद्धोपयोग पूर्वक दान देता है (सिद्ध पहिचान लेइ) सिद्ध स्वभाव को पहचान कर [स्वानुभव प्रमाण] ग्रहण करता है (रली) स्वभाव में रलने [मिलन, रमण करने] वाली परिणति (आनंद देइ) आनंद देती है।

भावार्थ - ज्ञानी निश्चय-व्यवहार से दान देता है। शुभ भाव से व्यवहार दान और शुद्ध भाव से निश्चय दान सम्पन्न होता है। राग मिश्रित अवस्था को ज्ञानी प्रमाण नहीं मानता, वह राग रहित सिद्ध स्वभाव को सर्व विकल्प रहित होकर स्वानुभव से प्रमाण करके स्वीकार करता है। जो परणति सिद्ध स्वभाव से मिलन, रमण करती है वह आनंद प्रदान करती है।

प्रश्न - दान का आशय क्या है, स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर - व्यवहार से जो स्व-पर के हित की भावना से दिया जाता है उसे दान कहते हैं, निश्चय में रागादि भावों का परित्याग कर अपने उपयोग को स्वभाव में लगाया जाता है इसे दान कहते हैं। कषाय की मंदता से व्यवहार दान और कषाय के अभाव से निश्चय दान होता है, जो क्रमशः स्वर्गादि सद्गति और मुक्ति का कारण होता है।

सूत्र - ८

चार दान और उनका फल -

दान चार प्रगट प्रवेस देइ ।।

अर्थ - (प्रवेस देइ) स्वभाव में प्रवेश करने से (चार दान प्रगट) चार प्रकार का दान प्रत्यक्ष रूप में होता है।

भावार्थ - जिस समय सिद्ध स्वभाव में प्रवेश होता है, उसी समय परिणति को रत्नत्रय की निधियाँ प्राप्त होती हैं, स्वभाव में रमण करने पर आत्मा में चार दान प्रकट होते हैं अर्थात् अरिहंत पद प्रकट होता है तब अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख, अनंतवीर्य प्रकट हो जाते हैं।

प्रश्न - चार दान कौन - कौन से हैं, उनका आध्यात्मिक स्वरूप स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर - ज्ञानदान, आहारदान, औषधिदान, अभयदान।

०१. ज्ञानदान - उपयोग को अपने सिद्ध स्वभाव में लगाना, उसी का अनुभव करना, ज्ञायक भाव में रहना ज्ञानदान है। **०२. आहार दान** - परम तृप्ति दायक वीतराग समरसी भाव स्वरूप आनंदामृत के रसास्वादन में संतुष्ट रहना आहार दान है। **०३. औषधि दान** - सिद्ध स्वभाव के आश्रय पूर्वक तत्त्व निर्णय की औषधि ग्रहण कर जन्म - मरण आदि रोगों से मुक्त होना औषधि दान है। **०४. अभय दान** - सिद्ध स्वभाव के आश्रय पूर्वक किसी भी पर्यायी भावों में और परिणमन में चल - विचल, भयभीत नहीं होना अभय दान है।

सूत्र - ९

दान की यथार्थता - दातृ और पात्र -

दात्र देइ, पात्र लेइ, जिन अन्मोद प्रियो ।।

अर्थ - (जिन अन्मोद प्रियो) जो ज्ञानी अंतरात्मा अपने वीतराग स्वरूप सिद्ध स्वभाव की अनुमोदना करता है, जिसे स्वभाव प्रिय है वह (पात्र लेइ) पात्र है, दान लेता है वह अर्थात् उपयोग को स्वभाव में स्थिर करता है और (दात्र देइ) दाता शुद्ध स्वभाव है वह दान देता है, वहीं जिन स्वभाव की यथार्थ प्रतीति होती है।

भावार्थ - जिस साधक को सिद्ध स्वभाव के सिवाय जगत में अन्य कुछ भी नहीं रुचता है, जिसके अंतरंग में स्वभाव के प्रति प्रियता बस गई है वह अपने वीतराग स्वभाव की अनुमोदना करके दान लेता है और ज्ञान स्वभाव के दान को ग्रहण करता है, अंतरंग में ऐसी ज्ञानमय सूक्ष्म परणति कार्य करती है वहीं सिद्ध स्वभाव की प्रियता झलकती है।

प्रश्न - दातार, पात्र और दान क्या है ?

उत्तर - शुद्ध स्वभाव दातार है, उपयोग अपने शुद्ध स्वभाव में एकाग्र होता है, स्वभाव के प्रति समर्पित होता है यह पात्र है। स्वभाव उपयोग के समर्पण को स्वीकार करता है यह दान है। आत्मा दातार, उपयोग पात्र को अनंत दान देता है यही ममल दान है।

सूत्र - १०

हे आत्मन्! बस करो -

बाधा रहित, चोरी रहित, चोरी दान न रुचे अन्मोद ।।

अर्थ - (बाधा रहित चोरी रहित) यथार्थ दान पर संयोगों की बाधा से रहित और उपयोग के परोन्मुखी होने रूप अनेक प्रकार की चोरी से रहित होता है (चोरी दान न रुचे अन्मोद) जिन वचनों को लोप करने रूप चोरी दान नहीं रुचता इसलिये हे आत्मन्! सिद्ध स्वभाव में लीन रहो। [अशुद्धोपयोग रूप विभाव परिणति आत्मा को इष्ट नहीं है अतः शुद्धोपयोग का आश्रय ही सिद्ध स्वभाव की पर्याय में प्रकटता का हेतु है।]

भावार्थ - ०१ - जहाँ राग, कर्म और पराधीनता की कोई बाधा न हो ऐसा बाधा रहित दान सच्चा दान है। ०२- बारहवें सूत्र के अनुसार चोरी के अनेक भेद हैं, उन सर्व प्रकार की चोरी से रहित दान सच्चा दान है। ०३ - कर्मोदय में रंचमात्र भी रुचि, पुण्य में प्रीति, पापों में रति, जिन वचनों से विमुख रहना ऐसा चोरी दान रुचता नहीं है। ०४ - हे आत्मन्! सिद्ध स्वभाव की अनुमोदना करो, अपने स्वरूप में लीन रहो, यही सच्चा दान है।

प्रश्न - अतीन्द्रिय आनंद कैसा है ?

उत्तर - अतीन्द्रिय आनंद बाधा रहित है, जगत में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो उसको बाधा पहुँचा सके। निज चैतन्य सत्ता की अनंत निधियों को कोई चुरा नहीं सकता इसलिये वह चोरी रहित है, बाधा रहित है। वस्तु स्वरूप को स्वीकार कर अनुभव करने से अतीन्द्रिय आनंद उल्लसित होता है।

सूत्र - ११

स्वभाव को भूलना ही नरक -

अर्क भूलै नर्क ठिदि परै ।।

अर्थ - (अर्क) सूर्य के समान प्रकाशमान सिद्ध स्वभाव को (भूलै) भूले तो (नर्क ठिदि परै) नरक जैसी स्थिति में पहुँचे।

भावार्थ - प्रकाशमान सिद्ध स्वभाव को भूलकर पर में रमने का भाव ही नरक है। आचार्य कहते हैं कि हे आत्मन्! जिन्हें सुनने मात्र से हृदय काँप उठे ऐसे नरक के अनंत दुःख अनंत काल तक तूने सहन किये हैं लेकिन अपने चैतन्य सत्ता स्वरूप का एक क्षण भर के लिये भान नहीं किया। इस उत्तम मनुष्य जन्म में अनंत काल के अनंत दुःखों को दूर करने का समय आया है, अब भी अगर अपनी चैतन्य सत्ता को भूलेगा तो पुनः चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करना पड़ेगा।

प्रश्न - संसार परिभ्रमण का कारण एवं उससे मुक्त होने का उपाय क्या है ?

उत्तर - अपने स्वरूप का विस्मरण संसार परिभ्रमण का कारण है। देह की भिन्नता भासित करते हुए अपने स्वरूप का स्मरण रखना और सिद्ध स्वभाव की साधना करना संसार परिभ्रमण से मुक्त होने का उपाय है।

सूत्र - १२

चोरी के पाँच भेद -

चोरी विरोध चोर, विस्वास चोर, लब्धि चोर, अन्मोद चोर, अघ दुर्बुद्धि चोर ।।

अर्थ - (चोरी) खोटे वचन बोलना, जिन वचनों का लोप करना, अर्थ का अनर्थ करना, लिये हुए व्रतों को खंडित करना चोरी है [श्रावकाचार जी गाथा - १३२] चोरी करने वाला चोर होता है, जिसके पाँच भेद हैं (विरोध चोर) विरोध चोर (विस्वास चोर) विश्वास चोर (लब्धि चोर) लब्धि चोर (अन्मोद चोर) अन्मोद चोर (अघ दुर्बुद्धि चोर) पापमय दुर्बुद्धि चोर।

भावार्थ - श्री श्रावकाचार जी ग्रन्थ की १३१वीं गाथा के अनुसार 'स्तेयं अदत्तं चिंते' किसी की वस्तु बिना दिये हुए लेना चोरी है। आध्यात्मिक अर्थों में यहाँ आचार्य ने चोरी के पाँच भेद बतलाये हैं -

०१. विरोध चोर - जो जीव अपने स्वरूप का विरोध करता है वह विरोध चोर है।

०२. विश्वास चोर - जो जीव अपने स्वरूप का विश्वास नहीं करता वह विश्वास चोर है।

०३. लब्धि चोर - जो क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना लब्धि प्राप्त होने के बाद भी स्वरूप को जानने का पुरुषार्थ नहीं करता वह लब्धि चोर है।

०४. अन्मोद चोर - जो स्वभाव की अनुमोदना नहीं करता वह अन्मोद चोर है।

०५. अघ दुर्बुद्धि चोर - स्वरूप की विराधना कर पंचेन्द्रियों के विषयों में लिप्त होने से जिसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है वह अघ दुर्बुद्धि चोर है।

प्रश्न - परमार्थ से चोरी का स्वरूप क्या है ?

उत्तर - लोक में निज चैतन्य सत्ता को छोड़कर परमाणु मात्र भी मेरा नहीं है ऐसा स्वीकार न करके पर पदार्थों को ग्रहण करने का भाव चोरी है। आचार्य श्रीमद् जिन तारण तरण स्वामी जी ने यहाँ चोरी के पाँच भेद बतलाये हैं जो इस प्रकार हैं -

०१. विरोध चोर - लोक में छह द्रव्य हैं, छह द्रव्यों का परिणमन स्वतंत्र हो रहा है, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता नहीं है, ऐसे यथार्थ वस्तु स्वरूप को स्वीकार न करके अपने को पर द्रव्य का कर्ता मानता है, अर्थ का अनर्थ करके वस्तु स्वरूप को विपरीत मानता है, वस्तु स्वरूप का विपरीत निरूपण करने वाला जीव विरोध चोर है।

०२. विश्वास चोर - परमात्मा ने कहा है कि हे जीव! तू सुख स्वरूपी अनंत गुणों का धारी सिद्ध स्वभावी कर्म कालिमा से रहित त्रिकाल शुद्ध है, मुक्त स्वरूपी है। अज्ञानी जीव ऐसा विश्वास नहीं करके अपने को संसारी और दु:खी मानता है, जिनेन्द्र परमात्मा के वचनों पर और तदनुसार अपने स्वरूप पर विश्वास नहीं करने वाला जीव विश्वास चोर है।

०३. लब्धि चोर - वर्तमान पर्याय में जो ज्ञान लब्धि प्राप्त है, उसका उपयोग न करना, जैसे - ज्ञान को ज्ञायक के जानने में न लगाना, जिनवाणी का स्वाध्याय आदि नहीं करना, हमें समझ नहीं आता ऐसे वचन कहना, अनंत ज्ञान का धारी जीव अपने को ही न जाने और कहे कि हमें समझ में नहीं आता वह लब्धि चोर है।

०४. अन्मोद चोर - जीव स्वयं सुख का भंडार है किन्तु अपने सुख स्वरूप को न जानते हुए सुख के लिये भटक रहा है, सुख स्वभाव की आराधना और अनुमोदना नहीं करने वाला जीव अन्मोद चोर है।

०५. अघ दुर्बुद्धि चोर - वीतरागी देव, गुरु, धर्म की शरण को छोड़कर सुखी होने के लिये पापों को प्रयोजनीय मानकर पंचेन्द्रिय विषयों में लिप्त रहने वाला जीव अघ दुर्बुद्धि चोर है।

सूत्र - १३

सम्यग्ज्ञानी सच्चा दातार है -

उत्पन्नी दाता देइ गुन दिषावै ।।

अर्थ - (उत्पन्नी दाता) जिस जीव ने अपने स्वानुभव को उत्पन्न कर लिया है, ऐसा सम्यग्ज्ञानी साधक सच्चा दातार है, वह (देइ) उपयोग को सिद्ध स्वभाव में लगाता है, स्वभाव में दृष्टि देता है, इस पुरुषार्थ से उस ज्ञानी को (गुन दिषावै) गुण ही गुण दिखाई देते हैं।

भावार्थ - आचार्य श्रीमद् जिन तारण स्वामी जी ने पंचार्थ की साधना में सर्व प्रथम उत्पन्न अर्थ दिया है, जिसका आशय है कि अपने प्रयोजनीय स्वभाव की अनुभूति को उत्पन्न करना अर्थात् शुद्धात्मानुभूति को उपलब्ध होना, स्वानुभूति जिस जीव के अंतरंग में उत्पन्न होती है, वही सच्चा दाता है, वह उपयोग को सिद्ध स्वभाव में स्थिर करता है, जिससे वह अनंत गुणों का धारी होता है और अंत में परमात्म पद प्राप्त करता है।

प्रश्न - आत्म सत्ता अनंत गुण स्वरूप है, वे गुण कब प्रकट होते हैं ?

उत्तर - आत्म सत्ता अनंत गुण स्वरूप है, वे गुण ज्ञानी जीव की पात्रता के अनुसार प्रकट होते हैं। आत्मसत्ता में ज्ञान, दर्शन आदि गुणों का पार नहीं है, ऐसे अनंत गुणमय शुद्ध स्वभाव का श्रद्धान होता है वहाँ आत्मा का स्वरूप निर्विकल्प वेदन में आता है और वह साधक चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अविरत सम्यक्दृष्टि कहलाता है। पाँचवें गुणस्थान वाले श्रावक को दो कषाय की चौकड़ी के राग के अभाव पूर्वक चौथे गुणस्थान वालों की तुलना में और अधिक आनंद का वेदन होता है।

जिनेन्द्र भगवान के समान रूप के धारी निर्ग्रन्थ वीतरागी मुनिराज को स्वानुभव प्रचुर संवेदन होता है। मात्र परम स्वरूप परमात्मा का अनुभव ही वर्तता है तब वे मुनिराज क्षपक श्रेणी आरोहण करक चार घातिया कर्मों को क्षय करके अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्य को प्रकट कर लेते हैं। वे केवलज्ञानी अरिहंत परमात्मा होते हैं और वे चार अघाातिया कर्मों को क्षय कर सिद्ध दशा को प्राप्त करते हैं। सिद्ध दशा आत्मसत्ता की पारदर्शी दशा है। आत्मसत्ता के अनंत गुणों की प्रकटता ही सिद्ध दशा है।

सूत्र - १४

ज्ञानी अनेक रीति से सिद्ध स्वभाव को ग्रहण करता है -

चोरी कै लेइ, बंधोरी कै लेइ, पन्हाइ कै लेइ ।।

अर्थ - (चोरी कै लेइ) सम्यग्ज्ञानी साधक दुनियाँ की नजरों से बचकर सिद्ध स्वभाव को लेता है, अनुभव करता है (बंधोरी कै लेइ) बंधकर स्थिर चित्त होकर स्वभाव का रसपान करता है (पन्हाइ कै लेइ) बारम्बार भावना भाता हुआ सिद्ध स्वभाव की अतीन्द्रिय अनुभूति को ग्रहण करता है।

भावार्थ - किसी वस्तु को चुराने वाले व्यक्ति की तरह ज्ञानी साधक किसी को पता ही नहीं चलने देता और गुपचुप अपने सिद्ध स्वभाव में रम जाता है। स्थिर चित्त होकर, ध्यान में डूबकर स्वानुभव करता है और बारम्बार भावना भाता हुआ अतीन्द्रिय अमृत रस का पान करता है।

प्रश्न - चोरी कै लेइ, बंधोरी कै लेइ, पन्हाइ कै लेइ इस सूत्र को स्पष्ट कीजिये।

उत्तर - चोरी कै लेइ - ०१. जैसे - कोई माता अपने छोटे बालक को सुलाकर या खेल में लगाकर घर के कार्य पूर्ण कर लेती है, इसी प्रकार ज्ञानी साधक संसार के परिणमन को गौण करके सिद्ध स्वभाव की साधना करता है।

०२. किसी वस्तु को चुराने वाले व्यक्ति की तरह किसी को पता ही न चले और वह सिद्ध स्वभाव की अनुभूति में रम जाता है ऐसा ज्ञानी साधक होता है।

बंधोरी कै लेइ - उपयोग का स्वभाव से सम्बंध बनाकर स्थिर चित्त होकर धर्म ध्यान व शुक्ल ध्यान में लीन होकर ज्ञानी ज्ञान स्वभाव में रमण करता है।

पन्हाइ कै लेइ - गाय या भैंस का दूध निकालने वाला व्यक्ति गाय या भैंस को पहले पन्हाता है तब उसे दूध प्राप्त होता है, इसी प्रकार ज्ञानी बाह्य जगत से विरक्त होकर सविकल्प ध्यान में स्वभाव का चिंतन मनन करता हुआ निर्विकल्प ध्यान में स्थित होता है तब सिद्ध स्वभाव के परम समरसी अतीन्द्रिय आनंद को उपलब्ध करता है।

सूत्र - १५

दृढ़ संकल्प सिद्ध स्वभाव की प्राप्ति का उपाय -

गाढ़ो धरै तो पावै, ठान पावै ।।

अर्थ - उपरोक्त सूत्रानुसार (गाढ़ो धरै तो पावै) जो जीव दृढ़ पुरुषार्थ को धारण करता है तो सिद्ध स्वभाव को प्राप्त करता है (ठान पावै) दृढ़ संकल्प पूर्वक ही स्वरूप की प्राप्ति होती है।

भावार्थ - वैराग्य, दृढ़ता और संकल्प शक्ति से ही सिद्ध स्वभाव की अनुभूति होती है। ढील - ढाल से स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती। सिद्ध स्वभाव का साधक वीतराग स्वरूप की साधना करता है, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान को शुद्धता पूर्वक धारण कर सम्यक्चारित्र के पुरुषार्थ में परिणत होता है। इस साधना में ढील नहीं चलती, दृढ़ता पूर्वक ही वीतरागता का मार्ग प्रशस्त होता है।

प्रश्न - स्वभाव सिद्धि की साधना के सूत्र बतलाइये।

उत्तर - ०१. जगत के समग्र परिणमन से विरक्ति होना। ०२. संकल्प शक्ति और दृढ़ता पूर्वक साधना करना। ०३. राग के उदय में शिथिल नहीं होना। ०४. शुद्धोपयोग का लक्ष्य रखना। ०५. अंतर्मुखी वृत्ति पूर्वक साधना करना।

सूत्र - १६

सिद्ध स्वभाव की पहिचान कैसे होती है -

इह लष्यन दान देइ तो सिद्ध की पहिचान होइ ।।

अर्थ - (इह लष्यन) आत्म स्वरूप के लक्ष्य पूर्वक विरक्ति, दृढ़ता, अंतर्मुखी वृत्ति आदि इन लक्षणों सहित (दान देइ तो) साधक अपने उपयोग को स्वभाव में लगाता है तो (सिद्ध की पहिचान होइ) सिद्ध स्वभाव की पहिचान होती है।

भावार्थ - राग को राग, वीतराग को वीतराग समझकर स्वभाव - विभाव के विवेक पूर्वक प्रगाढ़ वैराग्य भावना सहित जो साधक निश्चय अर्थ में दान देता है अर्थात् अपने उपयोग को स्वभाव में लगाता है वहाँ अवश्य ही सिद्ध स्वभाव की अनुभूति प्रत्यक्ष होती है।

प्रश्न - सिद्ध स्वभाव की पहिचान किसको होती है ?

उत्तर - जो जीव आत्मार्थी है, सर्व जगत से विरक्त है, वह उपयोग को सूक्ष्म करता हुआ समस्त पर भावों को पीछे छोड़ता है, क्षयोपशम ज्ञान से नाता तोड़ता है और उपयोग को अपने दैदीप्यमान ज्ञान स्वभाव से जोड़ता है, उसी समय काल लब्धि, भवितव्यता, नियति आदि प्रकट होती है मानो उस पुरुषार्थी जीव को धन्य है, धन्य है ऐसे मंगल वचनों का उच्चार कर रही हों और वह भव्य जीव बिना विलम्ब किये स्वरूप में अभेद हो जाता है, ऐसे आत्म पुरुषार्थी जीव को सिद्ध स्वभाव की पहिचान होती है।

सूत्र - १७

दाता और पात्र की विशेषता -

जहां सिद्ध पहिचान उपजै, तहां दान देइ, पात्र दान लेइ,
सिद्ध परषि के लेइ, दात्र पात्र तदि विसेष ।।

अर्थ - (जहाँ सिद्ध पहिचान उपजै) जहाँ सर्व विकल्पों के अभाव होने पर निर्विकल्प सिद्ध स्वभाव की स्वानुभूति उत्पन्न हो जाती है (तहाँ दान देइ) सम्यग्ज्ञानी साधक ज्ञान स्वभाव में अपने उपयोग को स्थिर करते हैं तब ज्ञानी को स्वानुभव में अतीन्द्रिय आनंद उत्पन्न होता है (पात्र दान लेइ) उत्तम पात्र वही है जो अपने अनंत गुणों से सम्पन्न निज आत्मा के आनंद का भोग करता है (सिद्ध परषि के लेइ दात्र पात्र तदि विसेष) शुद्धात्मा की परख ही सिद्ध की पहचान है, स्वभाव में सिद्धपना है उसकी पहचान होने पर ही पर्याय में सिद्ध दशा प्रकट होती है यही दात्र पात्र की विशेषता है।

भावार्थ - जैसा कारण होता है वैसा ही कार्य होता है। स्वभाव शुद्ध है इसी के आश्रय से पर्याय में भी शुद्धता प्रकट होती है। योगी ज्ञानीजन सिद्ध स्वभाव का शुद्ध अनुभव करते हैं, जहाँ स्वानुभूति उत्पन्न हो जाती है वहीं परम समरसी स्वभाव में रमणता वर्तती है, यह स्वभाव लीनता ही अरिहंत सिद्ध को प्राप्त कराने वाली है।

प्रश्न - सर्वत्र अशुद्धता का व्यापार वर्त रहा है ऐसी स्थिति में ज्ञानी शुद्धता का अनुभव कैसे करते हैं ?

उत्तर - ज्ञानीजन भेदविज्ञान के द्वारा स्व - पर को यथार्थपने जानते हैं। उनके ज्ञान में यह स्पष्ट जानने में आता है कि स्वभाव से प्रत्येक आत्मा शुद्ध है, अशुद्धता जीव और पुद्‌गल की पर्याय में होती है। स्वभाव त्रिकाल शुद्ध है। कर्म के उदय निमित्त से पर्याय में अशुद्धता होती है। ऐसा जानते हुए सम्यग्ज्ञान के बल से समस्त अशुद्धता को गौण करके शुद्ध स्वभाव के लक्ष्य और आश्रय पूर्वक पर्याय दृष्टि से परे होकर ज्ञानीजन अभेद में रमते हुए शुद्धता का अनुभव करते हैं।

सूत्र - १८

स्व समयरूप रहना प्रयोजनीय है -

समय सहावेन समय संजुत्तं ।।

अर्थ - (समय सहावेन) आत्मा अपने स्वभाव से (समय संजुत्तं) आत्मामय रहता है।

भावार्थ - समय अर्थात् आत्मा अपने स्वभाव से शुद्ध है, वह कभी स्वभाव से च्युत नहीं होता, सदैव ज्ञान स्वरूप रहता है, संसार में कोई भी पदार्थ अपनी सत्ता से स्खलित नहीं होता यही उसके कायम रहने का रहस्य है। पर्याय प्रतिसमय उत्पन्नध्वंशी होने के बाद भी द्रव्य की ध्रुव सत्ता त्रिकाल विद्यमान रहती है, यही शाश्वत स्वभाव प्रयोजनीय है।

प्रश्न - समय का सर्वाङ्ग स्वरूप स्पष्ट कीजिये।

उत्तर - 'सम्यक् अय: बोधो यस्य भवति स समय आत्मा, अथवा समं एकीभावेनायनं गमनं समय:' सम्यक्-समीचीन, अय बोध ज्ञान जिसके वह समय अर्थात् आत्मा है अथवा सम-एकीभाव से अयन, गमन करना-प्राप्त करना सो समय है। ०१. जो एक समय में जानता है और परिणमन करता है उसे समय कहते हैं।

०२. समय शब्द से धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्‌गल एवं जीव सभी द्रव्य लिये जाते हैं तथापि यहाँ आत्मा प्रयोजनीय है। ०३. प्रत्येक पदार्थ अपने गुण, पर्यायों को प्राप्त कर परिणमन करता है इसलिये उसे समय कहा जाता है। ०४. समय शब्द के अनेक अर्थ हैं – जैसे आत्मा, काल, शास्त्र आदि। ०५. स्व समय और परसमय – **स्व समय** – जो जीव शुद्ध दर्शन, ज्ञान, चारित्र में स्थित हैं उन्हें स्व समय जानो। शुद्ध आत्माश्रित जीव स्वसमय कहलाते हैं। **परसमय** – जो जीव पौद्‌गलिक कर्म प्रदेशों में स्थित हैं उन्हें पर समय जानो।

सूत्र – १९

आत्मा त्रिकाल ज्ञानमयी तत्त्व है –

समय न्यान संजुत्तं ।।

अर्थ – (समय न्यान संजुत्तं) आत्मा ज्ञान से संयुक्त है अर्थात् ज्ञानमयी है।

भावार्थ – तीन लोक में प्रत्येक जीव ज्ञान स्वभावी है। निगोद से लेकर सिद्ध दशा तक सभी आत्माएँ ज्ञानमयी हैं। लोक में जीव किसी भी अवस्था में रहे, उसका ज्ञान नष्ट नहीं होता क्योंकि ज्ञान स्वभाव है।

प्रश्न – जब सभी आत्माएँ ज्ञान से सहित हैं तो ज्ञानी और अज्ञानी का भेद क्यों है ?

उत्तर – सभी आत्माओं में ज्ञान तो है परन्तु ज्ञानी वह है जिसके अनुभव में ज्ञान स्वरूपी आत्मा आया है अर्थात् जिसे भेदविज्ञान पूर्वक सम्यग्दर्शन हुआ है। शुद्धात्मा को जानता हुआ, अनुभव करता हुआ जीव ज्ञानी है। जिस जीव का ज्ञान आत्मा से संयुक्त नहीं है अर्थात् जिसे भेदविज्ञान पूर्वक आत्मा का अनुभव नहीं हुआ है वह आत्मा के ज्ञान स्वभाव को नहीं जानता, राग को ही आत्मा मानता है अत: वह जीव अज्ञानी है।

सूत्र – २०

सिद्धि की सम्पत्ति को प्राप्त करने का उपाय –

उव उवन न्यान अन्मोय सिद्धि संपत्तं ।।

अर्थ – (उव उवन न्यान) ऊँकारमयी ज्ञान स्वभाव की (अन्मोय) अनुमोदना से (सिद्धि संपत्तं) सिद्धि की सम्पत्ति प्राप्त होती है।

भावार्थ – आत्मा का ऊँकारमयी शुद्धात्म स्वभाव है जो अगाध ज्ञानसिंधु स्वसंवेदन स्वरूप है। ऐसे स्वभाव में लीन होने से जीव अविनाशी परमानन्दमयी सिद्ध पद की शाश्वत सम्पत्ति को प्राप्त करता है।

प्रश्न – सिद्धि की सम्पत्ति को प्राप्त करने का क्या उपाय है ?

उत्तर – ०१. अनंत ज्ञान रूप लक्षण से लक्षित आत्मा का अनुभव ही ज्ञान सम्पदा है, ऐसे स्वानुभवगम्य आत्मा की साधना आराधना और स्वरूप लीनता रूप ध्यान सिद्धि की सम्पत्ति को प्राप्त करने का उपाय है। ०२. श्री अमृतचन्द्राचार्य के अनुसार – जो जीव सिद्ध हुए हैं वे भेदविज्ञान से ही हुए हैं और जो जीव कर्म के बंधन में बंधे हैं वे भेदविज्ञान के अभाव से बंधे हैं, अत: भेदविज्ञान सिद्धि सुख का मूल है। ०३. श्री आचार्य तारण स्वामी के अनुसार – शुद्ध स्वरूपी ज्ञान गुणमाला (शुद्धात्म स्वरूप) को ग्रहण करके अनंत सिद्ध भगवंत मुक्ति को प्राप्त हुए हैं, जो कोई भी भव्य जीव सम्यक्त्व से शुद्ध होंगे वे भी मुक्ति को प्राप्त करेंगे। ०४. श्री कुन्दकुन्दाचार्य के अनुसार – अधिक कहने से क्या ? अतीत काल में जिन जीवों ने सिद्ध पद प्राप्त किया है, वर्तमान में कर रहे हैं और भविष्य में करेंगे यह सम्यक्त्व का ही माहात्म्य जानो।

....

अध्याय ३

[अ] त्रिकालवर्ती महापुरुष –

संकलनकर्ता – श्रीआदिसागर जी मुनिराज

१६९ महापुरुष एवं प्रथमानुयोग विवेचन

[ब] आराधना कथाकोष –

[ब्र. श्री नेमिदत्त जी] के आधार पर

प्रथमानुयोग कथानक बोध

(अ) त्रिकालवर्ती महापुरुष

मंगलाचरण

द्वीपेष्वर्धतृतीयेषु, ससप्ततिशतात्मके ।
धर्मक्षेत्रे त्रिकालेभ्यो, जिनादिभ्यो नमो नमः ।।

अर्थ – जम्बूद्वीप, धातकीखंडद्वीप, पुष्करार्धद्वीप इन अढ़ाई द्वीप के एक सौ सत्तर धर्म क्षेत्रों में (विदेह क्षेत्रों में, भरत, ऐरावत क्षेत्रों में) विराजमान त्रिकालवर्ती जिनेन्द्र भगवान आदि को मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ।

जिनागम – सच्चे सुख तथा अक्षय आनन्द की प्राप्ति के लिए सम्यग्दर्शन को मुख्य माना गया है। आप्त, आगम और तत्त्वार्थ की निर्दोष श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहा गया है। आज अर्हंत परमेष्ठी का इस क्षेत्र में लाभ नहीं होता क्योंकि हुंडावसर्पिणी काल का भेद दुषमा काल यहाँ वर्त रहा है। भगवान के प्रतिनिधि रूप में उनकी वीतराग वाणी विद्यमान है। अरिहंत भगवान के मुख से उत्पन्न हुए पूर्वापरदोष से रहित तथा शुद्ध वचनों को आगम कहा है।

जिनागम के कर्ता – जिनागम के कर्ता तीन प्रकार के कहे गये हैं – **(१) अर्थकर्ता** – सर्वज्ञ तीर्थंकर महावीर परमदेव अर्थकर्ता हैं। **(२) ग्रन्थकर्ता** – सात ऋद्धियों के स्वामी चार ज्ञानधारी श्रमणशिरोमणि गणधर गौतम स्वामी ग्रन्थकर्ता हैं। **(३) उत्तर ग्रन्थकर्ता** – राग-द्वेष रहित तथा आगम के मर्म को समझने वाले मुनीश्वर उत्तरग्रन्थकर्ता हैं।

शास्त्रों में अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर प्रभु को अर्थकर्ता कहा गया है। **'महावीरोऽर्थकर्ता'** (धवला टीका) उनको मूलग्रन्थ कर्ता भी कहते हैं। उनने दिव्यध्वनि के द्वारा सूत्रार्थ को प्रकाशित किया था। षट्खंडागम सूत्र की टीका में लिखा है छद्मस्थ अवस्था सम्बन्धी ज्ञान के नष्ट होने पर तथा अनंत ज्ञान के उत्पन्न होने पर नौ प्रकार के पदार्थों से गर्भित दिव्यध्वनि सूत्रार्थ का प्रतिपादन करती है।

उस दिव्यध्वनि को इन्द्रभूति गौतम गणधर ने धारण कर **इंदभूदिणा...बारहंगाणं चोद्दस पुव्वाणं च गंथाण मेक्केण चेव मुहुत्तेण कमेण रयणा कदा।'** बारह अंग तथा चौदह पूर्व रूप ग्रथों की रचना एक मुहूर्त मात्र में की थी।

चार अनुयोग – द्वादशांगरूप जिनवाणी को चार अनुयोगों में विभक्त किया गया है। प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग।

प्रथमानुयोग – दृष्टिवाद नाम के बारहवें अंग के तीसरे भेद का नाम प्रथमानुयोग है। उसमें पाँच हजार पदों के द्वारा पुराणों का वर्णन किया गया है। धवला टीका में कहा गया है – जिनेन्द्र देव ने बारह प्रकार के पुराणों का उपदेश दिया है, वे समस्त पुराण जिन वंश तथा राजवंशों का वर्णन करते हैं। पहला पुराण अरिहंतों का, दूसरा चक्रवर्तियों का, तीसरा विद्याधरों का, चौथा नारायण – प्रतिनारायणों का, पाँचवाँ चारणों का, छटवाँ प्रज्ञाश्रमणों का, सातवां कुरूवंश का, आठवां हरिवंश का, नौवां इक्ष्वाकुवंश का, दशवां काश्यपवंश का, ग्यारहवां वादियों के वंश तथा बारहवां नाथ वंश का निरूपण करते हैं।

प्रथमानुयोग का स्वरूप श्री समंतभद्राचार्य जी ने इस प्रकार कहा है –

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम् ।
बोधिः समाधिनिधानं बोधति बोधः समीचीनः ।।

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार – ४५)

अर्थ – समीचीन ज्ञान पुराणों तथा चरित्र ग्रन्थों को, जो श्रोताओं के पुण्य का कारण होने से पुण्य स्वरूप हैं, जिनमें परमार्थ रूप तत्त्वों का, पदार्थों का कथन है, जो रत्नत्रय की प्राप्ति रूप बोधि तथा समाधि अर्थात् रत्नत्रय के रक्षण और ध्यान में कारण है वह प्रथमानुयोग कहलाता है।

चरित्र –**'एक पुरुषाश्रिता कथा चरितं'** एक पुरुष सम्बन्धी कथन को चरित्र कहते हैं।

पुराण – **'त्रिषष्ठिश्लाका पुरुषाश्रिता कथा पुराणं'** त्रेसठ श्लाका पुरुषों सम्बन्धी कथा को पुराण कहते हैं।**'तदुभयमपि प्रथमानुयोग शब्दाभिधेयम्'** चरित्र तथा पुराण इन दोनों को प्रथमानुयोग कहा गया है। प्रथमानुयोग में चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ नारायण, नौ प्रतिनारायण, नौ बलभद्र इन त्रेषठ श्लाका पुरुषों का वर्णन किया गया है।

प्रथमानुयोग से लाभ –

(१) अविरत सम्यग्दृष्टि श्रावक प्रथमानुयोग के चिंतन – मनन से अपने लिए बोधि तथा समाधि की महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त करता है। मिथ्यादृष्टि भव्य जीव प्रथमानुयोग के स्वाध्याय से मिथ्यात्वरूप महारोग से छूटकर मोक्षमार्ग में लगता है।

(२) जीवन चरित्र तथा इतिहास के पठन पाठन द्वारा जीवन को उज्ज्वल बनाने में बहुत प्रेरणा प्राप्त होती है। संकट के समय धैर्य धारण करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है। अशुभ परिणाम तथा आर्त रौद्र दुर्ध्यान नहीं होते हैं।

महापुरुष – जो पुरुष वासनाओं, विकारों और कषाय आदि का दास न बनकर आत्मावलंबी होकर अपने रत्नत्रय धर्म को उज्ज्वल बनाते हुए आत्म विकास में वृद्धि करते हैं, उन मनस्वी व्यक्तियों को महापुरुष कहते हैं। महापुरुषों का आवश्यक गुण है जितेन्द्रिय होना।

जिनागम के अनुसार भरत क्षेत्र में १६९ महापुरुष कहे गये हैं । ये विशेष पुण्याधिकारी होते हुए अंत में मोक्ष पदवी प्राप्त करते हैं।

१६९ महापुरुषों का संक्षिप्त परिचय

क्र.	१६९ पुरुषों के नाम	संख्या	विशेष कथन
०१.	कुलकर या मनु	१४	ये तीसरे काल के अंत में होते हैं तथा सभी ऊर्ध्वगामी होते हैं।
०२.	तीर्थंकरों के पिता	२४	सब ऊर्ध्वगामी होते हैं।
०३.	तीर्थंकरों की माता	२४	सब ऊर्ध्वगामी होते हैं।
०४.	तीर्थंकर	२४	ये सब चौथे काल में होते हैं और सब मोक्षगामी होते हैं।
०५.	सकल चक्रवर्ती	१२	कोई मोक्षगामी, कोई ऊर्ध्वगामी और कोई अधोगामी होते हैं।
०६.	बलदेव (राम)	०९	सब ऊर्ध्वगामी होते हैं।

०७.	वासुदेव (नारायण)	०९	सब अधोगामी होते हैं।
०८.	प्रतिवासुदेव (प्रतिनारा.)	०९	सब अधोगामी होते हैं।
०९.	नारद	११	सब अधोगामी होते हैं।
१०.	रुद्र	११	सब अधोगामी होते हैं।
११.	कामदेव	२४	सब मोक्षगामी होते हैं।

इन महापुरुषों में हुंडावसर्पिणी काल के प्रभाव से १६९ की संख्या में न्यूनता आ गई है। इन १६९ महापुरुषों में चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव, नौ वासुदेव और नौ प्रतिवासुदेव इस प्रकार (६३) त्रेसठ शलाका महापुरुष हुए। इनमें भी तीन तीर्थंकर शांतिनाथ जी, कुंथुनाथ जी, अरनाथ जी तीन (तीर्थंकर, कामदेव, चक्रवर्ती) पदवियों के धारी रहे हैं। इस तरह छह पदवी कम हो गईं। (६३-६=५७) इनमें एक त्रिपृष्ठ नारायण, जो महावीर का पूर्व भव था, उसको मिलाने पर (५७+१=५८) ५८ शलाका पुरुष हुए हैं।

त्रेषठ शलाका महापुरुष - १६९ पुण्य पुरुषों में २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, ९ बलभद्र इस प्रकार (६३) सत्पुरुषों को त्रेषठ शलाका पुरुष कहते हैं। यह कथन जम्बूद्वीप सम्बंधी भरत क्षेत्र की अपेक्षा है।

- धातकीखंड द्वीप में दो भरत क्षेत्र हैं। इसी प्रकार पुष्करार्ध द्वीप में भी दो भरत क्षेत्र हैं। इन चारों क्षेत्रों में जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के समान १६९ पुण्य पुरुष माने गये हैं।
- पाँच ऐरावत क्षेत्रों के विषय में भी ऐसा ही कथन पाया जाता है। पाँच भरत ऐरावत के समान पाँच विदेह कहे गये हैं। प्रत्येक पूर्वापर विदेह में जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के समान बत्तीस-बत्तीस देश हैं। विदेह में सदा चौथे काल सदृश रचना पायी जाती है।
- '**चतुर्थ कालो विदेहे चावस्थित एव**।' विदेह क्षेत्र में सदा चतुर्थ काल रहने से शलाका पुरुष सदा पाये जाते हैं। भरत क्षेत्र में छह प्रकार का काल चक्र चलता रहता है। अत: यहाँ अवसर्पिणी के चतुर्थ काल में तथा उत्सर्पिणी के तृतीय काल में तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण, प्रतिनारायण आदि महापुरुषों का सद्‌भाव पाया जाता है।
- देवगति में प्रथम काल एवं नरक में छटवाँ काल रहता है। तिर्यंचगति और मनुष्य गति में छह काल होते हैं। कुमनुष्य भोगभूमि में तीसरा काल रहता है। स्वयंभूरमण द्वीपार्ध में तथा स्वयंभूरमण समुद्र में पंचम काल के समान काल रहता है।

प्रश्न - भगवान शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ तथा अरनाथ तीर्थंकर, चक्रवर्ती और कामदेव हुए हैं, तो क्या शेष इक्कीस तीर्थंकरों का पुण्य, प्रभाव तथा सौन्दर्य इनकी अपेक्षा कम होगा ?

समाधान - जगत में प्रत्येक दृष्टि से तीर्थंकर का पद श्रेष्ठ कहा गया है। जिस प्रकार प्रकाश में सूर्य के तेज की श्रेष्ठता को सभी स्वीकार करते हैं। इसी प्रकार रूप, प्रभाव, पुण्यप्रताप आदि समस्त गुणों की अपेक्षा तीर्थंकर भगवान के समान अन्य कोई नहीं हैं। स्वामी समंतभद्र ने तीर्थंकर नाम कर्म के उदय से प्राप्त होने वाली अर्हंत पदवी को अचिंत्य कहा है।

प्रश्न - त्रेसठ शलाका पुरुष कहाँ - कहाँ से आकर जन्म लेते हैं ?

समाधान - मूलाचार, त्रिलोकसार, सिद्धांतसार दीपिका और तिलोयपण्णत्ति के आधार पर कहा जा

सकता है कि –

०१. नरक से आने वाला जीव अनंतर भव में चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेव पद को नहीं प्राप्त करता किन्तु स्वर्ग से आने वाला जीव इन पदों को धारण करता है।

०२. मनुष्य तथा तिर्यंचगति से आकर तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण, प्रतिनारायणरूप श्लाका पुरुष नहीं होते। भवनत्रिक देवों से आकर कोई जीव त्रेसठ श्लाका पुरुषों की पदवी को प्राप्त नहीं करते हैं।

०३. अनुदिश तथा अनुत्तर विमानवासी कल्पातीत देव चय कर बलदेव, तीर्थंकर, चक्रवर्ती पदवियों को प्राप्त कर सकते हैं।

०४. भवनत्रिक देव पर्याय से आने वाला जीव तीर्थंकर नहीं होता और तीसरे नरक तक का नारकी तीर्थंकर हो सकता है। (जिसने पूर्व में तीर्थंकर नामकर्म प्रकृति का बंध कर लिया है।)

०५. विमानवासी देव श्लाका पुरुष हो सकते हैं।

०६. तिलोयपण्णत्ति में लिखा है –

तित्थयरा-तग्गुरओ-चक्की-बल केसि-रुद्दणारद्दा ।
अंगज-कुलियर पुरिसा भविया सिज्झंति णियमेण ।।
।। ४-१४७३ ।।

(२४) तीर्थंकर, उनके गुरु (२४ माता २४ पिता), (१२) चक्रवर्ती, (०९) बलदेव, (०९) नारायण, (०९) प्रतिनारायण, (११) रुद्र, (०९) नारद, (२४) कामदेव और (१४) कुलकर ये सभी भव्य होते हैं और नियम से मोक्ष प्राप्त करते हैं।

१६९ महापुरुषों में कौन जगत में विशेष प्रसिद्ध हुए –

(१)	नाभिराज	मनु (कुलकरों में १४ वाँ कुलकर)
(२)	भरत चक्रवर्ती	(श्री ऋषभनाथ जी के ज्येष्ठ पुत्र, भावों की निर्मलता के लिये विख्यात हुए, इन्होंने अंतर्मुहूर्तकाल में केवलज्ञान प्राप्त किया।)
(३)	बाहुबली	(श्री ऋषभनाथ के पुत्र प्रथम कामदेव, तप में प्रसिद्ध हुए। एक वर्ष तक कायोत्सर्ग आसन से खड़े रहे।)
(४)	रामचन्द्र	अष्टम बलभद्र
(५)	हनुमान	१८ वें कामदेव, रूप में प्रसिद्ध हुए
(६)	रावण	८ वें प्रतिनारायण, पुरुषों में प्रसिद्ध हुए
(७)	कृष्ण	९ वें नारायण
(८)	पार्श्वनाथ स्वामी	तीर्थंकर उपसर्ग केवली
(०९)	महादेव	११ वें रुद्र पार्वती के पति

कुलकर – मनु या युगादिपुरुष –

भोगभूमि का अन्त होते समय तथा कर्मभूमि के प्रारम्भकाल में विशेष परिवर्तन देखकर चकित और चिंतित मानव समाज को निराकुल कर उचित मार्ग का प्रदर्शन करने वाले चौदह महापुरुष होते हैं। इनको **'कुलकर'** कहते हैं।

महापुराण में जिनसेन स्वामी ने लिखा है कि 'ये प्रज्ञा के द्वारा जीवन का उपाय जानने से **'मनु'** कहे गये हैं। आर्य पुरुषों को कुल की भांति इकट्ठे रहने का उपदेश देने से **'कुलकर'** कहलाते हैं। कुलों अर्थात् वंशों को धारण करने से अर्थात् उनका स्थापन करने से उन्हें **कुलधर** तथा युग के आरम्भ में जन्म लेने से इन्हें **युगादि पुरुष** कहा जाता है। ये सब कुलकर विदेह क्षेत्र में (अपने पूर्वभव में) उच्च कुल वाले महापुरुष थे। इन्होंने सम्यक्त्व ग्रहण करने के पूर्व में पुण्यप्रद पात्रदान आदि उज्ज्वल कार्यों द्वारा भोगभूमि की आयु बाँध ली थी पश्चात् जिनेन्द्र भगवान के समक्ष क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया । विशेष श्रुतज्ञान की प्राप्ति की तथा आयु का अंत होने पर मरण को प्राप्त कर वे इस भरत क्षेत्र में उत्पन्न हुए। इनमें कितने ही अवधिज्ञानी और जाति स्मरण युक्त थे, इसलिये इन्होंने प्रजा के लिये हितकारी कार्यों का उपदेश दिया था।

(महापुराण पर्व ३ श्लोक २०७ – २१०)

मनु शब्द मन् धातु से बना है उसका अर्थ है अवबोधन अर्थात् दूसरों को बताना। इस प्रकार मनु समयानुसार प्रजाजनों को अनेक प्रकार से जीवन जीने के उपायों का ज्ञान कराते हैं। महापुराण में लिखा है –

वृषभस्तीर्थकृच्चैव कुलकृच्चैव सम्मतः ।
भरतश्चक्रभृच्चैव कुलधृच्चैव वर्णितः ।।
।। ३-२१३ ।।

नाभिराजा अंतिम कुलकर थे। राजा वृषभदेव प्रथम तीर्थंकर और कुलकर थे। भरत चक्रवर्ती कुलकर भी थे। कर्मभूमि के आरम्भ में राजा ऋषभदेव ने आषाढ़ मास की प्रतिपदा के दिन कर्मभूमि (कृतयुग) का प्रारम्भ कर प्रजापति पद प्राप्त किया। महापुराण में कहा है –

ऋषभनाथ भगवान ने प्रजा को शस्त्र संचालन, कृषि करना, वाणिज्य, शिल्प, मसि तथा पशुपालन आदि प्रजा के जीवनोपयोगी कार्यों को बतलाया था इसलिये वे प्रजापति कहलाये। यथार्थ में अन्य संप्रदाय में कथित प्रजापति की प्रसिद्धि इन ऋषभनाथ भगवान की ही महिमा को बताती हैं। इन भगवान ने केवलज्ञान के पश्चात् धर्म तीर्थ का प्रवर्तन किया था। चक्रवर्ती भरत ने छह खंडों को जीतकर आदर्श राज्य पद्धति की स्थापना की थी । अन्य संप्रदाय में आदर्श राज्य को रामराज्य कहा जाता है। बीसवें तीर्थंकर भगवान मुनिसुव्रत नाथ के शासन काल में महाराज रामचन्द्र हुए हैं। जैन दृष्टि से उनको तथा अन्य नीति मार्ग पर चलने वाले नरेशों को आदर्श शासक चक्रवर्ती भरत की लोक शासन पद्धति से प्रकाश और प्रेरणा मिलती रही है। सिद्धांतसार दीपक में भी भगवान ऋषभनाथ को कुलकर कहा है तथा उनके ज्येष्ठ पुत्र भरत को चक्री कुलकर तथा वध-बंध आदि दण्ड-प्रदाता कहा है।

शरीरदंडनं चैव वधबंधादिलक्षण् ।
नृणां प्रबलदोषाणां भारतेन नियोजितम् ।।

महान अपराध करने वाले पुरुषों के लिये भरत चक्रवर्ती ने बध बंधन आदिक शारीरिक दण्ड की

पद्धति चलाई थी। इस प्रकार जैन धर्म की दृष्टि से दण्ड व्यवस्था के पुरस्कर्ता के रूप में भरतेश्वर का प्रथम स्थान है।

प्रश्न - भोगभूमि के 'युगलों' का परिचय दीजिये।

समाधान - भोगभूमि में स्त्री-पुरुषों में युगल धर्म पाया जाता है। जिनसेन स्वामी के अनुसार भोग भूमि में जिस समय दम्पत्ति (युगल) का जन्म होता है, उस समय उनके जनक और जननी का देहांत हो जाता है, अतएव वहाँ के जीवों में पुत्र आदि का संकल्प नहीं होता। पुरुषों को **आर्य** तथा स्त्री को **आर्या** कहते हैं। उनके ये साधारण नाम हैं। लोग सरल प्रकृति के होते हैं। पुरुषों को **छींक** आने पर और स्त्री को **जम्हाई** आने पर मरण होता है। इन्हें आजीविका हेतु कष्ट नहीं उठाना पड़ता है क्योंकि उन्हें अवर्णनीय भोग सामग्री उपलब्ध होती है।

प्रश्न - भोगभूमि में युगल किन भोगों को भोगते थे ?

समाधान - हरिवंश पुराण में इस प्रकार उल्लेख किया गया है -

दशधा कल्पवृक्षोत्थं भोगं युग्मानि भुंजते ।
दशांगभोगचक्रेशभोगताभ्यधिकं तदा ।। ७-९१ ।।

अर्थ - भोगभूमि में दम्पत्ति दस प्रकार के कल्पवृक्षों से उत्पन्न भोगों को भोगते हैं। जो दशाङ्ग भोगों के भोगने वाले चक्रवर्ती के भोगों की अपेक्षा अधिक होते हैं।

दस प्रकार कल्पवृक्ष

०१.	**गृहांग**	नाना प्रकार के उत्तम से उत्तम गृह देने वाले हैं।
०२.	**भाजनांग**	नाना प्रकार के उत्तम से उत्तम पात्र देने वाले हैं।
०३.	**भोजनांग**	नाना प्रकार के उत्तम से उत्तम भोजन देने वाले हैं।
०४.	**पानांग (मद)**	नाना प्रकार के उत्तम से उत्तम मधुर रस देने वाले हैं।
०५.	**वस्त्रांग**	नाना प्रकार के उत्तम से उत्तम वस्त्र देने वाले हैं।
०६.	**भूषणांग**	नाना प्रकार के उत्तम से उत्तम रत्नादि आभूषण देने वाले हैं।
०७.	**माल्यांग**	नाना प्रकार के उत्तम से उत्तम पुष्पमालाएँ देने वाले हैं।
०८.	**दीपांग**	चन्द्रमा के समान शीतल प्रकाश देने वाले हैं।
०९.	**ज्योतिरांग**	सूर्य के समान प्रकाश देने वाले हैं।
१०.	**तूर्यांग**	नाना प्रकार के उत्तम से उत्तम भेरी आदि बाजों को देने वाले हैं।

तिलोयपण्णति में इन कल्पवृक्षों के विषय में लिखा है -

ते सव्वे कप्पदुमाणवणप्फदी णो बेंतरा सव्वे ।
णवरिं पुढविसरूवा पुण्णफलं देंति जीवाणं ।। ४-३५४ ।।

अर्थ - ये समस्त कल्पवृक्ष न वनस्पति रूप हैं और न ये सब व्यंतर रूप हैं। यथार्थ में पृथ्वी स्वरूप हैं तथा जीवों को उनके पुण्य कर्मों का फल देते हैं।

कल्पवृक्षों के सम्बंध में महापुराण का यह स्पष्टीकरण है कि ये वृक्ष '**निसर्गात् फलदायिनः**'अर्थात् स्वभाव से फल देते हैं। जिनसेन स्वामी महापुराण में कहते हैं –

नृणां दानफलादेते फलन्ति विपुलं फलम् ।
यथान्यपादपाः काले प्राणिनामुपकारकाः ।। ९-५१ ।।

जिस प्रकार अन्य वृक्ष अपने समय पर अनेक प्रकार के फल देकर प्राणियों का उपकार करते हैं, उसी प्रकार दान के फल से ये कल्पवृक्ष भोगभूमियों को विपुल फल देते हैं।

प्रश्न – सम्यक्त्व ग्रहण करने की योग्यता भोगभूमि, कर्मभूमि आदि में किस प्रकार होती है, बताइये।

समाधान – तिलोयपण्णत्ति के अनुसार – (१) उत्तम भोगभूमि में शरीर की पूर्णता होने पर २१ दिन में सम्यग्दर्शन धारण करने की योग्यता हो जाती है। मध्यम भोगभूमि में ३५ दिन में तथा जघन्य भोगभूमि में ४९ दिन में सम्यक्त्व लाभ करने की योग्यता प्राप्त हो जाती है । (गाथा ३८० – ४०० – ४०७ अध्याय ४)।

(२) कर्म भूमि के मनुष्यों में सम्यक्त्व की उत्पत्ति आठ वर्ष की पर्याप्त अवस्था के आगे होती है। कर्म भूमि में मनुष्य पर्याय पाने का विशेष महत्व है क्योंकि सुख और आनन्द की सामग्री भोगभूमि में प्रचुरता से प्राप्त होती है। किन्तु मोक्ष प्राप्त करने योग्य श्रेष्ठ रत्नत्रय आराधना पूर्वक धर्म कर्मभूमि में ही होता है।

(३) तिर्यंचों में दिवस पृथक्त्व अर्थात् तीन से अधिक और नौ के भीतर दिनों में सम्यक्त्व उत्पन्न होने की योग्यता पाई जाती है। देवों में पर्याप्ति पूर्ण होने के अन्तर्मुहूर्त के आगे सम्यक्त्व उत्पन्न हो सकता है। देवों के समान नारकियों में भी सम्यक्त्व प्राप्ति का वर्णन आगम में किया गया है।

(४) कर्मभूमि का मनुष्य चारों गति में सबसे अधिक काल बीतने पर सम्यक्त्व पैदा कर सकता है। किन्तु सम्यक्त्व के साथ सकल संयम को स्वीकार करने वाले साधु अन्तर्मुहूर्त में सर्वज्ञ परमात्मा भी बन सकते हैं, इसलिये यह मनुष्य पर्याय अपूर्व है।

प्रश्न – भोगभूमि की क्या विशेषताएँ हैं ?

समाधान – तिलोयपण्णत्ति के अनुसार भोगभूमि के मनुष्यों की और भी विशेषताएँ निम्नानुसार हैं –

(१) भोगभूमि के मनुष्यों का शरीर बहुत बलशाली होता है, उनमें नौ हजार हाथियों के सदृश बल होता है।

(२) वे आर्जव भाव सहित, मंदकषायी, सुशील, वज्रवृषभनाराच संहनन युक्त, समचतुरस्र संस्थान सहित, बालसूर्य के समान तेजस्वी, कवलाहार करते हुए भी नीहार रहित और युगल धर्म युक्त होते हैं।

(३) नर–नारी के अतिरिक्त अन्य परिवार नहीं होता। भोगभूमि में मनुष्य तथा तिर्यंचों की नौ मास आयु शेष रहने पर उनके गर्भ रहता है और मृत्यु काल आने पर उनके युगल–संतान उत्पन्न होती है।

(४) ये सब उत्तम युगल पारस्परिक प्रेम में अत्यंत मुग्ध रहा करते हैं इसलिये उनके श्रावक के व्रत और संयम नहीं होता। वे नर–नारी युगल गणित, शिल्प, गंधर्व, चित्र आदि चौंसठ कलाओं में स्वभाव से ही अतिशय निपुण होते हैं, उनमें कुल–जाति का भेद नहीं होता।

(५) व्याघ्र, काक आदि तिर्यंच मांसाहार के बिना कल्पवृक्षों का मधुर रस भोगते हैं। तृणजीवी पशु युगल दिव्य तृणों का भक्षण करते हैं।

(६)भोगभूमि में नगर ग्राम नहीं होते, केवल कल्प वृक्ष होते हैं। जो भोगभूमि के जीवों को मनोवांछित वस्तुएँ प्रदान करते हैं।

(७) पुरुष इन्द्र से तथा स्त्रियाँ अप्सराओं से ज्यादा सुन्दर होती हैं।

(८) ये कदलीघात मरण से रहित होते हैं। मृत्यु होने पर भोगभूमि के मिथ्यादृष्टि मनुष्य, तिर्यंच भवनत्रिक में और सम्यग्दृष्टि सौधर्म ईसान स्वर्ग में जन्म लेते हैं।

(९) भोगभूमि में जीवों को जातिस्मरण, देवों के प्रतिबोध या कोई चारण ऋद्धि मुनि आदि के उपदेश से सम्यक्त्व ग्रहण हो जाता है, किन्तु उनको संयम नहीं होता।

प्रश्न – भोगभूमि में तिर्यंच कौन जीव होते हैं ?

समाधान – तिलोयपण्णत्ति के अनुसार जो पापी जिनलिंग को ग्रहण करके संयम और सम्यक्त्व को छोड़ देते हैं और माया में प्रवृत्त होकर चारित्र को नष्ट करते हैं। जो मूर्ख मनुष्य कुलिंगी को नाना प्रकार का दान देते हैं, या उनके भेष धारण करते हैं वे भोगभूमि में तिर्यंच होते हैं।

प्रश्न – भोगभूमि का अंत होने पर नैसर्गिक परिवर्तन क्या होता है ?

समाधान – भोगभूमि का अंत होने पर कल्पवृक्ष नष्ट हो जाते हैं। इससे प्रजाजन अत्यंत व्याकुल हो उठते हैं। वातावरण में अद्भुत परिवर्तन होता है। अनेक प्रकार के धन धन्यादि स्वयं उत्पन्न होने लगते हैं। आकाश में मेघ गर्जना कर वर्षा करने लगते हैं, इस प्रकार भोगभूमि का अंत होने पर नैसर्गिक परिवर्तन होता है।

प्रश्न – भोगभूमि का अंत होने पर क्या भोगभूमि जीवों का भी अंत हो गया ?

समाधान – भोगभूमि का अंत होने पर बिना बोए धान्यादि से लाभ प्राप्त कर भोगभूमि के जीव अपनी आयु के अंत तक रहे। जब बिना बोया धान्य का लाभ भी बंद हो गया तब भोगभूमियाँ इस युग के आदिकर्त्ता श्री ऋषभनाथ तीर्थंकर के समीप आये।

श्री ऋषभनाथ ने कर्मभूमि के प्रगट होने पर, विदेह की वर्तमान स्थिति का विचार कर विदेह को आदर्श बनाकर यहाँ वर्णाश्रम की व्यवस्था की । प्रजा को असि (शस्त्र संचालन), मसि (लेखन कार्य), कृषि, शिल्प, वाणिज्य तथा पशु पालन द्वारा आजीविका का उपदेश दिया। इस वर्णाश्रम की व्यवस्था में मिथ्या संप्रदाय नहीं थे। यह अहिंसा पर आधारित थी। विद्वेष, घ्रणा का सद्भाव नहीं था।

प्रश्न – कृतयुग (कर्मभूमि) का आरंभ कैसे हुआ ?

समाधान – कृतकृत्य भगवान ऋषभदेव ने आषाढ़ मास की कृष्णपक्ष की प्रतिपदा के दिन कृतयुग (कर्मभूमि) का आरंभ किया। उन्होंने प्रजा के हितार्थ इन्द्र को स्मरण किया।

इन्द्र ने उनकी आज्ञानुसार विभाग कर प्रजा को आजीविका के उपाय किये। शुभदिन, शुभ नक्षत्र, शुभ मुहुर्त, शुभ लग्न के समय, सूर्यादि ग्रहों के अपने–अपने स्थान पर रहने के समय इन्द्र ने सर्वप्रथम मांगलिक कार्य किया फिर अयोध्या पुरी के बीच धर्मायतन की रचना की। इसके बाद पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों दिशाओं में यथाक्रम से धर्मायतनों की रचना की।

धर्मायतनों की रचना करके षट्कर्म दोषों के प्रक्षालन की व्यवस्था की। इस तरह समाज रचना के साथ ही आत्महित हेतु धर्म आराधना की व्यवस्था भी की गई।

अवसर्पिणी काल के तीसरे काल के अंत में चौदह कुलकर हुए। भगवान ऋषभदेव और भरत चक्रवर्ती भी कुलकर नाम से विख्यात हुए।

वर्तमानकालीन १४ कुलकर अथवा मनु सम्बन्धी कई जानने योग्य बातें -

क्र.	कुलकरों के नाम	कुलकरों की स्त्रियों के नाम	शरीर वर्ण	शरीर ऊँ. (धनुष)
०१.	प्रतिश्रुति	स्वयंप्रभा	सुवर्ण	१८००
०२.	सन्मति	यशस्वति	सुवर्ण	१३००
०३.	क्षेमंकर	सुनन्दा	सुवर्ण	८००
०४.	क्षेमन्धर	विमला	सुवर्ण	७७५
०५.	सीमंकर	मनोरमण [मनोहारी]	सुवर्ण	७५०
०६.	सीमन्धर	यशोधारिणी [यशोधरा]	सुवर्ण	७२५
०७.	विमलवाहन	सुमति	सुवर्ण	७००
०८.	चक्षुष्मान्	वसुन्धरा [धारिणी]	श्यामवर्ण	६७५
०९.	यशस्वी	कान्तमाला	श्यामवर्ण	६५०
१०.	अभिचन्द्र	श्रीमती	सुवर्ण	६२५
११.	चन्द्राभ	प्रजावती [प्रभावती]	धवल	६००
१२.	मरुद्देव	अनुपमामणी (सत्या)	सुवर्ण	५७५
१३.	प्रसेनजित	अमृतमति (अमितमति)	धवल	५५०
१४.	नाभिराज [राय]	मरुदेवी	सुवर्ण	५२५

कुलकरों के परस्पर अन्तर और जन्मकाल प्रमाण	**आयु काल प्रमाण**
६	७
- इनका जन्म तृतीत काल के एक पल्य का १/८ वाँ भाग बाकी रहने पर होता है।	एक पल्य का १/१० वाँ भाग प्रमाण
- प्रथम कुलकर के मरने के बाद पल्य का १/८० वाँ भाग बीत जाने पर इनका जन्म होता है।	एक पल्य का १/१०० वाँ भाग प्रमाण
- दूसरे कुलकर के मरने के बाद पल्य का १/८०० वाँ भाग बीत जाने पर इनका जन्म होता है।	एक पल्य का १/१०० वाँ भाग प्रमाण
- तीसरे कुलकर के मरने के बाद पल्य का १/८००० वाँ भाग बीत जाने पर इनका जन्म होता है।	एक पल्य का १/१० हजार वाँ भाग प्रमाण
- चौथे कुलकर के मरने के बाद पल्य का १/८०००० वाँ भाग बीत जाने पर इनका जन्म होता है।	एक पल्य का १/१ लाख वाँ भाग प्रमाण
- पांचवें कुलकर के मरने बाद पल्य का १/८	एक पल्य का १/१० लाख वाँ भाग प्रमाण

लाख वाँ भाग बीत जाने पर इनका जन्म होता है।	
– छठे कुलकर के मरने के बाद पल्य का १/८० लाखवां भाग बीत जाने पर इनका जन्म होता है।	एक पल्य का १/१ करोड़ वाँ भाग प्रमाण
– सातवें कुलकर के मरने के बाद पल्य का १/८ करोड़ वाँ भाग बीत जाने पर इनका जन्म होता है।	एक पल्य का १/१० करोड़ वाँ भाग प्रमाण
– आठवें कुलकर के मरने के बाद पल्य का १/८० करोड़ वाँ भाग बीत जाने पर इनका जन्म होता है।	एक पल्य का १/१०० करोड़ वाँ भाग प्रमाण
– नवें कुलकर के मरने के बाद पल्य का १/८०० करोड़ वाँ भाग बीत जाने पर इनका जन्म होता है।	एक पल्य का १/१००० करोड़ वाँ भाग प्रमाण
– दसवें कुलकर के मरने के बाद पल्य का १/८००० करोड़ वाँ भाग बीत जाने पर इनका जन्म होता है।	एक पल्य का १/१० ह. करोड़ वाँ भाग प्रमाण
– ग्यारहवें कुलकर के मरने के बाद पल्य का १/८०००० करोड़ वाँ भाग बीत जाने पर इनका जन्म होता है।	एक पल्य का १/१ लाख करोड़ वाँ भाग प्रमाण
– बारहवें कुलकर के मरने के बाद पल्य का १/८ लक्ष करोड़ वाँ भाग बीत जाने पर इनका जन्म होता है।	एक पल्य का १/१० ला. करोड़ वाँ भाग प्रमाण
– तेरहवें कुलकर के मरने के बाद पल्य का १/८० लक्ष करोड़ वाँ बीत जाने पर इनका जन्म होता है।	एक करोड़ पूर्व काल प्रमाण

कौन-कौन से कुलकर के समय में कौन कौन सी विशेष बातें हुई ?	**कौन -कौन से कुलकर अपनी अपराधी प्रजा को किस -किस तरह से दण्ड देते रहे उसका स्वरूप**
८	९
– जोतिरांग कल्पवृक्ष का तेज कम होने से आकाश में सूर्य-चन्द्रमा दिखाई पड़ने लगे।	**'हा'** तुमने बुरा किया है। ऐसे वचन से एक से लेकर पाँच कुलकर अपनी प्रजाजनों को दण्ड देते रहे।
– अंधकार, नक्षत्र और तारागण दिखने लगे।	
– क्ररमृग, व्याघ्र आदि हिंसक जंतुओं से बाधा होने लगी।	
– दीपोद्योतनोपाय बतलाये।	
– प्रजाजनों को कल्पवृक्षों की सीमा दिखला दी।	
– दिखलाई हुई सीमाविशेष का चिन्ह बतला दिया।	
– हाथी, घोड़े आदि वाहनों का उपभोग दिया।	
– बच्चों के मुखावलोकन का भय दूर किया।	
– बालकों के नामकरण की विधि बतला दी।	**'हा मा'** तुमने बुरा किया ऐसा काम मत करो! इस

- शिशुरोदन–निवारण हेतु बालकों के साथ चन्द्र दर्शनादि क्रीड़ा बताई।
- बालक और माता–पिता का परस्पर नाता उनको समझाकर कह दिया।
- नदी समुद्रादि जलाशयों के तरणोपाय रूप नाव, जहाजादि चलाने की रीति बतला दी।
- जन्म समय के जरायु को निकालने का उपाय बतला दिया था
- जन्म समय की नाभि के नाल को काटने का उपाय बतला दिया। औषधि, धन, धान्यादि का परिचय कराया एवं दूध के प्रयोग करने की शिक्षा दी। इनके समय कर्मभूमि का प्रारंभ हुआ।

तरह के वचनों से छह से लेकर दस कुलकर अपनी प्रजा को दण्ड देते रहे।

'हा मा धिक्' तुमने बुरा काम किया। ऐसा काम मत करो। तुमको धिक्कार है। इस वचन से ग्यारह से लेकर चौदहवें कुलकर और पंद्रहवें 'मनु' कहलाने वाले वृषभदेव अपनी प्रजा को दण्ड देते रहे। सोलहवें कुलकर भरतेश्वर ने दण्ड व्यवस्था एवं कृषि आदि षट् कर्मों की शिक्षा तथा वर्ण व्यवस्था की स्थापना की।

....

अनागत अर्थात् भविष्यत् काल में होने वाले १६ कुलकरों के नाम — **विशेष**

..........१०..........११..........

अनागत उत्सर्पिणी काल के दूसरे काल के अंत समय एक हजार वर्ष बाकी रहने पर क्रम से १६ कुलकर होते हैं उनके नाम–

०१. कनक
०२. कनकप्रभ
०३. कनकराज
०४. कनकध्वज
०५. कनकपुंगव
०६. नलिन
०७. नलिनप्रभ
०८. नलिनराज ०९. नलिनध्वज १०. नलिनपुंगव ११. पद्म १२. पद्मप्रभ
१३. पद्मराज १४. पद्मध्वज १५. पद्मपुंगव १६. महापद्म।

१. तेरहवें कुलकर के समय पुत्र और पुत्री होने लगे और इन्द्र ने उनका विवाह किया था।

२. कुलकर को छोड़कर बाकी सबका नाम **'आर्य'** था। इसलिए मरुदेवी के पिता का नाम नहीं बताया है।

३. चौदहवें कुलकर राजा नाभिराज और मरुदेवी का विवाह इन्द्र ने इस प्रकार महापुराण पर्व १२ में लिखा है।

इस प्रकार होंगे। क्षत्रिय आदि कुल का आचार और अग्नि से अन्नादिक पक्वान्नों का विधान बताना इत्यादि कार्य प्रजाजनों को बता देना उनका कर्त्तव्य होगा।

....

तीर्थंकर महापुरुष

प्रश्न – तीर्थ और तीर्थंकर शब्द का परिचय दीजिये ?

समाधान – जिनेन्द्र कथित आगम तथा आगम का आधार साधुवर्ग तीर्थ हैं। जिनकी वाणी के द्वारा संसार सिंधु से जीव तिर जाते हैं वे तीर्थ के कर्ता तीर्थंकर कहलाते हैं।

मूलाचार में तीर्थ के दो भेद कहे हैं – द्रव्य तीर्थ और भाव तीर्थ।

द्रव्य तीर्थ – इसमें तीन गुण हैं – १. संताप शांत होता है। २.तृष्णा का विनाश होता है। ३. मल–पंक की शुद्धि होती है इस तरह शास्त्र रूप धर्म को आचार्यों ने पुण्य तीर्थ कहा है। जिनवाणी रूपी गंगा में अवगाहन करने से संसार का संताप शांत होता है विषयों की लालसा दूर होती है और आत्मा में लगे द्रव्य कर्म, भावकर्म रूप मलिनता का निवारण होता है अत: जिनवाणी द्रव्य तीर्थ है।

भाव तीर्थ – सभी जिनेन्द्र भगवान सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र से संयुक्त हैं। इन तीन कारणों से युक्त होने से जिन भगवान भाव तीर्थ हैं। जिनेन्द्र वाणी द्वारा जीव अपनी आत्मा को रत्नत्रय से भूषित करते हैं अत: वह रत्नत्रय भूषित आत्मा भाव तीर्थ है। जिनदेव रूपी भावतीर्थ द्वारा आत्मा तीर्थंकर बनता है। और श्रुतरूप द्रव्य तीर्थ की रचना में निमित्त होता है।

धर्म तीर्थंकर – जिनेन्द्र भगवान द्वारा धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति होती है इसलिये उनको धर्म तीर्थंकर कहते हैं। तीर्थंकर पद किसी की कृपा से प्राप्त नहीं होता। पवित्र सोलह कारण भावनाओं तथा उज्ज्वल भावों द्वारा कोई पुण्यात्मा मानव तीर्थंकर प्रकृति नाम के पुण्य कर्म का बंध करता है। इन सोलह भावनाओं में दर्शन विशुद्धि भावना मुख्य है अन्य भावनाएँ इसी में गर्भित हैं।

प्रश्न – तीर्थंकर प्रकृति का बंध कौन जीव किस अवस्था में कर सकता है ?

समाधान –

०१. क्षायिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक सम्यक्त्वी जीव तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर सकते हैं।

०२. तीर्थंकर नामकर्म प्रकृति का बंध मनुष्य गति में ही केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में ही हो सकता है।

०३. कर्मकाण्ड गोम्मटसार जी के अनुसार इस प्रकृति का बंध तिर्यंच गति को छोड़ शेष तीन गतियों में होता है। अर्थात् भुज्यमान मनुष्य आयु हो और बद्धायु नरकायु या देवायु हो तो ही तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो सकता है। बद्धायु तिर्यंच या मनुष्यायु में नहीं होता।

०४. तीर्थंकर प्रकृति का बंध उत्कृष्टपने अंतर्मुहूर्त अधिक आठ न्यून दो कोटि पूर्व अधिक तैंतीस सागर प्रमाण काल पर्यंत हो सकता है।

०५. केवली या श्रुतकेवली के पादमूल सिवाय और कहीं ऐसी विशुद्धता नहीं है जहाँ इस प्रकृति का बंध हो जाए।

०६. भरत क्षेत्र में एक अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थंकर ही होते हैं। एक तीर्थंकर के समवशरण में दूसरे तीर्थंकर का सद्भाव नहीं होता। चक्रवर्ती, धर्मचक्रवर्ती (तीर्थंकर) नारायण, प्रतिनारायण, बलदेव का परस्पर मिलान नहीं होता। भरतक्षेत्र में पंचकल्याणक वाले तीर्थंकर ही होते हैं। सभी

तीर्थंकर स्वर्ग से चयकर भरत क्षेत्र में आते हैं।

प्रश्न – पंच महान कल्याणक का अर्थ स्पष्ट कीजिए ?

समाधान – इस संसार को पंच प्रकार के संकटों अकल्याणों की आश्रय भूमि माना गया है। उन्हें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव तथा भाव रूप पंच परावर्तन कहते हैं। तीर्थंकर भगवान के ये पंच परावर्तन छूट गये हैं। इन पंच अकल्याणों के प्रतिपक्ष रूप तीर्थंकर के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और मोक्ष पंच कल्याणक नाम से प्रसिद्ध हैं। इन पाँचों अवसरों पर इंद्र महान उत्सव करते हैं।

तीर्थंकरों के पंच कल्याणक

जिनेन्द्र भगवान के जीव के गर्भ में आने के (छह माह) पूर्व से इस भूमि में भावी तीर्थंकर के आगमन की महत्ता को सूचित करने वाले अतिशय होते हैं। आदिनाथ के जीव के माता मरूदेवी के गर्भ में आने से पूर्व इन्द्र की आज्ञानुसार स्वर्ग के समान अयोध्यानगरी (साकेत, विनिता, सुकोशलापुरी) की रचना देवों के द्वारा की गई थी। स्वर्ग की प्रतिकृति इस नगरी में 'सुरेन्द्र भवन' की तरह 'नरेन्द्र भवन' की रचना गई थी, जिसकी दीवारें दीप्तिमान मणियों से रचित थी, स्वर्णमय स्तंभ थे, पुष्प, मूंगा, मुक्तादि से अलंकृत थी। इस राजभवन का नाम 'सर्वतोभद्र' था। स्वयं इन्द्र इसके सूत्रधार, कल्पवासी देव शिल्पी थे। यह नगरी द्वादश योजन प्रमाण थी। राजा नाभिराय और मरूदेवी ने इसमें निवास आरंभ किया था।

जन्म के १५ माह पूर्व से दिन में चार बार साढ़े तीन –साढ़े तीन करोड़ यानि एक दिन में चौदह करोड़ रत्नों की वर्षा होती थी। कुंडलपर्वत पर निवास करने वाली चूलावती, मालिनिका, नवमालिका, त्रिशिरा पुष्पचूला, कनकचित्रा, कनकादेवी,वारुणीदेवी नाम की अष्टादिक कन्याएँ इन्द्र की आज्ञा से माता की सेवार्थ गई थी।

५६ देवांगनाओं के नाम

क्र.	देवियाँ	संख्या	नाम
०१.	कल्पवासी देवों के देवेन्द्र की इंद्राणियाँ	१२	कुलाचल
०२.	भवनवासी देवों के देवेन्द्र की इंद्राणियाँ	२०	वासिनी
०३.	व्यंतर देवों के देवेन्द्र की इंद्राणियाँ	१६	श्री देवी
०४.	ज्योतिष्क देवों के देवेन्द्र की इंद्राणियाँ	०२	ह्रीं देवी
०५.	कुलाचल वासनी श्रीदेवी आदि देवियाँ	०६	धृति देवी
		५६	

कीर्तिदेवी, बुद्धि, लक्ष्मीदेवी आदि छह देवियाँ माता के गर्भ शोधन व अन्य देवियाँ प्रगट व गुप्त रूप से माता की सेवा करती है इस तरह भावी जिनमाता मनुष्यों से तो क्या देवेन्द्रों और इंद्राणियों से पूज्य होती हैं।

गर्भ कल्याणक: माता के सोलह स्वप्न – गर्भधारण के पूर्व प्रत्येक जिनेन्द्र जननी रात्रि के अंतिम प्रहर में सोलह स्वप्न देखती हैं और उनका फल अपने पति (जिनेन्द्र पिता) से पूछती हैं। ये स्वप्न और उनका फल निम्नानुसार है –

क्र.	स्वप्न	फल
०१	गर्जनायुक्त सफेद हाथी	उच्च चारित्र का धनी
०२	सफेद बैल	धर्मात्मा
०३	सिंह	पराक्रमी (अनंत बलशाली)
०४	कलशाभिषेक करते हाथियों के बीच लक्ष्मी	लक्ष्मी से अधिक श्री संपन्न
०५	दो फूल मालाएँ	सबके द्वारा शिरोधार्य (धर्म प्रवर्तक)
०६	चाँदनी युक्त पूर्ण चंद्रमा	संसार के संताप को दूर करने वाला
०७	उदित होता सूर्य	अधिक तेजस्वी
०८	सरोवर में क्रीड़ारत मीन	रूप संपन्न (अनंत सुखी)
०९	कमलाच्छाति दो स्वर्ण कलश	कल्याण को प्राप्त
१०	पद्मसरोवर	वात्सल्य भाव युक्त
११	उन्मत्त लहरयुक्त समुद्र	गंभीर बुद्धि वाला
१२	रत्नजड़ित सिंहासन	सिंहासन का स्वामी (जगद्‌गुरु)
१३	रत्नजड़ित देव विमान	देवों का आगमन (स्वर्ग से अवतीर्ण)
१४	नागेंद्र भवन	नागकुमार देवों का आगमन (अवधिज्ञान से युक्त)
१५	प्रकाशमान रत्नराशि	गुणों का स्वामी
१६	धूमरहित प्रखर अग्नि	अष्टकर्म क्षय कर मोक्ष जाने वाला

देवों द्वारा सेवा का फल

इस स्वप्न दर्शन के बाद तीर्थंकर आत्मा गर्भ में आ जाती है। इन्द्र आदि देव और शची इंन्द्राणी आदि देवांगनाएँ माता की सेवा कर संसार परिभ्रमण का उच्छेद करते हैं जो इस प्रकार है –

त्रिलोकसार जी के अनुसार –

सौधर्म इन्द्र और उसकी इन्द्राणी – सौधर्म स्वर्ग से चयकर एक मनुष्य भव धारण कर मोक्ष जाते हैं।

सौधर्मेंद्र – दो सागर प्रमाण देवायु पूर्ण कर मनुष्य होकर मोक्ष जाते हैं किन्तु शची इन्द्राणि पचपन पल्य प्रमाण आयु पूर्ण कर मनुष्य भव प्राप्त कर मोक्ष जाती हैं।

सर्वार्थसिद्धि के देव (लोकोत्तर) – ३३ सागर के पश्चात् मोक्ष लाभ पाते हैं।

लौकांतिक देव – ०८ सागर के पश्चात् मोक्ष लाभ पाते हैं।

इस तरह सौधर्मेंद्र, शची, सोम, वरुण, यम, कुबेर आदि लोकपाल दक्षिणेंद्र, लौकान्तिक, सर्वार्थसिद्धि

के देव वहाँ से चय कर नियम से मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

जन्म कल्याणकः अतिशय

०१. जन्म के समय जननी को कोई कष्ट नहीं होता। देवियाँ उनकी सेवा में तत्पर रहती हैं।

०२. त्रिभुवन के समस्त जीव अंतः करण में सुखादि का अनुभव करते हैं।

०३. नैसर्गिक वातावरण अति सुखद होता है।

०४. सभी दिशायें स्वच्छ, सुगंधित होती है।

०५. कल्पवृक्षों से पुष्प वृष्टि होती है।

०६. देव दुन्दुभि बजती है। शीतल, सुगंधित पवन बहती है।

०७. पहाड़ और पृथ्वी कंपित होने लगती है। समुद्र सीमा लांघ रहा था मानों आनंद को प्राप्त हुआ हो।

०८. जन्म होते ही भवनवासियों के यहाँ शंख ध्वनि, व्यंतरों के यहाँ भेरी नाद, ज्योतिषी देवों के यहाँ सिंहनाद, कल्पवासियों के यहाँ स्वयमेव घंटा बजने लगते हैं।

०९. सौधर्मेंद्र का आसन काँपने लगता है। अवधिज्ञान से तीर्थंकर का जन्म जानकर सात पैड़ आगे बढ़कर हाथ जोड़ जिनेन्द्र भगवान को परोक्ष रूप से प्रणाम करते हैं।

जिनेन्द्र जन्मोत्सव – सिद्धांतसार दीपक के अनुसार जन्मोत्सव मनाने इन्द्र महाराज की सवारी के आगे–अभियोग्य देवों की सात प्रकार की सेना गाती हुई चलती है। देवगति नामकर्म का उदय होते हुए भी अल्पपुण्य होने के कारण इन्हें विविध प्रकार के वाहन (गज, तुरंगादि) का रूप धारण करना पड़ता है और किल्विषिक देव हीन पुण्य के कारण शूद्र के समान अलग चलते हैं। ये सात प्रकार की सेना निम्नानुसार है –

सेना क्र.	देव सेना का स्वरूप	देव किस स्वर में	किसका गुण गाते चलते हैं ?
पहली	गजरूप धारी देव सेना	षडज स्वर में	विद्याधर कामदेव का गुणगान
दूसरी	तुरंग रूपधारी देव सेना	ऋषभ स्वर में	मांडलिक, महामांडलिक राजाओं का गुणगान
तीसरी	रथरूप	गांधार स्वर में	बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण के बलवीर्य का गुणगान
चौथी	पैदल रूप धारी	मध्यम स्वर में	चक्रवर्ती की विभूति बल वीर्यादि का गुणगान
पाँचवीं	वृषभ रूप धारी	पंचम स्वर में	लोकपाल जाति देवों, चरमशरीरी मुनियों का गुणगान
छटवीं	गंधर्व रूप धारी	धैवत स्वर में	गणधरदेव तथा ऋद्धिधारी मुनियों का गुणगान
सातवीं	नृत्यकारिणी देव	निषाद स्वर में	तीर्थंकर भगवान के ४६ गुणों का और पुण्य जीवन का मधुर गान।

जन्मोत्सव में सम्मिलित मनोज्ञ ऐरावत

विक्रिया शक्ति संपन्न देवों में कल्पनातीत शक्ति रहती है। इनका शरीर औदारिक शरीर की अपेक्षा अत्यंत सूक्ष्म होता है। उस सूक्ष्म परिणाम प्राप्त वैक्रियक शरीर का स्थूल रूप दर्शन ऐरावत हाथी में होता है।

एक लाख योजन का यह ऐरावत गज लौकिक गजेंद्रों से भिन्न होता है। गज के ३२ मुख, प्रत्येक मुख में ८-८ दाँत, प्रत्येक दाँत पर एक-एक सरोवर, प्रत्येक सरोवर में एक-एक कमलिनी, प्रत्येक कमलिनी में ३२-३२ कमल और कमल के प्रत्येक पत्ते पर ३२ -३२ देवांगनाएँ मधुर नृत्य करती हैं। इस प्रकार २५६ दांत, ८१९१ कमल, २६२१४४ कमल पत्र तथा ८३८८६०८ देवांगनाएँ होती हैं। यह पुद्गल की अचिंत्य शक्ति का माहात्म्य है।

ऐसे मनोज्ञ ऐरावत हाथी पर सौधर्मेंद्र और शची रानी आकाश मार्ग से देव सेना,भवनत्रिक देवताओं के समुदाय के साथ उल्लासपूर्वक जन्मोत्सव के हेतु अयोध्या प्रस्थान करते हैं।

अष्ट मंगल -जन्मोत्सव हेतु अयोध्या आकर इन्द्र की आज्ञा से शची रानी अन्त:पुर में प्रवेश करती हैं। माता की प्रदक्षिणा कर, तीर्थंकर शिशु को प्रणाम कर, उनकी जगह मायामयी शिशु को रखकर गोद में उठा लेती हैं। प्रसव मन्दिर से बाहर आते हुए अष्ट मंगल द्रव्य धारण करती देवियाँ समान-गमन करती हैं। ये अष्ट द्रव्य हैं - छत्र, चामर, ध्वजा, कलश, सुप्रतिष्ठक (ठोना), झारी, दर्पण, पंखा।

इन्द्र के सहस्र नेत्र -प्रभु की अनुपम मनोज्ञ छवि का दर्शन करने हेतु सुरराज सहस्र नेत्र बनाते हैं और आश्चर्य-आनंद के सिंधु में आकंठ निमग्न हो जाते हैं।

ज्योतिष मंडल का उल्लंघन -सौधर्म इन्द्र गोद में त्रिलोकीनाथ को लेकर पांडुक शिला की ओर प्रस्थान करते हैं। सभी देव ज्योतिष पटल का उल्लंघन कर आगे बढ़ते हैं। मानों मेरूपर्वत पर्यंत नील मणियों से निर्मित सीढ़ी हो।

ज्योतिषी देवों का आवास

ज्योतिष पलट में ७९० योजन पर ताराओं का सद्भाव है।

०१.	ताराओं के आगे	९ योजन ऊँचाई पर	केतु (अरिष्ट)विमान है।
०२.	केतु के आगे	१ योजन ऊँचाई पर	सूर्य का विमान है।
०३.	सूर्य के आगे	७९ योजन ऊँचाई पर	राहु का विमान है।
०४.	राहु के आगे	१ योजन ऊँचाई पर	चन्द्र का विमान है।
०५.	चन्द्र के आगे	३ योजन ऊँचाई पर	नक्षत्रों का विमान है।
०६.	नक्षत्रों के आगे	३ योजन ऊँचाई पर	बुध का विमान है।
०७.	बुध के आगे	३ योजन ऊँचाई पर	शुक्र का विमान है।
०८.	शुक्र के आगे	३ योजन ऊँचाई पर	गुरु का विमान है।
०९.	गुरु के आगे	४ योजन ऊँचाई पर	मंगल का विमान है।
१०.	मंगल के आगे	४ योजन ऊँचाई पर	शनैश्चर का विमान है।

इस प्रकार समतल भूमि से (चित्राभूमि) ७९० योजन ऊँचाई पर ११० योजन में ज्योतिषी देवों का आवास है। ये देव मेरु की परिक्रमा करते हैं।

तीर्थंकरों को सहज प्राप्त जन्म काल के दस अतिशय

०१. सौरूप्य – अत्यंत सुंदर शरीर.
०२ सौरभ – अत्यंत सुगंधित शरीर.
०३. नि:स्वेदत्व – पसीना रहित शरीर.
०४. निर्मलत्व – मलमूत्र रहित शरीर.
०५. प्रियहित वादित्व – मधुर हित मितवचन.
०६. अप्रमित वीर्यता – अनंत बल वीर्य होना.
०७. क्षीर गौर रुधिरत्व – धवल रक्त.
०८. सौलक्षण्य – शरीर पर १००८ लक्षण.
०९. समचतुरस्रसंस्थान – उत्तम आकार का शरीर होना।
१०. वज्रवृषभनाराच संहनन – वज्रमय शरीर होना।

तीर्थंकरों को छद्मस्थ काल में आहार होता है नीहार नहीं

केवलज्ञानी भगवान को केवलज्ञान होने के पूर्व अन्नपान ग्रहण होते हुए भी मलमूत्र नहीं होता। छद्मस्थ तीर्थंकर, उनके माता-पिता, बलदेव, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण तथा समस्त भोगभूमियाँ जीव को आहार है परन्तु नीहार नहीं।

तीर्थंकरों के शरीर में रहने वाले १००८ सुलक्षण

१. श्रीवृक्ष (नारियल वृक्ष), २. शंख, ३. कमल, ४. स्वस्तिक, ५. अंकुश, ६. तोमर, ७. चमर, ८. श्वेत छत्र, ९. सिंहासन (सिंहपीठ), १०. ध्वज, ११. मीन युगल, १२. दो कुंभ, १३. कच्छप, १४. चक्र, १५. समुद्र, १६. सरोवर, १७. विमान, १८. भवन (नागेंद्र भवन), १९. हाथी, २०. मनुष्य, २१. स्त्री, २२.सिंह, २३. बाग, २४. धनुष्य, २५. मेरू, २६. इन्द्र, २७. देवांगना, २८. पुर (पट्टण), २९. गोपुर, ३०. चंद्रमा, ३१. सूर्य, ३२. उत्तम घोड़ा, ३३. पंखा, ३४. बांसुरी, ३५. वीणा, ३६. मृदंग, ३७. मालायें (दो), ३८. रेशमी वस्त्र, ३९. दुकान, ४०. शेखरपट्ट (मुकुट), ४१. हार (मौक्तिकमाला), ४२. पदक (चूड़ामणि), ४३. ग्रैवेयक, ४४. प्रालम्ब, ४५. केयर (बाजुबंद), ४६. अंगद, ४७. कटिसूत्र, ४८. दो मुद्रिकायें, ४९. कुण्डल, ५०. कर्णपूर, ५१. दो कंकण (कड़ा), ५२. मंजीर (नूपुर), ५३. कटक, ५४. पट्ट (भालपट्ट), ५५. सूत्र (ब्रह्मसूत्र), ५६. फल भरित उद्यान, ५७. पके वृक्ष से पूरित खेत, ५८. रत्नदीप, ५९. वज्र, ६०. पृथ्वी, ६१. लक्ष्मी, ६२. सरस्वती, ६३. कामधेनु गाय, ६४. वृषभ (बैल), ६५. चूड़ामणि, ६६. महानिधियाँ, ६७. गृहांग कल्पवृक्ष, ६८. भाजनांग, ६९. भोजनांग, ७०. पानांग, ७१. वस्त्रांग, ७२. भूषणांग, ७३. माल्यांग, ७४. दीपांग, ७५. ज्योतिरांग, ७६. सूर्यांग, ७७. सुवर्ण, ७८. जम्बूवृक्ष, ७९. गरुड़, ८०. नक्षत्रों का समूह, ८१. तारागण, ८२. राजभवन, ८३. अंगारक (शनि), ८४. रवि ग्रह, ८५. चन्द्र ग्रह,८६. मंगल ग्रह, ८७. बुध, ८८. गुरु, ८९. शुक्र, ९०. राहु, ९१. केतु, ९२. सिद्धार्थ वृक्ष, ९३. अशोक वृक्ष, ९४. रत्न सिंहासन, ९५. छत्रत्रय, ९६. भामंडल, ९७. दिव्यध्वनि, ९८. पुष्पवृष्टि, ९९. चमर, १००. देवदुन्दुभि, १०१. झारी, १०२. कलश, १०३. ध्वजा, १०४. छत्र, १०५. सुप्रतिष्ठ साथिया, १०६. चमर, १०७. दर्पण, १०८. पंखा, १०९. ९०० व्यंजन, मसूरकादि, इस तरह १००८ शुभ लक्षण होते हैं।

तीर्थंकर भगवान ग्रहस्थावस्था में अवधिज्ञान का उपयोग करते है। तीर्थंकर भगवान की (छद्मस्थ) अवस्था में मुनियों से भेंट होती है किंतु तीर्थंकर मुनीश्वरों की वंदना नहीं करते।

प्रश्न – तीर्थंकरों के चिन्ह का निर्णय कैसे होता है ?

समाधान – तीर्थंकरों के जन्म काल के दस अतिशयों में से 'सौलक्षण्य' नामक एक अतिशय है उस अतिशय के अनुसार उनके शरीर पर रहने वाले १००८ लक्षणों में से उनके दाहिने पैर के अंगूठे में जो चिन्ह रहता है उसको 'लांछन या चिन्ह' कहते हैं। लिखा भी है :-

जम्मणकाले जस्सदु दाहिणपायम्मि होई जो चिन्हं ।
तं लक्खण पाउत्तं आगमसुत्ते सुजिणदेहं ।।

तपकल्याणक – उचित समय और काललब्धि प्राप्त होने पर मोहनिद्रा दूर होने पर संपूर्ण दृष्टि बदल जाती है। वैराग्य भाव होने पर इन्द्र पुन: सहस्र नेत्र कर आनंद का अनुभव करते हैं। विरक्त तथा दिव्य विषयों में आसक्त रहने वाले देवर्षि लौकांतिक देव योग्य बेला देखकर दीक्षा की अनुमोदना हेतु आते हैं। चारों निकायों के देवों द्वारा अंतिम अभिषेक किया जाता है। 'सुदर्शना' नामक दीक्षा पालकी में विराजमान प्रभु को भूमिगोचरी राजा सात पैंड तक अपने कंधों में उठाते हैं। पश्चात् विद्याधर सात पद तक पालकी धारण करते हैं। फिर पालकी को आकाश मार्ग से 'सिद्धार्थ' नामक दीक्षावन (अयोध्या के निकट) में ले जाते हैं। पालकी उठाने के प्रकरण को लेकर उनमें न कोई झगड़ा होता है न ही क्षोभ।

सिद्धार्थ दीक्षावन में चंद्रकांत मणि की शिला देवों द्वारा रखी जाती है, जिस पर शचीरानी रत्नचूर्ण से चौक पूरती हैं। चंदन के छींटे व अनेक मंगल द्रव्य चारों ओर रखे होते हैं। आत्मा, देवता और सिद्ध भगवान को साक्षी बनाकर वस्त्राभूषण को त्याग कर तीर्थंकर परिग्रह त्यागी होते हैं, पंच मुष्टि केशलोंच करते हैं। तीर्थंकर चतुर्निकाय के देवों, नारकी जीव, भोगभूमि जीव, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र, कामदेव के दाढ़ी मूछ नहीं होते अत: वे सदैव नवयौवन रूप में रहते हैं। केशलोंच के बाद महामुनि, महामौनी, महाध्यानी, महादम, महाक्षम, महाशील, महायज्ञ, महामख हुए तीर्थंकर केवलज्ञान होने तक मौन रहते हैं।

लोकसंसर्ग होने पर वचन प्रवृत्ति होती है। उससे मानसिक विकल्प होते हैं। इससे चित्त में विभ्रम होते हैं। अत: स्वसंवेदन (स्वानुभव) में संलग्न श्रेष्ठ संयमी जनसंसर्ग का त्याग करें।

महापुरुषों के आश्रय से मलिन व्यक्ति भी सम्मान को प्राप्त करते हैं। तीर्थंकरों के द्वारा त्याज्य वस्त्राभूषण, केश तथा अक्षय वट (जिसके नीचे मुनि पदवी अंगीकार की) केवलज्ञान वृक्ष (अशोक वृक्ष) चैतकृष्ण नवमी दिन (दीक्षादिवस) धन्य माना जाने लगा। सर्व साधन संपन्न जिन भगवान का समस्त परिग्रह-त्याग विशुद्धि का कारण होता है।

महावीर स्वामी का दीक्षावृक्ष ३२ धनुष ऊँचा था। अन्य सभी तीर्थकरों के दीक्षावृक्षों की उनके शरीर से बारह गुना ऊँचाई होती है।

आहार विधि, दानतीर्थ की प्रवृत्ति और पंचाश्चर्य

लाभांतराय का क्षयोपशम होने पर विवेक, विज्ञानादि सात गुणों से समलंकृत महाराजा श्रेयांस ने राजभवन में अक्षयतृतीया को १ वर्ष, १ माह, ९ दिन के पश्चात् आदिनाथ स्वामी को इक्षुरस का आहार दिया। इस दान में विधि, द्रव्य, दाता, पात्र सभी श्रेष्ठ होने से इसे उत्तम पात्रदान माना है। राजा श्रेयांस दान तीर्थंकर (दान में सर्वश्रेष्ठ) थे। आहार होते ही पंचाश्चर्य हुए – १.आकाश से रत्नों की धारा पृथ्वी पर बही। २. मंद

सुगंध शीतल पवन बहने लगी। ३. दिव्यपुष्पों की वृष्टि हुई। ४. देवदुंदुभि और ५.जयघोष के स्वर गूँजने लगे।

आहारदान की महिमा –१.आध्यात्मिक श्रेष्ठ लाभ यह है कि दाता उसी भव में या तीसरे भव में मोक्ष पाता है। २. तत्काल दाता के भवन में १२५०००. रत्नों की वर्षा होती है। ३. आहार दान से वीतरागी मुनियों के रत्नत्रय के परिपालन में विशिष्ट सहायक उनके पवित्र शरीर का रक्षण होता है। ४. ग्रहस्थ स्वयं श्रेष्ठ तप नहीं कर पाता किन्तु अपने न्यायपूर्वक प्राप्त द्रव्य के द्वारा महाव्रती का सहायक बनता है। ५. अत: आहार दान से असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प और पशुपालन, चक्की, चूल्हा, बुहारी, उखली और पानी आदि पंच सूना क्रियाओं द्वारा अर्जित महान दोषों का क्षय होता है।

केवलज्ञान कल्याणक – घातिया कर्म की ४७ तथा अघातिया कर्म की १६ प्रकृतियों पर विजय पाकर भगवान ने केवलज्ञान प्राप्त किया। इस समय भी जन्म के जैसे ही समस्त लक्षण हुए। संसार भर में शान्ति छा गई, कल्प, ज्योतिषी, व्यंतरों और भवनवासियों के यहाँ क्रमश: घंटा, सिंहनाद, भेरीनाद, शंखध्वनि होने लगी। इन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ। कल्पवृक्षों से पुष्पवर्षा, दिशाओं में निर्मलता, मेघ रहित आसमान, मंदसुगंध शीतलपवन बहने लगी। इन्द्र परोक्ष वंदना करते हैं। नागदत्त नाम के अभियोग्य जाति के देव ने ऐरावत हाथी का रूप बनाया और सौधर्मेंद्र, ईशानेंद्र अपनी-अपनी शची रानी के साथ प्रस्थान करते हैं। इन्द्राज्ञा से कुबेर समवशरण की रचना करते हैं। समवशरण में पहुँचकर इन्द्र तीर्थंकर की स्तुति वंदना करते हैं। भगवान बारह सभा कक्षों में उपस्थित समस्त जीवों को धर्मोपदेश अपनी दिव्य ध्वनि से देते हैं। इस उत्सव को केवलज्ञान कल्याणक कहते हैं।

प्रश्न – केवली भगवान पृथ्वी से पाँच हजार धनुष ऊँचे आकाश में क्यों रहते हैं ?

समाधान – त्रिलोक प्रज्ञप्ति के अनुसार केवलज्ञान उत्पन्न होने पर केवली का परम औदारिक शरीर पृथ्वी से पाँच हजार धनुष अर्थात् बीस हजार हाथ प्रमाण ऊँचा चला जाता है।

तीर्थंकरों का समवशरण – देवों के अद्‌भुत कौशल तथा तीर्थंकर प्रकृति के निमित्त से आदिनाथ भगवान का बारह योजन विस्तार वाला समवशरण सौंदर्य, वैभव और श्रेष्ठ कला का अद्‌भुत केन्द्र था।

समवशरण का विस्तार –

ऋषभनाथ तीर्थंकर	–	१२ योजन विस्तार युक्त
अजितनाथ से २२ वें नेमिनाथ तक	–	क्रमश: १/२ योजन कम विस्तार युक्त
पार्श्वनाथ तीर्थंकर	–	सवा योजन विस्तार युक्त
महावीर भगवान	–	एक योजन विस्तार युक्त

यह कथन अवसर्पिणी काल की अपेक्षा है। उत्सर्पिणी काल में इसके विपरीत क्रम जानना चाहिए। विदेह क्षेत्र के तीर्थंकरों की काया पाँच सौ धनुष होने से समवशरण का विस्तार बारह योजन है।

समवशरण की रचना – संक्षेप में परिचय इस प्रकार है।

पहला परकोट – समवशरण के बाहर सर्वप्रथम रत्नों की धूलि से निर्मित परकोट है जिसे धूलिसाल कहते हैं।

तोरणद्वार – धूलिसाल के बाहर चारों दिशाओं में सुवर्णमय खंभों के अग्रभाग पर अवलंबित चार तोरणद्वार शोभायमान रहते हैं।

मानस्तंभ – धूलिसाल के भीतर जाने पर कुछ दूरी पर चारों दिशाओं में एक–एक मानस्तंभ हैं। वे मानस्तंभ महाप्रमाण के धारक हैं। घंटा, चामर, ध्वजाओं से शोभायमान हैं। मान स्तंभ के मस्तक पर छत्र हैं अत: इसका दूसरा नाम इन्द्रध्वज हो गया है।

सरोवर एवं अन्य रचना – प्रत्येक मानस्तंभ के चारों ओर सरोवर फिर निर्मल जल संपूर्ण परिखा है। पश्चात् पुष्पवाटिका अनंतर प्रथम कोट है।

प्रथम कोट – प्रथम कोट के बाद दो–दो नाट्यशालायें हैं। उसके आगे अशोक आदि का वन है, उसके आगे वेदिका है। तदनन्दतर ध्वजाओं की पंक्तियाँ हैं।

दूसरा कोट – दूसरे कोट के पश्चात् वेदिका के साथ कल्पवृक्षों का वन है। इसके बाद स्तूप और भवन पंक्तियाँ हैं।

तीसरा कोट – स्फटिक मणिमय तीसरा कोट है। उसके भीतर मनुष्य, देव और मुनियों आदि की बारह सभाएँ हैं।

तदनंतर पीठिका के ऊपर स्वयंभू भगवान अरहंत देव विराजमान हैं। हरिवंशपुराण के अनुसार समवशरण सभा जमीन से ५०० योजन ऊँचाई पर रहकर २०,००० स्वर्णमय सीढ़ियों सहित होती है। इसमें ११ भूमियाँ रहती हैं –१. चैत्यभूमि, २. खातिका भूमि, ३. लताभूमि, ४. उपवन भूमि, ५. ध्वजाभूमि, ६. कल्पांग भूमि, ७. ग्रह भूमि, ८. सद्गुण भूमि, ९, १०, ११, ये तीन पीठिका रूप। केवली भगवान के समवशरण में ध्वजा स्थान के आगे सहस्र स्तंभों के ऊपर रहने वाले मनोहर परिवार मंडप में तीन पीठ भूमि की तीन मेखला अर्थात् तीन कटनीयुक्त प्रदेश में, ऐसा जो सिंहासन रहता है उस पर विराजमान होकर भगवान उपदेश देते हैं। भगवान का मुख पूर्व दिशा की ओर रहता है किन्तु वे चारों दिशाओं में दिखाई देते हैं।

समवशरण में आठवीं सद्गुण भूमि – दिव्यध्वनि सुनने हेतु सभाओं का क्रम निम्नानुसार है–१. सर्वज्ञ भगवान के दाहिने बाजू में गणधर देव आदि सात प्रकार के मुनिराज बैठते हैं। २. दूसरे कोठे में कल्पवासिनी देवियाँ। ३. आर्यिकाएँ तथा मनुष्य स्त्रियाँ। ४. ज्योतिषी देवों की देवियाँ। ५. व्यंतरनी देवियाँ। ६. भवनवासी देवियाँ। ७. भवनवासी देव। ८. व्यंतर देव। ९. ज्योतिष्क देव। १०. कल्पवासी देव। ११. मनुष्य चक्रवर्ती, मांडलिक नरेश, विद्याधरादि पुरुष। १२. पशु – सिंह, मृग, हाथी, घोड़ा, मयूर, सर्प, बिल्ली, चूहा आदि तिर्यंच जीव आपस में बैर छोड़कर प्रेमपूर्वक बैठते हैं।

अवगाहना – एक–एक समवशरण में पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण विविध प्रकार के जीव स्थित रहते हैं। कोठों के क्षेत्रफल की अपेक्षा जीवों का क्षेत्रफल असंख्यातगुणा ज्यादा है तो भी सब जीव परस्पर में अड़चन न होते हुए अलग–अलग बैठते हैं।

प्रश्न – समवशरण में कौन– कौन से जीव होते हैं ?

समाधान – मुनिसुव्रत काव्य के अनुसार इस धर्म सभा में अभव्य जीव, मिथ्यादृष्टि, सासादन गुणस्थान वाले, मिश्रगुणस्थान वाले नहीं रहते। अनध्यवसाय से युक्त, संदेह युक्त, विविध प्रकार की विपरीतताओं से युक्त जीव भी नहीं होते। यहाँ आतंक, रोग, मरण उत्पति, बैर, कामबाधा, प्यास, क्षुधा की पीड़ाएँ नहीं होती। स्त्री, बालक, वृद्ध सबका समुदाय सुखपूर्वक रहता है। वहाँ उपस्थित जीवों को निद्रा, मरण, प्रसव,

शोक, रोगादिक नहीं होते।

केवलज्ञान के दस अतिशय – घातिया कर्मों का क्षय करने से तीर्थंकर भगवान के दस अतिशय होते हैं।

०१. चार सौ कोस भूमि में सुभिक्षता।
०२. आकाश में अधर गमन–गमनागमन।
०३. अप्राणिवध – अभय।
०४. भुक्त्यभाव – कवलाहार का अभाव।
०५. उपसर्गाभाव – उपसर्ग का अभाव।
०६. चतुरास्यत्व – चारों ओर मुख दर्शन।
०७. सर्व विद्येश्वरता – सर्व विद्या के ईश्वर।
०८. अच्छायत्व – शरीर की छाया न पड़ना।
०९. अपक्ष्मस्पन्दत्व – पलकों का बंद न होना।
१०. समप्रसिद्ध नखकेशत्व – नखकेश का न बढ़ना।

तीर्थंकर के देवकृत चौदह अतिशय –

०१. सर्वार्धमागधी भाषा।
०२. संपूर्ण विरोधी जीवों में मैत्री।
०३. दसों दिशाओं का निर्मल होना।
०४. आकाश निर्मल होना।
०५. सर्वऋतु के फूलों का आना।
०६. एक योजन तक दर्पणवत् पृथ्वी होना।
०७. विहार करते समय चरणों के नीचे सुवर्ण कमल (२२५)
०८. आकाश में जय–जय ध्वनि होना।
०९. मंद –सुगंधित वायु बहना।
१०. गंधोदक वृष्टि होना।
११. भूतल दर्पणवत् स्वच्छ रहना।
१२. सम्पूर्ण जीवों को परम आनंद होना।
१३. प्रभु के आगे धर्म चक्र चलना।
१४. अष्ट मंगल सहित विहार।

अष्ट द्रव्य – १. झारी २. कलश ३. दर्पण ४. पंखा ५. ध्वजा ६. चामर ७. छत्र ८. सुप्रतिष्ठ (स्वस्तिक)।

अष्टप्रातिहार्य – १. अशोक वृक्ष २. रत्नजड़ित सिंहासन ३. तीन छत्र ४. भामंडल ५. दिव्यध्वनि ६. पुष्प वर्षा ७. चौंसठ चमर ढुरना ८. देवदुन्दुभि।

दिव्यध्वनि – तिलोयपण्णत्ति के अनुसार दिव्यध्वनि १८ महाभाषा ७०० लघुभाषा तथा और भी संज्ञी जीवों की भाषा रूप परिणत होती है। यह तालु, दंत, ओष्ठ और कंठ की क्रिया से रहित होकर एक ही समय में भव्य जीवों को उपदेश देती है। भगवान की दिव्यध्वनि प्रारंभ में अनक्षरात्मक होती है इसलिए उस समय केवली भगवान के अनुभय वचन योग माना गया है। पश्चात् श्रोताओं के कर्ण प्रदेश को प्राप्त कर सम्यग्ज्ञान को उत्पन्न करने से केवली सत्य वचन योग का सद्भाव आगम में माना है।

सबकी हितकारी होने से इसे सार्व मागधी या सार्व अर्ध मागधी कहा है। यह दिव्यध्वनि प्रभात, मध्याह्न, सायंकाल और मध्यरात्रि के समय छह–छह घटिका काल पर्यंत अर्थात् दो घंटा चौबीस मिनट प्रतिदिन नियम से खिरती है। इसके सिवाय गणधर, चक्रवर्ती, इन्द्रसदृश विशेष पुण्यशाली व्यक्तियों के आगमन पर उनके प्रश्न के उत्तर हेतु भी दिव्यध्वनि खिरती है। समवशरण के प्रभाव से वहाँ निद्रा का अभाव होता है।

अनंत सुख – मोहनीय आदि चार घातिया कर्मों के क्षय से अनंत चतुष्टय अर्थात् अनंत दर्शन,

अनंतज्ञान, अनंतसुख, अनंतवीर्य ये चार गुण उत्पन्न होते हैं। भोगने योग्य पदार्थ में उत्सुकता का अभाव अनंतसुख है।

अठारह दोषों का अभाव – क्षुधा, तृषा, जन्म, जरा, मरण, विस्मय, अरति, खेद, शोक, रोग, मद, मोह, राग, द्वेष, भय, निद्रा, स्वेद, ये अठारह दोष केवली के नहीं होते हैं।

प्रश्न – केवली कितने प्रकार के होते हैं ?

समाधान – केवली भगवान सामान्यतया दो प्रकार के होते हैं–सामान्य केवली और तीर्थंकर केवली।

सामान्य केवली – जिन्होंने घातिया कर्मों को क्षय करके केवलज्ञान प्राप्त किया। इनके पंच कल्याणक न होकर मात्र गंधकुटी रचना और समवशरण होते हैं। सामान्य केवली की भी दिव्यध्वनि से तत्त्वों का ज्ञान होता है। किन्तु इनका तीर्थप्रवर्तन काल नहीं चलता। इनके भी उपसर्ग केवली, अंत:कृत केवली, मूक केवली, अनुबद्ध केवली या अनुबन्ध केवली इत्यादि भेद होते हैं।

उपसर्ग केवली – जिनके उपसर्ग अवस्था में केवलज्ञान हो उनको उपसर्ग केवली कहते हैं। जैसे – श्री पार्श्वनाथ भगवान। हुंडावसर्पिणी काल के सिवाय अन्य काल के तीर्थंकरों को उपसर्ग नहीं कहे गये हैं।

अन्त: कृत केवली – जो केवलज्ञान के उत्पन्न होते ही लघु अंतर्मुहूर्त में मोक्ष प्राप्त करते हैं उन्हें अन्त: कृत केवली कहते हैं। जैसे पांडव आदि, गजकुमार मुनि। चौबीस तीर्थंकरों के तीर्थ काल में दस–दस अंत: कृत केवली हुए हैं। इनका वर्णन द्वादशांग वाणी के आठवें अंग – अंत: कृतदशांग में हुआ है। नमि, पतंग, सोमिल, रामपुत्र, सुदर्शन, यमलीक, बलीक, किस्किबल, यालम्ब तथा अष्टपुत्र भगवान वर्धमान के तीर्थकाल में होने वाले दस अंत: कृत केवली हैं।

मूक केवली – कोई–कोई केवली भगवान उपदेश नहीं देते, उनकी वाणी नहीं खिरती, उन्हें मूक केवली कहते हैं। लाटी संहिता के अनुसार मूक केवली, अंत: कृत केवली की वाणी नहीं खिरती।

अनुबद्ध केवली – श्री महावीर भगवान के मोक्ष होने के पश्चात् गौतम स्वामी ने केवलज्ञान प्राप्त किया। उनके मोक्ष होने पर सुधर्मा स्वामी ने केवलज्ञान प्राप्त किया। पश्चात् जम्बूस्वामी अंतिम केवली हुए। इस प्रकार परिपाटी क्रम से केवलज्ञान प्राप्त करने वालों को अनुबद्ध केवली कहा गया है। इस दृष्टि से जम्बूस्वामी अंतिम केवली हुए। किन्तु परिपाटी क्रम को न देखें तो कुण्डलगिरि से मोक्ष जाने वाले अंतिम केवली श्रीधर केवली भगवान हैं।

तीर्थंकर केवली – जिन्होंने पहले तीर्थंकर नामकर्म प्रकृति का बंध किया हो और केवलज्ञान प्राप्त किया हो वे तीर्थंकर केवली हैं।

तीर्थंकर केवली भगवान के तीर्थंकर प्रकृति रूप विशेष पुण्य के उदय से उनकी इन्द्रादिक पंचकल्याणादि के रूप में विशेष भक्ति करते हैं और बाह्य में जिनके उत्कृष्ट समवशरणादि रचना रूप वैभव पाया जाता है। इनका तीर्थ प्रवर्तन काल रहता है। इस अवसर्पिणी काल में ऋषभादि से लेकर वर्धमान तक चौबीस तीर्थंकर ही होते हैं। इनके भी उपभेद कहे गये हैं।

पंचकल्याणक तीर्थंकर केवली – भरत, ऐरावत, विदेहक्षेत्र में पाँच मेरू संबंधी १७० कर्मभूमियों

में पंचकल्याणक वाले तीर्थंकर होते हैं। विदेह क्षेत्र में हमेशा होते हैं, चौथे काल तथा भरत, ऐरावत क्षेत्र में अवसर्पिणी के दुषमसुषम काल (चौथा काल)और उत्सर्पिणी के दुषमसुषम काल (तीसरे काल) में होते हैं। जिन्होंने पूर्व भव में तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर लिया है वही पंच कल्याणक तीर्थंकर केवली होते हैं।

विदेह क्षेत्र के तीर्थंकर केवलियों के कल्याणक

पूर्व पश्चिम दोनों विदेह क्षेत्रों में अर्थात् पंच मेरु सम्बंधी १६० विदेह क्षेत्रों में होने वाले तीर्थंकरों के लिए ऐसा नियम नहीं हैं कि जैसा भरत और ऐरावत क्षेत्र के तीर्थकर पाँच कल्याणक वाले होते हैं। वहाँ तीर्थंकर प्रकृति का बंध करने वाला व्यक्ति यदि चरम शरीरी हो अर्थात् उसी भव से मोक्ष प्राप्त करने वाला हो और गृहस्थ अवस्था में रहते हुए उसने तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर लिया हो तो उसके तीन कल्याणक (तप, ज्ञान, मोक्ष) होते हैं। और जिसने मुनि होकर तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया हो तो उसके दो कल्याणक (ज्ञान और मोक्ष) होते हैं। यदि वह चरम शरीरी नहीं होगा अर्थात् जिसने पहले भव में तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया है। तो वह गर्भ जन्मादि पंचकल्याणकों का स्वामी होगा। यहाँ दोनों प्रकार के महापुरुष होते हैं। किन्हीं के पाँचों कल्याणक होते हैं और किन्हीं के कम भी होते हैं।

गोम्मटसार कर्मकांड गाथा ५४६ की जीवप्रबोधनी संस्कृत टीका में लिखा है **'तीर्थबंध-प्रारंभश्चरमांगासंयत देशसंयतयोस्तदा कल्याणानि निष्क्रमणादीनि त्रीणि, प्रमत्ताप्रमत्तयोस्तदा ज्ञाननिर्वाणे द्वे प्राग्भवे तदा गर्भावतारादीनि पंचेत्यवसेयं'** (पृ. ७०८) अर्थात् चरमशरीरी असंयत द्वारा जब तीर्थंकर प्रकृति के बंध का प्रारम्भ है तब उनके तप, ज्ञान, तथा निर्वाण ये तीन कल्याणक होते हैं । प्रमत्त गुणस्थान वाले चरम शरीरी व्यक्तियों के द्वारा जब-जब तीर्थंकर प्रकृति का बंध प्रारम्भ किया जाता है। तब उनके ज्ञान कल्याणक तथा मोक्ष कल्याणक (दो कल्याणक) होते हैं। जब पूर्व भव में तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया जाता है तो पाँचों कल्याणक होते हैं।

भरत तथा ऐरावत क्षेत्र में पंचकल्याणक वाले ही तीर्थंकर होते हैं। विदेह में पाँच, तीन और दो कल्याणक वाले भी तीर्थंकर होते हैं।

विदेह क्षेत्र में मोक्ष के योग्य संहननादि समुचित सामग्री की सदा उपलब्धि होने से वहाँ मोक्ष का मार्ग सतत चलता रहता है। अतएव मुमुक्षु मानव में ऐसी इच्छा का उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि इस दुषमा काल की क्रीड़ा भूमि पाप प्रचुर पंचम काल युक्त भरत क्षेत्र से निकलकर तीर्थंकर केवली आदि के विहार से पुनीत विदेह में जाकर यह जीव आत्मा का कल्याण करे। इसका क्या उपाय है ?

यहाँ से विदेह जाने वाले जीव के सम्यक्त्व का अभाव आवश्यक है। यदि सम्यक्त्वी जीव है तो वह मरणकर देव पर्याय को प्राप्त करेगा, कारण यहाँ नरकायु की बंधव्युच्छित्ति प्रथम गुणस्थान में होती है। सासादन गुणस्थान में तिर्यंचायु के साथ मनुष्यायु की बंधव्युच्छित्ति हो जाने से अविरत सम्यक्त्वी जीव देवायु का ही यहाँ से बंध करेगा। गोम्मटसार कर्मकांड की गाथा ११० तथा १०८ में बताया है कि मनुष्यों तथा तिर्यंचों के वज्रवृषभनाराच संहनन, औदारिक शरीर, औदारिक आंगोपांग, मनुष्यायु, मनुष्यगति तथा मनुष्यगत्यानुपूर्वी इन छह प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति चौथे गुणस्थान के बदले दूसरे गुणस्थान में होती है। कहा भी है -

उवरिम छण्हं च छिदी सासणसम्मे हवे णियमा।। १०८।।

ऐसी स्थिति में सम्यक्त्वी मनुष्य अगामी देवायु का बंध करेगा। विदेह में जाने वाला मनुष्य सम्यक्त्व सहित मरण नहीं करेगा। ऐसी कर्म सिद्धान्त की व्यवस्था होने से धार्मिक व्यक्तियों के मन में भक्ति, व्रत, संयम की ओर विशेष अनुराग उत्पन्न होना चाहिए, कारण यह किसे मालूम है कि भरत से विदेह जाने वाले भद्र परिणामी १२३ जीवों में किसको स्थान प्राप्त होता है। तत्त्व की बात यह है कि काल की कलुषता का आश्रय ले अकर्मण्यता को नहीं अपनाना चाहिये तथा विषयों का दास न बनकर आत्मकल्याण के लिए बुद्धि तथा विवेक पूर्वक उद्यम करते रहना चाहिये।

वर्तमान के विदेह क्षेत्रस्थ विंशति तीर्थंकरों के नाम चिह्नादि

क्र.	तीर्थंकरों के नाम	चिह्न	पिता का नाम	माता का नाम	नगरी
०१	सीमन्धर	वृषभ	श्रेयांस	सत्यदेवी	पुँडरीकिणी
०२	युगमन्धर	हाथी	सुदृढ़रथ	सुतारा	सुसीमा
०३	बाहु	मृग	सुग्रीव	विजया	अयोध्या
०४	सुबाहु	कपिल	निशाटिल	सुनन्दा	अलकापुरी
०५	सुजात (संजातक)	सूरज	देवसेन	सेना	विजया
०६	स्वयंप्रभ	चंद्रमा	मित्रभूत	सुमंगला	सुषीमा
०७	ऋषभानन	हरि	कीरत	वीरसेना	अयोध्या
०८	अनन्तवीर्य	गज	मेघ	सुमंगला	विजया
०९	सुरप्रभ (सूर्यप्रभ)	सूर्य	नागराज	भद्रा	पुँडरीकिणी
१०	विशालकीर्ति	चंद्रमा	विजसुराय	विजया	सुसीमा
११	बज्रधर	शंख	पद्मरथ	सरस्वती	पुँडरीकिणी
१२	चन्द्रानन	वृषभ	वाल्मीकि	पद्मावती	विनीता
१३	भद्रबाहु (चन्द्रबाहु)	पद्म	देवनन्दी	सुरेणुका	विजया
१४	भुजंगम	चन्द्रमा	महाबल	महिमा	सुसीमा
१५	ईश्वर	सूर्य	गलसेन	ज्वाला	अयोध्या
१६	नेमप्रभ (नमि)	वृषभ	वीरसेन	सेना	पुँडरीकिणी
१७	वीरसेन	ऐरावत	भोपाल भुवपाल	सुभानुमती	विजया
१८	महाभद्र	चन्द्रमा	देवराज	उमादेवी	सुसीमा
१९	देवयश (यशकीर्ति)	साथिया	श्रवभूत	गंगादेवी	अयोध्या
२०	अजितवीर्य	पद्म	सुबोध	कनका	अयोध्या

प्रश्न - अरिहंत या अर्हंत, शब्द की व्याख्या करें ?

समाधान - अरिहंत शब्द गुणवाचक है। जो भी साधु घातिया कर्मों का विनाश करते हैं वह अरिहंत

बन जाते हैं। अत: यह शब्द व्यक्ति वाचक नहीं है। **अ** का अर्थ विष्णु (केवली भगवान केवलज्ञान द्वारा सर्वव्याप्त हैं,) **र** का अर्थ है राग, **हं** का अर्थ है हनन करने वाला और **त** शूरवीर का वाचक है। धवला ग्रंथ के अनुसार - अरि के नाश करने से अरिहंत हैं। नरक, तिर्यंच, कुमानुष, प्रेत इन पर्यायों में निवास करने से होने वाले समस्त दु:खों की प्राप्ति का निमित्त कारण होने से मोह को अरि अर्थात् शत्रु कहा है। उस मोह शत्रु का नाश करने से भगवान को अरिहंत कहा है। अन्य कर्म मोहनीय कर्म के अधीन हैं क्योंकि मोहनीय कर्म के बिना अन्य कर्म अपने कार्य करने में समर्थ नहीं होते। अत: बारहवें क्षीणमोह गुणस्थान की प्राप्ति होने पर अन्त समय में ज्ञानावरण, अंतराय, दर्शनावरण कर्म शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

अतिशय युक्त पूजा को प्राप्त होने से जिन भगवान को अर्हन्त कहा है। **जो नमस्कार करने योग्य, पूजा के अर्ह (योग्य) हो, लोक में देवोत्तम हैं इस कारण से उन्हें अर्हत् कहा जाता है।**

प्रश्न - नौ केवल लब्धियाँ कौन सी हैं ?

समाधान - चार घातिया कर्मों के क्षय होने से अरिहंत भगवान को नौ क्षायिक लब्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं, जो इस प्रकार हैं -

	कर्म, जिनका क्षय होने से	**लब्धि, जो प्राप्त होती हैं**
०१.	दर्शनावरण कर्म क्षय	अनंत दर्शन, क्षायिक दर्शन
०२.	ज्ञानावरण कर्म क्षय	अनंतज्ञान, क्षायिक ज्ञान
०३.	वीर्यान्तराय कर्म क्षय	अनंतवीर्य, क्षायिक वीर्य
०४.	चारित्र मोहनीय कर्मक्षय	अनंतसुख, क्षायिक चारित्र
०५.	दर्शन मोहनीय कर्मक्षय	अनंतदर्शन क्षायिक सम्यक्त्व
०६.	दानांतराय कर्मक्षय	क्षायिक दान
०७.	लाभांतराय कर्मक्षय	क्षायिक लाभ
०८.	भोगांतराय कर्मक्षय	क्षायिक भोग
०९.	उपभोगांतराय कर्मक्षय	क्षायिक उपभोग लब्धि

इस प्रकार चार घातिया कर्मों के क्षय से परम नौ लब्ध्यिाँ प्राप्त होती हैं। उन्हीं को जीव के असाधारण क्षायिक भाव कहते हैं।

भगवान परम वीतरागी होने से सम्पूर्ण परिग्रह-पाप से मुक्त हो गये हैं, फिर भी तीर्थंकर प्रकृति के विपाक काल में वैभव - विभूति की इतनी वृद्धि होती है कि संसार में उनके समान वैभव वाला कोई अन्य नहीं होता फिर भी वे उस वैभव का उपयोग तो दूर, उसका स्पर्श भी नहीं करते। अनंत अतीन्द्रिय आत्मोत्थ आनंद का रसास्वादन आने से उन वीतराग प्रभु की दृष्टि कर्माधीन सुख की ओर से पूर्णत: विमुख हो जाती है।

- समवशरण में तीर्थंकर का आसन पद्मासन रहता है।

- भगवान ऋषभदेव की वाणी भरतेश्वर के निमित्त से खिरी थी। यह कर्मभूमि आरंभ होने के कारण प्रथम धर्मोपदेश था।

– तीर्थंकर भगवान में सरस्वती और लक्ष्मी की मैत्री होती है।

गणधर – भरत महाराज के छोटे भाई पुरिमतालपुर (प्रयाग) के स्वामी वृषभसेन ऋषभनाथ जी के प्रथम गणधर हुए।

योग निरोध – आदिनाथ भगवान सिद्धालय प्राप्त करने के १४ दिन पूर्व कैलाशगिरि (अष्टापद) पर पद्मासन में विराजमान हो गये। दिव्यध्वनि खिरना बंद हो गई। वे क्षण-क्षण में विशेष शुद्धता को प्राप्त करने रूप शुद्धोपयोग में मग्न हो गये, मन वचन काय के योग निरोध का कार्य ऋषभनाथ जी ने चौदह दिन पूर्व, महावीर भगवान ने दो दिन पूर्व तथा अन्य बाईस तीर्थंकरों ने एक माह पूर्व किया।

सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति ध्यान (तीसरा ध्यान) केवली भगवान के उपचार से ध्यान कहा जाता है। जिस समय केवली की आयु अंतर्मुहूर्त मात्र रह जाती है और गोत्र, नाम, वेदनीय तीन अघातिया कर्मों की स्थिति भी आयु के बराबर रह जाती है उस समय सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति नाम का तीसरा शुक्ल ध्यान होता है।

समुद्घात विधि – तत्त्वार्थ राजवार्तिककार अकलंक स्वामी के अनुसार – जब सयोग केवली की आयु अंतर्मुहूर्त प्रमाण रहती है और शेष वेदनीय, नाम और गोत्र इन कर्मों की स्थिति अधिक रहती है उस समय आत्मोपयोग के अतिशय सहित साम्यभाव समन्वित विशेष परिणाम युक्त, महासंवर वाला, शीघ्र कर्मक्षय करने में समर्थ, योगी शेष कर्मरूपी रज के विनाश करने की शक्ति से अलंकृत स्वभाव से दण्ड, कपाट, प्रतर, लोकपूरण समुद्घात रूप आत्मप्रदेशों का चार समय में विस्तार करके पश्चात् चार समय में विस्तृत आत्म प्रदेशों को संकुचित करता है। चारों कर्मों की स्थिति विशेष को एक बराबर करके पूर्व शरीर बराबर परिणाम को धारण करके सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति नाम के ध्यान को करता है। योग निरोध की यह क्रिया समुद्घात विधि है।

पहले समय में केवली के आत्मप्रदेश चौदह राजू ऊँचे दंड के आकार होते हैं। दूसरे समय में कपाट अर्थात् दरवाजे के किवाड़ के आकार को धारण करते हैं। तीसरे समय में प्रतर रूप होते हैं। चौथे समय में लोक में व्याप्त हो जाते हैं। इस तरह वे जिनेन्द्र देव चार समय में समस्त लोकालोक में व्याप्त हो जाते हैं। स्वभाव वश लोकपूरण समुद्घात लोकाकाश में विस्तार को प्रकट करता है। पुनः दूसरे समय में प्रतर रूप, तीसरे समय में कपाट रूप तथा चौथे समय में दंड रूप होते हैं और शरीराकार हो जाते हैं। समुद्घात क्रिया में चार समय विस्तार और चार समय संकोच, आठ समय लगते हैं। इस समय आत्मप्रदेश सिद्धशिला, नरक भूमि, आकाश प्रदेश का स्पर्श करते हैं। जहाँ पंचपरावर्तन रूप संसार में परिभ्रमण करते समय इस जीव ने चौरासी लाख योनियों को धारण किया था।

धवला टीका में आचार्य यतिवृषभ के अनुसार – क्षीणकषाय गुणस्थान के चरम समय में संपूर्ण अघातिया कर्मों की स्थिति में समानता का अभाव होने से सभी केवली समुद्घात पूर्वक ही मोक्ष प्राप्त करते हैं। इनकी संख्या नियम से बीस मानी गई हैं।

जिनका संसार में रहने का काल (आयु कर्म) अर्थात् जिनके नाम, गोत्र, वेदनीय कर्मों की स्थिति के समान है, वे केवली समुद्घात नहीं करते। शेष केवली समुद्घात करते हैं।

तीर्थंकर के अनुपम बल – तीर्थंकर के अनुपम बल को इस दृष्टांत से समझा जा सकता है। सर्व पशु समूह में सबसे बड़ा शक्तिशाली हाथी, हजारों हाथियों का बल एक सिंह में, हजारों सिंहों का बल एक शरभ

(शार्दूल) में, हजारों शरभों का बल एक बलदेव में, दो बलदेव की शक्ति एक अर्धचक्री में, दो अर्धचक्री का बल एक चक्रवर्ती में। एक हजार चक्रवर्तियों का बल एक इन्द्र में होता है। असंख्य इन्द्रों के बल से भी अधिक शक्ति एक तीर्थंकर में होती है। वे जन्म से ऐसे अतुल बल, अतुल वीर्य के धारी होते हैं।

निर्वाण / मोक्ष कल्याण - तीर्थंकर प्रभु तीसरे शुक्ल ध्यान को प्रारंभ कर जब तेरहवें से चौदहवें गुणस्थान में आते हैं तब वहाँ चार अघातिया कर्मों की ७२ और १३ प्रकृतियों का नाश करके अन्त्य समय में अ-इ-उ-ऋ-लृ इन पाँच अल्पप्राण अक्षरों के उच्चारण करने में जितना समय लगता है उतने समय में मोक्ष चले जाते हैं। उस समय चारों निकाय के देव उनका अंतिम संस्कार (दाह संस्कार) कर पूजन आदि उत्सव करते हैं, इसे मोक्ष कल्याण कहते हैं।

सिद्ध भगवान - समुच्छिन्न क्रिया-निर्वात अर्थात् व्युपरतक्रिया निवृत्ति ध्यान होने पर प्राणापाण (श्वासोच्छ्वास) कार्य रुक जाता है। काय वचन मनोयोग के निमित्त से आत्मा का परिस्पंदन रुक जाता है, उस समय १८ हजार शील के भेदों का पूर्ण स्वामित्व प्राप्त हो जाता है। ८४ लाख उत्तर गुणों की पूर्णता होती है। अयोगी जिन होते ही वे तीन गुप्तियों के स्वामी होते हैं। इनके प्रसाद से अयोगी जिन के उपांत्य समय में (अंत के दो समय) से प्रथम समय में साता - असाता वेदनीय में से अनुदय रूप वेदनीय की प्रकृति, देवगति, औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस, कार्माण ये पाँच शरीर, पाँच संघात, पाँच बंधन, तीन आंगोपांग, छह संहनन, छहसंस्थान, पाँच वर्ण, ५ रस, ८ स्पर्श, २ गंध, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उच्छ्वास, परघात, उपघात, विहायोगति युगल, प्रत्येक, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, स्वरयुगल, अनादेय, अयश:कीर्ति, निर्माण तथा नीच गोत्र इन ७२ प्रकृतियों का नाश होता है।

अंत के एक समय में वेदनीय की बची एक प्रकृति, मनुष्यगति, मनुष्यायु, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, पंचेंद्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, उच्चगोत्र, यश:कीर्ति ये बारह और तेरहवीं तीर्थंकर प्रकृति का भी क्षय करके अ इ उ ऋ लृ इन पाँच लघु अक्षरों के उच्चारण में लगने वाले अल्पकाल के भीतर आत्म विकास की चरम अवस्था सिद्ध पदवी को प्राप्त करते हैं, शुद्ध समयसार रूप परिणत हो जाते हैं।

अष्टम भूमि - सर्वार्थसिद्धि इन्द्रक विमान के ध्वज दण्ड से १२ योजन मात्र ऊपर जाकर आठवीं पृथ्वी स्थित है। उसके उपरिम और अधस्तन तल में से प्रत्येक का विस्तार पूर्व से पश्चिम में एक राजू है। वेत्रासन के समान वह पृथ्वी उत्तर दक्षिण भाग में कुछ कम सात राजू लम्बी तथा ८ योजन बाहुल्यवाली है। अनंतानंत सिद्ध भगवान यहाँ ध्रुव, अचल, अनुपम गति को प्राप्त कर चिर स्थिर होते हैं।

ईषत्प्राग्भार (सिद्ध शिला) अष्टम भूमि के बहुमध्य भाग में चाँदी तथा सोने के समान नाना रत्नों से परिपूर्ण ईषत्प्राग्भार क्षेत्र है। यह क्षेत्र उत्तान (ऊर्ध्वमुख)वाले धवल क्षत्र के समान आकार से सुन्दर और पैंतालीस लाख योजन प्रमाण विस्तार से युक्त है। आठवीं पृथ्वी के ऊपर (७०५० धनुष) जाकर सिद्धों का आवास है।

प्रश्न - सिद्ध भगवान लोक के अंत तक जाकर क्यों ठहर जाते हैं ?

समाधान - आत्मा का ऊर्ध्वगमन स्वभाव है। सिद्धों में अनंत शक्ति है फिर भी वे लोकाग्र में ठहर जाते हैं। धर्म द्रव्य का लोकाग्र तक ही सद्भाव है। उस निमित्त से जहाँ तक सद्भाव था वहाँ मुक्त जीव गये

और जहाँ उस द्रव्य का अभाव हो गया वहाँ अनंत शक्ति वाले ऊर्ध्वगमन सामर्थ्य वाले सिद्ध परमात्मा को भी रुकना होता है। तत्त्व का स्वरूप बदलने की सामर्थ्य किसी में नहीं है।

प्रश्न - मृत्यु, मोक्ष और समाधि में क्या अंतर है ?

समाधान - मोक्ष -पौद्गलिक कर्मों का आत्मा से संबंध छूटने को द्रव्यमोक्ष कहते हैं। जिन परम विशुद्ध भावों के द्वारा संवर तथा निर्जरा द्वारा कर्मों का क्षय होता है उसे भाव मोक्ष कहते हैं। इस मोक्ष अवस्था में कर्म और जीव पृथक हो जाते हैं। बंध की अवस्था में कर्म ने जीव को बांधा था और जीव ने कर्मों को पकड़ लिया था। उस अवस्था में जीव और पुद्गल में विकार उत्पन्न होने से वैभाविक परिणमन हुआ करता था। मोक्ष होने पर जीव स्वतंत्र हो जाता है, उसी तरह बंधन बद्ध कर्म परिणत पुद्गल भी स्वतंत्र हो जाता है। जीव की स्वतंत्रता का फिर विनाश नहीं होता किन्तु पुद्गल पुन: विकारी पर्याय प्राप्त कर अन्य जीव में विकार उत्पन्न करता है, दोनों की स्वतंत्रता में अंतर है।

मृत्यु - भगवान का निर्वाण दिवस आध्यात्मिक स्वतंत्रता का दिवस है। इस दिन मृत्यु की भी मृत्यु हुई है। पुरुषार्थी आत्मा ने श्रेष्ठ पुरुषार्थ प्राप्त किया है। निर्वाण और मुत्यु में अंतर है। भुज्यमान आयु का क्षय होने पर वर्तमान शरीर का परित्याग होता है। पश्चात् जीव पूर्व बद्ध आयु कर्म के अनुसार अन्य देह को धारण करता है। इस प्रकार मृत्यु का संबंध आगामी जीवन से बना रहता है।

इस पंचम काल में संहनन की हीनता के कारण मोक्ष के योग्य कुशल ध्यान नहीं बन सकता अत: भरत क्षेत्र में वर्तमान काल में मोक्ष जाने का अभाव है। इसलिए प्रसिद्ध व्यक्ति की मृत्यु पर निर्वाण परिनिर्वाण, महानिर्वाण कहना सर्वथा मिथ्यात्व का पोषण है।

समाधि - सत्रह प्रकार के मरणों में समाधि अर्थात् मनोगुप्ति, वचन और कायगुप्ति की पूर्णता पूर्वक शरीर का त्याग अयोगी जिन के पाया जाता है। उस मरण को पंडितपंडित मरण कहा है। मिथ्यात्वी जीव का मरण बालमरण है। आयोगी जिन परिपूर्ण दर्शन, ज्ञान, चारित्र से संपन्न होने के करण पंडितपंडित हैं। पण्डा यानि रत्नत्रय धारण की बुद्धि, उस बुद्धि से जो अलंकृत है वही पंडित है तथा हीनाचार का त्याग कर विशुद्ध प्रवृत्ति पूर्वक आत्मा को जो अलंकृत करता है, वही सच्चे पांडित्य से अलंकृत होता है। इस मरण के बाद पुन: मरण नहीं होता। वास्तव में यही समाधि है। मिथ्यात्वी का मरण शोक का कारण है और सम्यक्त्वी का मरण मोक्षकल्याणक का कारण है।

चक्रवर्ती महापुरुष

अढ़ाई द्वीप में चक्रवर्तियों की जघन्य संख्या बीस है, इसके सिवाय देव, मनुष्य, विद्याधरों द्वारा पूज्य चक्रवर्ती हैं।

भरत और ऐरावत क्षेत्र में - एक आर्यखंड और पाँच म्लेच्छखंड हैं। विदेह क्षेत्र में - ३२ देश हैं। जिनमें भरत के समान छह-छह खंड हैं। इन देशों में एक-एक चक्रवर्ती होते हैं। पंच विदेह की अपेक्षा एक समय में १६० तीर्थंकर, सकल चक्रवर्ती, अर्धचक्रवर्ती कहे गये हैं। पंच ऐरावत क्षेत्रों की अपेक्षा इनकी संख्या १७० होती है। विदेह क्षेत्र में जघन्य संख्या २० तीर्थंकर, २० चक्रवर्ती तथा अर्धचक्रवर्ती कही गई है। भरत ऐरावत क्षेत्र में १२ चक्रवर्ती होते हैं। विदेह क्षेत्र में प्राय: सर्वत्र चक्रवर्ती होते हैं।

नरक में से आने वाले जीवों को चक्रवर्ती पद कभी भी प्राप्त नहीं होता। स्वर्ग से आने वाले जीवों को चक्रवर्ती पद मिलता है ऐसा नियम है।

प्रथम चक्रवर्ती भरत का जन्म चैत्र कृष्ण ९ उत्तराषाढ़ा नक्षत्र, ब्रह्मयोग धनुराशि का चंद्र जब मीन लग्न में आया तब हुआ था। भरतचक्रवर्ती ने पद्म नामक निधि से एक से लेकर ग्यारह तक ब्रह्म सूत्र देकर ब्राह्मण वर्ण की स्थापना की। विदेह क्षेत्र में ब्राह्मण वर्ण नहीं होता।

प्रथम चक्रवर्ती - भरत - नाभिराय के पौत्र, ऋषभदेव के पुत्र प्रथम चक्रवर्ती भरत ने छहखंडों से सुशोभित इस पृथ्वी का पालन किया। उनका व्यक्तिगत जीवन, परिवार आदि सब विशेष महत्वपूर्ण रहे हैं। आदिनाथ तीर्थंकर के ज्येष्ठ पुत्र होने के साथ उनके द्वारा विद्या का अभ्यास करने का परम सौभाग्य अद्भुत था। उनके कुटुम्ब में अनेक चरमशरीरी हुए हैं। जिनशासन के वर्तमान अधिष्ठाता तीर्थंकर महावीर के जीव अपने पूर्व भव में भरत के पुत्र मारीचिकुमार के रूप में स्थित थे। भरत के भद्र विवर्धन आदि ९२३ पुत्र नित्य निगोद से चलकर मनुष्य पर्याय प्राप्त कर आदिनाथ भगवान के समवशरण में धर्मोपदेश सुनकर अल्पसमय में मोक्षगामी हुए।

वे छह खंडों पर विजय प्राप्त करते हैं। पाँच म्लेच्छ खंडों की विजय के लिए विजयार्ध पर्वत की ओर गमन करते हैं। सौ योजन ऊँचा, सौ योजन चौड़े वृषभाचल पर्वत पर अपने गौरव को सूचित करने वाली प्रशस्ति लिखने के लिए हाथ में कांकिणी रत्न लेकर जाते हैं। वहाँ असंख्यात करोड़ कल्पों में जितने चक्रवर्ती राजा हुए हैं, उनके नामों से भरे इस पर्वत को देखकर आश्चर्य चकित हुए। स्वप्रशस्ति लिखने हेतु एक चक्रवर्ती के नाम की प्रशस्ति मिटाई, मान भंग हुआ। उन्होंने विचार किया कि भरतक्षेत्र में एक ही शासक नहीं हूँ, मेरे समान अनेक चक्रवर्ती शासक हो चुके हैं। मुनि पदवी धारण करते समय केशलोंच किया और तत्काल केवलज्ञान साम्राज्य के सम्राट हो गये, ३२ इन्द्रों ने भगवान भरत की पूजा की। बहुत समय तक विहार कर कैलाश पर्वत से निर्वाण प्राप्त किया।

हुण्डावसर्पिणी काल की अभूतपूर्व घटनाएँ	
०१.	परमस्थानों में प्रतिपादित साम्राज्य पदवी के स्वामी होते हुए भी भरतेश्वर चक्रवर्ती का बाहुबली द्वारा पराजित होना।
०२.	जिन शासन के मध्य में विपरीत अनेक मतों की उत्पत्ति।
०३.	वस्त्र धारण करके निंदनीय सग्रंथ लिंगधारी संप्रदाय का प्रादुर्भाव।
०४.	जिनेन्द्र भगवान पर उपसर्ग होना।
०५.	चक्रवर्ती का मानभंग।
०६.	कुदेव, उनके मठ, उनकी मूर्ति आदि का होना।
०७.	उनके मिथ्या शास्त्रों का निर्माण।

चक्रवर्ती का वैभव -

१. राजविद्या - १. आन्वीक्षकी, अपना स्वरूप, अपना बल जानना, अच्छा-बुरा,

सच्चा–झूठा समझ लेना, रत्नपरीक्षक की तरह परीक्षा करना।

२. त्रयी शास्त्रानुसार धर्म–अधर्म समझकर धर्म का ग्रहण, अधर्म का त्याग।

३. वार्ता – अर्थ – अनर्थ को समझकर प्रयोजनों का रक्षण करना।

४. दण्ड नीति – दुष्ट दण्डादि।

२. पाँच इन्द्रिय का विषय बल –

१. – स्पर्शनेंद्रिय – ९ योजन तक के विषय जान लेते हैं। २. रसनेंद्रिय – ९ योजन तक के विषय जान लेते हैं। ३. घ्राणेन्द्रिय –९ योजन तक के विषय जान लेते हैं। ४. चक्षुरिन्द्रिय – ४७२६३ ६/२० योजन तक देख सकते हैं। ५. श्रोत्रेन्द्रिय – १२ योजन तक के शब्द सुन सकते हैं।

३. सात अंग बल – १ स्वामी, २ अमात्य, ३ देश, ४ दुर्ग, ५ खजाना, ६ षडंग बल, ७ मित्र।

४. षडंग बल – (१) ८४ लाख भद्र हाथी (२) ८४ लाख रथ, (३) १८ करोड़ उत्तम जातिवंत घोड़े (४) ८४ लाख वीरभट (पैदल सेना), (५) असंख्यात विद्याधर सेना।

५. – चक्रवर्ती के दशांग भोग –

१. दिव्यपुर (पट्टण) २. दिव्यभाजन ३. दिव्यशय्या ४. दिव्यआसन ५. दिव्यनाटक

६. दिव्यरत्न ७. दिव्यनिधि ८. दिव्यसैन्य ९. दिव्यभोजन १०. दिव्यवाहन।

६. चक्रवर्ती की नवनिधि और उनकी फलदान शक्ति –

१.	कालनिधि	–	ऋतु अनुसार नानाविधि पदार्थ देने वाली।
२.	महाकालनिधि	–	नाना विधि भोज्य पदार्थ देने वाली।
३.	माणवक कालनिधि	–	नानाविधि आयुध पदार्थ देने वाली।
४.	पिंगल कालनिधि	–	नानाविधि आभरण देने वाली।
५.	नैसर्घ कालनिधि	–	नानाविधि मंदिर देने वाली।
६.	पद्म कालनिधि	–	नानाविधि वस्त्र देने वाली।
७.	पांडुक कालनिधि	–	नानाविधि धान्य देने वाली।
८.	शंख कालनिधि	–	नानाविधि वादित्र देने वाली।
९.	सर्वरत्न कालनिधि	–	नानाविधि रत्न देने वाली।

ये सब निधियाँ नदीमुख में उत्पन्न होती रहती हैं।

७. चौदह रत्न और उनकी फलदान शक्ति

सात सजीव रत्न –

१.	अयोध्या – सेनापति रत्न	सेनानायक – आर्यखंड उत्तम – मध्यम –म्लेच्छ खंड सिवाय अन्य दिग्विष्टरों को जीतने वाला सेनापति रत्न।
२.	भद्रमुख – ग्रहपतिरत्न	भंडारी – राजमहल का व्यवहार और हिसाब किताब रखने वाला गृहपति रत्न होता है।
३.	बुद्धिसमुद्र – पुरोहित रत्न	सबको धर्म, कर्मानुष्ठान पूर्वक मार्गदर्शन देने वाला पुरोहित रत्न।
४.	कामवृष्टि – तक्षकरत्न	उत्तम कारीगर, चक्रवर्ती के आदेशानुसार महल, मंदिर, प्रसाद

आदि को तैयार करने वाला तक्षक रत्न होता है।

५. सुभद्रा – युवति – स्त्रीरत्न चक्रवर्ती की ९६ हजार रानियों के सिवाय पट्टरानी ही स्त्रीरत्न है।

६. विजयागिरि – गजपतिरत्न अरिनृपों के गजघटाओं का विघटन करने वाला गजरत्न है।

७. पवनंजय – अश्वरत्न तिमिश्र गुफा के कवाट को विघटन करते समय १२ योजन दौड़ने वाला अश्वरत्न।

सात अजीव रत्न –

८. १. सुदर्शन चक्र आयुध – बैरियों का संहार करने वाला चक्ररत्न।

९. २. सूर्यप्रभ – छत्ररत्न आयुध – सैन्यों के ऊपर आने वाली बाधा दूर करने वाला छत्ररत्न।

१०. ३. भद्रमुख – खड्गरत्न आयुध – चक्रवर्ती के चित्तोत्सव को करने वाला असि रत्न।

११. ४. प्रवृद्धवंग – दण्डरत्न आयुध – चक्रवर्ती के सैन्य की जमीन को साफ कर देने वाला दण्डरत्न

१२ ५. चित्ताजननी–काकिणीरत्न गुफा आदि में रहने वाले अंधकार युक्त स्थानों में चंद्रादित्यों (चन्द्र, सूर्य) के समान प्रकाश देने वाला

१३ ६. चूड़ामणिरत्न – रत्नविशेष इच्छित पदार्थ देने वाला

१४ ७. चर्मरत्न – सैन्यादिक को नद और नदी से सुरक्षित रीति से पार करा देने वाला चर्मरत्न।

इसमें से १ – ५ सजीवरत्न अपने–अपने नगरों में और ६ से ७ विजयार्ध पर्वत पर उत्पन्न होते हैं। अजीवरत्न में ८ –११ (१–४)आयुधशाला में (१२–१४) तक के रत्न श्री देवी के मंदिर में उत्पन्न होते हैं। इन सबकी रक्षा १–१ हजार यक्षदेवता करते हैं।

चक्रवर्ती का स्वामित्व – चक्रवर्ती ३२००० राजाओं का स्वामी होता है। उन राजाओं के लक्षण इस प्रकार समझना चाहिये।

नृपति – मनुष्यों का रक्षण करने वाला।

भूप – समस्त पृथ्वी का रक्षण करने वाला।

राजा – प्रजाजनों को राजी रखने वाला।

इन राजाओं के छह गुण होते हैं– १. संधि = मिलाप, २. विग्रह = युद्ध, ३. यान = वाहन, ४. आसन = मुक्काम, ५. संस्थान = वचनों की दृढ़ता, ६. आश्रय = आधार – जो अपने से प्रबल हो उसका आश्रय लेना और जो अपने आधीन रहे, उसको आश्रय देना अर्थात् शरणागतों का पालन करना। यह राजा के छह गुण हैं।

इन राजाओं के चार कर्तव्य कहे हैं –

१.आत्मपालन २. मतिपालन ३. कुलपालन ४. प्रजापालन।

इन राजाओं की १८ श्रेणियाँ हैं –

०१. सेनापति (सेना का नायक) ०२. गणकपति (ज्योतिषी आदि का नायक)

०३. वणिकपति (व्यापारियों का नायक) ०४. दण्डपति (समस्त सेना का नायक)

०५. मंत्री (पंचांगमंत्र विषय में प्रवीण) ०६. महत्तर (कुलवान अर्थात् कुलविशेष उच्चता)

०७. तलवर (कोतवाल का स्वामी) ०८. ब्राह्मण ०९. क्षत्रिय १०. वैश्य
११. शूद्र (इन चार वर्णों का स्वामी) १२. हाथी १३. घोड़ा १४. रथ
१५. पदाति (इस चतुरंग बल का स्वामी) १६. पुरोहित (आत्म हितकारी कार्य का अधिकारी)
१७. अमात्य (देश का अधिकारी) १८. महामात्य (समस्त राज्य कार्यों का अधिकारी)।

इन १८ श्रेणियों का स्वामी 'राजा' है वही 'मुकुटधारी' हो सकता है।

इनकी भी श्रेणियाँ हैं, जो इस प्रकार हैं –

५०० मुकुट धारी राजा का स्वामी – अधिराजा।
१०० मुकुट धारी राजा का स्वामी – महाराजा।
२००० मुकुट धारी राजा का स्वामी – मुकुट बद्ध या अर्ध मांडलिक।
४००० मुकुट धारी राजा का स्वामी – मांडलिक।
८००० मुकुट धारी राजा का स्वामी – महामांडलिक।
१६००० मुकुट धारी राजा का स्वामी – अर्धचक्रवर्ती
३२००० मुकुट धारी राजा का स्वामी – चक्रवर्ती (सकल चक्रवर्ती)

९. षट्खंड मंडित भरतखंड के ग्राम नगरादि के नाम और लक्षण –

एक–एक देश में एक–एक समुद्र, उन समुद्रों में ५६ अन्तद्वीप हैं। और जहाँ रत्न उत्पन्न होते हैं ऐसे २६ हजार रत्नाकर (समुद्र) हैं, और रत्न बिक्री के स्थानभूत ऐसे ६०० प्रत्यंतर कुक्षी और ७०० प्रत्यंतर कुक्षीवास, तथा ८०० कक्षा हैं। भरत खंड का मुख्य नगर (राजधानी) दोनों (गंगा और सिंधु महानदी) के बीच में विद्यमान आर्यखंड में होता है।

क्र.	नाम	संख्या	लक्षण
०१.	ग्राम	९६ करोड़	जिसके चारों ओर कोट (दीवाल) हो।
०२.	नगर	७५ हजार	जिसके चारों ओर दीवाल और चार दरवाजे हों।
०३.	खेट	७६ करोड़	नदी पर्वतों से वेष्टित गाँव।
०४.	खर्वड	२४ हजार	पर्वतों से वेष्टित गाँव।
०५.	मडण्ब	०४ हजार	पांच सौ गाँव से संयुक्त गाँव।
०६.	पट्टण	४८ हजार	जहाँ रत्न उत्पन्न होते हैं ऐसे गाँव।
०७.	द्रोण	९९ हजार	नदी से वेष्टित गाँव।
०८.	संवाहन	७४ हजार	उपसमुद्र के तट पर रहने वाले गाँव।
०९.	दुर्गावटी	२८ हजार	पर्वतों पर रहने वाले गाँव।

१०. चक्रवर्ती का परिवार आदि वैभव की रूपरेखा –

(१) चक्रवर्ती के एक पट्टरानी के अतिरिक्त ९६००० स्त्रियाँ होती हैं। इनमें आर्यखंड की ३२ हजार राजकन्यायें होती हैं, ३२ हजार विद्याधर राजकन्याएँ और म्लेच्छखंड की ३२ हजार राजकन्याएँ होती हैं। इस

प्रकर सब मिलाकर ९६ हजार स्त्रियाँ होती हैं।

(२) चक्रवर्ती रात्रि के समय अपनी पट्टरानी के महल में ही रहते हैं परन्तु पट्टरानी के पुत्र, संतान नहीं होती है, वह वंध्या ही रहती है। इनकी शंखावर्त योनि होने से इस योनि में वंशोत्पत्ति नहीं होती है। चक्रवर्ती अपनी पृथक् विक्रिया की सहायता से अपने शरीर के अनेक रूप धारण कर सकते हैं इसलिये उनकी अन्य स्त्रियों को पुत्रादिक होते रहते हैं।

(३) चक्रवर्ती के पुत्र - पुत्रियाँ संख्यात हजार होते हैं। उनके ३ करोड़ ५० हजार बन्धु वर्ग (भाई बन्ध) होते हैं। ३६१ शरीर वैद्य, ३६१ इतर वैद्य होते हैं। ३६० अंगरक्षक होते हैं। ३६० स्वयंपाकी (रसोईवाले) होते हैं। और १४ रत्न होते हैं।

(४) चक्रवर्ती पर ३२ यक्षदेव ३२ चमर ढुराते हैं।

(५) बारह योजन तक सुनाई देने वाले २४ शंख, २४ भेरी, २४ पटह (वाद्य विशेष) होते हैं।

(६) ३२००० नाट्यशालाएँ और ३२००० संगीतशालाएँ होती हैं। ३२००० देश और उन प्रत्येक देश के ३२००० मुकुटधारी राजाओं पर स्वामित्व होता है। इसी तरह १६००० गणबद्ध देवों का स्वामी और ८८ हजार म्लेचछ राजाओं का स्वामी होता है।

(७) एक आर्यखंड और पाँच म्लेच्छ खंड इस प्रकार छह खंड पृथ्वी के स्वामी होते हैं। उनके पास एक करोड़ हल, ३ करोड़ गोमंडल अर्थात् गायों के रहने के स्थान होते हैं, इससे सिद्ध होता है कि गायें ३ करोड़ से भी ज्यादा होती हैं।

(८) भरत चक्रवर्ती के १ करोड़ सोने के थाल थे, ऐसा कोई कहते हैं। परन्तु वे सब दाल चावल आदि धान पकाने के बर्तन थे। क्योंकि श्लोक में स्थाली शब्द आया है, उसका अर्थ हंडा (बर्तन) होता है इसलिये वे थाली न होकर बड़े - बड़े बर्तन थे ऐसा सिद्ध होता है। (आदि पुराण पर्व ३७)

भरतचक्रवर्ती के १६ स्वप्न दर्शन और उन स्वप्नों का फलस्वरूप

स्वप्न	फल
०१. पर्वत पर तेईस सिंहों को देखा।	०१. वीर के अतिरिक्त तेईस तीर्थंकरों के समय में खोटे नयों की उत्पत्ति नहीं होगी।
०२. एक सिंह के साथ हिरणों का समूह देखा।	०२. महावीर स्वामी के तीर्थकाल में अनेक कुलिंगियों की उत्पत्ति होगी।
०३. बड़े बोझ से झुकी हुई पीठ वाला घोड़ा।	०३. पंचमकाल में तपश्चरण के समस्त गुणों से रहित साधु होंगे।
०४. शुष्क पत्ते खाने वाले बकरों का समूह।	०४. आगामी काल में दुराचारी मनुष्यों की उत्पत्ति होगी।
०५. हाथी पर बन्दर बैठे हैं।	०५. क्षत्रियों का (राजवंश) नष्ट होगा नीच कुल वाले राज्य करेंगे।
०६. अन्य पक्षियों के द्वारा त्रास किया हुआ	०६. धर्म की इच्छा से मनुष्य अन्य मत के साधुओं के

उलूक।	पास जायेंगे।
०७. भूत प्रेत नाच रहे हैं।	०७. अज्ञानी जीव भूतादि कुदेवों की पूजा जिनदेव के समान करेंगे।
०८. तालाब, मध्य में खाली है और किनारों पर जल भरा हुआ है।	०८. आर्य खण्ड में धर्म का अभाव होगा।
०९. रत्नराशि धूल में मिली हुई।	०९. पंचम काल में ऋद्धिधारी मुनियों का अभाव रहेगा।
१०. कुत्ते का नैवेद्य आदि से सत्कार करना।	१०. पंचमकाल में कुपात्र भी पात्र की तरह आदर पावेंगे।
११. एक तरुण बैल देखा।	११. पंचम काल के जीव तरुण अवस्था में धर्म साधन करेंगे। परन्तु वृद्धावस्था में अरुचि करेंगे।
१२. मंडल से युक्त चंद्रमा देखा।	१२. पंचम काल में अवधिज्ञान व मनः पर्ययज्ञान के धारी मुनियों का अभाव होगा।
१३. शोभा नष्ट दो बैल देखे।	१३. पंचम काल में मुनि संघ सहित रहेंगे एकाकी नहीं रहेंगे।
१४. सूर्य मेघों से घिरा हुआ है।	१४. पंचम काल में केवलज्ञान नहीं होगा।
१५. छाया रहित सूखा वृक्ष देखा।	१५. पंचम काल में स्त्री पुरुष चारित्र भ्रष्ट होंगे।
१६. जीर्ण पत्तों का समूह देखा।	१६. पंचम काल में अन्न आदि औषधियाँ नीरस होंगी।

नोट – इन स्वप्नों को आगामी पंचम काल में फल देने वाले जानना। [जैनेन्द्र सिद्धांत कोष भाग ४]

नौ नारायण – इनको वासुदेव, केशव, गोविन्द, हरि भी कहते हैं।

०१. यह नारायण पद नरक से आने पर प्राप्त नहीं हो सकता ऐसा नियम है।

०२. ये सब ही नारायण अधोगामी अर्थात् रत्नप्रभा आदि भूमियों (नरक) में जाने वाले होते हैं।

०३. इन पर सदाकाल १६ चमर ढुरते हैं।

०४. इनके सात प्रकार के आयुध (महारत्न) होते हैं।

१. सुनंदक नामक खड्ग २.पाँचजन्य नामक शंख ३. शांर्ङ्ग नामक धनुष
४. सुदर्शन चक्र ५. कौस्तुभ मणि ६. अमोघा नामक शक्ति
७. कौमुदी नामक गदा।

०५. कृष्ण (नारायण) ने राजा शिशुपाल को मारा था। शिशुपाल ने रुक्मणी हरण करते समय कृष्ण को एक हजार गालियाँ दी थीं।

०६. उत्तर पुराण (७४ वर्ष) – त्रिपृष्ट नामक पहला नारायण का जीव (हरिवंशपुराण) वर्धमान तीर्थंकर होकर मुक्त हो गये।

०७. पद्मपुराण (पर्व १०६) – लक्ष्मण नामक ८ वें नारायण का जीव पुष्करार्द्ध द्वीप के विदेह क्षेत्र में जन्म लेने वाले हैं।

०८. कोटिशिला (कोटिकशिला) ८ योजन लंबी चौड़ी और १ योजन ऊँची होती है। इसे सिद्ध

शिला भी कहते हैं। इसे प्रत्येक नारायण अपनी भुजाओं से उठाकर शक्ति प्रदर्शन करते हैं।
(हरिवंश पुराण सर्ग ५३)

किस नारायण ने कहाँ तक शिला उठायी

०१.	त्रिपृष्ट	मस्तक के ऊपर जहाँ तक भुजा पहुँचे
०२.	द्विपृष्ट	मस्तक तक
०३.	स्वयंभू	कंठ तक
०४.	पुरुषोत्तम	वक्षस्थल तक
०५.	पुरुष सिंह	हृदय तक
०६.	पुंडरीक	कमर तक
०७.	दत्तक	जंघा तक
०८.	लक्ष्मण	घोंटु (घुटने) तक
०९.	कृष्ण	चार अंगुल।

नौ प्रतिनाराण – इनको प्रतिवासुदेव, प्रतिशत्रु, प्रतिहरि भी कहते हैं। यह पद नरक से आने वाले जीवों को कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता। सारे प्रतिनारायण अधोगामी होते हैं। इनमें जरासंध – भूमि गोचरी थे। बाकी सब विद्याधर थे। इन पर सदाकाल १६ चमर ढुरते हैं। इनमें रावण राक्षस नामक द्वीप का राजा था। लवणोदधि समुद्र में सात सौ योजन लम्बा चौड़ा यह द्वीप (राक्षस)है। इसके मध्य भाग में मेरुपर्वत के समान विचित्रकूट अथवा 'चित्रकूटाचल' नामक पर्वत है। वह पर्वत ९ योजन ऊँचा ५० योजन लम्बा चौड़ा है। उस पर्वत पर ३० योजन प्रमाण लंका नाम की अत्यंत सुन्दर नगरी है। लोक में लंका नाम से प्रसिद्ध अन्य स्थान भी हो सकते हैं। रावण को दसकंठ– दसानन समझना भी मिथ्या है। प्रतिनारायण अर्धचक्री होते हैं।

..१........२	...............३	.............४	...........५	..............६	..................७	.................८	...............९........
क्र. प्रतिनारायण के नाम	राजधानी का नाम	शरीर ऊँचाई	आयु वर्षप्रमाण	तीर्थकाल	आगे की गति प्राप्ति	भविष्यत्काल के ९ प्रतिना.	अतीत के ९प्रतिनारा..
१. अश्वग्रीव	अलकापुर	८० धनुष	८४ लाख	श्रेयांसनाथ	७ वें नरक	श्रीकंठ	निशुंभ
२. तारक	विजयपुर	७०	७२ लाख	वासुपूज्य	६ वें नरक	हरिकंठ	विद्युत्प्रभ
३. मेरक	नंदनपुर	६०	६० लाख	विमलनाथ	६ वें नरक	नीलकंठ	धनरसिक
४. निशुंभ	हरिपुर	५०	३० लाख	अनंतनाथ	६ वें	अश्वकंठ	मनोवेग
५. प्रल्हाद	सिंहपुर	४५	१० लाख	धर्मनाथ	६ वें नरक	सुकंठ	चित्रवेग
६. मधुकैटभ	पृथ्वीपुर	२९	६५ हजार	अरहनाथ	६ वें नरक	शिखिकंठ	दृढ़रथ
७. बली	सूर्यपुर	२२	३२ हजार	मल्लिनाथ	५ वें नरक	अश्वग्रीव	वज्रजंघ
८. रावण	लंका	१६	१२ हजार	मुनिसुव्रत	४ था नरक	हयग्रीव	विद्युदन्ड
९. जरासंध	राजग्रही	१०	१ हजार	नेमिनाथ	३ रा नरक	मयूरग्रीव	प्रल्हाद

नौ बलदेव इनको बलभद्र, रामचंद्र, राम भी कहते हैं। यह पद नरक से आने वाले जीवों को प्राप्त

नहीं होता। सारे बलदेव ऊर्ध्वगामी अर्थात् स्वर्ग और मोक्ष जाने वाले होते हैं। बलदेवों के पाँच रत्न (आयुध) होते हैं -१. रत्नमाला २. लांगल अपराजित हल ३. मूसल ४. स्यन्दन (दिव्यगदा)। ५. शक्ति - ये पाँच रत्न क्रीड़ामात्र से शत्रुओं का मान मर्दन करने वाले बलदेवों के होते हैं।

क्र.	वर्तमान बलदेव	पिछला तीसरा भव नाम	वर्तमान भव की राजधानी	शरीर ऊँचाई धनुष	आयु प्रमाण वर्ष	तीर्थ काल	निर्वाण क्षेत्र	गति प्राप्त की	भविष्यत् काल के
१.	विजय	वाल	पोदनपुर	८०	८७ लाख	प्र	श्री	सिद्ध	चंद्र
२.	अचल	मारूतदेव	द्वारकापुरी	७०	७७ लाख	ति	ग	सिद्ध	महाचंद्र
३.	सुधर्म (भद्रधर्मप्रभ)	नंदीमित्र	हस्तिनागपुर	६०	६७ लाख	ना	ज	सिद्ध	वरचंद्र
४.	सुप्रभ	महाबल	हस्तिनागपुर	५०	३७ लाख	रा	पं	सिद्ध	वरचंद्र
५.	सुदर्शन	पुरुषर्षभ	चक्रपुर(खगपुर)	४५	१७ लाख	य	थ	सिद्ध	सिंहचंद्र
६.	नंदीषेण (आनंद)	सुदर्शन	कुशाग्रपुर	२९	६७ हजार	ण	गि	सिद्ध	हरिचंद्र
७.	नंदीमित्र (नंदन)	वसुधर	मिथिलापुर	२२	३७ हजार	के	रि	सिद्ध	श्रीचंद्र
८.	रामचंद्र	श्रीरामचंद्र	अयोध्या	१६	१७ हजार	जै	तुंगी -	सिद्ध	पूर्णचंद
९.	बलिराम (पद्य)	शंख	मथुरा-शौरीपुर	१०	१२ हजार	सा	- गिरि	ब्रह्म स्वर्ग	शुभचंद्र

अतीतकाल के बलदेव - १.श्रीकांत, २. कांतचित्त,३. वरबुद्धि,४. मनोरथ,५. दयामूर्ति, ६.विपुलकीर्ति, ७. प्रभाकर,८. संजयन्त,९. जयंत।

नौ नारद - भीम, महाभीम, रुद्र (रौद्र), महारौद्र, काल, महाकाल, दुर्मुख, नरमुख, अधोमुख आदि। वर्तमान के नौ नारद हैं। नारायणों का जो तीर्थकाल होता है वही इनका भी है। ये नारद पद नरक में से आने वाले जीवों को कभी भी प्राप्त नहीं होता। सभी नारद अधोगति जाने वाले होते हैं। नारद कलहप्रिय होते हैं और धर्मरत भी रहते हैं। सभी भव्य होने से परम्परा से मुक्तिगामी होते हैं। वर्तमान में सभी हिंसादोष से अधोलोक जाते हैं।

ग्यारह रुद्र - रुद्रपद नरक से आने वाले जीवों को प्राप्त नहीं होता। सारे रुद्र नरक (अधोगति) जाने वाले होते हैं। (चार्ट अगले पृष्ठ पर)

क्र.	रुद्रों के नाम	शरीर ऊँचाई धनुष में	पूर्ण आयु	तीर्थकाल	आगामी गति
०१.	भीम (महावली)	५०० धनुष	८३ लाख पूर्व	ऋषभनाथ	७ वें नरक
०२.	बली (जितशत्रु)	४५० धनुष	७१ लाख पूर्व	अजितनाथ	७ वें नरक
०३.	शंभु (रुद्र)	१०० धनुष	२ लाख पूर्व	पुष्पदंत	६ वें नरक
०४.	विश्वानल (वैश्वानर)	९० धनुष	१ लाख पूर्व	शीतलनाथ	६ वें नरक
०५.	सुप्रतिष्ठ	८० धनुष	८४ लाख वर्ष	श्रेयांसनाथ	६ वें नरक
०६.	अचल (बल)	७० धनुष	६० लाख वर्ष	वासुपूज्य	६ वें नरक
०७.	पुंडरीक	६० धनुष	५० लाख वर्ष	विमलनाथ	६ वें नरक
०८.	अजितंधर	५० धनुष	४० लाख वर्ष	अनन्तनाथ	५ वें नरक
०९.	जितनाभि (अजितनाभि)	२८ धनुष	२० लाख वर्ष	धर्मनाथ	४ थे नरक
१०.	पीठ	२४ धनुष	१० लाख वर्ष	शांतिनाथ	४ थे नरक
११.	महादेव (सात्यकीपुत्र-स्थाणु)	७ हाथ	६९ वर्ष	महावीर	३ रे नरक

कामदेव - पुण्यकर्म के उदय से अत्यंत सुन्दर रूप धारण करने वाले जितेंद्रिय पुरुष कामदेव पदवी के धारक होते हैं। चौबीस तीर्थंकर के काल में २४ कामदेव होते हैं। इनका सौंदर्य अनुपम होता है। इस हुण्डावसर्पिणी काल दोष से भगवान शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ तीर्थंकर होते हुए कामदेव भी थे।

प्रश्न - कामदेव का यथार्थ स्वरूप क्या है ?

समाधान - काम शब्द द्वारा लोक में जीव के विकारी भावों को ग्रहण किया जाता है। यह विकार मन में उत्पन्न होने से काम को मनसिज, मनोज, मनोभ् आदि नामों से पुकारा जाता है। इस काम भाव के कारण पुरुष स्त्री शरीर के प्रति आकर्षित होकर उसी प्रकार विनाश प्राप्त करता है जैसे पतंगा दीपक की ज्योति में जलकर नष्ट हो जाता है। जिनेन्द्र भगवान ने आत्मबल, समाधि की प्रचंड अग्नि से कामविकार [मन्मथ] को स्वाहा कर दिया है। ऐसी कामवासना को क्षय करने के कारण जिनेन्द्र जितकामारि कहलाते हैं।

प्रथम कामदेवः बाहुबली - बाहुबली भगवान का चौबीस कामदेवों में पहला स्थान है। ये कामदेव पदवी के धारक, जिनदेव और जिनशासन के परमभक्त होते हैं। इनका अतीत सौंदर्य मुग्ध करने वाला होने पर भी वे परनारी के प्रति मातृत्व भाव रखते हैं। बाहुबली स्वामी ने एक वर्ष तक उपवास किया वे मुनि दीक्षा के बाद १ वर्ष तक अंगूठे के बल पर खड़े रहे। उन्हें इस बात का खेद था कि वे भरत की भूमि पर खड़े हैं। एक वर्ष का उपवास पूरा होने पर जब भरत ने आकर उनकी पूजा की, उसी समय अविनाशी केवलज्ञान प्रकट हो गया।

हनुमान - विद्याधरों के राजा पवनंजय थे। उनके पुण्यवान, प्रतापी, चरम शरीरी पुत्र का नाम हनुमान था। उनकी ध्वजा में वानर का चिह्न था इसलिए उन्हें कपिध्वज माना है। वे भी कामदेव थे। वे विद्याधरों के स्वामी पुरुषरत्न थे।

वर्तमान चौबीस तीर्थंकर सम्बंधी जानकारी
कहाँ से चयकर तीर्थंकर हुए, पूर्व भव, देश, जन्म स्थान आदि

क्र.	तीर्थंकर	किस स्वर्ग से आये	वहाँ कौन थे	देश नाम	जन्म स्थान	वंश
०१	०२	०३	०४	०५	०६	०७
०१.	श्री ऋषभनाथ	सर्वार्थसिद्धि विमान	अहमिन्द्र	कौशल	अयोध्या साकेतपुर	इक्ष्वाकुवंश
०२.	श्री अजितनाथ	वैजयन्त विमान	अहमिन्द	कौशल	अयोध्या साकेतपुर	इक्ष्वाकुवंश
०३.	श्री संभवनाथ	उपरिमहिट्टिम ग्रै.	अहमिन्द्र	कौशल	श्रावस्ती श्रावन्ती	इक्ष्वाकुवंश
०४.	श्री अभिनंदन	वैजयन्त विमान	अहमिन्द्र	कौशल	अयोध्या साकेतपुर	इक्ष्वाकुवंश
०५.	श्री सुमतिनाथ	वैजयन्त विमान	अहमिन्द्र	कौशल	अयोध्या	इक्ष्वाकुवंश
०६.	श्री पद्मप्रभ	ऊर्ध्व ग्रैवेयक	अहमिन्द्र	कौशल	कौशाम्बीपुर	इक्ष्वाकुवंश
०७.	श्री सुपार्श्वनाथ	मध्य ग्रैवेयक	अहमिन्द्र	काशीदेश	वाराणसी काशी	उग्रवंश
०८.	श्री चन्द्रप्रभ	वैजयन्त विमान	अहमिन्द्र	कौशल	चन्द्रपुरी	उग्रवंश
०९.	श्री पुष्पदंत	अपराजित विमान	अहमिन्द्र	कौशल	काकंदीपुर	उग्रवंश
१०.	श्री शीतलनाथ	आरण स्वर्ग	इन्द्र	मालवदेश	भद्रिलापुर	उग्रवंश
११.	श्री श्रेयांसनाथ	अच्युत स्वर्ग	इन्द्र	कौशल	सिंहपुरी	उग्रवंश
१२.	श्री वासुपूज्य	महाशुक्र स्वर्ग	इन्द्र	अंगदेश	चम्पापुरी	उग्रवंश
१३.	श्री विमलनाथ	सहस्रार स्वर्ग	इन्द्र	अंगदेश	कापिल्य कपिला	उग्रवंश
१४.	श्री अनंतनाथ	अच्युत स्वर्ग	इन्द्र	अंगदेश	अयोध्या साकेतपुर	उग्रवंश
१५.	श्री धर्मनाथ	सर्वार्थसिद्धि विमान	अहमिन्द्र	अंगदेश	रत्नपुरी	कुरुवंश
१६.	श्री शांतिनाथ	सर्वार्थसिद्धि विमान	अहमिन्द्र	कुरुजांगल	हस्तिनागपुर	कुरुवंश
१७.	श्री कुन्थुनाथ	सर्वार्थसिद्धि विमान	अहमिन्द्र	कुरुजांगल	हस्तिनागपुर	कुरुवंश
१८.	श्री अरनाथ	जयंत विमान	अहमिन्द्र	कुरुजांगल	हस्तिनागपुर	कुरुवंश
१९.	श्री मल्लिनाथ	अपराजित विमान	अहमिन्द्र	अंगदेश	मिथिलापुर	इक्ष्वाकुवंश
२०.	श्री मुनिसुव्रत	प्राणत स्वर्ग	इन्द्र	अंगदेश	कुशाग्रपुर राजग्रह	यादववंश हरि
२१.	श्री नमिनाथ	अपराजित विमान	अहमिन्द्र	अंगदेश	मिथिलापुर	इक्ष्वाकुवंश
२२.	श्री नेमिनाथ	जयन्त विमान	अहमिन्द्र	समुद्रदेश	शौरीपुर द्वारका	यादववंश हरि
२३.	श्री पार्श्वनाथ	प्राणत स्वर्ग	इन्द्र	काशीदेश	वाराणसी काशी	उग्रवंश
२४.	श्री महावीर	अच्युत स्वर्ग पुष्पोत्तरविमान	इन्द्र	विदेहदेश	कुण्डलपुर वैशाली	नाथवंश

विशेष – श्री ऋषभदेव को आदिनाथ, आदिब्रह्म। पुष्पदंत को सुविधिनाथ और महावीर को वर्द्धमान, वीर, अतिवीर, सन्मतिवीर, महावीर भी कहते हैं। श्री शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ ये तीन तीर्थंकर, चक्रवर्ती और कामदेव भी थे। पश्चात् राज्य छोड़कर वैराग्य धारण किया, दीक्षा ग्रहण करके वीतरागी हुए।

वर्तमान चौबीस तीर्थंकर सम्बंधी जानकारी

क्र.	जनक (पिता)	जननी (माता)	गर्भ तिथि	जन्म तिथि	शरीर वर्ण
–	०८	०९	१०	११	१२
०१.	नाभिराज	मरुदेवी	आषाढ़ कृ. २	चैत्र कृ. ९	पीत वर्ण
०२.	जितशत्रु	विजयादेवी	ज्येष्ठ कृ.१५	माघ शु. १०	पीत वर्ण
०३.	दृढ़राज (जितारि)	सुषेणादेवी	फाल्गुन शु. ८	कार्तिक शु.पूर्णिमा	पीत वर्ण
०४.	संवर (स्वयंवर)	सिद्धार्था	वैशाख शु. ६	पौष्य शु. १२	पीत वर्ण
०५.	मेघरथ (मेघप्रभ)	सुमंगला	श्रावण शु. २	वैशाख कृ. १	पीत वर्ण
०६.	धारणाराजा	सुसीमा	माघ कृ. ६	कार्तिक कृ. १३	रक्त वर्ण
०७.	सुप्रतिष्ठ	पृथिवी	भाद्रपद शु. ६	ज्येष्ठ शु. १२	हरित वर्ण
०८.	महासेन(महश्रेणी)	लक्ष्मण(सुलक्षण)	चैत्र कृ. ५	पौष्य कृ. ११	धवल वर्ण
०९.	सुग्रीव राजा	जयरामा(रामा)	फाल्गुन कृ.९	मार्गशीर्ष शु.९	धवल वर्ण
१०.	दृढ़रथ राजा	सुनन्दादेवी	चैत्र कृ. ८	पौष्य कृ. १२	पीत वर्ण
११.	विष्णुराज(विमल)	विष्णुश्री (नन्दा)	ज्येष्ठ कृ. ६	फाल्गुन कृ.११	पीत वर्ण
१२.	वसुपूज्य	जयावती(विजया)	आषाढ़ कृ. ६	फाल्गुन कृ.१४	रक्त वर्ण
१३.	कृतवर्मा(कृतधर्मा)	आर्यश्यामा(जयश्यामा)	ज्येष्ठ कृ.१०	पौष्य शु. ४	पीत वर्ण
१४.	सिंहसेन	लक्ष्मीमती(सर्वयशा)	कार्तिक कृ.१	ज्येष्ठ कृ. १२	पीत वर्ण
१५.	भानुराज	सुप्रभा (सुव्रता)	वैशाख शु.१३	पौष्य शु.१३	पीत वर्ण
१६.	विश्वसेन	ऐरादेवी	भाद्रपद कृ. ७	ज्येष्ठ कृ. १४	पीत वर्ण
१७.	सुरसेन (सूर्य)	श्री देवी (श्रीकांता)	श्रावण कृ. १०	वैशाख शु. १	पीत वर्ण
१८.	सुदर्शन	मित्रसेना (मित्रा)	फाल्गुन कृ. ३	मार्गशीर्ष शु.१४	पीत वर्ण
१९.	कुम्भराज (राजकुंभ)	प्रभावती (रक्षता)	चैत्र शु. १	मार्गशीर्ष शु.११	पीत वर्ण
२०.	सुमित्र	सोमा (पद्मावती)	श्रावण कृ. २	चैत्र कृ. १०	श्यामवर्ण
२१.	विजयराज	वर्मिला (वप्रा, महादेवी)	आश्विन कृ. २	आषाढ़ कृ. १०	पीत वर्ण
२२.	समुद्रविजय	शिवादेवी	कार्तिक शु. ६	श्रावण शु. ६	श्याम वर्ण
२३.	विश्वसेन (अश्वसेन)	वामादेवी (ब्राह्मी)	वैशाख कृ. ३	पौष्य कृ. ११	हरित वर्ण
२४.	सिद्धार्थ राजा	प्रियकारिणी (त्रिशला)	आषाढ़ शु.६	चैत्र शु. १३	पीत वर्ण

नोट : पीत वर्ण, रक्त वर्ण, हरित वर्ण, धवल वर्ण और श्याम वर्ण का जो यहाँ आशय है वह इस प्रकार है – तपे हुए सोने के समान पीत वर्ण, बन्धूक पुष्प सम रक्त वर्ण, इन्द्रनील प्रभा सम हरित वर्ण, कुन्द पुष्प सम धवल वर्ण, प्रियंगुप्रभा इन्द्रनील श्यामवर्ण, प्रियंगुप्रभा मोरकंठ सम श्याम वर्ण।

वर्तमान चौबीस तीर्थंकर सम्बंधी जानकारी				
क्र.	**शरीर ऊँचाई**	**चिन्ह**	**कुमार काल**	**राजभोग काल प्रमाण**
–	**१३**	**१४**	**१५**	**१६**
०१.	५०० धनुष	वृषभ (बैल)	२० लाख पूर्व	८३ लाख पूर्व + ०
०२.	४५० धनुष	गज (हाथी)	१८ लाख पूर्व	५३ लाख पूर्व + १ पूर्वाङ्ग
०३.	४०० धनुष	अश्व (घोड़ा)	१५ लाख पूर्व	४४ लाख पूर्व + ४ पूर्वाङ्ग
०४.	३५० धनुष	कपि (बंदर)	१२।। लाख पूर्व	३६।। लाख पूर्व + ८ पूर्वाङ्ग
०५.	३०० धनुष	कोक (चकवा)	१० लाख पूर्व	२९ लाख पूर्व + १२ पूर्वाङ्ग
०६.	२५० धनुष	कमल	७।। लाख पूर्व	२१।। लाख पूर्व + १६ पूर्वाङ्ग
०७.	२०० धनुष	स्वास्तिक साथिया	५ लाख पूर्व	४१ लाख पूर्व + २० पूर्वाङ्ग
०८.	१५० धनुष	शशि (चन्द्रमा)	२।। लाख पूर्व	६।। लाख पूर्व + २४ पूर्वाङ्ग
०९.	१०० धनुष	मकर (मगर)	५० हजार पूर्व	५० हजार पूर्व + २८ पूर्वाङ्ग
१०.	०९० धनुष	कल्पवृक्ष	२५ हजार पूर्व	५० हजार पूर्व
११.	०८० धनुष	गंडक (गैंडा)	२१ लाख वर्ष	४२ लाख वर्ष
१२.	०७० धनुष	महिष (भैंसा)	१८ लाख वर्ष	राज्यभोग नहीं किया (कुमार श्रमण)
१३.	०६० धनुष	शूकर (सुअर)	१५ लाख वर्ष	३० लाख वर्ष
१४.	०५० धनुष	सेही	७।। लाख वर्ष	१५ लाख वर्ष
१५.	०४५ धनुष	वज्र	२५० हजार वर्ष	५ लाख वर्ष
१६.	०४० धनुष	मृग (हरिण)	२५ हजार वर्ष	५० हजार वर्ष
१७.	०३५ धनुष	मेष (बकरा)	२३७५० वर्ष	४७५०० हजार वर्ष
१८.	०३० धनुष	मीन (मछली)	२१००० वर्ष	४२ हजार वर्ष
१९.	०२५ धनुष	कुम्भ (कलश)	१०० वर्ष	राज नहीं किया (कुमार श्रमण)
२०.	०२० धनुष	कूर्म (कछुवा)	७५०० वर्ष	१५ हजार वर्ष
२१.	०१५ धनुष	नीलकमल	२५०० वर्ष	५ हजार वर्ष
२२.	०१० धनुष	शंख	३०० वर्ष	राज नहीं किया (कुमार श्रमण)
२३.	००९ हाथ	नाग (सर्प)	३० वर्ष	राज नहीं किया (कुमार श्रमण)
२४.	००७ हाथ	सिंह	३० वर्ष	राज नहीं किया (कुमार श्रमण)

विशेष –वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर ये पाँच तीर्थंकर कुमार अवस्था में वैरागी हुए, राज्य भी नहीं किया और विवाह भी नहीं किया। अन्य सोलह तीर्थंकर महामांडलिक राजा हुए और राज्य छोड़कर वैराग्य धारण कर दीक्षित हुए।

वर्तमान चौबीस तीर्थंकर सम्बंधी जानकारी

क्र.	छद्मस्थ अवस्था	केवली अवस्था प्रमाण	पूर्ण आयु	दीक्षा पालकी	दीक्षा नगर
–	१७	१८	१९	२०	२१
०१.	१००० वर्ष	१००० वर्ष कम–एक लाख पूर्व	८४ लाख पूर्व	सुदर्शन	प्रयाग
०२.	१२ वर्ष	१ पूर्वाङ्ग+१२ वर्ष कम–एक लाख पूर्व	७२ लाख पूर्व	सुप्रभा	अयोध्या
०३.	१४ वर्ष	४ पूर्वाङ्ग+१४ वर्ष कम–एक लाख पूर्व	६० लाख पूर्व	सिद्धार्था	श्रावस्ती
०४.	१८ वर्ष	८ पूर्वाङ्ग+१८ वर्ष कम–एक लाख पूर्व	५० लाख पूर्व	हस्तचित्रा	अयोध्या
०५.	२० वर्ष	१२ पूर्वाङ्ग+२० वर्ष कम–एक लाख पूर्व	४० लाख पूर्व	अभयकारी	अयोध्या
०६.	६ माह	१६ पूर्वाङ्ग+६ माह कम–एक लाख पूर्व	३० लाख पूर्व	निवृत्तकारी	कौशाम्बी
०७.	९ वर्ष	२० पूर्वाङ्ग+९ वर्ष कम–एक लाख पूर्व	२० लाख पूर्व	सुमनोगति	काशी
०८.	३ माह	२४ पूर्वाङ्ग+३ माह कम–एक लाख पूर्व	१० लाख पूर्व	विमला	चन्द्रपुरी
०९.	४ वर्ष	२८ पूर्वाङ्ग+४ वर्ष कम–एक लाख पूर्व	२ लाख पूर्व	सूर्यप्रभा	काकंदी
१०.	३ वर्ष	३ वर्ष कम २५००० वर्ष	१ लाख पूर्व	शुक्रप्रभा	भद्रिलापुर
११.	२ वर्ष	२ वर्ष कम २१०००००० वर्ष	८४ लाख वर्ष	विमलप्रभा	सिंहनादपुर
१२.	१ वर्ष	१ वर्ष कम ५४०००००० वर्ष	७२ लाख वर्ष	पुष्यभा	चम्पापुर
१३.	३ वर्ष	१४९९९९७ वर्ष	६० लाख वर्ष	देवदत्ता	कम्पिला
१४.	२ वर्ष	७४९९९८ वर्ष	३० लाख वर्ष	सागरदत्ता	अयोध्या
१५.	१ वर्ष	२४९९९९ वर्ष	१० लाख वर्ष	नागदत्ता	रत्नपुर
१६.	१६ वर्ष	२४९८४ वर्ष	१ लाख वर्ष	सिद्धार्था	हस्तिनागपुर
१७.	१६ वर्ष	२३७३४ वर्ष	९५ हजार वर्ष	विजया	हस्तिनागपुर
१८.	१६ वर्ष	२०९८४ वर्ष	८४ हजार वर्ष	वैजयन्ति	हस्तिनागपुर
१९.	६ दिन	६ दिन कम – ५४९०० वर्ष	५५ हजार वर्ष	जयन्ति	मिथिलापुर
२०.	११ माह	११ माह कम – ७५०० वर्ष	३० हजार वर्ष	अपराजिता	राजगृही
२१.	९ वर्ष	९ वर्ष कम – २५०० वर्ष	१० हजार वर्ष	उत्तरकुरु	मिथिलापुर
२२.	५६ दिन	५६ दिन कम – ७०० वर्ष	१ हजार वर्ष	देवकुरु	गिरनार
२३.	४ माह	४ माह कम – ७० वर्ष	१०० वर्ष	विमला	वाराणसी
२४.	१२ वर्ष	३० वर्ष	७२ वर्ष	चन्द्रप्रभा	कुण्डलपुर

विशेष – समवशरण में सब ही तीर्थंकर भगवान पद्मासन से विराजमान रहते हैं।

वर्तमान चौबीस तीर्थंकर सम्बंधी जानकारी

क्र.	दीक्षा उद्यान	दीक्षा वृक्ष	वैराग्य निमित्त	कितने राजाओं ने दीक्षा ली
–	२२	२३	२४	२५
०१.	सिद्धार्थ वन	वट वृक्ष	नीलांजना की मृत्यु	४०००
०२.	सहेतुक – सहसाम्र	सप्तच्छद	उल्कापात देखना	१०००
०३.	सहेतुक – सहसाम्र	शाल वृक्ष	मेघ पटल का नाश	१०००
०४.	उप्रोद्यान – सहसाम्र	शाल वृक्ष	गंधर्व नगर का नाश	१०००
०५.	सहेतुक – सहसाम्र	प्रियंगु	पूर्व भव का स्मरण	१०००
०६.	मनोहर – सहसाम्र	प्रियंगु	पूर्व भव का स्मरण	१०००
०७.	सहेतुक – सहसाम्र	शिरीष	वन लक्ष्मी का नाश	१०००
०८.	सर्वर्दक – सहसाम्र	नागतरु	बिजली का देखना	१०००
०९.	पुष्पक – सहसाम्र	शाल वृक्ष	उल्कापात देखना	१०००
१०.	सहेतुक	पलाश	हिम का नाश देखना	१०००
११.	मनोहर	तिन्दुक	वन लक्ष्मी का नाश	१०००
१२.	क्रीड़ोद्यान – सहसाम्र	पाटलतरु	पूर्व भव का स्मरण	६७६ (६६०)
१३.	सहेतुक – सहसाम्र	जम्बू वृक्ष	मेघ पटल का नाश	१०००
१४.	सहेतुक – सहसाम्र	पीपल	उल्कापात देखना	१०००
१५.	शालवन	दीर्घपर्ण	उल्कापात देखना	१०००
१६.	आम्रवन	नंदीतरु	पूर्व भव का स्मरण	१०००
१७.	सहेतुक	तिलक	पूर्व भव का स्मरण	१०००
१८.	सहेतुक	आम्र	मेघ पटल का नाश	१०००
१९.	शालिवन	अशोक	बिजली का देखना	३०० (६०६)
२०.	नीलवन – नीलगुफा	चम्पक	पूर्व भव का स्मरण	१०००
२१.	चित्रवन – सहसाम्र	वकुल	पूर्व भव का स्मरण	१०००
२२.	चित्रवन – सहसाम्र	मेघऋङ्ग	पशुओं का क्रन्दन	१०००
२३.	अश्ववन – मनोरमा	धवल वृक्ष	जाति स्मरण होना	३०० (६०६)
२४.	ज्ञात्रवन – नाथ	शाल वृक्ष	जाति स्मरण होना	अकेले (३००)

विशेष – इन्द्र ने तीर्थंकर भगवंतों की १००८ नामों से स्तुति की है।

वर्तमान चौबीस तीर्थंकर सम्बंधी जानकारी

क्र.	कितने दिनों में आहार लिया	आहार देने वाले महाशय	पारणा किये नगरों के नाम	तप काल
–	२६	२७	२८	२९
०१.	एक वर्ष बाद	श्रेयांसराजा (हरि–शाम)	हस्तिनागपुर	१००० वर्ष
०२.	चौथे दिन	ब्रह्मदत्त (सुवर्ण)	अयोध्या	१ पूर्वाङ्ग कम १ लाख पूर्व
०३.	तीन दिन बाद	सुरेन्द्रदत्त	श्रावस्ति श्रावन्ति	४ पूर्वाङ्ग कम १ लाख पूर्व
०४.	तीन दिन बाद	इन्द्रदत्त	अयोध्या वनितापुर	८ पूर्वाङ्ग कम १ लाख पूर्व
०५.	तीन दिन बाद	पद्मदत्त	सोमन विजयपुरी	१२ पूर्वाङ्ग कम १ लाख पूर्व
०६.	तीन दिन बाद	सोमदत्त	वर्धमान मंगलपुरी	१६ पूर्वाङ्ग कम १ लाख पूर्व
०७.	तीन दिन बाद	मेन्द्रदत्त	सोमखंड पटलीखंडपुरी	२० पूर्वाङ्ग कम १ लाख पूर्व
०८.	तीन दिन बाद	पुष्यमित्र (सोमदत्त राजा)	नलिनापुर पद्मखंडपुर	२४ पूर्वाङ्ग कम १ लाख पूर्व
०९.	तीन दिन बाद	पुनर्वसु (पुष्पक राजा)	शैतपुर चिन्तहरपुर	२८ पूर्वाङ्ग कम १ लाख पूर्व
१०.	तीन दिन बाद	नन्दन (पुनर्वसु)	अरिष्टपुर सेयपुर	२५ हजार पूर्व
११.	तीन दिन बाद	सौन्दर (सुनन्दन राजा)	सिद्धार्थपुर अरिष्टपुर	२१ लाख वर्ष
१२.	तीन दिन बाद	जय (सुरेन्द्रनाथ राजा)	महापुर सिद्धार्थपुर	५४ लाख वर्ष
१३.	तीन दिन बाद	बिशाख (जयकुमार)	नन्दनपुर धान्यवटपुर	१५ लाख वर्ष
१४.	तीन दिन बाद	धान्यसेन (विशाखभूति)	अयोध्या धर्ममानपुर	७५० हजार वर्ष
१५.	तीन दिन बाद	धर्म मित्र (सुमित्र)	पटना सौमनसपुर	२५० हजार वर्ष
१६.	तीन दिन बाद	सुमित्र (प्रियमित्र)	मन्दरपुर सौमनसपुर	२५ हजार वर्ष
१७.	तीन दिन बाद	अपराजित (वरदत्त राजा)	हस्तिनागपुर मंदिरपुर	२३७५० वर्ष
१८.	तीन दिन बाद	नन्दी (अपराजित)	चक्रपुर (गजपुर)	२१००० वर्ष
१९.	चौथे दिन बाद	नन्दिसेन (विषयदत्त)	मिथिला चक्रहरपुर	५४९०० वर्ष
२०.	तीन दिन बाद	वृषभदत्त (दत्त)	राजगृही मिथिलापुर	७५०० वर्ष
२१.	तीन दिन बाद	दत्त (वरदत्त)	वीरपुर संयोगपुर	२५०० वर्ष
२२.	तीन दिन बाद	वरदत्त (चारुदत्त)	द्वारिका विखरपुर	७०० वर्ष
२३.	चार दिन बाद	धान्यसेन (धनदत्त)	गुलमखेट द्वारावती	७० वर्ष
२४.	तीन दिन बाद	नन्दन (विश्वसेन)	कुण्डलपुर	१२ वर्ष

विशेष – श्री ऋषभदेव के सिवाय बाकी सभी ने गो क्षीर (गाय के दूध) से बना हुआ क्षीरान्न (खीर) अर्थात् दूध के नाना प्रकार के पकवान की पारणा की थी।

वर्तमान चौबीस तीर्थंकर सम्बंधी जानकारी
तीर्थंकरों के केवलज्ञान कल्याणक समवशरण विस्तार

क्र.	केवलज्ञान तिथि	केवलज्ञान समय	केवलज्ञान वन	केवलज्ञान वृक्ष	योजन प्रमाण	कोस प्रमाण
–	३०	३१	३२	३३	३४	३५
०१.	फाल्गुन कृ. ११	पूर्वाह्न	शकटा वन (पुरिमतालपुर)	वट वृक्ष	१२	४८
०२.	पौष्य शु. ११	अपराह्न	सहेतुक वन	सप्त पर्ण	११।।	४६
०३.	कार्तिक कृ. ४	अपराह्न	सहेतुक वन	शाल्मली	११	४४
०४.	पौष्य शु. १४	अपराह्न	उग्रवन	वैशाल	१०।।	४२
०५.	चैत्र शु. ११	अपराह्न	सहेतुक वन	प्रियंगु	१०	४०
०६.	चैत्र शु. १५	अपराह्न	मनोहर वन	प्रियंगु	९।।	३८
०७.	फाल्गुन कृ. ६	अपराह्न	सहेतुक वन	शिरीष	९	३६
०८.	फाल्गुन कृ. ७	अपराह्न	सर्वार्थ वन	नागवृक्ष	८।।	३४
०९.	कार्तिक शु. २	अपराह्न	पुष्पक वन	अक्ष (बहेड़ा)	८	३२
१०.	पौष्य कृ. १४	अपराह्न	सहेतुक वन	विल्व वृक्ष	७।।	३०
११.	माघ कृ. १५	पूर्वाह्न	मनोहर वन	पलाश	७	२८
१२.	माघ शु. २	अपराह्न	मनोहर वन	कदम्ब	६।।	२६
१३.	माघ शु. ६	अपराह्न	सहेतुक वन	जंबु (पाटल)	६	२४
१४.	चैत्र कृ. १५	अपराह्न	सहेतुक वन	पीपल वृक्ष	५।।	२२
१५.	पौष्य शु. १५	अपराह्न	सहेतुक वन	सप्तच्छद	५	२०
१६.	पौष्य शु. १०	अपराह्न	सहसाम्र वन	नन्दी वृक्ष	४।।	१८
१७.	चैत्र शु. ३	अपराह्न	सहेतुक वन	तिलक	४	१६
१८.	कार्तिक शु. १२	अपराह्न	सहेतुक वन	आम्र वृक्ष	३।।	१४
१९.	मार्गशीर्ष शु. ११	पूर्वाह्न	मनोहर वन	अशोक	३	१२
२०.	वैशाख कृ. १०	अपराह्न	नील वन	चम्पक	२।।	१०
२१.	मार्गशीर्ष शु. ११	अपराह्न	चित्रक वन	बकुल	२	८
२२.	आश्विन शु. १	पूर्वाह्न	गिरनार वन	मेष श्रृंग	१।।	६
२३.	चैत्र कृ. ४	पूर्वाह्न	अश्व वन (काशी)	देवदारु	१।	५
२४.	वैशाख शु. १०	अपराह्न	मनोहर (ऋजुकूला नदी)	शाल वृक्ष	१	४

विशेष – श्री तीर्थंकर भगवान आयु के अंत में जब बिहार बंद करके योग निरोध करते हैं तब एक ही स्थान में यथायोग्य आसन लगाकर निश्चल रहते हैं। हलन-चलन रूप काय योग की एवं उपदेश रूप वचन योग की क्रिया सब बंद हो जाती है। उनका पुण्य पूरा क्षय होने से समवशरण की रचना नहीं रहती है। बारह प्रकार की सभा सब विघटित होकर सभा के सब जीव हाथ जोड़कर रहते हैं। प्रभु के पास रहने वाले सब प्रमुख देवता चले जाते हैं।

वर्तमान चौबीस तीर्थंकर सम्बंधी जानकारी
तीर्थंकरों के केवलज्ञान कल्याणक समवशरण विस्तार

क्र. –	वादियों की संख्या	मुख्य गणधर	गणिनी आर्यिका	आर्यिकाओं की संख्या	मुख्य श्रोता	श्रावक संख्या
	३६	३७	३८	३९	४०	४१
०१.	१२७५०	वृषभसेन	ब्राह्मी	३५००००	भरत	३ लाख
०२.	१२४००	सिंहसेन	प्रकुब्जा	३२००००	सगर	३ लाख
०३.	१२०००	चारुसेन (चारुदत्त)	धर्मश्री	३३००००	सत्य वीर्य	३ लाख
०४.	१००००	वज्रनाभि वज्रचमर	मेरुषेणा	३३०६००	मित्र भाव	३ लाख
०५.	१०४५०	चमर (अमरवज्र)	अनन्ता	३३००००	मित्र वीर्य	३ लाख
०६.	९६००	वज्रचमर (चमर)	रतिषेणा	४२००००	धर्म वीर्य	३ लाख
०७.	८६००	बलदत्त (बलि)	मीना	३३००००	दान वीर्य	३ लाख
०८.	७०००	दत्त (वैदर्भ)	वरुणा	३८००००	मघवा	३ लाख
०९.	६६००	विदर्भ (नाग)	घोषा	३८००००	बुद्धि वीर्य	२ लाख
१०.	५७००	अनगार	धरणा	३८००००	सीमंधर	२ लाख
११.	५०००	कुन्थु	चारणा	१३००००	त्रिपृष्ट	२ लाख
१२.	४२००	सधर्म (धर्म)	वरसेना	१०६०००	स्वयंभू	२ लाख
१३.	३६००	मन्दरार्य (मन्दिर)	पद्मा	१०३०००	पुरुषोत्तम	२ लाख
१४.	३२००	जयार्य (जय)	सर्वश्री	१०८०००	पुरुष पुंडरीक	२ लाख
१५.	२८००	अरिष्ट सेन	सुव्रता	६२४००	सत्यदत्त	२ लाख
१६.	२४००	चक्रायुध	हरिषेणा	६०३००	कुनाल	२ लाख
१७.	२०००	स्वयंभू	भाविता	६०३५०	नारायण	१ लाख
१८.	१६००	कुम्भार्य (कुंभु)	कुन्थुसेना	६००००	सुभौम	१ लाख
१९.	१४००	विशाख	अमरसेना (मधुसेना)	५५०००	सार्वभौम	१ लाख
२०.	१२००	मल्ली	पूर्वदत्ता	५००००	अजितंजय	१ लाख
२१.	१०००	सुप्रभ (सोमक)	मार्गिणी	४५०००	विजय	१ लाख
२२.	८००	वरदत्त	यक्षिणी	४००००	उग्रसेन	१ लाख
२३.	६००	स्वयंभू	सुलोका	३८०००	महासेन	१ लाख
२४.	४००	गौतम (इन्द्रभूति)	चन्दना	३६०००	श्रेणिकराजा	१ लाख

धर्म का विच्छेद – श्री सुविधिनाथ के तीर्थकाल में पाव पल्य। शीतलनाथ के तीर्थकाल में आधा पल्य, श्रेयांसनाथ के तीर्थकाल में पौन पल्य और वासुपूज्य के तीर्थकाल में एक पल्य का धर्म का विच्छेद हुआ था। विमलनाथ के तीर्थकाल में पौने पल्य, अनन्तनाथ के तीर्थकाल में आधा पल्य का, धर्मनाथ के तीर्थकाल में पाव पल्य का धर्म का विच्छेद हुआ था। इस प्रकार विच्छेद काल पाव पल्य से प्रारम्भ होकर एक पल्य तक गया और पुन: पाव पल्य तक पहुँच गया। जिस समय धर्म का विच्छेद होता है उस समय मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका कोई भी नहीं रहते हैं। दीक्षा के सम्मुख होने वालों का अभाव होता है इसलिये धर्म रूपी सूर्य अस्तंगत रहता है।

वर्तमान चौबीस तीर्थंकर सम्बंधी जानकारी
तीर्थंकरों के समवशरण एवं निर्वाण आदि

क्र.	श्राविकाओं की संख्या	मोक्ष तिथि	निर्वाण क्षेत्र	ती. के साथ कितने जीव सिद्ध हुए
–	४२	४३	४४	४५
०१.	५ लाख	माघ कृ.१४	कैलाशपर्वत	१००००
०२.	५ लाख	चैत्र शु.५	श्री सम्मेदशिखर जी	१०००
०३.	५ लाख	चैत्र शु.६	श्री सम्मेदशिखर जी	१०००
०४.	५ लाख	वैशाख शु.७	श्री सम्मेदशिखर जी	१०००
०५.	५ लाख	चैत्र शु.१०	श्री सम्मेदशिखर जी	१०००
०६.	५ लाख	फाल्गुन कृ.४	श्री सम्मेदशिखर जी	३२४
०७.	५ लाख	फाल्गुन कृ.६	श्री सम्मेदशिखर जी	५००
०८.	५ लाख	फाल्गुन कृ.७	श्री सम्मेदशिखर जी	१००
०९.	४ लाख	भाद्र पद शु.८	श्री सम्मेदशिखर जी	१०००
१०.	४ लाख	आश्विन शु.८	श्री सम्मेदशिखर जी	१०००
११.	४ लाख	श्रावण शु.१५	श्री सम्मेदशिखर जी	१०००
१२.	४ लाख	भाद्रपद शु.१४	श्री मंदारगिरि (चम्पापुरी)	६०१
१३.	४ लाख	आषाढ़ कृ.८	श्री सम्मेदशिखर जी	६००
१४.	४ लाख	चैत्र कृ.१५	श्री सम्मेदशिखर जी	७००
१५.	४ लाख	ज्येष्ठ शु.४	श्री सम्मेदशिखर जी	८०१
१६.	४ लाख	ज्येष्ठ कृ.१४	श्री सम्मेदशिखर जी	९००
१७.	३ लाख	वैशाख शु.१	श्री सम्मेदशिखर जी	१०००
१८.	३ लाख	चैत्र कृ.१५	श्री सम्मेदशिखर जी	१०००
१९.	३ लाख	फाल्गुन कृ. ५	श्री सम्मेदशिखर जी	५००
२०.	३ लाख	फाल्गुन कृ.१२	श्री सम्मेदशिखर जी	१०००
२१.	३ लाख	वैशाख कृ.१४	श्री सम्मेदशिखर जी	१०००
२२.	३ लाख	आषाढ़ कृ. ८	श्री गिरनार (ऊर्जयंतगिरि)	५३६
२३.	३ लाख	श्रावण शु.७	श्री सम्मेदशिखर जी	३६
२४.	३ लाख	कार्तिक कृ.१४	श्री पावापुरी	अकेले

विशेष – श्री ऋषभनाथ जी, श्री वासुपूज्य जी एवं श्री नेमिनाथ जी पद्मासन से तथा अन्य सभी तीर्थंकर कायोत्सर्गासन (खड्गासन) से मोक्ष को पधारे।

(ब) प्रथमानुयोग कथानक बोध

जैनागम चार भागों में विभक्त है, जिन्हें चार अनुयोग कहते हैं – प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग। इन चारों में क्रम से कथाएँ व पुराण, कर्म सिद्धांत व लोक विभाग, जीव का आचार-विचार और चेतनाचेतन द्रव्यों का स्वरूप व तत्त्वों का निर्देश है।

वस्तु स्वरूप का कथन करने में जिन अधिकारों की आवश्यकता होती है उन्हें अनुयोगद्वार कहते हैं। **प्रथमं, करणं, चरणं, द्रव्यं नमः** – प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग को नमस्कार है।

पुराण पुरुषों के जीवन चरित्र के माध्यम से हमें आत्मकल्याण की प्रेरणा प्राप्त होती है। इसी अभिप्राय को ध्यान में रखकर **आराधना कथाकोष** के आधार पर यहाँ प्रथमानुयोग के प्रेरणाप्रद कथानक दिये गये हैं।

क्र.	कथानक	पृष्ठ सं.
०१.	रूप मद से वैराग्य : सनत्कुमार चक्रवर्ती	१६६
०२.	आदर्श तपस्वी : संजयंत मुनि	१६८
०३.	सम्यग्दर्शन : निशंकित अंग और अंजन चोर	१७२
०४.	सम्यग्दर्शन : नि:कांक्षित अंग और अनंतमती	१७४
०५.	सम्यग्दर्शन : निर्विचिकित्सा अंग और उद्दायन राजा	१७७
०६.	सम्यग्दर्शन : अमूढ़दृष्टि अंग और रेवती रानी	१७९
०७.	सम्यग्दर्शन : उपगूहन अंग और जिनेन्द्रभक्त	१८१
०८	सम्यग्दर्शन : स्थितिकरण अंग और वारिषेण मुनि	१८३
०९.	सम्यग्दर्शन : वात्सल्य अंग और विष्णुकुमार मुनि	१८५
१०.	सम्यग्दर्शन : प्रभावना अंग और वज्रकुमार मुनि	१८८
११.	सच्ची मित्रता	१९१
१२.	मूर्च्छा दुर्गति का कारण	१९४
१३.	औषधिदान का फल	१९५
१४.	ज्ञानदान की महिमा	१९६
१५.	अभयदान का फल	१९७
१६.	आहारदान की महिमा	१९८
१७.	रात्रिभोजन त्याग व्रत	२०६
१८.	लोभ ने बनाया फणहस्त	२०९
१९.	परिणामों का उतार-चढ़ाव	२१०
२०.	करनी का फल भोग, पाई मुक्तिश्री	२१२
२१.	उपसर्ग विजेता श्रीदत्त मुनि	२१३

....

(१)
रूप मद से वैराग्य : सनत्कुमार चक्रवर्ती

इस देश के वीतशोक नामक शहर में हुए अनंतवीर्य राजा एवं उनकी महारानी सीता से चरित्र नायक सनत्कुमार हुए। छह खण्ड पृथ्वी आधीनकर वे अनेक विभूतियों के अधिपति बने। सनत्कुमार अत्यंत सुन्दरता के धनी थे। एक दिन सौधर्म इन्द्र अपनी सभा में उनके रूप सौन्दर्य की प्रशंसा कर रहा था। इन्द्र द्वारा सनत्कुमार चक्रवर्ती के देव दुर्लभ रूप की प्रशंसा सुनकर मणिमाल और रत्नचूल नामक देवों को उनके रूप देखने की इच्छा हुई। वे उसी समय देवलोक छोड़कर गुप्तवेश में भारतवर्ष आये। उस समय चक्रवर्ती स्नान कर रहे थे। स्नान करते हुए चक्रवर्ती का वस्त्रालंकार रहित सर्वसुन्दर रूप देखकर उन्हें अपना सिर हिलाना ही पड़ा। उन्होंने माना की इन्द्र के कथनानुसार सनत्कुमार चक्रवर्ती वास्तव में देव दुर्लभ रूप सौन्दर्य के धनी हैं।

देवों ने अपना असली रूप धारण कर पहरेदारों से कहा कि हम तुम्हारे राजा के रूप सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर देखने के लिये आये हैं। पहरेदारों ने यह संदेश राजा को कह सुनाया। राजा राजसी वेषभूषा में सुसज्जित होकर सिंहासन पर बैठे और देवों को राजसभा में आने की आज्ञा दी। देव राजसभा में आये और चक्रवर्ती का रूप उन्होंने देखा, देखते ही वे खेद के साथ बोल उठे – ''महाराज ! क्षमा कीजिये, कुछ क्षणों पूर्व हमने आपके रूप की सौन्दर्य माधुरी पाई थी वह अब नहीं रही।'' राजदरबारियों ने आश्चर्य से पूछा कि हमें तो महाराज के रूप में कोई कमी नहीं दिखती है। देवों ने कमी का निश्चय कराने के लिये जल से भरा हुआ एक घड़ा मंगवाया और उसमें तिनके से एक बूंद जल निकाल लिया। पश्चात् पूछा कि क्या पहले जैसा अब भी भरा है ? सभी ने सहमति में सिर हिलाया। किन्तु देवों ने कहा एक बूंद पानी निकालने पर सामान्य व्यक्ति को घड़े के जल में कमी दिखाई नहीं देती, उसी प्रकार राजा के शरीर में हुए परिवर्तन का अनुभव आपको नहीं हो रहा है। इस घटना से राजा को परिवर्तन का अनुभव हो गया एवं वे समस्त वैभव को विनाशीक और शरीर को क्षणभंगुर जानकर आत्मकल्याण की भावना से वन की ओर चल दिये और चारित्रगुप्त मुनिराज के पास जाकर जिनदीक्षा धारण कर ली। पंचाचार आदि मुनिव्रतों का निरतिचार पालन करने लगे।

एक दिन की बात है कि पूर्व कर्मोदय के कारण आहार करते समय प्रकृति विरुद्ध वस्तु उनके खाने में आ गई। उसका फल यह हुआ कि शरीर में व्याधियाँ उत्पन्न हो गईं और शरीर कोढ़ग्रस्त हो गया। जिससे उनके शरीर से रुधिर, पीप आदि बहने लगा, परन्तु सनत्कुमार के मन पर इस व्याधि का कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ। वे शरीर से निर्मोही रहते हुए सावधानी पूर्वक तपश्चर्या करते रहे।

एक दिन सौधर्म इन्द्र अपनी सभा में धर्मानुरागवश मुनियों के पाँच प्रकार के चारित्र का वर्णन कर रहे थे, इसी क्रम में इस चारित्र का पालन करने वाले सनत्कुमार चक्रवर्ती की उन्होंने प्रशंसा की। तभी मदनकेतु नामक देव ने उनकी परीक्षा लेने का निर्णय किया। वह रूप बदलकर वहाँ उपस्थित हुआ जहाँ मुनिराज सनत्कुमार चक्रवर्ती साधनारत थे। सनत्कुमार मुनि की रोगग्रस्त अवस्था में सुमेरुवत् अचलता देखकर देव

बहुत प्रसन्न हुआ। देव ने वैद्य का वेश बनाया और घूम-घूमकर चिल्लाने लगा कि मैं एक बड़ा प्रसिद्ध वैद्य हूँ, भयंकर से भयंकर रोग को भी दूर कर सकता हूँ। सनत्कुमार मुनिराज ने उसे बुलाया और उससे पूछा तुम कौन हो ? इस निर्जन वन में किसलिये घूमते हो ? देव ने कहा – मैं वैद्य हूँ, आपका शरीर रोगग्रस्त हो रहा है, यदि आज्ञा दें तो समस्त व्याधियों को दूर कर इसे सोने सरीखा बना सकता हूँ।

मुनिराज बोले – अच्छा हुआ जो अनायास इधर आ निकले, मुझे एक बड़ा भारी और भयंकर रोग हो रहा है, क्या तुम उसे दूर कर दोगे ?

देव ने कहा – निःसंदेह, मैं आपके रोग को जड़मूल से समाप्त कर दूँगा, वह रोग कोढ़ ही है ना ?

मुनिराज बोले – नहीं, यह तो एक तुच्छ रोग है, इसकी मुझे परवाह नहीं। मुझे जो भयंकर रोग है वह है संसार का परिभ्रमण.......यदि तुम मुझे उससे छुड़ा दो तो बहुत अच्छा होगा।

यह सुनकर देव बहुत लज्जित हुआ और बोला – मुनिनाथ इस रोग को तो आप ही नष्ट कर सकते हैं।

मुनिराज ने कहा – भाई ! जब इस रोग को तुम नष्ट नहीं कर सकते तब मुझे तुम्हारी आवश्यकता भी नहीं है और शरीर का रोग तो वमन का स्पर्श मात्र से ही क्षय हो सकता है, उसके लिये भी वैद्य और दवाओं की आवश्यकता नहीं है। यह कहकर मुनिराज ने अपने वमन द्वारा एक हाथ के रोग को नष्ट कर सोने सा निर्मल बना दिया। मुनिराज की इस अतुल शक्ति को देखकर देव आश्चर्यचकित हो गया। वह अपने असली रूप को प्रकट कर बोला – भगवन् ! मैंने सौधर्म इन्द्र की सभा में आपके चारित्र की प्रशंसा सुनी थी, वैसा ही आपको पाया, आप धन्य हैं। इस प्रकार मदनकेतु सनत्कुमार की प्रशंसा कर भक्तिभाव से नमस्कार कर स्वर्ग चला गया।

इधर मुनिराज सनत्कुमार क्षण-क्षण बढ़ते हुए वैराग्य के साथ अपने चारित्र को क्रमशः उन्नत करने लगे। अंत में शुक्ल ध्यान के द्वारा चार घातिया कर्मों को क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त किया, शेष अघातिया कर्मों को निर्जरित कर अविनाशी सिद्ध पद को प्राप्त किया।

शिक्षा –

१. अशुचि नाशवान शरीर के रूप का मद नहीं करना चाहिये।
२. शरीरादि की क्षणभंगुरता का विचार करके वैराग्य की भावना भाना चाहिये।
३. **शरीरं व्याधि मंदिरं, आत्मा आनंद मंदिरम्।** शरीर रोगों का घर है और आत्मा आनंद का भंडार है ऐसा निरंतर चिंतवन करना चाहिये।
४. जगत में जीव नाशवान शरीर में असाता वेदनीय के उदयजनित व्याधियों की परवाह करते हुए भक्ष्य-अभक्ष्य का निर्णय किये बिना पदार्थों का सेवन कर दुर्गति का बंध करते हैं और आत्मा के भव भ्रमण की व्याधि से मुक्त होने की भावना नहीं भाते। इस कथानक से कर्मोदय जन्य रोग व्याधि आदि में दृढ़ता धारण करने की प्रेरणा प्राप्त होती है।
५. वैराग्य धारणकर जिनदीक्षा लेकर कर्मों की निर्जरा कर संसार के आवागमन से मुक्त होने की भावना भाना चाहिये।

....

(२)
आदर्श तपस्वी : संजयंत मुनि

सुमेरू के पश्चिम में विदेह के अंतर्गत गंधमालिनी नाम का देश है, उसके राजा वैजयन्त थे और महारानी का नाम भव्यश्री था, उनके संजयत एवं जयंत दो पुत्र थे।

एक दिन आकाश से बिजली गिरने से महाराज वैजयन्त का प्रधान हाथी मर गया, इससे उन्हें संसार से वैराग्य हो गया। उन्होंने राज्य त्याग करने का निश्चय कर अपने दोनों पुत्रों को बुलाया और उन्हें राज्यभार सौंपना चाहा। दोनों भाइयों ने उनसे कहा – पिता जी ! राज्य तो संसार बढ़ाने का कारण है, यह विचार करके ही आप इसे छोड़ रहे हैं फिर सुख की जगह हमें दु:ख भोगना पड़े ऐसे राज्य को लेकर हम क्या करेंगे ? हम तो आपके साथ ही साधु बनकर अपना आत्मकल्याण करेंगे।

महाराज वैजयन्त ने पुत्रों की भावना को समझते हुए संजयंत के पुत्र को राज्यभार सौंपकर दोनों पुत्रों सहित दीक्षित हो गये, साधु पद धारण कर लिया। वैजयंत मुनिराज ने घोर तपश्चरण कर घातिया कर्मों को क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त किया। उनके ज्ञान कल्याणक में आये हुए देवों की विभूति को देखकर संजयंत के छोटे भाई जयंत ने निदान किया कि मैंने इतना तपश्चरण किया है इसके प्रभाव से मुझे भी ऐसी विभूति प्राप्त हो। निदान के परिणाम स्वरूप वह आयु के अंत में मरकर धरणेन्द्र हुआ।

इधर संजयंत मुनि पक्ष और माह के उपवास करने लगे। गर्मी, सर्दी और वर्षा की परवाह किये बिना सदा आत्मध्यान में लीन रहने लगे।

एक दिन की बात है कि संजयंत मुनिराज अपने ध्यान में डूबे हुए थे, उसी समय एक विद्युद्दंष्ट्र नाम का विद्याधर आकाशमार्ग से निकला परन्तु मुनि के प्रभाव से उसका विमान आगे नहीं बढ़ पाया, विमान को रुका हुआ देखकर उसने नीचे संजयंत मुनि को देखा और क्रोध से भर उठा। उसने मुनिराज को विमान रोकने वाला समझकर उन पर भयंकर उपद्रव करना शुरू कर दिया किन्तु मुनिराज रंचमात्र भी विचलित नहीं हुए। वे निश्चल खड़े रहे और ध्यान करते रहे। मुनिराज को अनेक उपद्रव करने के बाद भी अचल देखकर विद्याधर का क्रोध और बढ़ गया, उसने अपनी विद्याबल से मुनिराज को उठा लिया और भारतवर्ष में पूर्व दिशा की ओर बहने वाली सिंहवती नाम की नदी में फेंक दिया। कर्मोदयवश उस प्रान्त के लोग भी पाप प्रवृत्ति से भरे थे और मुनिराज को राक्षस समझकर पत्थरों से मारा, दुखित और पीड़ित किया किन्तु मुनिराज लेशमात्र भी डिगे नहीं। अंत में संजयंत मुनि ने अपूर्व ध्यान के बल से केवलज्ञान प्राप्त किया और समस्त कर्मों को क्षय करके निर्वाण पद प्राप्त कर लिया। निर्वाण कल्याणक मनाने के लिये जो देवगण आये उनके साथ पूर्व पर्याय का भाई जयंत जो धरणेन्द्र हुआ था, वह भी आया था। धरणेन्द्र को अपने भाई के शरीर की दुर्दशा देखकर तीव्र क्रोध आया, उसने भाई को कष्ट पहुँचाने का कारण वहाँ के नगरवासियों को समझकर उन सबको अपने नागपाश से बांध लिया और उन्हें दु:ख देने लगा। नगरवासियों ने हाथ जोड़कर उससे सम्पूर्ण वृत्तांत कह सुनाया कि हम तो निरपराध हैं, सच्चा अपराधी तो विद्याधर विद्युद्दंष्ट्र है। यह सुनते ही धरणेन्द्र ने विद्याधर को नागपाश से बांध लिया, कष्ट पहुँचाया और ज्यों ही उसे समुद्र में फेंकना चाहा तभी एक दिवाकर नाम के दयालु देव ने उससे कहा कि तुम इसे व्यर्थ ही कष्ट दे रहे हो उसकी तो संजयंत मुनि के साथ पिछले चार भव से शत्रुता चली आ

रही है, इसीलिये उसने मुनि पर उपसर्ग किया।

धरणेन्द्र ने इस शत्रुता का कारण जानना चाहा। तब दिवाकर देव ने इस प्रकार कहना आरंभ किया – प्राचीन समय में भारतवर्ष में सिंहपुर नाम का एक शहर था, उसके राजा सिंहसेन एवं उनकी रानी रामदत्ता बुद्धिमान एवं धर्मप्रेमी थे। उनका राजमंत्री श्रीभूति ठग एवं कुटिल प्रवृत्ति का था। एक दिन पद्‌मखंडपुर के रहने वाले सुमित्र सेठ का पुत्र समुद्रदत्त श्रीभूति के पास आया और उससे बोला – महाशय, मैं व्यापार के लिये विदेश जा रहा हूँ। देव की विचित्र लीला से न जाने कौन समय कैसा आवे ? इसलिये मेरे पास ये पाँच रत्न हैं, इन्हें आप अपनी सुरक्षा में रखें तो अच्छा होगा और मुझ पर भी आपकी बड़ी दया होगी। मैं वापस लौटकर अपने रत्न ले लूँगा। यह कहकर श्रीभूति को रत्न सौंपकर समुद्रदत्त चल दिया।

कई वर्ष बाद समुद्रदत्त वापस लौटा। वह बहुत धन कमाकर लाया था। जाते समय जैसा उसने सोचा था, दैव की प्रतिकूलता से वही घटना उसके भाग्य में घटी, किनारे लगते-लगते जहाज फट पड़ा। सब माल असबाब समुद्र के विशाल उदर में समा गया। पुण्योदय से समुद्रदत्त को कुछ ऐसा सहारा मिल गया, जिससे उसकी जान बच गई और वह कुशलता पूर्वक घर लौट आया।

दूसरे दिन वह श्रीभूति के पास गया और अपने पर आई हुई विपत्ति को जैसे का तैसा कह सुनाया और अमानत के रूप में रखे हुए रत्न वापस मांगे। श्रीभूति बहुत नाराज हुआ और समुद्रदत्त को भला-बुरा कहते हुए फटकार लगाई। उसने नौकरों के द्वारा समुद्रदत्त को बाहर निकलवा दिया। समुद्रदत्त पर विपत्ति ने डेरा डाल दिया, वह पागलों की तरह चिल्लाने लगा। राजमहल के पास भी उसने पुकार लगाई किन्तु कहीं उसकी बात नहीं सुनी गई। अंत में निरुपाय होकर उसने रानी के महल के पीछे एक वृक्ष पर चढ़कर जोर-जोर से चिल्लाना प्रारम्भ किया। बहुत दिनों तक रानी ने भी पागल समझकर उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया किन्तु उसका प्रतिदिन एक निश्चित समय पर वृक्ष पर चढ़कर चिल्लाने का क्रम बन गया। रानी ने राजा से उसकी बात पर ध्यान देने का आग्रह किया। राजा ने समुद्रदत्त को बुलाकर सब पूछा। समुद्रदत्त ने सम्पूर्ण घटनाक्रम ज्यों का त्यों महाराज को सुना दिया। रत्न कैसे प्राप्त हों यह जिम्मेदारी रानी को सौंपी गई।

रानी ने एक दिन श्रीभूति को उसकी तारीफ करते हुए उसके साथ शतरंज खेलने की व्यवस्था बनाई। दोनों का खेल आरम्भ हुआ। रानी किसी भी प्रकार रत्नों को प्राप्त करना चाहती थी। रानी ने खेलते-खेलते श्रीभूति को अपनी बातों में लगाकर उसके घर की सारी बातें जान लीं और दासी को सब बात समझाकर श्रीभूति के यहाँ भेजा। दासी ने जाकर श्रीभूति की पत्नी से कहा तुम्हारे पति संकट में फंसे हैं, इसलिये उन्होंने तुम्हारे पास जो पाँच रत्न रखे हैं, उन्हें लेने के लिये भेजा है। श्रीभूति की स्त्री ने उसे फटकार दिया और उसकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। दासी ने वापस आकर रानी को सब बता दिया। रानी ने दूसरी बार प्रयत्न कर श्रीभूति की एक कीमती अंगूठी जीत ली और अंगूठी दासी को देकर पुनः श्रीभूति के घर भेजा और आप स्वयं श्रीभूति के साथ खेलने लगी। दासी ने पहुँचते ही घबराकर कहा कि देखो तुमने पहले रत्न नहीं दिये इससे उन्हें बहुत कष्ट उठाना पड़ा अब उन्होंने यह अंगूठी देकर मुझे भेजा है और कहलवाया है कि यदि मेरी जान तुम्हें प्यारी हो तो अंगूठी देखते ही रत्न दे देना। अब तो वह घबरा गई और अंगूठी के भरोसे रत्न दासी को सौंप दिये। दासी ने रत्न लाकर रानी को दे दिये। रानी ने उन्हें महाराज के पास पहुँचा दिये। राजा को रत्न देखकर

प्रसन्नता हुई, उन्होंने रानी की बुद्धिमानी को धन्यवाद दिया। राजा ने समुद्रदत्त को बुलाया और बहुत से रत्नों में उन पाँच रत्नों को मिलाकर उससे अपने रत्न निकालने के लिये कहा जिन्हें समुद्रदत्त ने पहचानकर निकाल लिया। श्रीभूति पर राजा को बहुत क्रोध आया। राजा ने अपने राज्यकर्मचारियों से विचार-विमर्श कर तीन दण्ड श्रीभूति को दिये। जिनमें से जो उसे पसन्द हो उसे वह स्वीकार करे - १. एक सेर गोबर खिलाया जाए। २. मल्ल के द्वारा ३२ घूंसे लगवाये जाएँ। ३. सर्वस्व हरण करके देश निकाला दे दिया जाय। निर्धारित दण्ड व्यवस्था के अनुसार श्रीभूति ने गोमय खाना स्वीकार किया किन्तु एक ग्रास भी नहीं खा पाया। तब उसने मल्ल के घूंसे लगवाये, इसी दौरान उसकी मृत्यु हो गई, आर्त ध्यान पूर्वक मरकर वह उसी राजा के खजाने में विकराल सर्प हुआ।

इस घटना से समुद्रदत्त विरक्त होकर साधु हो गया और अंत में मृत्यु को प्राप्त कर इन्हीं सिंहसेन राजा के यहाँ सिंहचन्द्र नामक पुत्र हुआ। एक दिन राजा खजाना देखने के लिये गये। वहाँ उपस्थित सर्प ने महाराज को काट लिया और महाराज मरकर सल्लकी नामक वन में हाथी हुए। राजा की सर्प द्वारा मृत्यु देखकर सुघोष मंत्री अत्यंत क्रोधित हुआ, उसने बहुत सारे सर्पों को बुलाकर कहा कि यदि तुम निर्दोष हो तो अग्निकुण्ड में प्रवेश कर अपने-अपने स्थान पर चले जाओ। बाहर के सारे सर्प चले गये किन्तु श्रीभूति का जीव नहीं गया। उससे कहा गया कि तू विष खींचकर महाराज को छोड़ दे या फिर अग्निकुण्ड में प्रवेश कर, वह महाक्रोधी था, उसने अग्निकुण्ड में प्रवेश करना उचित समझा और देखते ही देखते जलकर खाक हो गया। जिस सल्लकी वन में महाराज का जीव हाथी हुआ था, वह सर्प भी मरकर उसी वन में मुर्गा हुआ।

सिंहसेन की रानी पति वियोग से बहुत दु:खी हुई, उसने संसार के मायाजाल को क्षणभंगुर जानकर आर्यिका के पास साध्वी बन गई। सिंहसेन का पुत्र सिंहचन्द्र भी अपने छोटे भाई पूर्णचन्द्र को राज्य सौंपकर सुव्रत मुनिराज के पास जाकर दीक्षित हो गया। उसने घोर तपश्चरण कर मन:पर्यय ज्ञान प्राप्त कर लिया। इन्हें मन:पर्यय ज्ञान से युक्त देखकर इनकी माता जो इनके पहले आर्यिका हुई थीं, उन्होंने नमस्कार कर पूछा - साधुराज! मेरी कुक्षि धन्य है, जिसने आप जैसे पुरुषोत्तम को धारण किया। अब यह बताइये कि आपके छोटे भाई पूर्णचन्द्र आत्मकल्याण के मार्ग में कब उद्यत होंगे ?

उत्तर में सिंहचन्द्र मुनि बोले - मैं तुम्हें संसार की विचित्रता सुनाता हूँ। तुम जानती हो कि पिताजी को सर्प ने काटा था। वे मरकर सल्लकी वन में हाथी हुए, एक दिन वे मुझे मारने के लिये झपटे, मैंने उन्हें स्मरण दिलाया कि तुम पूर्व जन्म में राजा सिंहसेन थे और मैं तुम्हारा सिंहचन्द्र नाम का पुत्र था, यह सुनकर गजेन्द्र को जाति स्मरण हो आया, वह रोने लगा। मैंने उसे अणुव्रतों का संकल्प कराया और वह दृढ़ता से पालन करने लगा। एक दिन वह जल पीने के लिये नदी गया, जल के भीतर कीचड़ में फंस गया और निकल नहीं सका। उसने वहीं समाधिमरण की प्रतिज्ञा ले ली। उसी समय श्रीभूति का जीव जो मुर्गा हुआ था, हाथी के सिर पर बैठकर उसका मांस खाने लगा। हाथी ने उपसर्ग की परवाह न कर शुभ भाव से देह त्याग किया और सहस्रार स्वर्ग में देव हुआ।

वह मुर्गा भी बहुत कष्ट सहकर मृत्यु को प्राप्त हुआ और चौथे नरक में गया। सिंहसेन का जीव जो हाथी हुआ था, उसके दांत और कपोलों में से निकले हुए मोती एक भील के हाथ लगे, भील ने धनमित्र नामक

साहूकार को बेचे, धनमित्र ने कीमती समझकर राजा पूर्णचन्द्र को भेंट कर दिये। राजा ने दांतों के तो अपने पलंग के पाये बनवाये और मोतियों का रानी के लिये हार बनवा दिया। यह संसार की विचित्रता है। माता! पूर्णचन्द्र के कल्याण का एक ही मार्ग है यदि तुम जाकर उसे उपदेश दो और यह घटना उसे सुनाओ तो अवश्य ही वह अपने कल्याण की ओर दृष्टि देगा। माँ पूर्णचन्द्र के महल पहुँचीं, पूर्णचन्द्र ने विनय पूर्वक उनका सत्कार किया, आने का कारण पूछा। आर्यिका श्री ने सम्पूर्ण घटनाक्रम सुना दिया। उपरोक्त घटनाक्रम सुनकर पूर्णचन्द्र रो पड़े, पितृप्रेम वश पलंग के पायों को छाती से लगाया, पश्चात् उन्हें विधि विधान पूर्वक जला दिया। पूर्णचन्द्र श्रावक धर्म का पालन करने लगे और अंत में महाशुक्र नामक स्वर्ग में देव हुए। उनकी माता भी उसी स्वर्ग में देव हुई। मन:पर्यय ज्ञान के धारी सिंहचन्द्र मुनि भी निर्मल चारित्र के प्रभाव से ग्रैवेयक में देव हुए।

भारतवर्ष में सूर्याभपुर नाम का एक शहर था, वहाँ सुरावर्त राजा और उसकी रानी यशोधरा दयादान आदि से निरंतर सबकी सेवा किया करते थे। सिंहसेन राजा का जीव, जो हाथी की पर्याय से मरकर स्वर्ग गया था, वह यशोधरा रानी का पुत्र हुआ, रश्मिवेग उसका नाम था। कुछ दिनों के पश्चात् रश्मिवेग को राज्य सौंपकर महाराज सुरावर्त साधु हो गये। एक दिन हरिश्चन्द्र मुनिराज के उपदेश से रश्मिवेग को वैराग्य हो गया और उसने भी मुनिदीक्षा धारण कर ली।

एक दिन रश्मिवेग महामुनि एक पर्वत की गुफा में कायोत्सर्ग धारण किये हुए थे कि एक भयानक अजगर ने, जो कि श्रीभूति का जीव मुर्गा पर्याय से मरकर चौथे नरक गया था, वहाँ से आकर अजगर हुआ उसने उन्हें काट लिया, मुनिराज समाधिमरण पूर्वक देह का त्याग कर कापिष्ठ स्वर्ग में आदित्यप्रभ नामक महर्द्धिक देव हुए। वह अजगर मरकर फिर चौथे नरक चला गया।

चक्रपुर नाम का एक सुन्दर शहर था, उसके राजा थे चक्रायुध और महारानी का चित्रादेवी नाम था। सिंहसेन राजा का जीव स्वर्ग से आकर इनका पुत्र हुआ, उसका नाम था वज्रायुध। चक्रायुध ने अपने पुत्र को राज्य सौंप जिनदीक्षा धारण कर ली। वज्रायुध राज्य करते हुए, एक दिन विरक्त होकर अपने पिता के पास दीक्षा लेकर साधु हो गये। वज्रायुध मुनि एक दिन प्रियंगु पर्वत पर कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यान कर रहे थे कि इतने में एक दुष्ट भील ने, जो अजगर का जीव चौथे नरक गया था, वह वहाँ से आकर भील हुआ, उसने उन्हें बाण से मार दिया। मुनिराज तो समभावों से देह का त्याग कर सर्वार्थसिद्धि गये और वह भील रौद्र भाव से मरकर सातवें नरक गया।

सर्वार्थसिद्धि से आकर वज्रायुध का जीव संजयंत हुआ और पूर्णचन्द्र का जीव उनका छोटा भाई जयंत हुआ। वे दोनों भाई छोटी ही अवस्था में संसार से विरक्त होकर पिता के साथ मुनि हो गये और वह भील का जीव सातवें नरक से निकलकर अनेक कुगतियों में भटका। उनमें उसने बहुत कष्ट सहा। अंत में वह मरकर ऐरावत क्षेत्र के अंतर्गत भूतरमण नामक वन में बहने वाली वेगवती नाम की नदी के किनारे गोश्रृंग तापस की शंखिनी नाम की स्त्री के हरिणश्रृंग नामक पुत्र हुआ, वही पंचाग्नि तप-तपकर विद्युद्दंष्ट्र नामक विद्याधर हुआ है, जिसने की संजयंत मुनि पर पूर्व जन्म के बैर से घोर उपसर्ग किया और उनके छोटे भाई जयंतमुनि निदान करके जो धरणेन्द्र हुए, वे तुम हो।

संजयंत मुनि पर पापी विद्युद्दंष्ट ने घोर उपसर्ग किया किन्तु उन्होंने मेरू के समान निश्चल रहकर, ध्यान में लीन होकर मोक्ष को प्राप्त किया।

दिवाकर देव ने कहा – नागेन्द्रराज! यह संसार की स्थिति है। यह समझकर इस बेचारे पर तुम्हें क्रोध करना उचित नहीं है। इसे दया करके छोड़ दीजिये। यह सुनकर धरणेन्द्र बोला – मैं आपके कहने से इसे छोड़ देता हूँ कि ''मनुष्य पर्याय में इसे कभी विद्या की सिद्धि न हो।'' यह कहकर धरणेन्द्र मन में भक्ति भाव रखकर अपने स्थान पर चला गया।

इस प्रकार उत्कृष्ट तपश्चर्या करके श्री संजयंत मुनि ने अविनाशी मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त किया।

शिक्षा –

१. निदान बंध दुर्गति तथा भव भ्रमण का कारण है, सम्यक् तप का फल केवलज्ञान एवं निर्वाण है।
२. पंचाग्नि आदि कुतप का फल मिथ्यात्व सहित देवगति प्राप्त करना है। आर्तध्यान पूर्वक मरण कुगतियों और कुयोनियों का कारण है।
३. बैर बांधकर जीव भव-भव में बैर का बदला लेते-लेते संसार में भटकता है और सातवें नरक तक के दु:ख उठाता है, इसलिये किसी से बैर नहीं बांधना चाहिये।
४. अमानत में खयानत करना अर्थात् दूसरों का धन हड़पना कुगति का मूल है।
५. संसार की विचित्रता एवं नश्वरता से वैराग्य जाग्रत कर आत्मकल्याण के पुरुषार्थ में लगना चाहिये।

....

(३)

सम्यग्दर्शन : निशंकित अंग और अंजन चोर

भारतवर्ष में मगधदेश के अंतर्गत राजगृह नामक शहर में जिनदत्त सेठ रहता था। वह धर्मात्मा, दयालु, श्रावक के व्रतों का पालन करने वाला, विषय भोगों से विरक्त धर्मी श्रावक था। एक बार जिनदत्त चतुर्दशी के दिन अर्द्धरात्रि के समय में श्मशान में कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यान कर रहा था। उसी समय वहाँ दो देव आये, उनके नाम अमितप्रभ और विद्युत्प्रभ थे। अमितप्रभ जैन धर्म का विश्वासी था और विद्युत्प्रभ अन्य धर्म का विश्वासी था। वे अपने-अपने स्थान से परस्पर के धर्म की परीक्षा करने को निकले थे। पहले उन्होंने एक पंचाग्नि तप करने वाले तापस की परीक्षा की। वह अपने ध्यान से विचलित हो गया। कुछ समय पश्चात् ही उन्होंने जिनदत्त को श्मशान में ध्यान करते हुए देखा। अमितप्रभ ने विद्युत्प्रभ से कहा – ''प्रिय! वीतरागी साधुओं की परीक्षा की बात तो दूर है, यह जो गृहस्थ कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ा है, यदि तुम इसे विचलित कर दो तो हम तुम्हारा कहना सत्य मान लेंगे।''

अमितप्रभ से उत्तेजना पाकर विद्युत्प्रभ ने जिनदत्त पर भयानक उपद्रव किया, किन्तु वह विचलित न हुआ। प्रात: दोनों देवों ने असली रूप प्रकट कर सेठ का सत्कार किया और जिनदत्त को एक आकाशगामिनी विद्या दी। साथ ही यह कहा कि तुम्हें यह विद्या आज से सिद्ध हुई, नमस्कार मंत्र के साधन विधि के साथ तुम इसे दूसरों को प्रदान करोगे तो उन्हें भी सिद्ध होगी। इतना कहकर दोनों देव अपने स्थान पर चले गये।

जिनदत्त सेठ विद्या की प्राप्ति कर अत्यंत प्रसन्न हुआ। वह विद्या के बल से तीर्थक्षेत्रों के दर्शन के लिये जाने लगा। यह उसका प्रतिदिन का कार्य हो गया। एक दिन वह जाने के लिये तैयार था कि उससे एक सोमदत्त नाम के माली ने पूछा कि आप प्रतिदिन प्रात: कहाँ जाया करते हैं ? सेठ ने सोमदत्त को आकाशगामिनी विद्या एवं दर्शन के बारे में बताया। सोमदत्त ने कहा कि कृपा करके वह विद्या मुझको भी प्रदान कीजिये। सोमदत्त की भक्ति और पवित्रता को देखकर जिनदत्त ने उसे विद्या साधन करने की विधि बतला दी। सोमदत्त विधि को ठीक-ठीक समझकर विद्या साधने के लिये कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की अंधेरी रात्रि में श्मशान में गया। वहाँ उसने एक बड़ की डाली में एक सौ आठ लड़ी का एक दूबा का सींका बांधा और उसके नीचे अनेक भयंकर तीखे-तीखे शस्त्र सीधे मुँह गाड़कर मंत्र सिद्धि का संकल्प किया और सींके पर बैठकर पंच नमस्कार मंत्र जपने लगा। मंत्र पूरा होने पर जब सींके की लड़ों को काटने का समय आया, उसकी दृष्टि चमचमाते हुए शस्त्रों पर पड़ी उन्हें देखते ही वह काँप उठा। मन में विचार किया कि यदि जिनदत्त ने मुझसे झूठ बोल दिया हो तो मेरे प्राण ही चले जायेंगे। यह सोचकर वह नीचे उतर आया किन्तु पुन: उसने मन में विचार किया कि जिनदत्त धर्म श्रद्धालु, दयालु श्रावक है, वह झूठ क्यों बोलेगा। ऐसा सोचकर वह फिर सींके पर चढ़ा किन्तु शस्त्रों के भय के कारण फिर नीचे उतर आया। इस प्रकार उसका सींके पर चढ़ने और उतरने का क्रम चलता रहा।

दूसरी ओर उसी रात इसी समय में मणिकांजन नामक वेश्या ने अपने पर प्रेम करने वाले एक अंजन चोर से कहा – प्राणवल्लभ ! आज मैंने प्रजापाल महाराज की कनकवती पटरानी के गले में रत्नों का हार देखा है, वह अद्वितीय है, आप उसे लाकर मुझे दीजिये तब ही आप मेरे स्वामी हो सकेंगे अन्यथा नहीं।

मणिकांजन सुन्दरी की प्रतिज्ञा कठिन थी किन्तु अंजन चोर अपने जीवन की कुछ भी परवाह न करके हार चुराने के लिये राजमहल में घुस गया और कुशलतापूर्वक हार चुराकर भाग निकला। अंजन सिद्धि के कारण वह किसी को दिखाई नहीं देता था किन्तु प्रकाशित हार ने उसे सफल नहीं होने दिया। पहरेदार सिपाही हार ले जाते हुए देखकर उसे पकड़ने के लिये दौड़े, अंजन चोर खूब भागा किन्तु अपने आपको सफल न होते हुए देखकर वह हार को पीछे की ओर जोर से फेंककर भाग निकला। सिपाही लोग हार उठाने में लग गये तब तक अंजन चोर बहुत दूर निकल गया, फिर भी सिपाहियों ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। अंजन चोर भागता-भागता श्मशान की ओर जा निकला, जहाँ सोमदत्त विद्या सिद्ध करने के लिये व्यग्र हो रहा था। उसका यह भयंकर उपक्रम देखकर अंजन चोर ने उससे पूछा कि तुम यह क्या कर रहे हो ? सेठ जिनदत्त के बतलाये अनुसार सोमदत्त ने विद्या सिद्धि के बारे में उसे सब बात बतला दी। अंजन चोर ने सोचा सिपाही मुझे मारने के लिये आ ही रहे हैं, मरना ही है तो धर्म के आश्रित होकर मरना अच्छा है। उसने सोमदत्त से कहा कि मुझे तलवार दो मैं भी जरा आजमा लूं। सोमदत्त से तलवार लेकर वह वृक्ष पर चढ़कर सींके पर जा बैठा। अंजन चोर सींके को काटने के लिये तैयार हुआ कि सोमदत्त के बताये हुए मंत्र को भूल गया, फिर भी उसने सेठ की बात पर विश्वास करके कहा – ''जैसा सेठ ने कहा, उसका कहना मुझे प्रमाण है'' और निशंक होकर एक ही झटके में सींके की सारी लड़ों को काट दिया। काटने के साथ ही उसे शस्त्रों पर गिरने के पहले आकाशगामिनी विद्या ने उठा लिया, और पूछा मुझे क्या आज्ञा है ? अंजनचोर विद्यासिद्ध होने से अत्यंत प्रसन्न

हुआ और विद्या से कहा कि मेरु पर्वत पर जिनदत्त सेठ भगवान की भक्ति आराधना में लीन है, मुझे वहीं पहुँचा दो। तदनन्तर अल्प समय में ही विद्या ने उसे जिनदत्त सेठ के पास पहुँचा दिया।

अंजनचोर ने भक्तिपूर्वक सेठ को प्रणाम किया और कहा कि आपकी कृपा से मुझे आकाशगामिनी विद्या प्राप्त हुई है। अब आप मुझे ऐसा मंत्र बतलाइये जिससे मैं संसार समुद्र से पार होकर मुक्ति को प्राप्त कर लूं। अंजन की वैराग्य भावना को देखकर जिनदत्त सेठ उसे चारणऋद्धि धारी मुनिराज के पास ले गया और उसे जिन दीक्षा दिलवा दी। अंजन चोर साधु बनकर विहार करते हुए कैलाश पर्वत पर जा पहुँचे। वहाँ उसने घोर तपश्चरण कर ध्यान के प्रभाव से घातिया कर्मों का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया और अंत में अघातिया कर्मों को भी क्षय कर अंजन मुनिराज ने निरंजन अविनाशी मोक्ष पद को प्राप्त कर लिया।

शिक्षा -

१. सम्यग्दर्शन के निःशंकित अंग का पालन कर अंजन भी निरंजन हो गया, कर्मों के नाश करने में समर्थ हुआ।
२. शंका से भय होता है, भय ही दुःख है। भय रहित होने पर भव्यता प्रकट होती है।
३. शंकित जीव इहलोक भय, परलोक भय आदि सात भयों से युक्त रहता है अतः आत्म कल्याण का मार्ग प्रशस्त नहीं कर पाता।
४. निःशंकित अंग होने पर सम्यग्दर्शन के सभी अंग प्रकट हो जाते हैं।
५. भव्य पुरुषों को जिनेन्द्र भगवान के वचनों में किसी प्रकार की शंका न करते हुए दृढ़ श्रद्धान करना चाहिये।

....

(४)

सम्यग्दर्शन : निःकांक्षित अंग और अनंतमती

प्रसिद्ध अंग देश की राजधनी चम्पापुरी के राजा वसुवर्धन थे, उनकी रानी का नाम लक्ष्मीमती था। उनका पुत्र प्रियदत्त जिनधर्म श्रद्धानी था, उसकी गृहणी का नाम अंगवती था, अंगवती की पुत्री अनंतमती सुन्दर और गुणवान थी। एक बार अष्टान्हिका पर्व के अवसर पर प्रियदत्त ने धर्मकीर्ति मुनिराज से आठ दिन के लिये ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया। साथ ही उसने अपनी प्रिय पुत्री को भी विनोदवश आठ दिन के लिये ब्रह्मचर्य व्रत दिलवा दिया। इस व्रत का अनंतमती के चित्त पर बहुत प्रभाव पड़ा। कुछ वर्ष पश्चात् अनंतमती के विवाह की तैयारियाँ हुईं, तब अनंतमती ने पिता जी को स्मरण दिलाया कि आपने मुझे ब्रह्मचर्य व्रत दिलवाया था, फिर आप विवाह का आयोजन किसलिये करते हो ?

प्रियदत्त ने कहा कि वह व्रत मात्र आठ दिन के लिये था। अनंतमती ने कहा कि आपका कहना ठीक है किन्तु यह व्रत आठ दिन के लिये है ऐसा उस समय न तो आपने ही कहा था और न मुनिराज ने ही, अतः मैं यह व्रत जीवनपर्यंत के लिये पालूंगी, मैं अब विवाह नहीं करूंगी। अनंतमती की बातों से पिता को निराशा हुई, उन्हें अपना आयोजन समेट लेना पड़ा। अनंतमती धार्मिक जीवन बनाने के लिये पठन-पाठन, स्वाध्याय आदि में संलग्न हो गई।

अनंतमती पूर्ण युवती थी, उसकी सुन्दरता ने अप्सराओं के समान सौन्दर्य धारण कर रखा था। चन्द्रमा भी उसके अप्रतिम मुख की शोभा को देखकर फीका पड़ रहा था। उसकी प्रफुल्लित आंखों को देखकर कमल भी मुख ऊँचा नहीं कर पा रहे थे।

एक बार चैत्र माह में अनंतमती बगीचे में अकेली झूले पर झूल रही थी, उसी समय विद्याधरों की दक्षिण श्रेणी के किन्नरपुर का स्वामी कुण्डलमण्डित विद्याधरों का राजा अपनी प्रिया के साथ इधर से होकर ही वायुयान में बैठा हुआ जा रहा था। अचानक उसकी दृष्टि झूलती हुई अनंतमती पर पड़ी, उसकी सुन्दरता को देखकर कुण्डलमण्डित काम बाणों से बुरी तरह विंध गया। प्रिया के साथ में होने से वह अनंतमती को उठा नहीं सका, इसलिये विमान को शीघ्रता से घर लौटा ले गया और अपनी प्रिया को छोड़कर उसी समय अनंतमती के बगीचे में पहुँच गया तथा शीघ्रता से उस भोली बालिका को उठा लिया। उसकी प्रिया को भी इसके कर्म का कुछ-कुछ बोध हो गया था, इसलिये वह कुण्डलमण्डित के पीछे-पीछे आ गई थी। जिस समय कुण्डलमण्डित अनंतमती को लेकर आकाश की ओर जा रहा था कि अचानक उसकी दृष्टि अपनी प्रिया पर पड़ी, उसे क्रोध के मारे लाल हुए मुख को देखकर कुण्डलमण्डित घबरा गया। उसने भयभीत होकर अनंतमती को एक पर्णलघ्वी नाम की विद्या के आधीन कर भयंकर वन में छोड़ देने की आज्ञा दे दी और आप पत्नी के साथ घर लौट गया।

भयंकर वन में अनंतमती जोर-जोर से रोने लगी पर वहाँ उसके रोने को सुनता कौन ? कुछ क्षणों बाद एक भीलों का राजा शिकार खेलता हुआ उधर आ निकला। वह अनंतमती को देखते ही उस पर मोहित हो गया और उसी समय उसे उठाकर अपने गाँव ले गया। अनंतमती ने विचार किया कि अब मैं सुरक्षित हूँ और अपने घर पहुँचा दी जाऊंगी किन्तु वह छुटकारे के बजाय एक और नई विपत्ति में फंस गई थी।

राजा उसे अपने महल में ले गया और उसे पटरानी बनाने का प्रस्ताव उसके समक्ष रखा और अपनी इच्छाएँ पूर्ण करने के लिए कहा। अनंतमती फूट-फूटकर रोने लगी। भील राजा के मन में कोई भी दया भाव नहीं था, उसने अनंतमती से अपनी कामपूर्ण भावनाओं को पूरा करने के लिये बार-बार विनय की, किन्तु अनंतमती ने कोई ध्यान नहीं दिया बल्कि उसको फटकारना शुरू किया, उसकी आंखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं, चेहरा लाल सुर्ख पड़ गया फिर भी भील राक्षस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसने बलपूर्वक अनंतमती का शील भंग करना चाहा, अनंतमति के अखंड शील के प्रभाव से वनदेवी ने आकर उसकी रक्षा की और भीलराज को पापों का फल दिया तथा अनंतमती को किसी भी प्रकार से प्रताड़ित नहीं करने की चेतावनी देकर वनदेवी चली गई।

देवी के भय से दिन निकलते ही भीलराज ने अनंतमती को एक पुष्पक सेठ नामक साहूकार के हाथ सौंपकर उससे कह दिया कि इसे इसके घर पहुँचा दीजिए। सेठ के मन में भी पापपूर्ण प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो गईं। सेठ ने भी विकारपूर्ण भावनाओं की पूर्ति के लिये अनंतमती से निवेदन किया। अनंतमती ने पुष्पक सेठ से विनम्रतापूर्वक कहा कि आपको देखकर मुझे विश्वास हुआ था कि अब डर की बात नहीं है, मैं निर्विघ्न अपने घर पहुँच जाऊँगी किन्तु जिसे मैंने रस्सी समझकर हाथ में लिया था, मैं नहीं समझती थी कि वह इतना भयंकर सर्प होगा। बाहरी चमक-दमक और मायाचार पूर्ण सीधापन केवल दाम्भिकपना है। मैं तुम्हारे ठगी वेश को,

कुल को, धन-वैभव और जीवन को धिक्कार देती हूँ। अनंतमती कुछ और भी कहती परन्तु कुलकलंक नीचों के मुँह लगना उचित नहीं ऐसा समझकर चुप हो गई।

अनंतमती की जली-भुनी बातें सुनकर पुष्पक सेठ की अक्ल ठिकाने आ गई। वह क्रोध से भर उठा किन्तु अनंतमती के तेज के सामने कुछ नहीं कर सका। उसने क्रोध का बदला इस रूप में लिया कि अनंतमती को शहर ले जाकर एक कामसेना नाम की कुट्टिनी के हाथों सौंप दिया। कर्मों की बड़ी विचित्र स्थिति है, **जो जीव जैसा करता है उसका फल उसे वैसा भोगना ही पड़ता है।**

कामसेना ने भी अनंतमती को कष्ट देने में कोई कसर नहीं छोड़ी। उसने अनंतमती को भय से, लोभ से सतीत्व धर्म से विचलित करना चाहा किन्तु अनंतमती सुमेरू के समान निश्चल बनी रही। कामसेना ने उस पर अपना चक्र न चलता हुआ देखकर उसे सिंहराज नामक राजा को सौंप दिया। अनंतमती जहाँ भी पहुँचती वहीं आपत्ति उसके सिर पर सवार रहती। सिंहराज भी अनंतमती के देवांगना दुर्लभ रूप को देखकर उस पर मोहित हो गया। उसने भी अनंतमती को येन-केन-प्रकारेण लुभाने का प्रयत्न किया। अनंतमती ने उसको भी फटकार लगाई। सिंहराज ने अनंतमती का अभिमान नष्ट करने को उससे बलपूर्वक ज्यादती करनी चाही, उस तेजोमय मूर्ति की ओर जैसे ही कदम बढ़ाये वैसे ही वनदेवी, जिसने एक बार पहले भी अनंतमती की रक्षा की थी, यहाँ भी उपस्थित होकर कहा कि खबरदार! इस सती देवी का भूलकर भी स्पर्श मत करना, अन्यथा अनर्थ हो जावेगा। देवी को देखते ही सिंहराज का कलेजा काँप उठा। देवी के चले जाने पर बहुत देर बाद उसे होश हुआ। उसने उसी समय नौकर को बुलवाकर अनंतमती को जंगल में छोड़ आने की आज्ञा दी। राजाज्ञानुसार अनंतमती को एक भयंकर जंगल में छोड़ दिया गया।

अनंतमती कहाँ जायेगी ? किस दिशा में उसका शहर है, कितनी दूर उसका घर है, उसे कुछ भी पता नहीं था। पंच परमेष्ठी का स्मरण करते हुए, फल फूल आदि से अपना निर्वाह करती हुई वन, जंगल, पर्वतों को लांघती हुई अयोध्या पहुँच गई। वहाँ उसे पद्मश्री नाम की आर्यिका के दर्शन हुए। आर्यिका ने अनंतमती से उसका परिचय पूछा। अनंतमती ने अपना परिचय देकर अपने ऊपर जो-जो विपत्तियाँ आईं थीं और उनसे जिस-जिस प्रकार रक्षा हुई थी, उसका सब हाल आर्यिका को सुना दिया। आर्यिका उसकी सब बात सुनकर बहुत दु:खी हुई। आर्यिका ने उसे सती शिरोमणी समझकर अपने पास रख लिया।

दूसरी ओर, प्रियदत्त को जब अनंतमती के हरण हो जाने का समाचार मालूम हुआ, वह अत्यंत दुखित और अस्थिर हो उठा। पुत्री के विरह से दु:खी होकर उसे खोजने के बहाने तीर्थ यात्रा के लिये घर से निकल पड़ा। कुछ कुटुम्बी भी उसके साथ हो लिये। बहुत से सिद्धक्षेत्र और अतिशय क्षेत्रों की यात्रा करते हुए, अयोध्या आये। यहाँ प्रियदत्त अपने साले जिनदत्त के घर पर ठहरे। कुशलक्षेम के पश्चात् अपनी भांजी अनंतमती के समाचार सुनकर जिनदत्त को बहुत दु:ख हुआ। कर्मों के उदय की विचित्रता की सभी चर्चा करते रहे। दूसरे दिन जिनदत्त और प्रियदत्त मंदिर चले गये। जिनदत्त की स्त्री भोजन तैयार करके पद्मश्री आर्यिका के पास जो बालिका थी, उसे भोजन करने को और आंगन में चौक पूरने को बुला लाई। बालिका ने चौक पूरा और भोजन करके अपने स्थान पर लौट गई।

जिनदत्त और प्रियदत्त मंदिर से घर आये, प्रियदत्त की दृष्टि चौक पर पड़ी, वह अनंतमती की याद कर

रो उठा, हृदय व्याकुल हो गया। उसने कहा जिसने चौक पूरा है क्या मुझ अभागे को उसके दर्शन होंगे ? जिनदत्त ने अपनी स्त्री से उस बालिका का पता पूछा और उसे अपने घर लिवा लाया। अब क्या था, बालिका को देखते ही प्रियदत्त के नेत्रों से आंसू बह निकले गला भर आया। वर्षों बाद पुत्री से मिलन हुआ। अनंतमती की सारी बातें सुनकर प्रियदत्त बहुत दु:खी हुआ। पुत्री के मिलन होने की खुशी में उसने दान दिया और धर्म प्रभावना की।

प्रियदत्त अपने घर जाने को तैयार हुआ। उसने अनंतमती से भी घर चलने को कहा। वह बोली – पिताजी! **मैंने संसार के स्वरूप को देख लिया है, अब आप दया करके मुझे दीक्षा दिलवा दीजिये।** प्रियदत्त ने अनंतमती को समझाने का बहुत प्रयत्न किया किन्तु जिसके रोम–रोम में वैराग्य प्रवेश कर गया हो, ऐसी अनंतमती कैसे रुक सकती थी। उसने मोह जाल तोड़कर उसी समय पद्मश्री आर्यिका के पास जिन दीक्षा ग्रहण कर ली। उसकी उम्र और तपश्चर्या देखकर लोग आश्चर्य करते थे। अनंतमती ने अपने व्रतों का दृढ़ता पूर्वक पालन किया। अंत में उसने सन्यासमरण कर सहस्रार स्वर्ग में देव पद प्राप्त किया।

शिक्षा –

१. संसार के सुखों के लालच में आकर धर्म से विचलित नहीं होना चाहिये।
२. जिसे सांसारिक सुखों की चाह होती है, वह धर्म में दृढ़ नहीं रह पाता।
३. विषम से विषम कर्म के उदय आने पर भी अपना धैर्य नहीं खोना चाहिये।
४. इच्छाएँ तो अनंत हैं, हर एक में दु:ख है। तुम अपना भला चाहो तो संतोष में सुख है।
५. चाह की खाई इतनी गहरी है कि तीन लोक भी उसमें तिनके की भाँति प्रतीत होता है।

....

(५)

सम्यग्दर्शन : निर्विचिकित्सा अंग और उद्दायन राजा

कच्छ देश में रौरवक नामक शहर में उद्दायन राजा राज्य करते थे, उनकी रानी का नाम प्रभावती था। उद्दायन सम्यग्दृष्टि थे, दानी, विचारवान और प्रजा हितैषी थे। प्रजा का भी उन पर बहुत प्रेम था।

एक दिन सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र अपनी सभा में धर्मोपदेश कर रहा था – ''**संसार में सच्चे देव अरिहंत भगवान हैं। वे भूख, प्यास, रोग, शोक, भय, जन्म, जरा, मरण आदि दोषों से रहित हैं। सच्चे गुरु निर्ग्रन्थ वीतरागी साधु हैं। सच्चा धर्म अहिंसा दयामयी है। ऐसे सच्चे देव, गुरु, धर्म पर श्रद्धान करने से आत्महित का मार्ग बनता है। जीवादिक पदार्थों में रुचि सम्यक्त्व की प्राप्ति का कारण है। आप लोग ध्यान रखिये कि सम्यग्दर्शन के समान संसार में दूसरा कोई मित्र नहीं है। सम्यग्दर्शन सर्वश्रेष्ठ रत्न है। यह दुर्गतियों का नाश करके मोक्ष को देने वाला है, इसे तुम धारण करो।**''

इस प्रकार सम्यग्दर्शन का और उसके आठ अंगों का वर्णन करते हुए इन्द्र ने निर्विचिकित्सा अंग का पालन करने वाले उद्दायन राजा की बहुत प्रशंसा की। इन्द्र के द्वारा मध्यलोक के एक मनुष्य की प्रशंसा सुनकर बासव नाम का देव स्वर्ग से भारत में आया और उद्दायन राजा की परीक्षा करने के लिये एक कोढ़ी मुनि का वेष

बनाकर भिक्षा के लिये उद्दायन के महल में गया।

उसका शरीर कोढ़ से गल रहा था, वेदना से उसके पैर इधर-उधर पड़ रहे थे, शरीर विकृत हो गया था। जब वह राजद्वार पर पहुँचा, महाराज उद्दायन ने अत्यंत भक्तिपूर्वक उस मुनि का आह्वान किया। नवधा भक्तिपूर्वक प्रासुक आहार कराया। राजा आहार कराकर निवृत्त हुए ही थे कि उस वेशधारी मुनि ने अपनी माया से महादुर्गंधित वमन कर दी। उसकी असह्य दुर्गंध के कारण जितने लोग आसपास खड़े थे, वे सब भाग खड़े हुए। केवल राजा और रानी मुनि की सम्हाल करते रहे। रानी मुनि का शरीर पोंछने को उनके पास गई, मुनि ने उस पर भी दुर्गंधित उछाट (वमन) कर दी। राजा-रानी ने अपने आप पर पश्चात्ताप किया कि हमने मुनि की प्रकृति के विरुद्ध न जाने क्या आहार दे दिया, जिससे मुनिराज को इतना कष्ट हुआ है। इस प्रकार राजा रानी ने अपने प्रमाद पर खेद प्रकट करते हुए मुनि का शरीर जल से धोकर साफ किया। उनकी इस प्रकार अचल भक्ति देखकर देव ने अपनी माया समेटी और प्रसन्नता पूर्वक बोला - राजराजेश्वर, सचमुच ही तुम सम्यग्दृष्टि हो, महादानी हो। निर्विचिकित्सा अंग के पालन करने में इन्द्र ने तुम्हारी जैसी प्रशंसा की थी, वैसा ही मैंने तुम्हें देखा। वास्तव में तुमने जैन शासन का रहस्य समझा है। इस प्रकार उद्दायन राजा की प्रशंसा कर देव अपने स्थान पर लौट गया।

राजा का सुखपूर्वक राज्य करते हुए कुछ समय और बीत गया। एक दिन उन्होंने महल के ऊपर बैठे हुए भारी बादल के टुकड़े को तीव्र वायु के वेग से छिन्न-भिन्न होते देखा। इस घटना से उन्हें वैराग्य हो गया। उन्होंने अपने पुत्र को राज्यभार सौंपकर भगवान वर्द्धमान के समवशरण में जाकर जिनदीक्षा धारण कर ली।

साधु होकर उद्दायन महाराज ने घोर तपश्चरण किया। सर्वश्रेष्ठ रत्नत्रय को प्राप्त कर शुक्ल ध्यान रूपी अग्नि से घातिया कर्मों का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया। अंत में अघातिया कर्मों को भी क्षय कर अविनाशी मोक्ष पद को प्राप्त किया।

दूसरी ओर, उनकी रानी सती प्रभावती भी जिनदीक्षा धारण कर आर्यिका होकर तपश्चर्या करने लगीं और अंत में समाधि पूर्वक देह का त्याग कर ब्रह्म स्वर्ग में देव हुईं।

शिक्षा -

१. शरीर स्वभाव से ही अपवित्र है, इसे स्नान के द्वारा पवित्र मानना मूढ़ता है।
२. वीतरागी मुनिराजों के मलिन शरीर को देखकर घृणा करना मिथ्यात्व की उपस्थिति का सूचक है। विचिकित्सा दोष सम्यक्त्व का विराधक है।
३. संसार में कोई भी वस्तु अच्छी-बुरी नहीं होती। किसी भी वस्तु को इष्ट-अनिष्ट मानना, मन की कल्पना मात्र है।
४. पर्याय दृष्टि से देखने पर राग-द्वेष होता है। स्वभाव दृष्टि से देखने पर राग-द्वेष का अभाव होता है।
५. स्वभाव से अपवित्र शरीर भी मुनिराजों के रत्नत्रय के प्रभाव से पवित्र हो जाता है।

....

(६)
सम्यग्दर्शन : अमूढ़दृष्टि अंग और रेवती रानी

विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में मेघकूट नामक शहर में चन्द्रप्रभ राजा राज्य करते थे। एक दिन उन्हें तीर्थयात्रा करने की इच्छा हुई, उन्होंने अपने पुत्र चन्द्रशेखर को राज्य सौंप दिया और तीर्थयात्रा के लिये चल दिये। यात्रा करते हुए वे दक्षिण मथुरा आये। उन्हें वहाँ गुप्ताचार्य के दर्शन हुए। आचार्य से चन्द्रप्रभ ने धर्मोपदेश सुना और उनका वैराग्य प्रबल हो गया। वे आचार्य के द्वारा – **'प्रोक्तः परोपकारोऽत्र महापुण्याय भूतले'** अर्थात् परोपकार करना महान पुण्य का कारण है, यह जानकर और तीर्थयात्रा करने के लिये एक विद्या को अपने अधिकार में रखकर क्षुल्लक बन गये।

एक दिन उनकी इच्छा उत्तर मथुरा की यात्रा करने की हुई। जब वे जाने लगे तब उन्होंने अपने गुरु महाराज से पूछा – हे गुरुदेव! मैं यात्रा के लिये जा रहा हूँ। क्या किसी के लिये आपको कुछ समाचार कहना है ? गुप्ताचार्य बोले – मथुरा में एक सूरत नाम के ज्ञानी और गुणी मुनिराज हैं, उन्हें मेरा नमस्कार कहना और सम्यक्त्व से संयुक्त धर्मात्मा रेवती के लिये मेरी धर्मवृद्धि कहना। क्षुल्लक ने पूछा कि इसके अतिरिक्त और भी आपको कुछ कहना है क्या ? आचार्य ने कहा – नहीं। तब क्षुल्लक ने विचार किया कि क्या कारण है कि आचार्य ने ग्यारह अंग के ज्ञाता श्री भव्यसेन मुनि तथा अन्य मुनियों को कुछ नहीं कहा। मात्र सूरत मुनि के लिये नमस्कार और रेवती के लिये धर्मवृद्धि कही। इसका कोई कारण अवश्य होना चाहिये।

मथुरा पहुँचने के पश्चात् क्षुल्लक चन्द्रप्रभ एकादशाङ्ग के ज्ञाता भव्यसेन मुनि के पास गये, उन्होंने भव्यसेन को नमस्कार किया परन्तु भव्यसेन मुनि ने अहंकारवश धर्मवृद्धि तक न दी। यह सब देखकर क्षुल्लक चन्द्रप्रभ ने उनकी परीक्षा लेने का विचार किया। दूसरे दिन प्रातःकाल जब भव्यसेन कमंडलु लेकर शौच के लिये जा रहे थे, उनके पीछे-पीछे चन्द्रप्रभ क्षुल्लक भी चल दिये। आगे चलकर क्षुल्लक महाशय ने अपने विद्याबल से भव्यसेन के आगे की भूमि को कोमल हरे तृणों से युक्त कर दिया। भव्यसेन ने यह विचार करके कि जैन शास्त्रों में इन्हें एकेन्द्रिय कहा है, इनकी हिंसा का विशेष पाप नहीं होता और उसके ऊपर से निकल गये। जब वे शौच से निवृत्त हुए और कमंडलु की ओर देखा तो उसमें जल नहीं था तथा वह उल्टा पड़ा हुआ था, भव्यसेन चिंतित हो उठे। इतने में अचानक क्षुल्लक महाशय भी उधर आ गये। कमंडलु का जल यद्यपि क्षुल्लक जी ने ही अपने विद्याबल से सुखा दिया था तब भी वे आश्चर्य के साथ भव्यसेन से बोले – मुनिराज, पास ही एक निर्मल जल का सरोवर भरा हुआ है, वहीं जाकर शुद्धि कर लीजिये न ? भव्यसेन ने अपने पद और कर्तव्य पर ध्यान न देकर जैसा क्षुल्लक ने कहा, वैसा ही कर लिया। क्षुल्लक ने भव्यसेन के आचरण से समझ लिया कि ये नाममात्र का भव्यसेन है, जैन धर्म का श्रद्धानी नहीं बल्कि मिथ्यात्वी है। क्षुल्लक चन्द्रप्रभ ने उसका नाम अभव्यसेन रखा।

भव्यसेन की परीक्षा करने के पश्चात् क्षुल्लक ने रेवती रानी की परीक्षा करने का विचार किया। दूसरे दिन उसने अपने विद्याबल से कमल पर बैठे हुए, वेदों का उपदेश करते हुए चतुर्मुख ब्रह्मा का वेष बनाया और शहर से पूर्व दिशा की ओर कुछ दूरी पर जंगल में ठहर गया। ब्रह्मा से सम्बंधित समाचार सुनकर राजा और उसकी प्रजा तथा भव्यसेन आदि सभी वहाँ गये और नमस्कार किया। राजा ने रेवती रानी से भी चलने के लिये

कहा था किन्तु रेवती वास्तविकता को समझ रही थी, इसलिये वह नहीं गई।

दूसरे दिन क्षुल्लक ने गरुड़ पर बैठे हुए चतुर्बाहु, शंख, चक्र, गदा आदि से युक्त और दैत्यों को कंपा देने वाले विष्णु भगवान का वेष बनाकर दक्षिण दिशा में अपना डेरा जमाया।

तीसरे दिन उस बुद्धिमान क्षुल्लक ने बैल पर बैठे हुए पार्वती के मुख कमल को देखते हुए, सिर पर जटा रखाये हुए, गणपति युक्त ऐसे शिव का वेष धारण कर पश्चिम दिशा की शोभा बढ़ाई।

चौथे दिन उसने अपनी माया से सुन्दर समवशरण में विराजमान, अष्ट प्रातिहार्यों से विभूषित मिथ्यादृष्टियों के मान को नष्ट करने वाले, मानस्तंभ आदि से युक्त, सौ इन्द्रों से वंदनीय ऐसे श्रेष्ठ तीर्थंकर का वेष बनाकर पूर्व दिशा को अलंकृत किया। दूसरे, तीसरे और चौथे दिन राजा एवं भव्यसेन सहित सम्पूर्ण प्रजा के लोग आश्चर्य मानते हुए दर्शन करने पहुँचे, किन्तु रेवती रानी को किसी भी दिन नहीं जाते हुए देखकर सबको आश्चर्य हुआ। बहुत लोगों ने उनसे चलने के लिये आग्रह भी किया परन्तु वह नहीं गईं। वह सम्यक्त्व रूप रत्न से विभूषित थीं, उन्हें जिनेन्द्र भगवान के वचनों पर पूर्ण विश्वास था कि तीर्थंकर देव चौबीस ही होते हैं, वासुदेव नौ और रुद्र ग्यारह होते हैं। फिर उनकी संख्या को तोड़ने वाले ये दसवें वासुदेव, बारहवें रुद्र और पच्चीसवें तीर्थंकर कहाँ से आ सकते हैं ? वे तो अपने-अपने कर्मों के अनुसार जहाँ उन्हें जाना था वहाँ चले गये। फिर यह नई सृष्टि कैसी ? यह कोई मायावी इन्द्रजाल है, कोई मायावी लोगों को ठगने के लिये आया है। यह विचार कर रेवती रानी कहीं भी नहीं गई।

इसके पश्चात् चन्द्रप्रभ क्षुल्लक, क्षुल्लक वेष में ही अनेक प्रकार की व्याधियों से युक्त अत्यंत मलिन शरीर वाला होकर भिक्षा के लिये रेवती रानी के यहाँ पहुँचे। आंगन में पहुँचते ही मूर्छा खाकर धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़े। उन्हें देखते ही धर्म वत्सला रेवती रानी हाय-हाय कहती हुई उनके पास दौड़ी गई और भक्ति तथा विनय पूर्वक उसने उन्हें उठाकर सचेत किया, महल में ले गई, पवित्र भावों से प्रासुक आहार कराया। सच है, जो दयावान होते हैं उनकी बुद्धि दान देने में सदैव तत्पर रहती है।

क्षुल्लक जी को अब तक भी रेवती की परीक्षा से संतोष नहीं हुआ। इसलिये उन्होंने भोजन करने के साथ ही वमन कर दिया, जिसमें से दुर्गंध आ रही थी। क्षुल्लक की यह हालत देखकर रेवती को बहुत दुःख हुआ। उसने पश्चात्ताप किया कि मेरे द्वारा न जाने कौन सी चीज आहार में दे दी गई जिससे इनकी यह हालत हो गई। मेरी असावधानी को धिक्कार है। इस प्रकार बहुत पश्चात्ताप करके क्षुल्लक का शरीर पोंछा और प्रासुक जल से धोकर साफ किया।

क्षुल्लक रेवती रानी की भक्ति देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए। वे अपनी माया को समेटकर प्रसन्नता पूर्वक बोले - देवी ! संसार श्रेष्ठ मेरे परम गुरु महाराज गुप्ताचार्य जी ने तुम्हें धर्म वृद्धि का आशीर्वाद कहा है। देवी ! तुमने जिस अमूढ़दृष्टि अंग को ग्रहण किया है, उसकी मैंने नाना प्रकार से परीक्षा की परन्तु उसमें तुम्हें अचल पाया। तुम्हारे सम्यक्त्व की प्रशंसा करने में समर्थ कौन है ? कोई नहीं। इस प्रकार गुणवती रेवती रानी की प्रशंसा कर और उसे सब हाल सुनाकर क्षुल्लक जी अपने स्थान को चले गये।

पश्चात् वरुण नृपति और रेवती रानी सुख पूर्वक धर्माराधन करते रहे। एक दिन राजा को किसी कारण से वैराग्य हो गया। उन्होंने शिवकीर्ति नामक पुत्र को राज्य सौंपकर समस्त मायाजाल छोड़कर

जिनदीक्षा धारण कर ली। साधु बनकर उन्होंने अतिशय तप किया जिससे आयु के अंत में समाधिमरण पूर्वक देह का त्याग कर वे माहेन्द्र स्वर्ग में देव हुए।

सम्यक् श्रद्धान की प्रतिमूर्ति महारानी रेवती भी जिनदीक्षा धारण कर आर्यिका के व्रतों का पालन करती हुई शक्ति अनुसार तपश्चरण करके आयु के अंत में ब्रह्मस्वर्ग में महर्द्धिक देव हुई।

शिक्षा -

१. मत रीझो आप भूलकर भी बाहर की सफाई पर, वर्क सोने का लगा है, गोबर की मिठाई पर।

२. असत्य को सत्य मानने वाले व्यक्ति का कभी कल्याण नहीं हो सकता।

३. आत्महितार्थी भव्य जीव को सत्-असत् का निर्णय कर असत् का त्याग करके सत् को ग्रहण करना चाहिये।

४. मनुष्य तो विवेकवान, नहीं तो पशु के समान।

५. सांसारिक सुख सामग्री, धन-वैभव आदि संयोग कुदेव आदि की पूजा मान्यता से प्राप्त नहीं होते बल्कि पुण्य के उदय से प्राप्त होते हैं।

....

(७)

सम्यग्दर्शन : उपगूहन अंग और जिनेन्द्रभक्त सेठ

सौराष्ट्र देश के अंतर्गत पाटलीपुत्र नाम के शहर में यशोध्वज राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम सुसीमा था। उनका सुवीर नामक पुत्र था। भाग्यवश सुवीर महाव्यसनी और चोर हो गया। सच है कि जिन्हें आगे कुयोनियों में दु:ख भोगना होता है, उनका न तो अच्छे कुल में जन्म लेना काम आता है और न ही ऐसे पुत्रों से माता-पिता को कभी सुख मिलता है।

गोडदेश के अंतर्गत ताम्रलिप्ता नाम की नगरी में जिनेन्द्रभक्त सेठ रहते थे। वे सम्यग्दृष्टि, दानी, उदार प्रवृत्ति के धनी धर्मात्मा पुरुष थे। उनका महल सात मंजिला था। अंतिम मंजिल पर सुन्दर चैत्यालय था, उसमें तीन रत्नमयी छत्र थे, उन छत्रों के ऊपर वैडूर्यमणि नाम का अत्यंत कांतिमान बहुमूल्य रत्न लगा हुआ था।

इस रत्न के बारे में सुवीर ने सुना, उसने अपने साथियों से पूछा कि तुम लोगों में से उस रत्न को कौन ला सकता है ? सूर्यक नाम के चोर ने रत्न लाने की जिम्मेदारी ली। इस कार्य के लिये उसने मायावी क्षुल्लक का वेष बनाया और कठिन व्रत उपवास करने लगा, जिससे उसका शरीर कृष हो गया। वह ग्राम और शहरों में घूमता हुआ ताम्रलिप्ता नगरी में आ पहुँचा। जिनेन्द्र भक्त सेठ उनके आगमन का समाचार सुनकर वंदना हेतु पहुँचे। उनका क्षीण शरीर देखकर उन पर सेठ को अधिक श्रद्धा हो गई, उन्होंने प्रणाम किया और उन्हें वे अपने महल में लिवा लाये।

क्षुल्लक जी ने चैत्यालय पहुँचकर जब उस मणि को देखा तो जैसे कोई सुनार अपने पास रकम बनवाने के लिये लाये हुए पुरुष के पास का सोना देखकर प्रसन्न होता है, क्योंकि उसकी नीयत चोरी की रहती है, उसी प्रकार क्षुल्लक जी का हृदय प्रसन्नता से उछलने लगा। जिनेन्द्रभक्त को उसके मायाचार का कुछ पता नहीं था, इसलिये उन्हें चैत्यालय की रक्षा के लिये नियुक्त कर आप समुद्रयात्रा करने के लिये चल पड़े।

जिनेन्द्रभक्त के घर से बाहर होते ही क्षुल्लक जी की बन पड़ी। अर्द्धरात्रि के समय उस तेजस्वी रत्न को कपड़ों में छुपाकर क्षुल्लक जी भागे किन्तु कहावत है कि –

पाप छिपाया न छिपे, छिपे न मोटो भाग। दाबी दूबी न छिपे, रुई लपेटी आग।।

यही कारण था कि रत्न लेकर भागते हुए क्षुल्लक जी को सिपाहियों ने देख लिया, वे उन्हें पकड़ने दौड़े। अपने आपको असफल होते हुए देख क्षुल्लक जी जिनेन्द्रभक्त की ही शरण में पहुँचे। बचाइये–बचाइये कहकर उनके चरणों में गिर पड़े। जिनेन्द्रभक्त ने ''चोर भागा जाता है, इसे पकड़ो'' ऐसा हल्ला सुनकर जान लिया कि यह चोर है। क्षुल्लक वेष में लोगों को ठगता फिर रहा है। फिर भी धर्म की निन्दा होने के भय से सेठ ने क्षुल्लक को पकड़ने के लिये आये हुए सिपाहियों से कहा – आप लोग भ्रम में हैं, रत्न तो ये मेरे कहने से लाये हैं, ये तो सच्चरित्र साधु हैं। सिपाही लोग ठंडे पड़ गये और नमस्कार कर लौट गये।

सब लोगों के चले जाने पर सेठ जी ने क्षुल्लक जी से रत्न लेकर एकांत में उनकी खबर ली, उनसे कहा – कितने दु:ख की बात है कि तुम ऐसे पवित्र वेष को धारण कर उसे नीच कर्मों से लजा रहे हो ? क्या तुम्हें यही उचित है ? ऐसे अनर्थपूर्ण कार्य करने से तुम्हें अनंतकाल तक कुगतियों में दु:ख भोगना पड़ेंगे। शास्त्रकारों ने पापी पुरुषों के लिये लिखा है –

ये कृत्वा पातकं पापा: पोषयन्ति स्वकं भुवि ।
त्यक्त्वा न्यायक्रमं तेषां महादु:खं भवार्णवे ।।

अर्थात् जो पापी लोग न्याय मार्ग को छोड़कर, पाप के द्वारा अपना निर्वाह करते हैं वे संसार समुद्र में अनंतकाल तक दु:ख भोगते हैं।

ध्यान रखो अनीति से चलने वाले और अत्यंत तृष्णावान तुम सरीखे पापी लोग बहुत जल्दी नाश को प्राप्त होते हैं। तुम्हें उचित है कि दुर्लभता से प्राप्त इस मनुष्य जन्म को इस तरह व्यर्थ बरबाद न कर अपना आत्महित करो। इस प्रकार शिक्षा देकर जिनेन्द्रभक्त ने उसे अपने स्थान से अलग कर दिया।

शिक्षा –

१. विपरीत अभिप्राय वाले जीव को निर्दोष अमृत के समान धर्म भी अच्छा नहीं लगता जैसे पित्त ज्वर वाले रोगी को स्वादिष्ट और मीठा दूध भी कड़वा लगता है।
२. धर्मात्मा का वेष बनाकर मायाचारी करने से महा पाप का बंध होता है और जीव को अनंत संसार में परिभ्रमण करना पड़ता है।
३. गुणग्राही दृष्टि होने पर ही जीव के आत्मविकास का मार्ग बनता है।
४. जैसी दृष्टि होती है, वैसी ही सृष्टि दिखाई देती है। सम्यक् अभिप्राय और दूसरों के गुणों को प्रगट करने की भावना धर्मी जीव की पहचान है।
५. धर्मात्मा जीव परस्पर स्नेह भाव रखते हैं, यदि किसी से जाने–अनजाने भूल हो जाये तो उसके दोषों को ढंकते हैं, धर्म की रक्षा करना धर्मात्मा का लक्षण है, यही उपगूहन अंग है।

....

(८)
सम्यग्दर्शन : स्थितिकरण अंग और वारिषेण मुनि

मगध देश के अंतर्गत राजगृह नामक नगर में राजा श्रेणिक राज्य करते थे। वे सम्यग्दृष्टि, उदार और राजनीति के अच्छे विद्वान थे। उनकी महारानी का नाम चेलना था। उनका वारिषेण नाम का पुत्र गुणी, धर्मात्मा श्रावक था।

एक दिन मगध सुन्दरी नाम की एक वेश्या राजगृह के उपवन में क्रीड़ा करने को आई थी। उसने वहाँ श्रीकीर्ति सेठ के गले में सुन्दर रत्नों का हार देखा। उस हार को प्राप्त करने के लिये मगध सुन्दरी लालायित हो उठी। रात के समय उसका प्रेमी विद्युत चोर जब घर आया तब मगध सुन्दरी ने उस पर कटाक्ष बाण चलाते हुए कहा कि यदि सचमुच ही तुम्हारा मुझ पर प्रेम है तो श्रीकीर्ति सेठ के गले का हार मुझे लाकर दीजिये।

मगध सुन्दरी के जाल में फंसकर विद्युत चोर को इस कठिन कार्य के लिये तैयार होना पड़ा। उसे दिलासा देकर वह सीधा श्रीकीर्ति सेठ के महल पहुँच गया, किसी भी तरह शयनागार में गया और कुशलता पूर्वक हार चुराकर चल दिया, किन्तु वह हार के दिव्य तेज को नहीं छुपा सका और उसे भागते हुए सिपाहियों ने देख लिया, वे उसे पकड़ने के लिये दौड़े। वह भागता हुआ श्मशान की ओर पहुँच गया। वारिषेण श्मशान में कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यान कर रहे थे। विद्युत चोर ने मौका देखकर, पीछे आने वाले सिपाहियों के पंजे से छूटने के लिये उस हार को वारिषेण के आगे डालकर वहाँ से भाग गया। इतने में सिपाही वहाँ पहुँचे, वारिषेण के पास हार पड़ा देखकर सभी आश्चर्यचकित हो गये। सभी सैनिक वारिषेण की हंसी करते हुए उन्हें बांधकर श्रेणिक के पास ले गये और राजा से बोले - महाराज! ये हार चुराकर लिये जाते थे, हमने इन्हें पकड़ लिया। सुनते ही श्रेणिक क्रोध के मारे लाल सुर्ख हो गये। उन्होंने गरजकर कहा - इस पापी का नीच कर्म है, यह श्मशान में जाकर ध्यान करता है और लोगों को धोखा देता है जिसे मैं राज्य सिंहासन पर बैठाकर संसार का अधीश्वर बनाना चाहता था, मैं नहीं जानता था कि वह इतना नीच होगा। इसे ले जाकर मार डालो।

अपने खास पुत्र के लिये महाराज की ऐसी कठोर आज्ञा सुनकर सभी चित्रलिखे से रह गये लेकिन प्रतिवाद कौन करे ? जल्लाद वारिषेण को वध्यभूमि में ले गये। एक जल्लाद ने वारिषेण की गर्दन पर तलवार से वार किया किन्तु ऐसा हुआ कि किसी ने उस पर फूलों की माला फेंकी है। जल्लाद आश्चर्यचकित रह गये। कहा है -

अहो पुण्येन तीव्राग्निर्जलत्वं याति भूतले, समुद्रः स्थलतामेति दुर्विषं च सुधायते।
शत्रुर्मित्रत्वमाप्नोति विपत्तिः सम्पदायते, तस्मात् सुखैषिणो भव्याः पुण्यं कुर्वन्तु निर्मलम्।।

(ब्रह्म नेमिदत्त)

अर्थात् पुण्य के उदय से अग्नि जल बन जाती है, समुद्र स्थल बन जाता है, विष अमृत हो जाता है, शत्रु मित्र बन जाता है और विपत्ति सम्पत्ति में परिणत हो जाती है, इसलिये जो लोग सुख चाहते हैं उन्हें पवित्र कार्यों द्वारा सदा पुण्य उपार्जन करना चाहिये।

वारिषेण की यह हालत देखकर सब उसकी जय-जयकार करने लगे, देवों ने पुष्प वर्षा की, सभी लोग धन्य-धन्य कह उठे। श्रेणिक ने इस अलौकिक घटना का समाचार सुना तो उन्हें अपने अविचार पर

पश्चात्ताप हुआ। वे श्मशान, अपने पुत्र के पास गये। उनकी आंखों से आँसू बह निकले। उन्होंने कहा – मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया, मैं अपराधी हूँ मुझे क्षमा कर दो। अपने पूज्य पिता की ऐसी हालत देखकर वारिषेण को बहुत कष्ट हुआ, उसने पिता से कहा – आप अपराधी नहीं हैं, आपने अपने कर्तव्य का पालन किया है। यदि आप पुत्र प्रेमवश दंड की आज्ञा नहीं देते तो प्रजा क्या समझती ? यही कि अपना पुत्र जानकर छोड़ दिया। पिताजी, आपने बुद्धिमानी और दूरदर्शिता का काम किया है। हाँ, इतना जरूर हुआ कि उस समय मेरे पाप कर्म का उदय था इसलिये मैं निरपराधी होकर भी अपराधी बना परन्तु मुझे इसका खेद नहीं है, क्योंकि **''अवश्य ह्यनुभोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशुभम्''** (वादीभसिंह – क्षत्रचूड़ामणि) अर्थात् जो जीव जैसा कर्म करता है उसका शुभ या अशुभ फल उसे अवश्य ही भोगना पड़ता है। पुत्र के उन्नत और उदार विचार सुनकर श्रेणिक आनंदित हो उठे, वे सब दु:ख भूल गये। उन्होंने कहा – पुत्र! सत्पुरुषों ने ठीक ही कहा है –

चंदनं घृष्यमाणं च दह्यमानि यथाऽगुरु:। न याति विक्रियां साधु: पीडितोऽपि तथाऽपरै:।।

(ब्रह्म नेमिदत्त)

अर्थात् चंदन को कितना भी घिसिये, अगर को खूब जलाइये उससे उनका कुछ नहीं बिगड़ता बल्कि और अधिक सुगंध निकलती है, इसी तरह सत्पुरुषों को कोई कितना ही कष्ट दे, वे अपना अपकार करने वाले का उपकार ही करते हैं।

वारिषेण के पुण्य प्रभाव को देखकर विद्युत चोर घबरा उठा, वह महाराज के समक्ष उपस्थित होकर बोला – प्रभो! यह सब अपराध मेरा है, वारिषेण सर्वथा निर्दोष है। पापिनी वेश्या के जाल में फंसकर मैंने ही यह नीच कर्म किया था, मुझे क्षमा कर दीजिये।

विद्युत चोर को अपने कृत कर्म पर पश्चात्ताप से दु:खी देख श्रेणिक महाराज ने उसे क्षमा कर दिया और वारिषेण से घर चलने के लिये कहा। वारिषेण ने कहा – मैंने संसार का स्वरूप देख लिया अब मुझे आत्महित करना है। इतना कहकर वारिषेण वन की ओर चल दिये और श्री सूरदेव मुनि के पास जाकर जिनदीक्षा धारण कर ली। वारिषेण साधु पद धारण करके दृढ़ता पूर्वक चारित्र का पालन करने लगे। भ्रमण करते हुए वे एक बार पलाशकूट नामक शहर में पहुँचे। वहाँ श्रेणिक का मंत्री अग्निभूति रहता था। उसका पुष्पडाल नाम का पुत्र था। वह सदैव धर्म पुण्य के कार्यों में संलग्न रहता था। वारिषेण मुनि को भिक्षार्थ आये हुए देखकर वह उन्हें भक्तिपूर्वक अपने घर ले गया और नवधा भक्ति सहित प्रासुक आहार दिया। आहार के पश्चात् वारिषेण मुनि वन की ओर जाने लगे तो पुष्पडाल भी कुछ तो भक्ति से, कुछ बालपने की मित्रता से और कुछ राजपुत्र होने के लिहाज से उन्हें थोड़ी दूर पहुँचाने के लिये साथ में चल दिया। काफी दूर आने के बाद भी जब मुनिराज ने पुष्पराज से घर लौटने के लिये नहीं कहा तब वह उन्हें स्मरण दिलाने लगा कि महाराज! यह वही सरोवर है जहाँ हम खेला करते थे, यह वही आम्रवृक्ष है जिसके नीचे हम बाललीला का सुख भोगते थे आदि पूर्व परिचित चिह्नों को बार-बार दिखलाकर पुष्पडाल ने मुनि का ध्यान अपने दूर निकल आने की ओर आकर्षित करना चाहा किन्तु मुनिराज उसे लौट जाने को नहीं कह सके। इसके विपरीत उन्होंने पुष्पडाल को वैराग्य का उपदेश दिया और मुनिदीक्षा दे दी। पुष्पडाल मुनि तो हो गया, संयम, स्वाध्याय करने लगा किन्तु उसकी विषय वासना नहीं मिटी। उसे अपनी स्त्री की बार-बार याद आने लगी। इस प्रकार

पुष्पडाल को बारह वर्ष बीत गये। पश्चात् उसकी तपश्चर्या सार्थक करने के उद्देश्य से वारिषेण उसे साथ लेकर तीर्थयात्रा पर चल दिये।

एक दिन कुछ ऐसा प्रसंग बना कि पुष्पडाल मुनि कामेषणा से पीड़ित होकर अपनी स्त्री के लिये अधीर हो उठे। वे व्रत से उदासीन होकर अपने शहर की ओर रवाना हुए। उनके हृदय की बात जानकर वारिषेण मुनि भी उन्हें धर्म में दृढ़ करने के लिये उनके साथ-साथ चल दिये। गुरु और शिष्य अपने शहर में पहुँचे, उन्हें देखकर सती चेलना ने विचार किया कि क्या पुत्र चारित्र से चलायमान हुआ है ? यह विचार कर उसने परीक्षा लेने के लिये दो आसन रखे - एक काष्ठ का, दूसरा रत्न जड़ित। वारिषेण मुनि काष्ठ के आसन पर बैठे। पश्चात् वारिषेण ने अपनी माता के संदेह को दूर करके उनसे कहा कि मेरी सब स्त्रियों को यहाँ बुलवा दीजिये। वारिषेण की सभी स्त्रियाँ वस्त्राभूषणों से सजकर सामने उपस्थित हो गईं और उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगीं।

वारिषेण ने पुष्पडाल से कहा यदि तुम्हें संसार से प्रेम है तो इन्हें तुम स्वीकार करो। यह सुनकर पुष्पडाल बहुत लज्जित हुआ उसे अपनी भूल पर खेद हुआ। उसने वारिषेण के चरणों में नमस्कार कर अपनी गल्ती का प्रायश्चित देकर संयम मार्ग में दृढ़ करने की वारिषेण से प्रार्थना की। वारिषेण ने पुष्पडाल को धर्म और धर्म मार्ग में स्थित किया। पुष्पडाल मुनि वैराग्य भाव पूर्वक कठोर तपश्चर्या करने लगे। वारिषेण मुनिराज भी अपने स्वरूप में रमने हेतु वन में चले गये।

शिक्षा -

१. रागभाव संसार का कारण है।
२. किसी भी वस्तु, व्यक्ति, घटना और परिस्थिति से जुड़ना अज्ञान भाव है, जो संसार का कारण है।
३. विषयों से मलिन चित्त में परमात्मा का ध्यान नहीं होता।
४. विषय प्रवृत्ति से श्रुतज्ञान का विनाश होता है जबकि विषयों से विरत होने पर श्रुतज्ञान का विकास होता है।
५. किसी कारणवश साधर्मी को धर्म से विचलित होने पर धर्म और धर्म मार्ग में स्थित करना तथा स्वयं भी स्थित रहना यही स्थितिकरण अंग का अभिप्राय है।

....

(९)

सम्यग्दर्शन : वात्सल्य अंग और विष्णुकुमार मुनि

अवंतिदेश के अंतर्गत उज्जयिनी नगरी में राजा श्रीवर्मा राज्य करते थे। वे विद्वान और धर्मात्मा थे। उनकी महारानी का नाम श्रीमती था। श्रीवर्मा के चार राजमंत्री थे - बलि, बृहस्पति, प्रह्लाद और नमुचि। यह चारों ही जिनधर्म के प्रति द्वेष रखते थे। एक दिन अकम्पनाचार्य महाराज सात सौ मुनियों के संघ सहित उज्जयिनी आये। वे शहर के बाहर एक पवित्र स्थान पर ठहरे। अकम्पनाचार्य को निमित्तज्ञान से उज्जयिनी की स्थिति अनिष्टकर जान पड़ी, इसलिये उन्होंने संघ को आदेश दिया कि राजा वगैरह के आने पर उनसे

वाद-विवाद न करें अन्यथा संघ पर संकट आ जावेगा। गुरु आज्ञा स्वीकार कर सभी मुनि मौन पूर्वक चिन्तन ध्यान में संलग्न हो गये। अकम्पनाचार्य के आगमन के समाचार लोगों को मालूम हुए। सभी लोग भक्ति भाव से आचार्य की वंदना के लिये जाने लगे। श्रीवर्मा ने अचानक आनंद की धूमधाम देखकर मंत्रियों से पूछा - ये लोग आज कहाँ जा रहे हैं ? मंत्रियों ने कहा कि अपने शहर में नंगे जैन साधु आये हैं, ये सब वहीं जा रहे हैं। राजा भी मंत्रियों के साथ आचार्य के दर्शनार्थ पहुँचे। उन्होंने सभी को प्रणाम किया किन्तु किसी ने धर्मवृद्धि शब्द का उच्चारण नहीं किया। लौटते समय मंत्रियों ने राजा से कहा कि बेचारे साधु बोलना तक नहीं जानते सब नितांत मूर्ख हैं, आदि आदि कहकर मुनियों की निंदा करने लगे। वे सब निंदा करते हुए लौट ही रहे थे कि रास्ते में उन्हें श्रुतसागर मुनि मिल गये, जो शहर से आहार करके संघ की ओर जा रहे थे। मंत्रियों ने उन पर व्यंग्य करते हुए कहा - देखिये वह एक बैल और पेट भरकर चला आ रहा है। मुनि ने उनके निंद्य वचनों को सुन लिया, वे निंदा सहन नहीं कर सके। दूसरी बात आहार के लिये जाते समय उन्हें आचार्य महाराज की आज्ञा का पता नहीं था। मंत्रियों को अहं भाव से युक्त देखकर उन्होंने मंत्रियों से शास्त्रार्थ कर लिया और उन्हें पराजित कर दिया। सच है **एक ही सूर्य संसार के अंधकार को नष्ट करने के लिये समर्थ है।**

श्रुतसागर मुनि अपने आचार्य के पास पहुँचे उन्होंने रास्ते में हुई घटना आचार्य से ज्यों की त्यों कह सुनाई। आचार्य महाराज निमित्त ज्ञानी थे, उन्होंने कहा कि तुमने शास्त्रार्थ करके अच्छा नहीं किया, अब संघ की कुशल नहीं है। यदि तुम संघ की जीवन रक्षा चाहते हो तो जिस स्थान पर तुम्हारा मंत्रियों से शास्त्रार्थ हुआ है, उसी स्थान पर कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यान करो। आचार्य की आज्ञानुसार श्रुतसागर शास्त्रार्थ वाले स्थान पर मेरू की तरह निश्चल होकर कायोत्सर्ग ध्यान करने लगे।

शास्त्रार्थ में मुनि से पराजित होकर मंत्री लज्जित हुए और मानभंग का बदला लेने के लिये रात्रि के समय चारों मंत्री शहर से बाहर आये। रास्ते में श्रुतसागर मुनि को ध्यान करते हुए देखा। उन्होंने तीव्र क्रोधवश तलवारों से मुनि के ऊपर वार किया, किन्तु मुनि के पुण्य प्रभाव से नगर रक्षक देवी ने उन चारों को तलवार उठाये हुए ही कीलित कर दिया।

प्रात: मंत्रियों की दुष्टता का समाचार शहर में आग की तरह फैल गया। शहरवासी उनको देखने आए, राजा भी आए। सभी ने उन्हें धिक्कारा। अंत में महाराज श्रीवर्मा ने उनके निकृष्ट विचारों के कारण देश निकाला दे दिया। धर्म का प्रभाव देखकर लोग आनंदित हो उठे। मुनि संघ का उपद्रव टल गया। अकम्पनाचार्य भी उज्जयिनी से विहार कर गये।

हस्तिनापुर नामक शहर में महापद्म राजा थे, उनकी रानी का नाम लक्ष्मीमती था। उनके पद्म और विष्णु दो पुत्र थे। एक दिन राजा महापद्म संसार की अनित्यता और नि:सारता देखकर अतिशय वैराग्य भाव सहित अपने बड़े पुत्र पद्म को राज्य देकर छोटे पुत्र विष्णुकुमार के साथ वन में चले गये। पिता-पुत्र ने श्रुतसागर मुनि के पास पहुँचकर जिनदीक्षा धारण कर ली। विष्णुकुमार बालपन से ही संसार से विरक्त थे इसलिये पिता के रोकने पर भी वे दीक्षित हो गये। विष्णुकुमार मुनि को तपश्चर्या के प्रभाव से विक्रिया ऋद्धि प्राप्त हो गई।

पिता के दीक्षित हो जाने पर हस्तिनापुर का राज पद्मराज करने लगे। उन्हें पुण्योदय से सब कुछ प्राप्त होने पर भी एक बात की चिंता सदा बनी रहती थी वह यह कि कुम्भपुर का राजा सिंहबल उन्हें कष्ट पहुँचाया

करता था, उनके देश में अनेक उपद्रव किया करता था।

इसी समय श्रीवर्मा के चारों मंत्री उज्जयिनी से निकलकर कुछ दिनों पश्चात् हस्तिनापुर पहुँचे। उन्हें राजा के मानसिक ताप का पता चला। वे राजा से मिले, उन्हें चिंता से मुक्त करने का वचन दिया। कुछ सेना के साथ मंत्रियों ने सिंहबल पर चढ़ाई कर दी और बुद्धिमानी पूर्वक सिंहबल को बांध लिया और पद्मराज के सामने उपस्थित कर दिया। पद्मराज उनकी वीरता और बुद्धिमानी से बहुत प्रभावित हुआ। उसने उन्हें अपना मंत्री बना लिया और इस उपकार के प्रतिफल स्वरूप उनसे कहा कि तुम जो कहो वह मैं तुम्हें देने के लिये तैयार हूँ। बलि मंत्री ने बोला – महाराज, आपकी हम पर कृपा है तो हमें सब कुछ मिल गया। फिर भी आपका आग्रह है तो समय आने पर हम आपसे प्रार्थना करेंगे।

अनेक देशों में विहार करते हुए अकम्पनाचार्य संघ सहित हस्तिनापुर के बगीचे में आकर ठहरे। नगर में उत्सव जैसा वातावरण निर्मित हो गया। राजमंत्रियों को अकम्पनाचार्य के आने का समाचार मालूम हुआ। उनका हृदय प्रतिहिंसा से उद्विग्न हो उठा और उन्हें अपने अपमान का बदला लेने का समय उपयुक्त लगा। बलि ने समय पाकर महाराज से सात दिन के लिये राज्य मांगा। सुनते ही राजा अवाक् रह गये किन्तु वचनबद्ध थे इसलिये कुछ भी न कर सके और सात दिन के लिये मंत्रियों को राज्य देना पड़ा।

मंत्रियों ने मुनियों को मारने के उद्देश्य से यज्ञ का बहाना कर षड्यंत्र रचा। मुनियों को बीच में रखकर यज्ञ के लिये विशाल मंडप तैयार किया गया। हजारों पशु इकट्ठे किये गये। वेदों के ज्ञाता विद्वानों के द्वारा वेदध्वनि से यज्ञ मंडप गूँजने लगा। बड़ी संख्या में निरपराध पशु मारे जाने लगे, उनकी आहुतियाँ दी जाने लगीं। देखते ही देखते दुर्गंधित धुएँ से आकाश आच्छादित हो गया। मुनि संघ पर भयंकर उपसर्ग हो रहा था किन्तु सभी साधुगण कर्म के उदय का विचार कर धैर्य पूर्वक आत्मध्यान करने लगे। कहा है –

अरि मित्र महल मसान कंचन कांच निंदन थुतिकरन ।
अर्घावतारन असिप्रहारन में सदा समता धरन ।।

इधर, मिथिलानगरी में श्रुतसागर मुनि को निमित्तज्ञान से उपसर्ग की जानकारी हुई। उन्होंने पुष्पदंत क्षुल्लक से कहा – इस समय हस्तिनापुर में अकम्पनाचार्य सात सौ मुनियों के संघ सहित विराजमान हैं, उन पर भारी उपसर्ग हो रहा है। क्षुल्लक ने पूछा कि इसे दूर करने का उपाय क्या है ? मुनिराज बोले – विष्णुकुमार मुनि को विक्रिया ऋद्धि प्राप्त हो गई है, वे उस ऋद्धि के बल से उपसर्ग दूर कर सकते हैं। पुष्पदंत बिना विलम्ब किये जहाँ विष्णुकुमार मुनि तपश्चर्या कर रहे थे वहाँ पहुँचे। उन्होंने विष्णुकुमार मुनि से सब हाल कह सुनाया, साथ ही विक्रिया ऋद्धि की प्राप्ति के बारे में भी उन्हें बोध कराया। विष्णुकुमार मुनि को इसका पता नहीं था, उन्होंने हाथ पसारकर देखा और उन्हें विश्वास हो गया। वे उसी समय हस्तिनापुर गये और अपने भाई पद्म से कहा कि यह कितना अनर्थ हो रहा है। अपने कुल में ऐसा कभी नहीं हुआ। राजधर्म क्या है, यह विचार करो। भाई का उपदेश सुनकर पद्म ने कहा कि मुझे पता नहीं था कि यह दुष्ट मंत्री लोग मुझे ऐसा धोखा देंगे। मैं विवश हूँ, सात दिन तक कुछ नहीं कर सकता। आप ही कुछ उपाय कर मुनियों का उपसर्ग दूर कीजिये, ऐसी प्रार्थना की।

विष्णुकुमार मुनि ने विक्रिया ऋद्धि के प्रभाव से वामन ब्राह्मण का वेष बनाया और मधुरता पूर्वक

वेदध्वनि का उच्चारण करते हुए यज्ञमंडप में जा पहुँचे, उनके सुन्दर स्वरूप और मनोहर वेदोच्चार सुनकर सभी अत्यंत प्रभावित हुए। बलि के आनंद का ठिकाना न रहा, उसने कहा कि महाराज आपने मेरे आयोजन की अपूर्व शोभा बढ़ाई है। आपकी जो इच्छा हो सो मांग लीजिए। विष्णुकुमार बोले – मैं एक गरीब ब्राह्मण हूँ, मुझे केवल तीन पग जमीन की आवश्यकता है। बलि ने कहा कि जैसी आपकी इच्छा। आप अपने पाँवों से भूमि माप लीजिए, यह कहकर उसने हाथ में जल लिया और संकल्प कर विष्णुकुमार के हाथ में छोड़ दिया। संकल्प छोड़ते ही उन्होंने पृथ्वी मापना प्रारम्भ किया। पहला पाँव सुमेरू पर्वत पर रखा, दूसरा मानुषोत्तर पर्वत पर, अब तीसरा पाँव रखने को जगह नहीं थी, उसे वे कहाँ रखें ? उनके इस अतिशय प्रभाव से सारी पृथ्वी काँप उठी, देवगण आश्चर्य चकित हो गये। सभी विष्णुकुमार के पास आये और उनसे क्षमायाचना की।

इस प्रकार विष्णुकुमार मुनि ने अकम्पनाचार्य सहित सात सौ मुनियों के संघ पर आया उपसर्ग दूर किया। राजा, मंत्री एवं प्रजा के सभी लोग आचार्य संघ की वंदना करने को गये। राजा और मंत्रियों ने क्षमायाचना की और सभी वीतराग धर्म की आराधना में संलग्न हो गये।

शिक्षा –

१. अपने साधर्मी बंधुओं के साथ वात्सल्य भाव रखते हुए सतत् धर्म की आराधना करना।
२. किसी पर, किसी कारण से आई हुई विपत्ति के समय में आत्मीय भाव से सहयोग करना।
३. धर्मी सों गौ बच्छ प्रीति सम, इस सूत्र के अनुसार ही वात्सल्य भाव घटित होता है।
४. वात्सल्य भाव की भूमिका में ही धर्म की यथार्थरूपेण आराधना होती है।
५. बुद्धिमान व्यक्ति को वात्सल्य भाव की भावना पूर्वक यह ध्यान रखना चाहिये कि –
हर मुसीबत में तुझे मेरा ऐसा रहे सहारा। आंख तो तेरी हो उसमें आंसू बहे हमारा।।

विशेष – अनिष्ट की आशंका में मौन एवं धर्म ध्यान करना तथा कुमार्गी हठी मानी जीवों से वाद-विवाद नहीं करना।

....

(१०)

सम्यग्दर्शन : प्रभावना अंग और वज्रकुमार मुनि

हस्तिनापुर में बल नाम के राजा थे। वे दयालु और प्रजा हितैषी थे। उनके मंत्री का नाम गरुड़ था। उसका सोमदत्त नामक पुत्र था। सोमदत्त शास्त्रों का ज्ञाता व गुणों का भंडार था। एक दिन वह अपने मामा सुभूति के पास अहिछत्रपुर गया। मामा से उसने वहाँ के राजा से मिलने की इच्छा व्यक्त की, किन्तु अहंकार वश सुभूति ने महाराज से सोमदत्त की मुलाकात नहीं कराई। यह बात सोमदत्त को अच्छी नहीं लगी। वह स्वयं ही वहाँ के राजा दुर्मुख के पास गया और मामा के अभिमान को नष्ट करने के लिये राजा को अपने पाण्डित्य और प्रतिभाशालिनी बुद्धि का परिचय कराकर उनका राजमंत्री बन गया।

सुभूति को यह देखकर प्रसन्नता हुई, उसने अपनी यज्ञदत्ता पुत्री का सोमदत्त के साथ विवाह कर दिया। कुछ दिनों के पश्चात् यज्ञदत्ता गर्भवती हुई। बरसात का समय था। यज्ञदत्ता को दोहद उत्पन्न हुआ, उसे आम खाने की प्रबल इच्छा हुई। आम का समय न होने पर भी सोमदत्त आम ढूंढने के लिये निकला। भाग्यवश

बगीचे में एक वृक्ष के नीचे एक मुनिराज बैठे हुए थे, मात्र उसी वृक्ष में आम के फल लगे हुए थे। उसने फल तोड़कर यज्ञदत्ता के पास पहुँचा दिये और आप स्वयं भक्तिपूर्वक मुनि के चरणों में बैठकर उनसे उपदेश श्रवण करने लगा। मुनिराज बोले – **संसार में एक मात्र धर्म ही सुख देने वाला है। उसके दो भेद हैं – मुनि धर्म और श्रावक धर्म। मुनिराज पाँच महाव्रत, पाँच समिति, दशलक्षण धर्म सहित सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का पालन करते हैं। साधु पद से ही सिद्ध पद की प्राप्ति होती है। श्रावक धर्म के अंतर्गत श्रावक पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रतों का पालन करता है। दया, दान, परोपकार, कषाय की मंदता, शांतिपूर्वक जीवन बिताना, जीव हिंसा नहीं करना आदि श्रावक की चर्या होती है।**

इस प्रकार श्रावक और मुनिधर्म की विशेषताएँ सुनकर सोमदत्त ने मुनिधर्म की दीक्षा ग्रहण कर ली। गहन शास्त्राभ्यास किया और सोमदत्त मुनिराज नाभिगिरी पर्वत पर जाकर तपस्या करने लगे।

इधर समय पाकर यज्ञदत्ता को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। एक दिन किसी के द्वारा उसे अपने स्वामी के समाचार मिले। वह अपने घर के लोगों के साथ नाभिगिरी पर्वत पर पहुँची। सोमदत्त को मुनिवेष में देखकर यज्ञदत्ता को बहुत क्रोध आया। उसने कहा कि यदि मेरी जिंदगी बिगाड़ना थी तो विवाह क्यों किया ? बच्चे का पालन कौन करेगा ? आदि-आदि भले-बुरे वचन बोलकर यज्ञदत्ता उस अबोध शिशु को मुनि के चरणों में पटककर घर चली गई। कुछ समय पश्चात् ही दिवाकर देव नाम का एक विद्याधर इधर आ निकला। वह अमरावती का राजा था परन्तु भाई-भाई में लड़ाई हो जाने से उसके छोटे भाई पुरन्दर ने उसे परास्त कर देश से निकाल दिया था। इसलिये वह अपनी स्त्री को साथ लेकर तीर्थयात्रा के लिये निकला था। पर्वत पर मुनिराज को देखकर उनकी वंदना करने के लिये नीचे उतरा। उसकी दृष्टि खेलते हुए तेजस्वी बालक पर पड़ी, उसने बालक को उठाकर अपनी पत्नी को सौंप दिया। दोनों पुत्र रत्न को पाकर प्रसन्न हुए। बालक होनहार था। उसके हाथ में वज्र का चिह्न देखकर विद्याधरिणी ने उसका नाम वज्रकुमार रख दिया।

दिवाकर देव के सम्बंध से कनकपुरी का राजा विमलवाहन वज्रकुमार का मामा हुआ। उसने मामा के यहाँ रहकर गहन शास्त्राभ्यास किया और छोटी उम्र में ही विद्वान बन गया। एक दिन वज्रकुमार ह्रीमंत पर्वत पर प्रकृति की शोभा देखने गया था। वहाँ गरुड़वेग विद्याधर की पुत्री पवनवेगा विद्या सिद्ध कर रही थी किन्तु आंख में तिनका होने से उसे बाधा आ रही थी। वज्रकुमार ने उसकी आंख से तिनका निकाल दिया। पवनवेगा मंत्रसाधन में तत्पर हुई और उसे विद्या सिद्ध हो गई। उसने वज्रकुमार का उपकार माना और कहा कि मैं अपने हृदय में आपके सिवाय किसी को भी स्थान नहीं दूंगी और सतृष्ण नयनों से वज्रकुमार की ओर देखने लगी, उसके प्रेमोपहार को वज्रकुमार ने स्वीकार कर लिया। शुभ बेला में गरुड़वेग ने पवनवेगा का परिणय संस्कार वज्रकुमार के साथ कर दिया।

एक दिन वज्रकुमार को मालूम हो गया कि मेरे पिता राजा थे, उनके छोटे भाई ने उन्हें लड़-झगड़कर राज्य से निकाल दिया है, उसे अपने काका पर क्रोध आया। वह पिता के मना करने पर भी कुछ सेना और अपनी पत्नी की विद्या लेकर अमरावती पर चढ़ाई कर दी और पुरन्दर देव को परास्त कर राज्य पर अधिकार कर लिया।

दिवाकर देव की प्रिया जयश्री को एक और पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। उसे वज्रकुमार से डाह होने लगी। अपने पुत्र को राज्य की प्राप्ति में वज्रकुमार कंटक प्रतीत होने लगा। उसे मार्ग से हटाने का उसने निर्णय कर लिया। एक दिन वज्रकुमार ने माँ के मुंह से यह सुन लिया कि 'वज्रकुमार बहुत दुष्ट है। देखो तो, कहाँ तो उत्पन्न हुआ और किसे कष्ट दे रहा है ?' उसकी माता किसी से उसकी बुराई कर रही थी। सुनकर वज्रकुमार का हृदय जलने लगा। वह उसी समय पिता के पास गया और बोला – पिताजी ! जल्दी बताइये कि मैं किसका पुत्र हूँ ? और क्यों यहाँ आया ? मैं जानता हूँ कि आपने अपने बच्चे से कहीं बढ़कर मेरा लालन-पालन किया है, फिर भी मेरे सच्चे पिता कौन हैं ? कृपा करके बतला दीजिये, नहीं बतायेंगे तो आज से भोजन नहीं करूँगा। दिवाकर देव ने अचानक इस प्रकार की बातें सुनकर उसे बहुत समझाया। फिर भी वज्रकुमार ने सच्चा वृतांत जानना चाहा दिवाकर देव के द्वारा अपना सम्पूर्ण वृतांत सुनकर वज्रकुमार को वैराग्य हो गया। वह दिवाकर देव के साथ अपने पिता की वंदना करने गया। सोमदत्त मुनिराज मथुरा के पास एक गुफा में ध्यान कर रहे थे। वज्रकुमार ने उनसे जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। कंदर्पकेसरी वज्रकुमार साधु होकर कठिन से कठिन तपस्या करने लगे।

मथुरा के राजा पूतिगंध थे, उनकी रानी उर्विला थी। वह सती, धर्मात्मा, सम्यक्त्व से भूषित थी। अष्टान्हिका पर्व के अवसर पर वह धर्म प्रभावना करती थी। मथुरा में ही सागरदत्त नाम का सेठ रहता था, उसकी गृहिणी समुद्रदत्ता थी। पूर्व पाप के योग से उसके दरिद्रा नाम के पुत्री हुई। जन्म से ही दुःख के संयोग बनने लगे, धन-संपत्ति जाती रही, माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। वह दूसरों का जूठा खाकर दिन काटने लगी। **पाप के उदय से जीवों को दुःख भोगना ही पड़ता है।**

एक दिन मथुरा में नंदन और अभिनंदन नाम के मुनि आये। उन्होंने दरिद्रा को अन्न का जूठा कण खाते हुए देखकर उसके बारे में आपस में बातचीत की। नंदन मुनि ने अवधिज्ञान से जानकर कहा कि वर्तमान में इसका उदय अनुकूल नहीं है फिर भी यह पुण्यात्मा जीव है और पूतिगंध राजा की पटरानी बनेगी। मुनि ने दरिद्रा का जो भविष्य सुनाया, उसे एक बौद्ध भिक्षुक श्रीवंदक ने सुन लिया। उसे जैन ऋषियों पर विश्वास था, इसलिये वह दरिद्रा को अपने स्थान पर लिवा लाया और उसका पालन करने लगा।

दरिद्रा ने यौवन अवस्था को प्राप्त किया तब उसका सौन्दर्य पूर्णरूपेण निखर गया था। एक दिन दरिद्रा शहर के बगीचे में झूला झूल रही थी। संयोगवश उस दिन राजा भी वहाँ आ गये, दरिद्रा को देखकर आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने उससे परिचय पूछा। पश्चात् राजा उसे प्राप्त करना चाहते थे इसलिये उसे अपनी पटरानी बनाने का प्रस्ताव लेकर अपने मंत्री को श्रीवंदक के पास भेजा। श्रीवंदक ने राजा के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया किन्तु यह शर्त रखी कि महाराज बौद्ध धर्म स्वीकार करें तो मैं इसका विवाह महाराज के साथ कर सकता हूँ। मंत्री ने महाराज को इस समाचार से अवगत कराया, महाराज ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया और उनका दरिद्रा के साथ विवाह सम्पन्न हो गया। नंदन मुनिराज के भविष्य कथनानुसार वह पटरानी हुई। दरिद्रा अब बुद्धदासी के नाम से प्रसिद्ध हो गई। बुद्धदासी पटरानी बनकर बौद्धधर्म का प्रचार करने में तत्पर रहने लगी।

अष्टान्हिका पर्व के अवसर पर प्रतिवर्ष की भाँति उर्विला महारानी ने उत्सव करना प्रारम्भ किया।

जब रथ निकलने का दिन आया। उस समय बुद्धदासी ने यह कहकर कि पहले मेरा रथ निकलेगा, उर्विला रानी का रथ रुकवा दिया। उर्विला को इससे बहुत कष्ट हुआ। उसने प्रतिज्ञा कर ली कि पहले मेरा रथ निकलेगा तब ही भोजन करूँगी। यह प्रतिज्ञा कर वह श्रत्रिया नामक गुहा [गुफा] में पहुँची, वहाँ मुनिराज सोमदत्त और महामुनि वज्रकुमार साधनारत थे। उर्विला ने उन्हें नमस्कार किया और रथ सम्बंधी तथा अपने नियम सम्बंधी सम्पूर्ण वार्ता उन्हें सुनाकर उनसे निवेदन किया कि अब जैसा आप उचित समझें वह कीजिये। यह वार्ता चल ही रही थी कि उन दोनों मुनिराजों की वंदना करने के लिये दिवाकर देव आदि बहुत से विद्याधर आये। वज्रकुमार मुनि ने उनसे कहा – बुद्धदासी ने महारानी उर्विला का रथ रुकवा दिया है, आप लोग जाकर इस प्रभावना कार्य को पूर्ण करवायें। महामुनि की आज्ञा अनुसार समस्त विद्याधर अपने–अपने विमान द्वारा मथुरा पहुँचे। उन्होंने बुद्धदासी को बहुत समझाया और कहा कि जो पुरानी रीति है उसी अनुसार होने देना अच्छा है किन्तु बुद्धदासी अभिमान के कारण इस बात को स्वीकार नहीं कर सकी। विद्याधरों ने सीधेपन से कार्य होता हुआ न देखकर बुद्धदासी के द्वारा नियुक्त किये हुए सिपाहियों से लड़ना शुरू कर दिया और बात ही बात में उन्हें भगा दिया। उर्विला रानी का रथ प्रभावना पूर्वक निकला, जिससे सबको बहुत आनंद हुआ। बुद्धदासी और राजा भी इस प्रभावना से प्रभावित हुए और जिनधर्मानुगामी होकर आत्महित का पथ प्रशस्त किया।

शिक्षा –

१. धर्मात्मा पुरुषों को संसार का उपकार करने वाली और स्वर्ग सुख को देने वाली धर्म प्रभावना करना चाहिये।
२. जो भव्य पुरुष प्रतिष्ठा महोत्सव आयोजित करवाते हैं, जीर्णोद्धार कराते हैं अथवा चार दानपूर्वक धर्म की प्रभावना करते हैं वे सम्यक्त्व को प्राप्त कर त्रिलोक पूज्य होते हैं।
३. जिनधर्म की प्रभावना सद्गति और परम्परा से मुक्ति को प्राप्त कराने वाली है।
४. प्रभावना का उद्देश्य रत्नत्रय धर्म की प्राप्ति कर अंतिम साध्य मोक्ष को प्राप्त करना है।
५. आयोजन में प्रयोजन को नहीं भूलना चाहिये।

....

(११)

सच्ची मित्रता

मगधदेश की प्रसिद्ध राजधानी राजगृह नगर में प्रजापाल नाम के राजा थे, वे विद्वान, उदार और धर्मात्मा थे। उनकी रानी का नाम प्रियधर्मा था। उनके दो पुत्र थे – प्रियधर्म और प्रियमित्र। दोनों भाई बुद्धिमान और सच्चरित्र थे। किसी कारण से दोनों भाई संसार से विरक्त होकर साधु हो गये और आयु के अंत में समाधिमरण पूर्वक देह का त्याग करके अच्युत स्वर्ग में देव हुए। उन्होंने वहाँ परस्पर प्रतिज्ञा की कि 'दोनों में से जो पहले मनुष्य पर्याय प्राप्त करे उसके लिये स्वर्ग में रहने वाले देव का कर्तव्य होगा कि वह उसे जाकर सम्बोधित करे और संसार से वैराग्य धारण कर मोक्ष सुख को देने वाली जिनदीक्षा ग्रहण करने के लिये प्रोत्साहित करे।' इस प्रकार प्रतिज्ञा कर वे वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे। उन दोनों में से प्रियदत्त की आयु पहले पूर्ण हो गई। वह वहाँ से उज्जयिनी के राजा नागधर्म की प्रिया नागदत्ता से नागदत्त नामक पुत्र हुआ। नागदत्त

सर्पों के साथ क्रीड़ा करने में बहुत चतुर था। सर्प के साथ उसे विनोद करते हुए देखकर सबलोग आश्चर्य करते थे।

एक दिन प्रियधर्म, जो कि स्वर्ग में नागदत्त का मित्र था, गारुड़ि (सपेरे) का वेष बनाकर नागदत्त को सम्बोधन करने के लिये उज्जयिनी आया। उसके पास दो भयंकर सर्प थे। वह शहर में घूम-घूमकर लोगों को तमाशा बताता और जनता में यह प्रचार करता कि मैं सर्पक्रीड़ा का अच्छा जानकार हूँ, कोई भी इस शहर में सर्पक्रीड़ा का जानकार हो तो मैं उसे अपना खेल दिखलाऊँ। यह समाचार नागदत्त के पास पहुँचा, वह तो शौकीन था ही, एक और उसे साथी मिल गया। नागदत्त ने उसे अपने पास बुलवाया। गारुड़ि तो यह चाह ही रहा था। प्रियधर्म उसके पास गया। नागदत्त ने अभिमानवश होकर उससे कहा - मंत्रवित् (मंत्रज्ञाता) ! तुम अपने सर्पों को बाहर निकालो, मैं देखूँ तो कि वे कैसे जहरीले हैं।

प्रियधर्म ने कहा - मैं राजपुत्रों के साथ ऐसी हंसी दिल्लगी या खेल नहीं करना चाहता जिसमें जान की जोखिम हो क्योंकि तुम सर्पों के साथ खेलो और तुम्हें कुछ जोखिम पहुँच जाये तो राजा मेरी क्या दशा करेंगे ? इसलिये मैं ऐसा कार्य नहीं कर सकता हूँ और न ही तुम्हें इस विषय में विशेष आग्रह करना चाहिये। तुम कहो तो मैं तुम्हें कुछ खेल दिखा सकता हूं।

नागदत्त ने कहा कि तुम्हें पिता जी की ओर से भय नहीं करना चाहिये क्योंकि वे जानते हैं कि मैं इस विषय में कितना विज्ञ हूं। तुम्हें इस पर भी संतोष न हो तो मैं पिताजी से तुम्हें क्षमा का दान दिला देता हूं, इतना कहकर नागदत्त प्रियधर्म को पिता के पास ले गया और उसे अभय दिलवा दिया। नागधर्म, नागदत्त का सर्पो के साथ खेलना देख चुके थे और इस समय पुत्र का बहुत आग्रह था इसलिये उन्होंने प्रियधर्म से सर्पों को बाहर निकालने के लिये कहा।

प्रियधर्म ने पहले एक साधारण सर्प को निकाला। नागदत्त उसके साथ क्रीड़ा करने लगा और थोड़ी ही देर में सर्प को पराजित कर निर्विष कर दिया। नागदत्त का साहस बढ़ गया था। उसने अभिमानवश कहा कि ऐसे मुर्दे सर्प को निकालकर मुझे शर्मिंदा क्यों करते हो ? कोई अच्छा विषधर सर्प निकालो जिससे तुम्हें भी मेरी शक्ति का परिचय हो सके। प्रियधर्म ने कहा - आपका जोश पूरा हुआ। आपने एक सर्प को हरा दिया है। अब आप अधिक आग्रह न करें तो अच्छा है। मेरे पास एक सर्प और है, वह बहुत जहरीला है, दैवयोग से उसने काट लिया तो मृत्यु अवश्यंभावी है, इसलिये उसके लिये मुझे क्षमा कीजिये। बहुत समझाने पर भी नागदत्त नहीं माना उसने कहा कि इसका डर मुझे होना चाहिये या तुम्हें ?

नागदत्त का अत्यंत आग्रह देखकर प्रियधर्म ने राजा आदि की साक्षी से दूसरे सर्प को पिटारे से बाहर निकाल दिया। सर्प ने निकलते ही फुंकार मारना शुरू किया। वह इतना जहरीला था कि उसकी सांस की हवा से लोगों के सिर घूमने लगते थे। नागदत्त ने जैसे ही उसे पकड़ने के लिये हाथ बढ़ाया कि सर्प ने उसे जोर से काट लिया। नागदत्त धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ा और अचेत हो गया। चारों ओर हाहाकार मच गया। राजा ने शीघ्रतापूर्वक सर्प का विष उतारने वालों को बुलवाया। बहुत से मांत्रिक-तांत्रिक एकत्रित हुए, सबने कोई कमी नहीं रखी किन्तु कुछ नहीं हुआ। राजा से कहा गया कि युवराज को कालसर्प ने काटा है अब ये नहीं जी सकेंगे। महाराज निराश हो गये। उन्होंने सर्पवाले से कहा कि यदि तू इसे जिला देगा तो मैं तुझे अपना आधा

राज्य दे दूंगा, यह कहकर नागदत्त को उसी के सुपुर्द कर दिया। प्रियधर्म ने कहा कि इसे काटा तो है कालसर्प ने ही, और इसका जी पाना भी असंभव है। यदि यह जी जाये तो आप इसे मुनि होने की आज्ञा दें तो मैं एक बार इसे जिलाने का प्रयत्न कर सकता हूं। राजा ने कहा – मुझे यह भी स्वीकार है तुम किसी तरह इसे जिला दो, यही मुझे इष्ट है।

पश्चात् प्रियधर्म ने कुछ मंत्र पढ़कर उसे जीवित कर दिया। वैसे ही, जैसे मिथ्यात्वरूपी विष से अचेत हुए मनुष्यों को परोपकारी मुनिराज अपना स्वरूप प्राप्त करा देते हैं। जैसे ही नागदत्त सचेत हुआ, राजा ने उसे अपनी प्रतिज्ञा के बारे में बतलाया। नागदत्त वन की ओर रवाना हो गया और यमधर मुनिराज के पास जाकर जिनदीक्षा धारण कर ली। उसके दीक्षित हो जाने पर प्रियधर्म, जो गारुड़ी का वेष बनाकर स्वर्ग से नागदत्त को सम्बोधन करने के लिये आया था, उसे वास्तविकता बताकर, नमस्कार कर स्वर्ग चला गया। नागदत्त मुनिराज ने कठोर तपश्चर्या कर अपने चारित्र को निर्मल बनाया और जिनकल्पी मुनि हो गये अर्थात् जिन भगवान की तरह वे अकेले ही विहार करने लगे।

एक दिन नागदत्त मुनि विहार करते हुए भयानक वन में पहुँच गये, वहाँ चोरों का अड्डा था, चोरों ने मुनिराज को देख लिया और यह सोचा कि यह हमारा पता सबको बता देंगे, इसलिये उन्हें पकड़कर अपने सरदार सूरदत्त के पास ले गये। सूरदत्त मुनि को देखकर बोला कि इनको क्यों पकड़ लाये, यह किसी का कुछ नहीं बिगाड़ते, इन्हें किसी से राग–द्वेष भी नहीं है, इन्हें छोड़ दो। सरदार की आज्ञा से मुनिराज को चोरों ने छोड़ दिया।

उसी समय नागदत्त की माता अपनी पुत्री को साथ लेकर वत्स देश की ओर जा रही थी। उसका विवाह कौशाम्बी निवासी जिनदत्त सेठ के पुत्र धनपाल से होना था, अत: दहेज के लिये उसके पास बहुत धन–संपत्ति और परिवार के लोग भी साथ में थे। रास्ते में अचानक नागदत्त मुनि के दर्शन हो गये। माता ने उन्हें प्रणाम किया और पूछा कि आगे का रास्ता अच्छा तो है न ? मुनिराज इसका कुछ भी उत्तर दिये बिना मौन पूर्वक चले गये। आगे चलने पर नागदत्ता को चोरों ने लूट लिया, कन्या को भी छीन लिया। सूरदत्त ने अपने साथियों से कहा – क्यों देखी उस मुनि की उदासीनता और निस्पृहता। इस स्त्री ने उन्हें प्रणाम किया, रास्ता पूछा तब भी उन्होंने हमसे द्वेष नहीं किया।

नागदत्ता यह सुनकर कि यह सब कारस्तानी मेरे ही पुत्र की है। यदि वह मुझे रास्ते के बारे में बता देता तो मेरी यह दुर्दशा नहीं होती और वह क्रोध से भर उठी और गुस्से में बोली तुम जिसका जिक्र कर रहे हो वह मेरा ही पुत्र है, उसे मैंने कितने कष्ट से प्राप्त किया फिर भी उसने मेरे साथ इतनी निर्दयता की। नागदत्ता को अत्यंत दुखित देखकर, और यह मुनि की माँ है यह जानकर सूरदत्त को वैराग्य हो गया। उसने कहा कि जो उस मुनि की माता है, वह मेरी भी माता है। माता, क्षमा करो। इतना कहकर उसने लूटा हुआ धन असबाब वापस लौटा दिया और वह नागदत्त मुनि के पास पहुँचा, उनसे दीक्षा लेकर तपस्वी हो गया ।

साधु होकर सूरदत्त ने घोर तपश्चर्या की और अपने स्वभाव में लीन होकर चार घातिया कर्मों का क्षय कर लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञान प्रकट किया और अंत में अघातिया कर्मों का भी क्षय कर अविनाशी मोक्ष पद प्राप्त कर लिया।

शिक्षा -

१. परस्पर यदि स्नेहवश कोई कर्तव्य निर्वाह करने की बात आपस में होवे तो उसे दिया हुआ वचन समझकर अवश्य ही निर्वाह करना चाहिये।
२. अहंकार किसी भी बात का करना, हानिकारक है। अहंकार में आकर व्यक्ति का विनाश ही होता है।
३. आत्मकल्याण की भावना से किसी भी व्यक्ति का हृदय परिवर्तन कभी भी हो सकता है।
४. आत्मतत्व के श्रद्धान ज्ञानपूर्वक ही सम्यक्चारित्र होता है।
५. तप कर्मों की निर्जरा का प्रत्यक्ष हेतु है, जिसके द्वारा कर्म क्षय होते हैं, केवलज्ञान और सिद्धपद की प्राप्ति होती है।

....

(१२)
मूर्च्छा दुर्गति का कारण

भव्य जीवों को इस बात का बोध हो कि मन से दुर्भावना भाने मात्र से कितना दोष या कर्म का बंध होता है, इस संदर्भ में यह कथा है।

सबसे अंतिम स्वयंभूरमण समुद्र में एक बड़ा भारी विशालकाय मच्छ था। उसकी लम्बाई एक हजार योजन, चौड़ाई पाँच सौ योजन और ऊंचाई ढाई सौ योजन थी। (एक योजन दो हजार कोस का होता है।) इस मच्छ के कानों के पास एक शालिसिक्थ (तन्दुल) नाम का मच्छ रहता था, यह बहुत ही छोटा था। महामच्छ के कानों का मैल खाकर यह अपनी जिंदगी जीता था। महामच्छ सैकड़ों छोटे-मोटे जल के जीवों को खाकर मुंह फाड़े हुए छह माह की गहरी नींद में मग्न हो जाता था।

महामच्छ के निद्रामग्न हो जाने पर एक-एक, दो-दो योजन के लंबे-चौड़े कछुए, मछलियाँ, घड़ियाल, मगर आदि जल के जीव अत्यंत निर्भीक होकर महामच्छ के विकराल दाढ़ों वाले मुंह में घुसते और बाहर निकलते रहते थे। महामच्छ की यह अवस्था देखकर शालिसिक्थ मच्छ प्रतिदिन विचार करता था कि महामच्छ कितना मूर्ख है जो अपने मुख में आसानी से आये हुए जीवों को व्यर्थ ही चले जाने देता है। यदि कहीं मुझे ऐसी सामर्थ्य प्राप्त हुई होती तो मैं एक भी जीव को लौटने नहीं देता सभी को अपना आहार बना लेता।

इस प्रकार के अशुभ भावों से तीव्र पाप कर्मो का बंध कर शालिशिक्थ सातवें नरक गया। कहा जाता है कि महामच्छ तीसरे नरक गया।

शिक्षा -

१. पापी जीव अपने आप ही पाप भाव करके अपनी दुर्गति का मार्ग बना लेते हैं।
२. जीव अपने उपार्जित पाप कर्मों से संसार में दु:ख भोगते हैं।
३. मूर्च्छा ही जीव की दुर्गति का कारण है।
४. जाने-अनजाने में होने वाले अशुभ भावों से विवेकवान जीवों को हमेशा बचना चाहिये।

५. अन्य जीवों को प्राप्त होने वाले संयोगों को देखकर ईर्ष्या और घृणा नहीं करना चाहिये।

....

(१३)

औषधि दान का फल

सौराष्ट्र देश की द्वारिका नगरी में अंतिम नारायण श्रीकृष्ण का जन्म हुआ। श्रीकृष्ण की कई स्त्रियाँ थीं। उन सबमें सत्यभामा श्रीकृष्ण की विशेष कृपापात्र थीं। श्रीकृष्ण अर्द्धचक्री थे, तीन खंड के मालिक थे।

एक दिन श्रीकृष्ण नेमिनाथ भगवान के समवशरण में जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने सुव्रत नाम के मुनिराज को रोगयुक्त दशा में देखा, उनका सारा शरीर रोग से कष्ट पा रहा था। उनकी यह दशा श्रीकृष्ण से नहीं देखी गई। उन्होंने उसी समय जीवक नाम के वैद्य को बुलाया और मुनि को दिखलाकर औषधि के लिये पूछा। वैद्य के कहे अनुसार श्रावकों के घरों में उन्होंने औषधि मिश्रित लड्डुओं के बनवाने की सूचना करवा दी। कुछ दिनों में ही मुनि स्वस्थ हो गये। इस औषधि दान के प्रभाव से श्रीकृष्ण को तीर्थंकर प्रकृति का बंध हुआ। निरोग अवस्था में सुव्रत मुनिराज को देखकर श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने मुनिराज से पूछा कि अब आप अच्छे तो हैं ? उत्तर में **मुनिराज ने कहा – राजन्! शरीर तो स्वभाव से ही अपवित्र और रोगों का घर है। इसकी अवस्थाएँ क्षण-क्षण में बदलती हैं। इसके रोगी होने में मुझे खेद नहीं है और निरोग होने में हर्ष नहीं है। मुझे अपनी आत्मा से काम है, जिसकी प्राप्ति में मैं लगा हुआ हूँ।**

सुव्रत मुनिराज की शरीर से इस प्रकार की निस्पृहता देखकर श्रीकृष्ण को प्रसन्नता हुई। मुनिराज की इस निस्पृहता के समाचार जीवक वैद्य ने सुने। वैद्य को मुनि से अत्यंत घृणा हुई। वैद्य जी का आशय यह था कि मैंने मुनि पर इतना उपकार किया, उन्होंने मेरी तारीफ में एक शब्द भी नहीं कहा। मुनिराज को कृतघ्न समझकर वैद्य ने उनकी बहुत निन्दा की। इस निन्दा के पाप से वैद्य का जीव मृत्यु के पश्चात् नर्मदा के किनारे बंदर हुआ।

एक दिन की बात है कि जीवक वैद्य का जीव – बंदर वृक्ष की जिस डाल पर बैठा हुआ था, उसके नीचे ही सुव्रत मुनिराज ध्यान कर रहे थे। वृक्ष की वह डाल अचानक टूटकर सुव्रत मुनि के ऊपर गिरी। उसकी तीखी नोंक मुनि के पेट में घुस जाने से खून बहने लगा। मुनि पर जैसे ही उस बंदर की नजर पड़ी, उसे जाति स्मरण ज्ञान हो गया। वह पूर्व जन्म की शत्रुता भूलकर बहुत सारे बंदरों को बुला लाया। उन सबने मिलकर डाली को सावधानी से खींचकर निकाल लिया। वैद्य के जीव ने पूर्व जन्म के संस्कार वश जंगल से जड़ी बूटी लाकर मुनि के घाव पर निचोड़ दिया। मुनि को इससे बहुत शांति मिली। बंदर में इस प्रकार की दयाशीलता देखकर मुनिराज ने अवधिज्ञान द्वारा उन्हें वैद्य के जीव के रूप में जान लिया। उन्होंने उसे भव्य समझकर पूर्व जन्म की कथा सुनाई और धर्म का उपदेश दिया। मुनि की कृपा से धर्म में उसकी श्रद्धा हो गई। उसने सम्यक्त्व पूर्वक अणुव्रत ग्रहण कर लिये। अंत में वह सात दिन का सन्यास लेकर मृत्यु को प्राप्त हुआ और सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ।

शिक्षा –

१. सुपात्र दान के प्रभाव से सत्पुरुषों को सुख की कारणभूत सामग्री प्राप्त होती है।

२. शरीर का परिवर्तनशील स्वभाव है, इसकी अवस्थाओं को अच्छा-बुरा मानना अज्ञान है।
३. अज्ञानी जीव साधु के आचार-विचार को जानते नहीं हैं। उनकी इच्छानुसार कार्य न होने पर वे साधु निंदा कर पाप कर्म का बंध कर लेते हैं।
४. सम्यक्त्व सहित पशु भी व्रतों का पालन करके देव गति प्राप्त कर सकता है। फिर हमारा क्या कर्तव्य है, यह अवश्य ही विचार करना चाहिये।
५. धर्म के प्रभाव से जीव सम्पूर्ण सुखों को प्राप्त करता है, अंत में मोक्ष सुख भी धर्म से ही प्राप्त होता है।

....

(१४)
ज्ञान दान की महिमा

भारतवर्ष में कुरुमरी नाम के गाँव में गोविन्द नाम का एक ग्वाला रहता था। जंगल में उसने एक बार दावानल से जलते हुए वृक्षों के मध्य एक वृक्ष देखा, जहाँ तक अग्नि नहीं पहुँच पा रही थी। उसने पास जाकर देखा, उस वृक्ष के कोटर में एक पवित्र ग्रन्थ रखा हुआ था। प्राचीन समय में मुनिराज ग्रन्थों का स्वाध्याय करते हुए जहाँ पूर्ण हो जाता था, वे उस ग्रन्थ को वहीं छोड़ देते थे। कोई मुनिराज वन में इस वृक्ष के कोटर में यह ग्रन्थ रखकर विहार कर गये होंगे। ग्वाला ने इस ग्रन्थ को 'यह कोई देवता है' ऐसा विचार कर वह उसे अपने घर पर ले आया और प्रतिदिन उसकी भक्ति करने लगा। एक दिन पद्मनन्दि नाम के मुनिराज के उसे दर्शन हुए, उसने वह ग्रन्थ उन मुनिराज को भेंट कर दिया।

ज्ञानदान के प्रभाव से गोविन्द ग्वाला मृत्यु के पश्चात् इसी कुरुमरी गाँव में गाँव के चौधरी के यहाँ लड़का हुआ। एक दिन इसने उन्हीं पद्मनन्दि मुनि को देखा और इसे जाति स्मरण ज्ञान हो गया। उन्हीं मुनिराज से उसने जिनदीक्षा ग्रहण कर ली और उत्साह पूर्वक तपस्या करने लगा। दिनोंदिन इसके हृदय की पवित्रता बढ़ती गई। आयु के अंत में देह का त्याग कर पुण्योदय से वह जीव कौण्डेश नाम का राजा हुआ। कौण्डेश राजा प्रजा हितैषी, दयालु, ऐश्वर्यवान, यशस्वी और धर्मज्ञ था। एक दिन किसी निमित्त से उसे संसार से वैराग्य हो गया। उसने संसार को क्षणभंगुर, भोगों को रोग एवं संपत्ति को बिजली की तरह चंचल जानकर सम्पूर्ण माया मोह से विरक्त होकर जिनदीक्षा धारण कर ली।

पूर्व जन्म में कौण्डेश के जीव ने जो शास्त्र के रूप में ज्ञानदान दिया था, उसके फलस्वरूप वह शास्त्रों का विशिष्ट ज्ञाता हो गया। आगे चलकर यही जीव कुन्दकुन्दाचार्य हुआ। इस प्रकार ज्ञान दान का अतिशय महत्व है।

शिक्षा -

१. जिसके ज्ञान नेत्र उन्मीलित नहीं हुए हैं, वह चर्म नेत्रों के होते हुए भी अंधा है। उसके जीवन का कुछ भी मूल्य नहीं है।
२. ज्ञान दान से दाता की इस लोक में निर्मल कीर्ति फैल जाती है, संसार के सभी लोग उसकी प्रशंसा करते हुए थकते नहीं हैं।

३. ज्ञान दान देने वाला जीव कभी अज्ञानी नहीं रहता।
४. माया, मोह की आसक्ति में लिप्त प्राणी को ज्ञानमय शुद्धात्म स्वरूप का बोध नहीं होता जबकि वैराग्यवान जीव आत्मबोध को प्रकट कर लेता है।
५. ज्ञानदान से जीव का क्षयोपशम नित्यप्रति वृद्धिंगत होता जाता है। इसके प्रभाव से कोई जीव श्रुत का पारगामी हो जाये, इसमें क्या आश्चर्य है क्योंकि ज्ञानदान तो केवलज्ञान का भी कारण है।

....

(१५)
अभयदान का फल

किसी समय मालवा में घटगाँव सम्पत्तिशाली शहर था। इस शहर में देविल नामक एक धनी कुम्हार और धर्मिल नाम का एक नाई रहता था। इन दोनों ने मिलकर शहर में बाहर से आने वाले यात्रियों को ठहरने के लिए एक धर्मशाला बनवाई। एक दिन निर्ग्रन्थ मुनिराज शहर में पधारे। देविल कुम्हार ने उन मुनिराज को धर्मशाला में ठहरा दिया। धर्मिल को यह मालूम हुआ तो उसने मुनि को धर्मशाला से बाहर निकाल दिया और किसी सन्यासी को धर्मशाला में ठहरा दिया।

धर्मिल ने मुनि का अपमान किया, बाहर निकाल दिया किन्तु इससे मुनि को कुछ भी अच्छा-बुरा नहीं लगा। वे एक वृक्ष के नीचे आकर आत्मचिंतन में संलग्न हो गये। प्रात:काल जब देविल मुनिराज के दर्शन के लिये आया, उन्हें धर्मशाला में न देखकर वृक्ष के नीचे बैठे हुए देखा, उसे धर्मिल की दुष्टता पर बहुत क्रोध आया। धर्मिल को उसने खूब फटकार लगाई, बात बहुत बढ़ गई। दोनों ही आपस में लड़ने लगे। लड़ते-लड़ते दोनों की मृत्यु हो गई। क्रूर भावों से मरकर यह दोनों क्रमशः सुअर और व्याघ्र हुए। देविल का जीव सुअर विन्ध्य पर्वत की गुफा में रहता था। एक दिन गुप्ति और त्रिगुप्ति नाम के दो मुनिराज इसी गुफा में आकर ठहरे, उन्हें देखकर सुअर को जाति स्मरण हो गया और उसने मुनिराज से व्रत ग्रहण कर लिये।

मनुष्यों की गंध पाकर धर्मिल का जीव व्याघ्र मुनियों को खाने के लिये झपटा हुआ आया। सुअर उसे दूर से ही देखकर गुफा के द्वार पर आकर डट गया, इसलिये कि वह गुफा में बैठे हुए मुनियों की रक्षा कर सके। व्याघ्र ने गुफा के अंदर घुसने के लिये सुअर पर आक्रमण किया। सुअर पहले से ही तैयार बैठा था। दोनों के भावों में बहुत अंतर था। एक के भाव मुनि रक्षा के थे और दूसरा उन्हें खा लेना चाहता था। दोनों में भयंकर संघर्ष हुआ। व्याघ्र ने पूरा बल लगा दिया गुफा में अंदर जाने के लिये किन्तु सुअर ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी व्याघ्र को अंदर नहीं जाने दिया। इस संघर्ष में दोनों की मृत्यु हो गई।

सुअर का जीव मुनिरक्षा के पवित्र भाव से मरकर सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। धर्मिल के भाव मुनियों को खाने के थे, वह इस पाप के फल से मरकर नरक गया।

शिक्षा -

१. कषाय की तीव्रता रखना, धर्मीजीवों से विद्वेष के परिणाम होना पाप बंध का कारण है।
२. अज्ञानी जीव सत्य-असत्य का विवेक नहीं कर पाता और धर्मान्धतावश द्वेष को बढ़ा लेता है।

३. पात्रदान, व्रत, उपवास, शील, संयम, गुरुसेवा और धर्म की आराधना करना पुण्य बंध का कारण है।
४. शुभ भावों से सद्गति और अशुभ भावों से जीव की दुर्गति होती है।
५. अभयदान का फल सद्गति की प्राप्ति है।

....

(१६)
आहारदान की महिमा : अकृतपुण्य से धन्यकुमार

धन्यकुमार –

अवंतिदेश की उज्जयिनी नगरी में अवनिपाल नाम का राजा राज्य करता था। इसी नगरी में धनपाल नामक एक धनी वैश्य था। उसकी पत्नी का नाम प्रभावती था। उसके देवदत्त आदि सात पुत्र थे। उनमें कुछ शिक्षा प्राप्त कर रहे थे और कुछ व्यवसाय करते थे। एक दिन रात्रि के पिछले प्रहर में प्रभावती ने उन्नत श्वेत बैल, कल्पवृक्ष और चन्द्रमा आदि को अपने घर में प्रवेश करते हुए देखा। प्रात: पति से उसने सम्पूर्ण वृत्तांत कहा और फल जानना चाहा। धनपाल ने कहा – तुम्हारे वैश्य कुल में दानी और अपनी कीर्ति से सर्वलोक को धवलित करने वाला पुत्र उत्पन्न होगा। प्रभावती को प्रसन्नता हुई। जब पुत्र जन्म हुआ, उसकी नाल गाड़ने के लिये भूमि खोदी गई वहाँ धन से भरी हुई कढ़ाही निकली। नहलाने के लिये खोदे गये स्थान पर भी धन प्राप्त हुआ। पुत्र का जन्मोत्सव धूम-धाम से मनाया गया। उसके उत्पन्न होने पर सजातीय जन धन्य-धन्य अनुभव कर रहे थे, इसलिये उसका नाम धन्यकुमार रखा गया। कुछ ही वर्षों में वह उपाध्याय के समीप पढ़कर समस्त कलाओं में कुशल हो गया।

उसके दान, भोग आदि को देखकर देवदत्त आदि भाई कहते थे कि हम लोग तो कमाते हैं और धन्यकुमार उस द्रव्य को यों ही उड़ाता खाता है।

१. पुण्य प्रसंग : धन्यकुमार नौ निधि का स्वामी –

देवदत्त आदि की भावनाओं को देखकर प्रभावती ने सेठ से कहा कि धन्यकुमार को किसी व्यापार में लगाओ। सेठ ने उसे सौ मुद्रायें देकर दुकान पर बैठाते हुए कहा कि इस धन को देकर किसी दूसरी वस्तु खरीदना, फिर उसको देकर दूसरी वस्तु खरीदना, पश्चात् उसको भी देकर अन्य वस्तु को लेना, इस प्रकार का व्यवहार तब तक करना जब तक कि भोजन का समय न हो जाये। इस प्रकार अंतिम वस्तु को भृत्य के हाथों में देकर भोजन के लिये आ जाना। धन्यकुमार दूकान पर बैठा, उसने सौ मुद्रायें देकर लकड़ियों से भरी गाड़ी खरीदी। उसको देकर मेंढ़ा ले लिया, अंत में उसको भी देकर उसने खाट के चार पाये खरीद लिये।

उसके घर वापस आने पर माता ने उसकी प्रशंसा की। उसको प्रसन्न देखकर ज्येष्ठ पुत्रों ने कहा कि यह पहले ही दिन सौ मुद्रायें नष्ट करके आया है। फिर भी माँ इसकी तारीफ कर रही है और हम बहुत सा धन कमाकर लाते हैं फिर भी हमारी ओर देखती तक नहीं है। माँ ने सभी को भोजन कराया पश्चात् उन खाट के पायों को धोना प्रारम्भ किया। धोते समय उनमें से रत्न गिरे और एक भोज पत्र भी निकला। इस घटना से देवदत्त आदि का अहं नष्ट हो गया। वे पाये किसकी खाट के थे, वह पत्र किसने, कैसे लिखा था ? उसका

वृत्तांत इस प्रकार है –

किसी नगर में पुण्यवान वसुमित्र नाम का सेठ रहता था। पुण्योदयवश उसके घर में नौ निधियाँ उत्पन्न हुई थीं। एक दिन वसुमित्र ने अवधिज्ञानी मुनिराज से नौ निधियों का स्वामी कौन होगा ? यह जानना चाहा। मुनिराज ने कहा – उनका स्वामी धनपाल सेठ का पुत्र धन्यकुमार होगा। पश्चात् वसुमित्र सेठ ने घर आकर यह पत्र लिखा था – ''श्रीमान् महामंडलेश्वर अवनिपाल राजा के राज्य में, वैश्य कुल में श्रेष्ठ जो कोई धन्यकुमार नाम का उत्तम पुरुष होगा, वह मेरे घर के भीतर अमुक–अमुक स्थान में स्थित नौ निधियों को लेकर सुखपूर्वक जीवन बिताये, महती लक्ष्मी से उसका कल्याण हो।'' वसुमित्र ने इस पत्र को रत्नों के साथ खाट के पायों में रख दिया। वह सन्यास मरण कर स्वर्ग में गया। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके घर के सभी सदस्य मरी रोग अर्थात् प्लेग से ग्रसित हो गये। उनमें जिसकी सबसे अंत में मृत्यु हुई, उसका अग्नि संस्कार करने के लिये चांडाल उसी खाट पर रखकर उसे श्मशान में ले गये। धन्यकुमार ने उन पायों को चांडाल से ही खरीदा था। पत्र पढ़कर धन्यकुमार पत्र सहित राजा के पास गया और राजा से वसुमित्र सेठ का घर मांगा। वसुमित्र सेठ का घर प्राप्त कर वह नौ निधियों का स्वामी हो गया। राजमान्य होने से धन्यकुमार की कीर्ति चारों ओर फैल गई।

२. ईर्ष्या प्रसंग : धन्यकुमार से ईर्ष्या और उसका परदेश गमन –

धन्यकुमार की लोकप्रियता और सुंदरता देखकर किसी धनिक ने उसकी पुत्री के विवाह का प्रस्ताव धनपाल के समक्ष रखा। धनपाल ने आगंतुक सेठ से कहा कि तुम अपनी बेटी मेरे बड़े पुत्र के लिये दे दो किन्तु उसने इस बात को अस्वीकार कर दिया। सेठ के निश्चय को देखकर धन्यकुमार के सभी बड़े भाई इससे द्वेष करने लगे परन्तु धन्यकुमार को यह ज्ञात नहीं हो सका। एक दिन देवदत्त आदि सभी भाई धन्यकुमार को उद्यान में स्थित बाबड़ी में क्रीड़ा करने के लिये ले गये। धन्यकुमार बाबड़ी के किनारे पर बैठकर भाइयों की क्रीड़ा देखने लगा। इसी बीच किसी ने पीछे से आकर उसे बाबड़ी में ढकेल दिया। धन्यकुमार नवकार मंत्र का स्मरण करता हुआ बाबड़ी में जा गिरा। पश्चात् सभी भाइयों ने उसके ऊपर पत्थर आदि फेंके। सभी भाई उसे मरा हुआ समझकर घर चले गये। पुण्यवश देवताओं ने उसे जल के निकलने की नाली द्वारा बाबड़ी से बाहर निकाल दिया। नगर के बाहर पहुँच कर धन्यकुमार ने अपने भाइयों की असहनशीलता पर विचार किया। अंत में अब यहाँ अपना रहना उचित नहीं है, ऐसा समझकर वह देशांतर को चला गया।

३. पुण्य प्रसंग : धन्यकुमार और किसान –

मार्ग में जाते हुए धन्यकुमार ने एक किसान को भूमि जोतते हुए देखा। उसने विचार किया कि मैंने सब विज्ञानों का अभ्यास किया है परन्तु यह विज्ञान तो अपूर्व ही दिखता है। जिज्ञासावश वह किसान के पास पहुँचा और भूमि जोतने की क्रिया देखने लगा। उसके सुन्दर रूप को देखकर किसान को आश्चर्य हुआ और उसने धन्यकुमार से कहा कि मैं किसान हूँ, घर से दही और भात लाया हूँ, खाओगे क्या ? धन्यकुमार ने सहमति दे दी। किसान कुमार को हल के पास बैठाकर पत्तल के लिये पत्ते लेने चला गया। कुमार ने हल के मुठिया को पकड़कर बैलों को हांक दिया। हल के अग्रभाग अर्थात् फाल से कुछ भूमि विदीर्ण होने पर सोने से भरा हुआ तांबे का घड़ा निकला। उसे देखकर कुमार ने विचार किया कि इस नवीन विज्ञान के अभ्यास से बस

हो..... । यदि किसान देख लेगा तो अनर्थ कर डालेगा। ऐसा विचार कर, उसे मिट्टी से ढंककर चुपचाप बैठ गया। इतने में किसान पत्ता लेकर वापस आ गया। किसान ने कुमार को दही भात खिलाया। पश्चात् कुमार किसान से राजगृह जाने का मार्ग पूछकर आगे बढ़ गया।

किसान ने पुन: जोतना प्रारम्भ किया और चंद क्षणों में वह घड़ा निकल आया। किसान ने विचार किया कि यह तो उस कुमार का है, इसलिये उसी को देना चाहिये। वह घड़ा लेकर कुमार के पास पहुँचा। धन्यकुमार एक वृक्ष के नीचे बैठे थे। किसान ने उनके पास पहुँच कर कहा – आप अपने धन को छोड़कर क्यों चले आये हैं ? कुमार ने कहा – तुमने मुझे भोजन दिया, इससे वह द्रव्य मेरा कैसे हो गया ? किसान ने कहा – मेरे पूर्वज वर्षों से इस खेत को जोतते आ रहे हैं किन्तु आज तक कुछ नहीं निकला। आपके आने से ही यह द्रव्य निकला है इसलिये यह तुम्हारा ही है। कुमार ने कहा कि ठीक है, उसे मेरा ही समझो परन्तु मैं यह धन तुम्हारे लिये देता हूँ। किसान ने कुमार की कृपा समझकर उसे स्वीकार कर लिया। पश्चात् किसान ने कुमार को अपना परिचय देकर कहा कि मेरे द्वारा आपका कुछ प्रयोजन सिद्ध होता हो तो मुझे आज्ञा दीजिये। इस प्रकार प्रार्थना कर किसान वापस चला गया।

४. अतीत प्रसंग : अपने साथ घट रही घटनाओं का कारण, अकृतपुण्य और सुकृतपुण्य –

उस स्थान से कुमार आगे बढ़ गया, उसने एक अवधिज्ञानी मुनिराज के दर्शन किये। उन्हें नमस्कार कर धर्मश्रवण किया, पश्चात् उनसे पूछा कि मेरे भाई मुझसे किस कारण से द्वेष रखते हैं और माता क्यों स्नेह करती है ? इसके अतिरिक्त मैं जो विभूति प्राप्त कर रहा हूँ वह किस पुण्य के फल से मुझे प्राप्त हो रही है ?

उत्तर में मुनिराज ने कहा – मगधदेश में भोगवती नाम का गाँव है, वहाँ कामवृष्टि नाम का ग्रामपति [अर्थात् गाँव का स्वामी जमींदार] रहता था। उसकी पत्नी का नाम मृष्टदाना था। कामवृष्टि का सुकृतपुण्य नाम का एक सेवक था। मृष्टदाना के गर्भधारण करने पर कामवृष्टि की मृत्यु हो गई। जैसे-जैसे गर्भस्थ शिशु बढ़ता गया, वैसे-वैसे उसके कुटुम्बी जन भी मरते गये। प्रसूति के पश्चात् माता की माता अर्थात् नानी भी गुजर गई। अब गाँव का स्वामी सुकृतपुण्य हो गया। बालक के उत्पन्न होते तक विभिन्न दु:खद घटनाओं के कारण मृष्टदाना ने अपने नवजात बालक का नाम अकृतपुण्य रखा। पुण्य क्षीण होने के कारण मृष्टदाना दूसरों के घर पीसने आदि का कार्य करती हुई बालक का लालन-पालन करने लगी।

धन्यकुमार ने बीच में ही मुनिराज से पूछा – अकृतपुण्य बालक किस कारण से पुण्यहीन हुआ था ?

मुनिराज ने बतलाया कि भूतिलक नाम के नगर में जैन धर्म का पालक सम्पत्तिशाली धनपति वैश्य रहता था। उसने एक भव्य मंदिर बनवाया था, जिसमें छत्र, चंवर आदि रत्नमयी पदार्थ रखे थे। उसकी ख्याति सुनकर कोई दुर्व्यसनी मनुष्य कपट से ब्रह्मचारी बनकर, झूठा तप करने लगा और भ्रमण करते हुए भूतिलक नगर में आया। धनपति सेठ उसे विनयपूर्वक अपने मंदिर में ले गया और उसे समस्त उपकरणों का रक्षक बनाकर दूसरे द्वीप की यात्रा पर चला गया। इस बीच इस कपटी ब्रह्मचारी ने उन उपकरणों को बेचकर व्यसन एवं विषयों में धन खर्च कर डाला। पश्चात् दुर्व्यसन और चोरी के पाप के फल से उसका शरीर कोढ़ से गलने लगा, वह मरणासन्न हो गया। इसी समय धनपति सेठ भी लौटकर वापस आ गया। उसे देखकर मरणोन्मुख कपटी ब्रह्मचारी ने विचार किया कि यह यहाँ क्यों आ गया ? वहीं पर क्यों नहीं मर गया ? इस प्रकार रौद्र

ध्यान पूर्वक मरकर वह सातवें नरक में गया। वहाँ से निकलकर स्वयंभूरमण समुद्र में महामत्स्य हुआ। पश्चात् फिर से सातवें नरक में जा पहुँचा इस प्रकार छ्यासठ सागरोपम् काल तक नरक के दु:ख भोगकर, त्रस, स्थावर आदि पर्यायों में परिभ्रमण करता हुआ। अंत में अकृतपुण्य हुआ।

एक दिन अकृतपुण्य, सुकृतपुण्य के चनों के खेत पर जाकर उससे बोला कि मैं तुम्हारे चने की फसल काट देता हूँ, तुम मुझे क्या दोगे ? सुकृतपुण्य ने विचार किया कि इसके पिता के प्रसाद से मैं गाँव का मुखिया बना हूँ और दुर्भाग्यवश यह मुझसे अपेक्षा कर रहा है। उसने करुणा भाव से कुछ दीनारें उसको दीं परन्तु वे अकृतपुण्य के हाथ में पहुँचते ही अंगार बन गईं। अकृतपुण्य ने सुकृतपुण्य से कहा कि तुम सबको चने देते हो और मेरे लिये अंगारे! सुकृतपुण्य ने कहा अंगारे मुझे वापस दे दो और जितने चने तुमसे ले जाते बने उतने चने ले जाओ। अकृतपुण्य वस्त्र में पोटली बांधकर चने घर ले गया परन्तु छिद्र युक्त वस्त्र से आधे चने मार्ग में ही गिर गये। शेष बचे हुए चने उसने ले जाकर माता को दिये और सारा हाल कह सुनाया। माता को उसकी दीनता, दासता आदि की बात सुनकर बहुत दु:ख हुआ। पश्चात् वह उन्हीं चनों को मार्ग में नाश्ते के रूप में साथ में रखकर पुत्र के साथ उस नगर से निकल पड़ी।

५. प्रसंग, अतीत से वर्तमान तक : अकृतपुण्य, बलभद्र एवं सुव्रतमुनि को खीर का आहारदान–

माता मृष्टदाना अपने बालक अकृतपुण्य को लेकर चलते–चलते अवंती देश के अंतर्गत सीसवाक गाँव में पहुँची। उस गाँव के स्वामी का नाम बलभद्र था। ये दोनों उसके घर पहुँच गये। उसको देखकर बलभद्र ने उसके बारे में पूछा। मृष्टदाना ने अपनी परिस्थिति को उसे ज्यों का त्यों बतला दिया। सारी बात सुनकर बलभद्र ने कहा कि तुम मेरे घर पर भोजन बनाने का काम करो और तुम्हारा पुत्र बछड़ों का पालन करे। तुम दोनों के लिये मैं भोजन और रहने के लिये स्थान दूँगा। मृष्टदाना ने इसे स्वीकार कर लिया। वह प्रतिदिन भोजन बनाने का कार्य करने लगी।

बलभद्र के सात पुत्र थे। उनको प्रतिदिन खीर खाते हुए देखकर अकृतपुण्य अपनी माता से खीर मांगा करता था। उसके खीर मांगने पर बलभद्र के पुत्र उसे मारते थे। एक दिन बलभद्र ने उन्हें मारते हुए देखा। खीर खाने की इच्छा पूर्ण न होने से और बच्चों के द्वारा मार खाने से अकृतपुण्य का मुख सूज गया था। अकृतपुण्य की खीर खाने की इच्छा को देखकर बलभद्र ने एक दिन दूध, चावल और घी आदि सामग्री देकर मृष्टदाना से कहा – माता! तुम आज घर पर खीर बनाकर अकृतपुण्य को खिलाओ। वह सामग्री लेकर अपने घर चली गई। उसने अकृतपुण्य से कहा – पुत्र! आज तेरे लिये खीर खाने को दूँगी, तू जंगल से जल्दी वापस आ जाना। अकृतपुण्य बछड़ों को लेकर जंगल में चला गया। मृष्टदाना ने खीर तैयार की। अकृतपुण्य घर वापस आ गया। मृष्टदाना उसे घर की देख–भाल करने के लिये कहकर पानी लेने के लिये चली गई। जाते–जाते वह अकृतपुण्य से यह कह गई कि इस बीच कोई भिक्षुक (साधु) आये तो उसे जाने न देना। साधु को भोजन कराकर ही हम दोनों खीर खावेंगे।

थोड़ी ही देर में एक माह का उपवास समाप्त होने पर पारणा के लिये सुव्रत नाम के मुनिराज बलभद्र के घर पर आहार के लिये आये। उन्हें देखकर अकृतपुण्य ने विचार किया कि यह तो भिक्षुक ही नहीं महाभिक्षुक हैं, क्योंकि इनके पास तो वस्त्रादि भी नहीं हैं। मैं इन्हें नहीं जाने दूँगा। ऐसा विचार करके वह

उनके सामने आया और बोला – बाबा! मेरी माँ ने खीर बनाई है, आप खीर खाकर जाना। जब तक मेरी माँ नहीं आती है तब तक आप यहीं ठहरो। मुनिराज आगे बढ़ने लगे, अकृतपुण्य उनके दोनों पांव पकड़कर उनके चरणों में लिपट गया। उसने कहा कि मेरी माँ ने इतनी अच्छी खीर बनाई है, उसे खाने में तुम्हारा क्या जा रहा है। वह बालबुद्धि उनके चरणों को पकड़े रहा, इतने में मृष्टदाना ने दूर से ही देखकर कि मेरा बेटा साधु के चरणों में पड़ा है, भाव विभोर हो गई, उसकी खुशी का ठिकाना न रहा क्योंकि वर्षों बाद उसके घर में खीर बनी थी और साधु को आहार देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अत्यंत प्रमुदित भाव से उसने साधु का विधि पूर्वक पड़गाहन किया और निर्मल भावों सहित उन्हें आहारदान दिया। आहार देने से अकृतपुण्य को अत्यंत हर्ष हुआ। वह विचार कर रहा था कि यह देव मेरे घर पर भोजन कर रहा है इसलिये मैं धन्य हूँ। वह आहार को देखता हुआ हर्ष का अनुभव करता रहा और अपने को धन्य-धन्य मानता रहा।

सुव्रत मुनिराज अक्षीण महानस ऋद्धि के धारी थे इसलिये यदि उस रसोई का भोग चक्रवर्ती का कटक भी करता तो भी वह उस दिन समाप्त नहीं हो सकती थी। मुनिराज के आहार के पश्चात् मृष्टदाना ने सबको खीर का भोजन कराया। अकृतपुण्य से सबको बुला लाने के लिये कहा। उस दिन बलभद्र और उसके कुटुम्ब को भोजन कराया फिर भी खीर समाप्त नहीं हुई। उसने फिर गाँव की समस्त जनता के लिये खीर का भोजन कराया।

दूसरे दिन अकृतपुण्य बछड़ों को लेकर जंगल में गया। वहाँ वह एक वृक्ष के नीचे सो गया। इस बीच बछड़े स्वयं घर आ गये। बछड़ों को घर आया हुआ देखकर, साथ में पुत्र के न आने से मृष्टदाना रोने लगी। उसके आग्रह से बलभद्र दो-तीन सेवकों को साथ लेकर अकृतपुण्य को खोजने के लिये गया। अकृतपुण्य घर की ओर ही आ रहा था। वह बलभद्र को आता हुआ देखकर भय के कारण पहाड़ के ऊपर चढ़ गया।

अकृतपुण्य के न मिलने से बलभद्र घर वापस आ गया। अकृतपुण्य पहाड़ के ऊपर जाकर एक गुफा के द्वार पर पहुँचा। उस गुफा के भीतर वही सुव्रत मुनिराज वंदना के लिये आये हुए श्रावकों को धर्म का, व्रतों का स्वरूप और उनके फल का निरूपण कर रहे थे। अकृतपुण्य गुफा के बाहर बैठा हुआ, मुनिराज के वचनों को भाव विभोर होकर सुनता रहा। उसकी व्रतों के विषय में गाढ़ श्रद्धा हो गई। श्रावकजन धर्म श्रवण करने के पश्चात् मुनिराज को नमस्कार करके णमो अरिहंताणं कहते हुए गुफा से निकल गये। अकृतपुण्य भी णमो अरिहंताणं कहते हुए उनके पीछे-पीछे कुछ दूरी पर चल रहा था। इसी बीच अचानक एक व्याघ्र ने उस पर आक्रमण कर दिया। वह णमो अरिहंताणं कहता हुआ देह का त्यागकर सौधर्म स्वर्ग में महर्द्धिक देव हुआ। उसने वहाँ भव प्रत्यय अवधिज्ञान के द्वारा अपने दान आदि के फल को जानकर अत्यंत आनंद का अनुभव किया।

सुबह होने पर उसकी माता मृष्टदाना बलभद्र के साथ पहाड़ के ऊपर गई। वहाँ अकृतपुण्य के निर्जीव शरीर को देखकर उसे बहुत शोक हुआ, उस समय उसी देव ने आकर उसे सम्बोधित किया। मृष्टदाना को वैराग्य हो गया किन्तु पुत्र मोहवश 'जन्मांतर में भी यह मेरा पुत्र हो' ऐसा निदान कर लिया और आर्यिका दीक्षा धारण कर ली। मृष्टदाना तप के प्रभाव से उसी कल्प में देवी हुई। बलभद्र भी दीक्षित हुआ। वह भी तप को ग्रहण करने से उसी कल्प में देव हुआ। वहाँ दिव्य सुख को भोगकर बलभद्र का जीव वह देव वहाँ से च्युत

होकर धनपाल हुआ है और वह देवी, जो पूर्व भव में मृष्टदाना थी, वहाँ से आकर प्रभावती हुई है। पूर्व में जो बलभद्र के सात पुत्र थे, वे देवदत्त आदि धनपाल के सात पुत्र हुए हैं। अकृतपुण्य का जीव जो सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ था, वह वहाँ से आकर तुम, धन्यकुमार हुए हो। पूर्व भव में चूँकि तुम उनको मारने के भाव करते थे, इसलिये वे इस समय तुमसे द्वेष करते हैं। इस प्रकार उन अवधिज्ञानी मुनिराज से अपने पूर्व भवों के वृत्तांत को सुनकर धन्यकुमार ने उन्हें नमस्कार किया और वहाँ से आगे चल दिया।

६. पुण्य प्रसंग : धन्यकुमार और कुसुमदत्त माली –

धन्यकुमार राजगृह नगर में पहुँचा। नगर के बाहर अनेक सूखे वृक्षों वाले एक वन में उसने प्रवेश किया। उस वन का स्वामी कुसुमदत्त नाम का वैश्य पुत्र था, जो राजा के मालियों का नेता था। पूर्व में जब यह वन सूख गया था, तब उसने खिन्न होकर वन को काटकर नष्ट कर देने का विचार किया था किन्तु उसी समय कुसुमदत्त ने किसी अवधिज्ञानी मुनिराज से पूछा कि यह मेरा सूखा हुआ वन क्या फिर से हरा-भरा हो सकेगा ? मुनिराज ने बतलाया था कि जब कोई पुण्यशाली पुरुष आकर इस वन में प्रवेश करेगा, उसी समय यह वन हरा-भरा हो जावेगा। कुसुमदत्त तब से ही इस वन का संरक्षण कर रहा था। जैसे ही धन्यकुमार आकर इस वन में प्रविष्ट हुए वैसे ही सूखे तालाब निर्मल जल से तथा वृक्ष आदि पुष्पों से परिपूर्ण हो गये। धन्यकुमार ने अरिहंत सिद्ध भगवान का स्मरण करते हुए एक तालाब पर जाकर जल पिया और वहीं एक वृक्ष के नीचे बैठ गया।

कुसुमदत्त इस आश्चर्यजनक घटना को देखकर मुनिराज को मन ही मन नमस्कार करता हुआ आया और वन में उसने धन्यकुमार को देखकर उसे नमस्कार करते हुए पूछा कि तुम कहाँ से आये हो ? धन्यकुमार ने कहा कि मैं एक वैश्य पुत्र हूँ और देशांतर में भ्रमण कर रहा हूँ। कुसुमदत्त ने कहा कि मैं भी वैश्य हूँ और जैन हूँ। तुम मेरा आतिथ्य स्वीकार करो। धन्यकुमार ने उसका आतिथ्य स्वीकार कर लिया। कुसुमदत्त ने उसे घर ले जाकर कहा यह मेरा भगिनीपुत्र अर्थात् भानजा है। कुसुमदत्त की स्त्री ने उसकी समुचित व्यवस्था की।

कुसुमदत्त की पुष्पावती नाम की एक पुत्री थी, जो धन्यकुमार पर मुग्ध हो गई थी। एक समय उसने धन्यकुमार के आगे कुछ फूल और धागे लाकर रखे। धन्यकुमार ने उनकी एक अत्यंत सुन्दर माला बना दी। उस समय राजगृह नगर में श्रेणिक राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम चेलना था। उनकी गुणवती नाम की पुत्री थी। पुष्पावती, गुणवती के लिये प्रतिदिन माला ले जाकर देती थी। उस दिन वह धन्यकुमार के द्वारा बनाई हुई माला ले गई। गुणवती ने पुष्पावती से दो-तीन दिन नहीं आने का कारण पूछा। पुष्पावती ने बताया कि मेरे पिता का भानजा आया है इस कारण नहीं आ सकी। अत्यंत सुन्दर माला को देखकर गुणवती ने उससे पुनः पूछा कि इस अनुपम माला को किसने गूंथा है ? पुष्पावती ने गुणवती को सम्पूर्ण यथार्थ स्थिति बतला दी। गुणवती ने संतोष प्रकट किया।

७. पुण्य प्रसंग : धन्यकुमार, श्रीकीर्ति सेठ, राजा श्रेणिक और राक्षस भवन –

एक दिन धन्यकुमार किसी सेठ की सजी हुई दुकान को देखकर वहाँ बैठ गया, उस दिन सेठ को बहुत लाभ हुआ, सेठ ने यह समझा कि धन्यकुमार के आने से मुझे लाभ हुआ है, उसने धन्यकुमार से कहा मैं अपनी पुत्री तुम्हें देता हूँ। दूसरे दिन धन्यकुमार शालिभद्र वैश्य की दुकान पर जा बैठा, उसको भी बहुत लाभ

हुआ, शालिभद्र ने धन्यकुमार को अपनी बहन सुभद्रा देने के लिये कहा।

एक दिन राजसेठ श्रीकीर्ति ने नगर में यह घोषणा कराई कि जो वैश्य पुत्र एक दिन में एक कौड़ी के बदले एक हजार दीनार प्राप्त करके मुझे देगा, मैं उसके साथ अपनी पुत्री धनवती का विवाह कर दूँगा। धन्यकुमार ने इस घोषणा को स्वीकार कर लिया। वह अध्यक्ष के साथ जाकर उस कौड़ी को ले आया। उसने उस कौड़ी से मालाओं के रखने के साधनभूत तृणों को खरीदकर उन्हें मालियों को दे दिया और उनके बदले में उनसे फूलों को ले लिया। धन्यकुमार ने उन फूलों से अतिशय मालाएँ बनाकर वन क्रीड़ा के लिये जाते हुए राजकुमारों को दिखलाया। राजकुमारों ने उनका मूल्य पूछा। धन्यकुमार ने मूल्य एक हजार दीनार बताया। एक हजार दीनार देकर राजकुमारों ने उन मालाओं को खरीद लिया। एक दिन में एक कौड़ी से प्राप्त हुई एक हजार दीनारों को धन्यकुमार ने राजसेठ श्रीकीर्ति को सौंप दिया, उसने अपनी प्रतिज्ञानुसार अपनी पुत्री को देना स्वीकार कर लिया।

धन्यकुमार की अतिशय कीर्ति सुनकर गुणवती मन ही मन मुग्धता पूर्ण चिंतन के कारण शरीर से कृष होने लगी। एक बार धन्यकुमार ने द्यूतक्रीड़ा में मंत्रियों के सभी पुत्रों को जीत लिया था। वहाँ के राजा श्रेणिक का पुत्र अभयकुमार ज्ञान मद से उन्मत्त था। चन्द्रक वेध्य को वेधकर कुमार ने उसे भी जीत लिया था। इसलिये ये सब बैर भाव बस धन्यकुमार को मार डालने के विचार करते रहते थे।

गुणवती के दुर्बल होने के कारण को जानकर श्रेणिक ने अभयकुमार आदि के साथ विचार किया, अभयकुमार ने कहा धन्यकुमार के लिये गुणवती देना योग्य नहीं है, क्योंकि उसके कुल के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। श्रेणिक ने कहा कि ऐसी स्थिति में तो पुत्री मृत्यु को प्राप्त हो जावेगी। अभयकुमार ने कहा कि जब तक धन्यकुमार जीवित है तब तक कुमारी का दु:ख रहेगा, धन्यकुमार के मर जाने पर गुणवती दु:ख से मुक्त हो सकती है, परन्तु वह निरपराध है, उसे उपाय से मारना उचित होगा। उपाय यह है कि नगर के बाहर जो राक्षस भवन है उसमें प्रविष्ट होकर पूर्व में बहुत से मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं इसलिये 'जो कोई राक्षसभवन में प्रवेश करेगा, उसके लिये मैं आधा राज्य देकर गुणवती के साथ उसका विवाह करूँगा।' ऐसी आप नगर में घोषणा करा दीजिये। निर्धारित योजना के अनुसार राजा ने घोषणा करवा दी। घोषणा के पश्चात् सबके रोकने पर भी धन्यकुमार राक्षसभवन में प्रविष्ट हुआ। उसको देखते ही राक्षस शांत हो गया। उसने धन्यकुमार को नमस्कार किया, दिव्य आसन पर बैठाकर कहा कि हे स्वामिन्! मैं इतने समय तक आपका भंडारी होकर इस भवन और धन की रक्षा कर रहा था, आप आ गये, इसको अब आप स्वीकार कीजिये, ऐसा कहकर राक्षस ने विशाल भवन और अटूट धन संपदा धन्यकुमार के लिये समर्पित कर दी। अंत में वह यह निवेदन करके कि 'मैं आपका सेवक हूँ, आप जब भी मेरा स्मरण करेंगे, मैं उपस्थित हो जाऊँगा।' इतना कहकर वह अदृश्य हो गया। धन्यकुमार ने रात्रि विश्राम वहीं किया। गुणवती आदि सभी कन्याओं ने यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि जो अवस्था धन्यकुमार की होगी, वही अवस्था हमारी भी होगी।

प्रात:काल धन्यकुमार राक्षसभवन से निकलकर नगर की ओर आ रहा था। उसे देखकर राजा को और नगर निवासियों को बहुत आश्चर्य हुआ। राजा श्रेणिक, अभयकुमार आदि कुछ लोगों के साथ धन्यकुमार के स्वागतार्थ आधे मार्ग तक आये। पश्चात् राजा श्रेणिक ने धन्यकुमार को राजभवन ले जाकर उसके कुल के

सम्बंध में पूछा। कुमार ने कहा – मैं उज्जयिनी का रहने वाला वैश्य पुत्र हूँ। देशाटन और तीर्थयात्रा के लिये निकला हूँ। राजा श्रेणिक ने गुणवती आदि सोलह कन्याओं के साथ उसका विवाह कर दिया और साथ में आधा राज्य भी दे दिया। धन्यकुमार उस भवन के चारों ओर नगर की रचना करवाकर सुखपूर्वक राज्य करने लगा।

८. विरह और मिलन प्रसंग : धन्यकुमार और परिवार –

इधर, उज्जयिनी में धन्यकुमार के अदृश्य हो जाने पर, उसके देशांतर चले जाने पर राजा आदि सभी को बहुत दु:ख हुआ। माता–पिता की अवस्था का तो पूछना ही क्या है ? नव निधियों की रक्षा करने वाले देवों ने पुत्रों सहित उन दोनों को रात में ही बाहर निकाल दिया। वे अपने पहले वाले घरों में रहने लगे। यह देखकर नगरवासियों को बहुत आश्चर्य हुआ। कुछ दिनों के पश्चात् धनपाल के लिये भोजन भी दुर्लभ हो गया। एक दिन धनपाल राजगृह नगर में अपने भानजे शालिभद्र के पास कुछ अपेक्षा लेकर पहुँचे, वहाँ पहुँचकर वह धन्यकुमार के भवन के सामने खड़े होकर शालिभद्र के घर का पता पूछने लगा। उस समय धन्यकुमार राजा सभा भवन में बैठे हुए थे। उन्होंने अपने पिता को पहचान लिया, दौड़े हुए आए, पिता को प्रणाम किया। इस घटना को सभी आश्चर्यपूर्वक देखने लगे। वे दोनों एक दूसरे के गले लगकर रो पड़े।

धन्यकुमार ने अपना सम्पूर्ण वृत्तांत पिता को सुनाया और अपनी माता आदि के कुशल समाचार पूछे। उत्तर में पिता ने कहा जीते तो सब हैं, परन्तु वह सुख अब नहीं रहा, भोजन का मिलना भी दुर्लभ हो गया है। यह जानकर धन्यकुमार ने सबको आने के लिये सवारी आदि का इंतजाम किया। प्रभावती आदि सभी कुटुम्बीजन राजगृह आ गये। धन्यकुमार सम्मानपूर्वक सबको लेने के लिये नगर के बाहर तक गया। उसने माता के पश्चात् भाइयों को प्रणाम किया। उन सबने लज्जा से अपना मुख नीचे कर लिया। तब धन्यकुमार ने कहा – हे भाइयो ! आप लोगों की कृपा से मुझे राज्य की प्राप्ति हुई है। इसलिये आप सब निश्‍चिंत रहें। सभी भाइयों को अपने कृत्य पर बहुत पश्चात्ताप हुआ। धन्यकुमार सभी को नगर में ले गया और यथायोग्य गाँव आदि दिये।

एक दिन सुभद्रा का मलिन मुख देखकर धन्यकुमार ने पूछा कि प्रिये ! तुम्हारा मुख मलिन क्यों हो रहा है ? उसने कहा कि मेरा भाई शालिभद्र घर में रहकर ही वैराग्य का चिंतन कर रहा है, इससे मैं दुखी हूँ। धन्यकुमार ने सुभद्रा से कहा तुम दु:ख का परित्याग करो मैं जाकर उसको सम्बोधित करता हूँ।

धन्यकुमार अपने साले शालिभद्र के घर पहुँचे और पूछा कि आजकल तुम मेरे घर पर क्यों नहीं आते हो ? शालिभद्र ने कहा कि मैं तप का अभ्यास कर रहा हूँ, इसलिये तुम्हारे घर नहीं पहुँच पाता हूँ। धन्यकुमार ने कहा कि तुम तप का यहीं रहते हुए अभ्यास करो। मैं जाकर उस तप को ग्रहण करता हूँ। ऐसा कहकर वह अपने घर आ गया।

धन्यकुमार ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य देकर, राजा श्रेणिक आदि सभी से क्षमा माँगी और माता–पिता, भाइयों सहित वर्धमान भगवान के समवशरण में जाकर जिनदीक्षा धारण कर ली। उसने दीर्घकाल तक तपश्चरण किया। अंत में नौ माह तक संल्लेखना पूर्वक देह का त्याग किया और सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ। धनपाल आदि भी सद्गति को प्राप्त हुए।

इस प्रकार बछड़ों को चराने वाला अकृतपुण्य भी जब एक बार मुनि को आहारदान की अनुमोदना करने से ऐसी विभूति को प्राप्त हुआ, तब क्या अन्य विवेकवान जीव वैसी विभूति को प्राप्त नहीं होंगे! अवश्य होंगे, क्योंकि आहारदान की ऐसी ही महिमा है।

शिक्षा -

१. दानं दुरित नाशाय, शीलं सौभाग्य वर्द्धनं। तपः कर्म विनाशाय, भावना भव नाशिनी।।
दान से पाप नष्ट होते हैं। शील का पालन करने से सौभाग्य बढ़ता है। तप करने से कर्मों की निर्जरा होती है। भावना से भव का नाश हो जाता है।

२. पुण्यात्मा जीव के प्रति कोई कितनी ही ईर्ष्या करे, उसका अहित करना चाहे, किन्तु उसका अहित नहीं होता।

३. पूर्व जन्म में किये गये दान आदि शुभ कार्यों से उपार्जित पुण्य के फलस्वरूप जीव जन्म-जन्म में सुखद संयोग प्राप्त करता हुआ, उत्तम गति का पात्र होता है।

४. सज्जन, सच्चरित्रवान सत्पुरुष अन्याय पूर्वक किसी की वस्तु ग्रहण नहीं करते। धर्मायतन के द्रव्य का उपभोग करने वाला दरिद्र हो जाता है।

५. विवेकवान धर्मात्मा पुरुष धर्म के प्रति समर्पित रहते हुए, वर्तमान जीवन में कर्म संयोगों की विचित्रता का चिंतन करते हुए अपने कर्तव्य कर्मों का निर्वाह करते हुए वैराग्य भावना भाते हैं। कर्म के उदयवश जीव को सुख-दु:ख आदि की प्राप्ति होती है, ऐसा विचार कर अपने प्रति अपकार करने वाले जीवों का भी वे उपकार करते हैं।

....

(१७)

रात्रिभोजन त्याग व्रत

मगध देश में सुप्रतिष्ठपुर नाम का नगर था। वहाँ जयसेन राजा राज्य करते थे, वे धर्मज्ञ, नीतिपरायण और प्रजा हितैषी थे। इसी नगर में धनमित्र नाम का एक सेठ रहता था। इसकी स्त्री का नाम धनमित्रा था। दोनों ही धर्म के प्रति पूर्ण समर्पित रहते हुए सत्कार्यों में प्रवृत्त रहते थे। एक दिन अवधिज्ञानी सागरसेन मुनिराज को आहार देकर सेठ दम्पत्ति ने उनसे पुत्र सुख के सम्बंध में पूछा। सागरसेन मुनिराज ने उनसे कहा कि तुम्हें एक महाभाग कुलभूषण पुत्र रत्न की प्राप्ति होगी। वह तेजस्वी होगा और उसके द्वारा अनेक प्राणियों का उद्धार होगा और वह इसी भव से मोक्ष जाएगा। मुनिराज की भविष्यवाणी सुनकर दोनों को अपार हर्ष हुआ। सेठ दम्पत्ति का अब अधिकांश समय दान पुण्य आदि कार्यों में व्यतीत होने लगा। कुछ दिनों बाद ही धनमित्रा ने एक प्रतापी पुत्र प्रसव किया। सेठ ने पुत्र जन्म के उपलक्ष्य में बहुत उत्सव किया। इस नवजात शिशु को देखकर सबको अत्यंत प्रीति हुई इसलिये इसका नाम प्रीतिंकर रख दिया गया। प्रीतिंकर जब पाँच वर्ष का हुआ तब पिता ने इसको गुरु के पास विद्यार्जन करने के लिये भेज दिया। वह तीक्ष्ण बुद्धिमान था और अल्प समय में ही योग्य विद्वान बन गया। गुरु सेवा रूपी नाव के द्वारा इसने शास्त्र रूपी समुद्र का अधिकांश भाग पार कर लिया। इसकी विद्वत्ता, निरभिमानिता, विनम्रता, धर्मज्ञता, वात्सल्य, उदारता, सज्जनता आदि अनेक गुणों की

लोगों में चर्चाएँ होती थीं। ऐसा गुणवान पुत्र जिसका महाराज जयसेन ने भी प्रसन्नता पूर्वक सम्मान किया।

यद्यपि प्रीतिंकर को धन-दौलत की कोई कमी नहीं थी, फिर भी उसने धनोपार्जन करने का निर्णय लिया। कुछ वर्षों तक विदेश में रहकर धन और कीर्ति भी उपार्जित की। बहुत दिनों बाद अपना सब माल असबाब लेकर अपने माता-पिता के पास वापस लौट आया।

जयसेन महाराज को प्रीतिंकर का विवेकपूर्ण कार्य, पुण्यमय वृत्ति और प्रसिद्धि सुनकर उससे अत्यंत प्रेम हो गया। उन्होंने अपनी पुत्री पृथ्वीसुन्दरी और एक अन्य देश से आई हुई वसुन्धरा तथा और भी सुन्दर-सुन्दर राजकुमारियों का प्रीतिंकर के साथ विवाह कर दिया। जयसेन ने उसको अपना आधा राज्य भी दे दिया। प्रीतिंकर अपने व्यवहारिक धार्मिक कर्तव्यों का पालन करते हुए निरंतर आत्म आराधन में संलग्न रहने लगे।

एक बार सुप्रतिष्ठपुर के मनोज्ञ बगीचे में सागरसेन नाम के मुनिराज आकर ठहरे थे, संयोगवश उनकी वहीं समाधि हो गई थी। उनके पश्चात् कुछ दिनों बाद पुनः उसी बगीचे में ऋजुमति और विपुलमति नाम के चारण ऋद्धिधारी दो मुनिराज पधारे। प्रीतिंकर अनेक भव्यजनों के साथ उनके दर्शनार्थ उपस्थित हुए। उन्होंने ऋजुमति मुनिराज से उपदेश देने की प्रार्थना की। ऋजुमति मुनिराज ने कहा – **धर्म उसे कहते हैं जो जीव को संसार के दु:खों से बचाकर उत्तम सुख में स्थित कर दे। वह धर्म रत्नत्रय स्वरूप है। उसकी साधना आराधना हेतु मुनिधर्म और श्रावक धर्म कहे गये हैं। श्रावक धर्म के अंतर्गत पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत का पालन किया जाता है। इसके साथ ही श्रावक दया, दान, परोपकार आदि सत्कर्मों में संलग्न रहता है। वह सात व्यसन का त्यागी और अष्ट मूलगुणों का पालन करने वाला होता है।**

श्रमण धर्म जिसे मुनिधर्म कहा जाता है। इसके अंतर्गत साधुपद में पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति के पालन सहित साधु उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि दशलक्षण धर्म की आराधना करता है। रत्नत्रय का साधक होता है। राग-द्वेष का त्यागी और उपसर्ग विजेता होता है। साधु पद से ही सिद्ध पद की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार मुनिराज से धर्म का उपदेश श्रवण कर अनेक जीवों ने अणुव्रत आदि के नियम लिये। प्रीतिंकर ने मुनिराज को नमस्कार कर अपने पूर्व भव के बारे में वृत्तांत सुनाने की प्रार्थना की। मुनिराज ने इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया –

''प्रीतिंकर! इसी बगीचे में सागरसेन नाम के एक तपस्वी मुनिराज आकर ठहरे थे। उनके दर्शन के लिये राजा अपने प्रजाजनों को साथ लेकर बाजे-गाजे और आनंद उत्सव के साथ आये थे। वे मुनिदर्शन कर वापस लौट गये। एक सियार ने बाजे आदि के शब्दों को सुनकर यह समझा कि ये लोग किसी मुर्दे को डालकर गये हैं, अत: वह उसे खाने के लिये आया। सियार को आता हुआ देखकर अवधिज्ञानी मुनिराज ने जान लिया कि यह मुर्दे को खाने के अभिप्राय से इधर आ रहा है। यह भव्य जीव है, व्रतों को धारण कर मोक्ष जायेगा। ऐसा विचार कर मुनिराज ने उसे समझाते हुए कहा – अज्ञानी पशु! तुझे मालूम नहीं कि पाप का परिणाम बहुत बुरा होता है। पाप के फल से ही तुझे इस पर्याय में आना पड़ा है। अब तू पाप से मुंह न मोड़कर मुर्दे को खाने के लिये इतना व्यग्र हो रहा है। यह कितने आश्चर्य की बात है। हे भव्य! तूने सत्य धर्म को समझे बिना संसार

में अनंत कष्ट उठाये हैं। अब पुण्य पथ पर चल और अपने कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर। सियार की होनहार अच्छी थी, उसकी काललब्धि आ गई थी। यही कारण था कि वह मुनिराज के समझाने पर शांत हो गया। मुनिराज ने कहा कि तू और व्रतों को धारण नहीं कर सकता इसलिये मात्र रात्रि में खाना-पीना ही छोड़ दे। यह व्रत सर्व व्रतों का मूल है, सुख को देने वाला है। सियार ने मुनिराज से रात्रि भोजन त्याग का व्रत ग्रहण कर लिया। कुछ दिनों बाद उसने मांस आदि भी छोड़ दिया। जो कुछ सहजता से मिल जाता, उसी को खाकर संतोष करता। इस प्रकार कभी खाने को मिले और कभी न मिले इस कारण वह दुर्बल हो गया। एक दिन उसे सूखा सा भोजन खाने को मिला। गर्मी का समय था। इसे बहुत जोर की प्यास लगी। बीहड़ वन में पानी की तलाश में सियार एक बाबड़ी में पानी पीने के लिये उतरा। बियावान वन होने के कारण नीचे उतरते ही उसे घोर अंधकार दिखाई देने लगा। उसने सोचा रात्रि हो गई है, इस कारण बिना पानी पिये ही ऊपर आ गया। ऊपर आकर उसे प्रकाश दिखा, वह फिर पानी पीने के लिये गया किन्तु पहले जैसा अंधेरा देखकर रात्रि होने के भ्रम से फिर वापस लौट आया। इस प्रकार कितनी ही बार वह बाबड़ी में नीचे गया और वापस लौट आया किन्तु पानी नहीं पी पाया। प्यास की पीड़ा तीव्र थी किन्तु सियार अपने व्रत में दृढ़ रहा। उसके परिणाम क्लेश रूप नहीं हुए, अंत में वह समताभाव पूर्वक देह का त्याग कर मृत्यु को प्राप्त हुआ। वह सियार का जीव ही धनमित्र और उसकी स्त्री धनमित्रा से तू प्रीतिंकर पुत्र हुआ है। तेरा यह अंतिम शरीर है। तू कर्मों का नाश कर इसी जन्म से मोक्ष को प्राप्त करेगा।''

मुनिराज द्वारा प्रीतिंकर के पूर्व जन्म का वृत्तांत सुनकर उपस्थित जीवों को धर्म की अचल श्रद्धा हुई। प्रीतिंकर को अपना पूर्व वृत्तांत जानकर तीव्र वैराग्य हुआ। उसे अब संसार क्षणभंगुर, भोग रोगवत्, शरीर दुःखों का घर और संपत्ति बिजली की तरह चंचल दिखाई देने लगी। अंत में प्रीतिंकर अपने पुत्र प्रियंकर को राज्यभार सौंपकर अपने बंधु बांधवों की सम्मति पूर्वक योग धारण करने के लिये विपुलाचल पर्वत पर भगवान महावीर स्वामी के समवशरण में पहुँचा और वहीं जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। साधु होने के पश्चात् प्रीतिंकर मुनिराज ने घोर तपश्चरण कर घातिया कर्मों का नाश कर केवलज्ञान को प्राप्त किया। केवलज्ञान के द्वारा वे जगत के समस्त पदार्थों को हाथ की रेखाओं के समान प्रत्यक्ष जानने लगे। अंत में उन्होंने समस्त अघातिया कर्मों को क्षय कर सिद्ध पद को प्राप्त किया।

शिक्षा -

१. जो लोग रात्रि में भोजन करते हैं, वे अनेक प्रकार की व्याधियों से ग्रसित रहते हैं।
२. रात्रि में भोजन करने से अनेक सूक्ष्म जीवों की हिंसा होती है, विषैले कीटाणु भोजन के साथ शरीर में चले जाते हैं जिससे रोग भी हो जाते हैं।
३. व्रत नियम लेकर उसका दृढ़तापूर्वक पालन करने से ही लक्ष्य की प्राप्ति होती है।
४. होनहार जैसी होती है, जीव को वैसे ही निमित्त मिलते हैं और उसी के अनुसार परिणमन घटित होता है।
५. एक नियम के संस्कार से जीव क्रमशः श्रेष्ठताओं को प्राप्त करता हुआ सिद्धत्व को प्राप्त कर लेता है। एक नियम काफी है आदमी उठाने को, एक करम काफी है नजर से गिराने को।

....

(१८)
लोभ ने बनाया फणहस्त

चम्पापुरी में राजा अभयवाहन राज्य करते थे, इनकी रानी का नाम पुण्डरीका था। इसी नगरी में लुब्धक नाम का एक सेठ रहता था। नागवसु उसकी स्त्री थी। लुब्धक के दो पुत्र थे – गरुड़दत्त और नागदत्त।

लुब्धक के पास बहुत धन था। उसने बहुत खर्च करके यक्ष, पक्षी, हाथी, ऊंट, घोड़ा, सिंह, हिरण आदि पशुओं की सोने की एक-एक जोड़ी बनवाई थी। इनके सींग, खुर, पूँछ आदि में बहुमूल्य हीरा, मोती, माणिक आदि रत्नों को जड़वाकर लुब्धक ने देखने वालों के लिये एक नया ही आविष्कार कर दिया था, जो भी इन जोड़ियों को देखता वह लुब्धक की तारीफ किये बिना नहीं रहता। स्वयं लुब्धक भी इस जगमगाती प्रदर्शनी को देखकर अपने को धन्य मानता था। लुब्धक को थोड़ा सा दुःख केवल इस बात का रहता था कि उसने बैल की एक जोड़ी बनाना प्रारम्भ किया था और सोने का एक बैल बन भी चुका था किन्तु सोना न रहने के कारण लुब्धक दूसरा बैल नहीं बनवा सका। इसके लिये वह निरंतर प्रयत्नशील रहता था।

एक बार सात दिन तक पानी बरसता रहा। नदी-नाले पूर आ गये पर कर्मवीर लुब्धक ने ऐसे समय में भी अपना प्रयास नहीं छोड़ा। वह बहती नदी में से लकड़ियाँ निकाल कर गट्ठर बनाकर सिर पर लादकर ला रहा था। रानी पुण्डरीका अपने महल पर बैठी हुई प्रकृति की शोभा निहार रही थी, महाराज अभयवाहन भी वहीं थे। लुब्धक को सिर पर भारी गट्ठा लाद कर लाते हुए देखकर रानी ने अभयवाहन से कहा कि आपके राज्य में यह कोई दरिद्री पुरुष है, आप इसकी सहायता कीजिए जिससे इसका कष्ट दूर हो जाये। राजा ने सैनिकों को भेजकर लुब्धक को बुलवाया और उससे कहा कि तुम्हारी परिस्थिति से मैं चिंतित हूँ। तुम्हें जितने रुपये पैसे की जरूरत हो, खजाने से ले जाओ। लुब्धक ने कहा – महाराज! मुझे और कुछ नहीं चाहिये, मात्र एक बैल की जरूरत है, उसकी जोड़ी मुझे मिलाना है। राजा ने उसकी गऊशाला में जितने भी बैल थे, उन सबको देख आने के लिये लुब्धक को भेजा। लुब्धक ने वापस आकर महाराज को कहा कि आपके बैलों में मेरे बैल जैसा एक भी बैल मुझे दिखाई नहीं दिया। राजा ने लुब्धक से आश्चर्य पूर्वक कहा – तुम्हारा बैल कैसा है, यह मैं नहीं समझा! क्या तुम अपना बैल मुझे दिखाओगे ? लुब्धक खुशी-खुशी महाराज को बैल दिखाने के लिये अपने घर पर ले गया। राजा को सोने का बैल एवं जगमगाती प्रदर्शनी देखकर बहुत अचम्भा हुआ। जिसे उन्होंने दरिद्री समझा था, वह इतना धनी हो सकता है, यह उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था।

लुब्धक की स्त्री नागवसु महाराज को अपने घर आया हुआ देखकर अतीव प्रसन्न हुई। उसने महाराज को भेंट में देने के लिये सोने का थाल, बहुमूल्य सुन्दर-सुन्दर रत्नों से सजाया और अपने स्वामी को देकर कहा कि इस थाल को महाराज को भेंट कीजिये। रत्नों का थाल देखकर लुब्धक की तो छाती बैठ गई, परन्तु महाराज पास ही थे, इसलिये वह थाल उसे हाथों में लेना पड़ा। थाल को हाथों में लेते ही उसके दोनों हाथ थर-थर काँपने लगे। जैसे ही थाल महाराज को देने के लिये हाथ आगे बढाये तो लोभ के मारे उसकी अंगुलियाँ महाराज को सांप के फण की तरह दिखाई पड़ीं। राजा को उसके ऐसे बर्ताव पर नफरत हुई। वे उसका नाम 'फणहस्त' रखकर अपने महल पर आ गये।

लुब्धक की दूसरा बैल बनाने की आकांक्षा पूरी नहीं हुई थी। वह उसके लिये धन कमाने को सिंहल

द्वीप गया। लगभग चार करोड़ का धन कमाया। जब वह अपना धन, माल-असबाब जहाज पर लादकर वापस लौट रहा था। समुद्र में अचानक तूफान पर तूफान आने लगे, एक जोर की आँधी आई, और देखते ही देखते जहाज समुद्र में समा गया। लुब्धक आर्तध्यान से मरकर अपने धन का रक्षक सांप हुआ। वह उसमें से एक कौड़ी भी किसी को नहीं लेने देता था।

एक सर्प को अपने धन पर बैठा हुआ देखकर लुब्धक के बड़े लड़के गरुड़दत्त को ऐसा क्रोध आया कि उसने सर्प को मार डाला। धन की आसक्ति और अशुभ भावों से मरकर सर्प का जीव चौथे नरक में गया।

शिक्षा -

१. लोभी व्यक्ति का मन हमेशा अशांत रहता है।
२. अपने मनोगत लोभ की पूर्ति करने के लिये व्यक्ति कर्तव्य-अकर्तव्य के विवेक को भी खो बैठता है।
३. जीव के साथ परभव में कोई सांसारिक वस्तु नहीं जाती तब तो यह इतना लोभ और परिग्रह करता है, यदि थोड़ा बहुत भी साथ जाता होता तब न जाने क्या करता!
४. लोभी जीव, लोभ के कारण जन्म-जन्म में दु:ख और क्लेश भोगता है।
५. आचार्य श्रीमद् जिन तारण स्वामी जी ने कहा है कि लोभ करना है तो जिनेन्द्र भगवान के कहे अनुसार वस्तु स्वरूप को प्राप्त करने का लोभ करो, इससे सांसारिक लोभ की मुक्ति हो जायेगी और तुम्हारी संसार से मुक्ति हो जाएगी।

....

(१९)

परिणामों का उतार-चढ़ाव

मगधदेश के अंतर्गत लक्ष्मी नगर में सोमशर्मा ब्राह्मण रहता था। इसकी स्त्री का नाम लक्ष्मीमती था। वह गुणवान थी किन्तु उसे अपनी जाति का बहुत अभिमान था और अपने आपको श्रृंगारित करने में व्यस्त रहती थी और इससे संतुष्टि का अनुभव करती थी। एक दिन पन्द्रह दिन के उपवास किये हुए समाधिगुप्त मुनिराज आहार के लिये आये। सोमशर्मा ने मुनिराज को आहार कराने के लिये उच्चासन पर विराजमान किया। उसे किसी काम की जल्दी थी इसलिये अपनी स्त्री से मुनिराज को आहार करा देने के लिये कहकर वह बाहर चला गया।

ब्राह्मणी लक्ष्मीमती बैठी-बैठी कांच में अपना मुख निहार रही थी। उसे मुनि को आहार देना अपनी श्रृंगार सम्बंधी व्यवस्था में बाधक लगा। इस कारण उसने मुनिराज को अभिमान में आकर बहुत भला-बुरा कहा, उनकी निन्दा की और दरवाजा बंद कर लिया। मुनिराज वीतरागी, शांत स्वभावी, उच्च चारित्र के धारक थे। वे ब्राह्मणी की बात पर ध्यान दिये बिना जंगल की ओर चले गये।

मुनि निन्दा के पाप के फलस्वरूप लक्ष्मीमती को थोड़े ही दिन बाद कोढ़ का रोग हो गया। लक्ष्मीमती की बुरी हालत देखकर घर के लोगों ने उसे घर से बाहर कर दिया। यह कष्ट पर कष्ट उससे सहा नहीं गया। इस कारण एक दिन उसने अग्नि में बैठकर आत्मघात कर लिया। आर्तध्यान के कारण वह इसी गाँव में एक

धोबी के यहाँ गधी हुई। इस दशा में उसे दूध पीने को नहीं मिला। इस कारण वह मरकर सुअरी हुई। दो बार कुत्ती की पर्याय में गई। इस दशा में वन की दावाग्नि में जलकर मरी और नर्मदा के किनारे भृगुकच्छ गाँव में एक मल्लाह के यहाँ काणा नाम की लड़की हुई। उसका शरीर जन्म से ही दुर्गन्धित था। कोई उसके पास बैठना भी नहीं चाहता था। अभिमान का फल बड़ा विचित्र है। कहाँ लक्ष्मीमती ब्राह्मणी और जाति के अभिमान के कारण मल्लाह के घर में जन्म लिया।

एक दिन काणा लोगों को नाव द्वारा नदी पार करा रही थी। उसने अचानक नदी किनारे पर तपस्या करते हुए उन्हीं मुनि को देखा, जिनकी लक्ष्मीमती की पर्याय में इसने निन्दा की थी। काणा ने उन मुनिराज को नमस्कार करके पूछा – प्रभो! मुझे याद आता है कि मैंने आपको कहीं देखा है। मुनिराज ने कहा – बच्ची! तू पूर्व जन्म में ब्राह्मणी थी। तेरा नाम लक्ष्मीमती और तेरे भर्ता का नाम सोमशर्मा था। तूने अभिमान वश मुनि निन्दा की थी, और इसके पश्चात् जो-जो कुछ हुआ वह मुनिराज ने उसे कोढ़ का निकलना, मृत्यु को प्राप्त होना, गधी, सुअरी, दो बार कुत्ती आदि होकर कुत्ती की पर्याय से यहाँ मल्लाह के घर में जन्म हुआ है इत्यादि वृत्तांत जैसे का तैसा कह सुनाया। अपने पूर्वभव का सम्पूर्ण वृत्तांत सुनकर काणा को जाति स्मरण ज्ञान हो गया।

काणा ने मुनिराज से प्रार्थना की कि मैंने साधु महात्माओं की निन्दा करके निकृष्ट कार्य किया है, बहुत पाप का उपार्जन किया है, मुझे दुर्गति में जाने से बचाइये। मुनिराज ने उसे धर्म का उपदेश दिया जिससे उसे वैराग्य जागृत हो गया। उसने वहीं क्षुल्लिका की दीक्षा ग्रहण कर ली, पश्चात् अपनी शक्ति अनुसार कठोर तप किया और अंत में शुभ भावों से देह का त्याग कर स्वर्ग गई। स्वर्ग से आकर कुण्डनगर के राजा भीष्म की महारानी यशस्वती से रूपिणी नाम की सुन्दर कन्या हुई, उसका विवाह वासुदेव के साथ हुआ।

शिक्षा –

१. अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव दूसरों के दोष देखता है, दूसरों की बुराई करता है और नीच गोत्र का बंध कर संसार में भटकता है।
२. पाप के उदय में कोई किसी का साथी नहीं होता। जिन्हें हम अपना मानते हैं, पाप का उदय आने पर वे भी किनारा कर लेते हैं।
३. वीतरागी संतों को निन्दा प्रशंसा प्रभावित नहीं करती। ऐसी उत्कृष्ट वीतरागता ही मोक्ष को प्राप्त कराती है।
४. मुनिनिन्दा से उपार्जित पाप के फलस्वरूप उच्चकुल वाले जीव को भी अनेकों नीच पर्यायों में जन्म लेना पड़ता है।
५. होनहार भली हो तभी जीव को अपने किये हुए पापों के प्रायश्चित करने का भाव मन में आता है और तभी कल्याण का मार्ग भी बनता है।

....

(२०)
करनी का फल भोग, पाई मुक्तिश्री

गुरुदत्त, हस्तिनापुर के राजा विजयदत्त की रानी विजया के पुत्र थे। विजयदत्त एक दिन गुरुदत्त को राज्य सौंपकर साधु हो गये और आत्म साधना करने लगे। गुरुदत्त ने न्याय नीति और कुशलता पूर्वक राज्य का संचालन किया। वह तन-मन-धन से सभी का सहयोग करता था, इसलिये प्रजा के हृदय में उसका स्थान बन चुका था।

लाट देश में द्रोणीमान पर्वत के पास चन्द्रपुरी नगरी में चन्द्रकीर्ति राजा राज्य करते थे। उनकी अभयमती नाम की एक पुत्री थी। गुरुदत्त ने चन्द्रकीर्ति से अभयमती के लिये प्रार्थना की कि वे अपनी कुमारी का विवाह उसके साथ कर दें। चन्द्रकीर्ति ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। गुरुदत्त ने इसे अपना अपमान समझा और चन्द्रकीर्ति पर चढ़ाई कर दी। उसकी सेना ने चन्द्रपुरी को चारों ओर से घेर लिया। कुमारी अभयमती, गुरुदत्त पर पहले से ही मुग्ध थी, जब उसने चन्द्रपुरी को घेरे जाने का समाचार सुना, उसने तत्काल अपने पिता से कहा कि मैं अपने सम्बंध में आपसे कुछ कहना उचित नहीं समझती परन्तु मेरे संसार को सुखमय होने में कोई बाधा न आये इसलिये आपसे प्रार्थना करना उचित प्रतीत हो रहा है क्योंकि आप भी मुझे दु:ख में देखना पसन्द नहीं करेंगे। इसलिये आप गुरुदत्त जी के साथ मेरा विवाह कर दें। उदार हृदय चन्द्रकीर्ति ने अपनी पुत्री की बात को स्वीकार कर धूम-धाम से गुरुदत्त के साथ अभयमती का विवाह कर दिया।

ऊपर जिस द्रोणीमान पर्वत का उल्लेख हुआ है, उसमें एक भयंकर सिंह रहता था। उसके आतंक से सभी भयभीत रहते थे। प्रजा के लोगों ने गुरुदत्त को सिंह के बारे में बताया और उनसे सुरक्षा के उपाय करने की प्रार्थना की।

गुरुदत्त अपने कुछ वीर सैनिकों को साथ लेकर पर्वत पर पहुँचा। उन्होंने सिंह को चारों ओर से घेर लिया परन्तु मौका पाकर सिंह भाग निकला और एक अंधेरी गुफा में छिप गया। गुरुदत्त ने इस मौके को अपने लिये और भी अच्छा समझा। उसने बहुत से लकड़े गुफा में भरवाकर सिंह के निकलने का रास्ता बंद कर दिया और बाहर गुफा के मुंह पर भी लकड़ियों का ढेर लगवाकर उसमें आग लगवा दी। लकड़ियों के खाक होने के साथ-साथ सिंह का भी प्राणांत हो गया। सिंह अत्यंत कष्ट के साथ मरकर इसी चन्द्रपुरी में भरत नाम के ब्राह्मण की स्त्री विश्वदेवी से कपिल नाम का पुत्र हुआ। वह जन्म से ही बहुत क्रूर प्रकृति का था।

कुछ दिनों पश्चात् गुरुदत्त को स्वर्णभद्र नामक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। उसके योग्य हो जाने पर गुरुदत्त ने उसे राज्य सौंपकर जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। अनेक स्थलों पर भ्रमण करते हुए वर्षों बाद मुनिराज गुरुदत्त चन्द्रपुरी आये। एक दिन गुरुदत्त मुनि कपिल ब्राह्मण के खेत पर ध्यान कर रहे थे। कपिल ने अपनी स्त्री से कहा कि मैं खेत पर जाता हूँ, तुम भोजन लेकर जल्दी आना। जिस खेत पर गुरुदत्त मुनि ध्यान कर रहे थे, उसे जोतने योग्य न समझकर वह दूसरे खेत पर जाने लगा। जाते समय उसने मुनि से कहा कि मेरी स्त्री भोजन लेकर आवेगी, आप उससे कह दीजियेगा कि कपिल दूसरे खेत पर गया है, तू भोजन वहीं ले जा।

थोड़ी देर बाद कपिल की स्त्री भोजन लेकर खेत पर पहुँची, उसने वहाँ अपने स्वामी को नहीं पाया। मुनि से पूछा - क्यों साधु महाराज! मेरे स्वामी यहाँ से कहाँ गये हैं ? मुनि चुप रहे, कुछ नहीं बोले। उनसे कुछ

उत्तर न पाकर वह घर लौट आई। उधर ब्राह्मण भूख के मारे बेहाल था। ब्राह्मणी के अभी तक न आने से उसे गुस्सा आया। वह घर पहुँचा और ब्राह्मणी पर क्रोधित होकर भला-बुरा कहने लगा। ब्राह्मणी घबराती हुई बोली मैंने उस साधु से पूछा था, उसने कुछ नहीं बताया इसमें मेरा क्या अपराध है। ब्राह्मण और भी क्रोधित हो उठा और आगबबूला होकर साधु के पास पहुँचा।

कपिल, वही सिंह का जीव है, जिसे गुरुदत्त ने गुफा में जलाया था। और कोई निमित्त पूर्व भव के स्मरण का नहीं बना तो यह ब्राह्मणी की घटना निमित्त बन गई। कपिल गुस्से में लाल होता हुआ मुनि के पास पहुँचा, वहाँ बहुत सी सेमल की रुई पड़ी थी। कपिल ने उस रुई से मुनि को लपेटकर उसमें आग लगा दी।

मुनि गुरुदत्त ने धैर्यपूर्वक उपसर्ग सहन किया और शुक्ल ध्यान पूर्वक केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया। देवों ने उन पर पुष्पवर्षा की, यह देखकर कपिल आश्चर्यचकित रह गया कि जिस मुनि के साथ मैंने अनर्थ किया उनका कितना महात्म्य था! उसे अपनी नीचता पर पछतावा हुआ, उसने अपने कृत्य के लिये भगवान से क्षमा माँगी। भगवान ने उसे आत्मकल्याण करने का उपदेश दिया। वह उसी समय समस्त पाप परिग्रह छोड़कर वीतरागी साधु हो गया।

शिक्षा -

१. अपने शत्रु को हजार बार मौका दो कि वह अपना मित्र बन जाये किन्तु मित्र को एक बार भी मौका मत दो कि वह अपना शत्रु बन जाये।
२. संसार में जीव अज्ञान के कारण पुण्य-पाप कर्मफल भोग रहा है।
३. अज्ञानी जीव मुनिधर्म को न जानकर, उन्हें भी सामान्य जीव समझकर अज्ञानतावश अनर्थ कर बैठते हैं।
४. क्रोध के आवेश में जीव को अच्छे-बुरे का, कर्तव्य-अकर्तव्य का विवेक नहीं रहता।
५. सुख-दुःख तो संसार में, सब काहू को होय। ज्ञानी भुगते ज्ञान से, मूरख भुगते रोय।।

....

(२१)

उपसर्ग विजेता श्रीदत्त मुनि

इलावर्द्धनपुरी के राजा जितशत्रु थे, उनकी रानी का नाम इला था। श्रीदत्त इनका पुत्र था। अयोध्या के राजा अंशुमान की राजकुमारी अंशुमती से श्रीदत्त का विवाह हुआ था। अंशुमती ने एक तोते को पाल रखा था। जब ये पति-पत्नी विनोद के लिये चौपड़ वगैरह खेलते, उस समय कौन कितनी बार जीता, यह स्मरण रखने के लिये तोता अपने पैर के नख से रेखा खींच दिया करता था। उसमें इतनी सी भर दुष्टता थी कि जब श्रीदत्त जीतता तो तोता एक ही रेखा खींचता और जब अपनी मालकिन की जीत होती तब वह दो रेखाएँ खींच दिया करता था। श्रीदत्त तोते की इस चालाकी को कई बार तो सहन कर गया परन्तु एक दिन उसे तोते पर बहुत गुस्सा आया। क्रोध के वशीभूत होकर श्रीदत्त ने तोते की गर्दन पकड़ कर मरोड़ दी, तोता उसी समय गतप्राण हो गया। कष्ट के साथ तोता मरकर व्यंतर देव हुआ।

समय निकलता गया। एक दिन श्रीदत्त अपने महल के ऊपर बैठकर प्रकृति की सुन्दरता का आनंद ले

रहे थे। इतने में एक विशाल बादल का टुकड़ा उनकी आंखों के सामने से गुजरा, वह थोड़ी ही दूर भी नहीं जा पाया होगा कि देखते ही देखते छिन्न-भिन्न हो गया। इस घटना से श्रीदत्त को वैराग्य हो गया। उसे संसार नाशवान, संयोग विनाशीक, शरीर क्षणभंगुर प्रतीत होने लगा। उसे अंतरंग में प्रायश्चित होने लगा कि मैं अभी तक अपना आत्महित साधन नहीं कर सका। उत्कृष्ट वैराग्य भाव पूर्वक उसने जिन दीक्षा ग्रहण कर ली।

श्रीदत्त मुनिराज अपनी आत्मसाधना करते हुए, अनेक नगरों में भ्रमण कर अनेकों भव्यजनों को सम्बोधित कर आत्महित के मार्ग में लगाते हुए वर्षों बाद अपने शहर की ओर पधारे। सर्दी का समय था। एक दिन श्रीदत्त मुनि शहर के बाहर कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यान कर रहे थे। उन्हें ध्यान में खड़े हुए देखकर उस तोते के जीव को, जिसे श्रीदत्त ने गर्दन मरोड़कर मार डाला था और जो मरकर व्यंतर देव हुआ था, उसे अपने बैरी पर बहुत क्रोध आया। उस बैर का बदला लेने के अभिप्राय से उसने मुनि पर भारी उपद्रव, उपसर्ग किया। एक तो वैसे ही सर्दी का समय, उस पर भी उसने इतनी जोर की अत्यंत शीतल हवा चलाई कि सब छार-छार प्रतीत होने लगा। व्यंतर देव ने पानी बरसाया, ओले गिराये। उसने अपना बदला लेने में कोई बात की कमी न रखकर मुनि को बहुत ही कष्ट दिया।

श्रीदत्त मुनिराज ने उपसर्ग जनित कष्टों को अत्यंत धैर्य के साथ सहन किया। व्यंतर देव के द्वारा किये गये उपसर्ग के कारण इन्होंने उसका कोई प्रतिकार नहीं किया। शरीर से ममत्व हटाकर, उपयोग को अपने स्वरूप में लीन करके शुक्ल ध्यान पूर्वक श्रीदत्त मुनिराज केवलज्ञान को प्राप्त हुए। अंत में अघातिया कर्मों का नाश कर उन्होंने मोक्षलक्ष्मी का वरण किया।

शिक्षा -

१. असहनशीलता व्यक्ति को कदाचित् अकर्तव्य के मार्ग में प्रवृत्त करा दे यह कोई आश्चर्य नहीं है।

२. भव्यजीव को किसी भी निमित्त से वैराग्य प्रकट हो सकता है।

३. धीर-वीर योगी, महामुनि पूर्व कर्म के उदय निमित्त से आगत उपसर्गों को समता पूर्वक सहन करके कर्मों की निर्जरा करते हैं।

४. ध्यान कर्म निर्जरा का प्रत्यक्ष साधन है।

५. अज्ञानी जीव निमित्तों को दोषी ठहराता है, जबकि ज्ञानी अपने कर्म के उदय का विचार कर धैर्य धारण करता है।

....

अध्याय ४

[अ] श्री ज्ञानसमुच्चयसार जी - आचार्य तारण स्वामी जी

अ - प्रथम करने योग्य कार्य एवं शुद्ध-अशुद्ध उपभोग विवेचन   ब - प्रत्यक्ष-परोक्ष प्रमाण कथन

स - तीन प्रकार का मिथ्यात्व वर्णन

द - अनंतानुबंधी चार कषाय

इ - अविरत सम्यग्दृष्टि का स्वरूप

फ - उपादेय पदवी धारी ज्ञानी का उपदेश तथा वीतराग भाव की साधना

क- प्रथम उपदेश सम्यक्त्व एवं उसके पच्चीस दोषों का स्वरूप

ख- आठ मूलगुणों का पालन और आठ अवगुणों का त्याग

ग - रत्नत्रय की साधना

घ- तीन पात्र और चार दान कथन   ङ - जलगालन

च - रात्रि भोजन त्याग, १८ क्रियाओं की पूर्णता, श्री ज्ञानसमुच्चयसार - सार कथन एवं प्रश्नोत्तर.....

[ब] नय परिचय एवं श्रुतज्ञान - द्र.स्व.प्रका.नयचक्र एवं जी.कां पर आधारित

(अ)

श्री न्यानसमुच्चयसार जी

श्री न्यानसमुच्चय सार जी सारमत का महान ग्रन्थ है। इसमें कुल ९०८ गाथाएँ हैं। प्रस्तुत अंतिम वर्ष के पाठ्यक्रम में गाथा ९५ से २९५ तक दी गईं हैं। इन गाथाओं में ज्ञान प्रधान चर्या का विवेचन है। प्रथम करने योग्य कार्य एवं शुद्ध अशुद्ध उपभोग का विवेचन कर आचार्य महाराज ने परिणामों की सम्हाल करने की प्रेरणा प्रदान की है।

आगामी विषयों के क्रम में प्रत्यक्ष-परोक्ष प्रमाण कथन, तीन प्रकार का मिथ्यात्व वर्णन, अनंतानुबंधी चार कषायों का विवेचन कर अविरत सम्यग्दृष्टि का स्वरूप स्पष्ट किया है। उपादेय पदवी धारी वीतरागी ज्ञानी का उपदेश तथा वीतराग भाव की साधना, प्रथम उपदेश सम्यक्त्व और उसके पच्चीस दोषों का स्वरूप, आठ मूलगुणों का पालन एवं आठ मूल अवगुणों का त्याग, रत्नत्रय की साधना, तीन पात्र और चार दान कथन, जलगालन और रात्रि भोजन त्याग इस प्रकार अविरति श्रावक की ज्ञान प्रधान चर्या का विवेचन इन गाथाओं का मूल अभिप्राय है।

आत्मा सुद्धात्म भावेन, सुद्ध दिस्टि समाचरेत् ।
अनो मिथ्यामयं प्रोक्तं, विषयं लोकरंजनं ।। ९५ ।।

अन्वयार्थ - **(सुद्ध दिस्टि)** आत्मार्थी सम्यग्दृष्टि साधक **(आत्मा सुद्धात्म भावेन)** अपने आत्मा शुद्धात्मा की भावना पूर्वक **(समाचरेत्)** स्वरूप में सम्यक् आचरण करता है **(अनो)** आत्मज्ञान के बिना अन्य जो कुछ भी है, वह सब **(विषयं लोकरंजनं)** पाँच इन्द्रियों के विषयों की भावना सहित तथा लोक को रंजायमान करने का हेतु होने से **(मिथ्यामयं प्रोक्तं)** मिथ्यात्वमय कहा गया है।

(अ) प्रथम करने योग्य कार्य एवं शुद्ध अशुद्ध उपभोग विवेचन -

प्रथमं भाव सुद्धं च, असुद्धं तिक्त पराङ्गमुषं ।
परिनाम बंध मुक्तं च, उपभोगं तिक्त मनः स्रुतं ।। ९६ ।।

अन्वयार्थ - **(प्रथमं भाव सुद्धं च)** सर्वप्रथम शुद्ध भाव होना चाहिये **(असुद्धं तिक्त पराङ्गमुषं)** अशुद्ध भावों को त्यागकर उनसे मुख मोड़ लेना चाहिये अर्थात् दृष्टि हटा लेना चाहिये **(परिनाम बंध मुक्तं च)** क्योंकि जीव के परिणामों से ही कर्मों का बंध होता है और परिणामों से ही मुक्ति होती है इसलिये **(उपभोगं तिक्त मनः स्रुतं)** अशुद्ध भावों में रस लेनेरूप उपभोग का त्याग करके मन को श्रुत के चिंतन में लगाना चाहिये, निरंतर वस्तु स्वरूप का चिंतन करना यही साधक का विवेक है।

उपभोगं असुद्ध भावस्य, संसार विषय रंजितं ।
मनसि उत्पादते जीवः, उपभोगं तत्र निस्चयं ।। ९७ ।।

अन्वयार्थ - **(संसार विषय रंजितं)** सांसारिक पाँच इन्द्रियों के विषय भोगों में रंजायमान होना, आनंद मानना **(असुद्ध भावस्य उपभोगं)** अशुद्ध भाव का उपभोग है **(जीवः मनसि उत्पादते)** जीव जब ऐसे विकारी भावों को मन में उत्पन्न करता है, विषय भावों में रस लेता है **(तत्र निस्चयं उपभोगं)** वहाँ वह निश्चय ही अशुद्ध भावों का उपभोग कर रहा है।

उपभोगं मन विचलंते, भोगं तस्य प्रवर्तते ।
विकहा राग विषम जेन, उपभोगं भोग उच्यते ।। ९८ ।।

अन्वयार्थ - **(उपभोगं मन विचलंते)** जिस जीव का मन विकारी भावों में रसयुक्त होकर उपभोग करने के लिये विचलित होता है **(तस्य भोगं प्रवर्तते)** उसकी भोग में प्रवृत्ति होती है **(विषम जेन विकहा राग)** अपने आत्म स्वरूप से विपरीत लक्षण वाले दुखदाई विकथा और राग में रंजायमान होकर जो मन से **(उपभोगं भोग उच्यते)** उपभोग करता है उसको भोग कहा जाता है।

हाव भाव उत्पाद्यंते, विभ्रम अनेय चिन्तनं ।
कटाष्यं निरीष्यनं जीवा, उपभोगं तस्य उच्यते ।। ९९ ।।

अन्वयार्थ - मन में वासनायुक्त विचार होने पर **(हाव भाव उत्पाद्यंते)** हाव भाव पैदा होते हैं अर्थात् वासना में प्रीति होने से आकर्षणरूप आचरण होने लगता है **(अनेय विभ्रम चिन्तनं)** अनेक प्रकार के भ्रमपूर्ण विचार या अनेक प्रकार की चेष्टायें चिंतन में आने लगती हैं **(कटाष्यं निरीष्यनं जीवा)** फिर वह जीव कटाक्ष पूर्वक देखता है **(उपभोगं तस्य उच्यते)** प्रत्यक्ष भोग नहीं करते हुए भी वह जीव उपभोग कर रहा है ऐसा कहा जाता है।

स्वप्नं जस्य न सुद्धं च, उपभोगं तस्य संजुतं ।
मनस्य विकलितं जेन, उपभोगं भाव समं जुतं ।। १०० ।।

अन्वयार्थ - **(स्वप्नं जस्य न सुद्धं च)** जिसको स्वप्न भी शुद्ध न आते हों [अर्थात् स्वप्न में भी शुद्ध भाव न रहते हों] **(उपभोगं तस्य संजुतं)** वह जीव विकारी भावों में रंजायमान हुआ उपभोग में लीन रहता है **(मनस्य विकलितं जेन)** जिसका मन भोगों के लिये व्याकुल, बेचैन होता है **(उपभोगं भाव समं जुतं)** वह जीव उपभोग के भावों सहित उसी में युक्त होता है।

उपभोगं विविह जानंते, सुद्धं असुद्धं परं ।
सुद्धं मुक्ति मार्गस्य, असुद्धं निगोयं पतं ।। १०१ ।।

अन्वयार्थ - **(उपभोगं विविह जानंते)** ज्ञानीजन उपभोग को दो प्रकार का जानते हैं **(सुद्धं असुद्धं परं)** उनमें पहला शुद्ध उपभोग और दूसरा अशुद्ध उपभोग है **(सुद्धं मुक्ति मार्गस्य)** शुद्ध उपभोग मोक्षमार्ग है, मुक्ति की प्राप्ति का उपाय है और **(असुद्धं निगोयं पतं)** अशुद्ध उपभोग निगोद में पतन कराने वाला है।

सुद्धं उपभोगयं जेन, मति स्रुत न्यान चिंतनं ।
अवधि मनपर्जयं सुद्धं, केवलं भाव संजुतं ।। १०२ ।।

अन्वयार्थ - **(जेन)** जो ज्ञानीजन **(मति स्रुत न्यान चिंतनं)** मति, श्रुतज्ञान के बल से अपने स्वभाव का चिंतन करते हैं **(सुद्धं उपभोगयं)** उन्हें शुद्ध उपभोग होता है **(सुद्धं)** शुद्ध स्वभाव के चिंतन एवं आराधना के बल से उन्हें [यथायोग्य भूमिकानुसार] **(अवधि मनपर्जयं)** अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान प्रकट हो जाता है **(भाव संजुतं केवलं)** अंत में वे आत्म स्वभाव में लीन होकर केवलज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं। [सम्यग्ज्ञान की साधना पूर्वक उपयोग को बार-बार अपने स्वभाव में रमाना शुद्ध उपभोग है।]

अष्यर स्वर विंजनं जेन, पद श्रुत चिंतनं सदा ।
अवकासं न्यान मयं सुद्धं, उपभोगं न्यान उच्यते ।। १०३ ।।

अन्वयार्थ - **(जेन)** जो साधक **(श्रुत)** जिनवाणी में निरूपित **(अष्यर स्वर विंजनं)** अक्षर, स्वर, व्यंजन और **(पद)** पदों का **(सदा चिंतनं)** हमेशा चिंतन मनन करते हैं तथा **(अवकासं न्यान मयं सुद्धं)** ज्ञानमयी शुद्ध स्वभाव में ठहरने का पुरुषार्थ करते हैं **(न्यान उपभोगं उच्यते)** उसी को ज्ञान का उपभोग कहा जाता है।

जस्य उपभोग चित्तार्थं, तस्य भोगं समाचरेत् ।
सुद्धं मुक्ति पथं जेन, असुद्धं दुर्गति भाजनं ।। १०४ ।।

अन्वयार्थ - **(जस्य उपभोग चित्तार्थं)** जिस जीव के चित्त में शुद्ध अथवा अशुद्ध उपभोग करने का अभिप्राय होता है **(तस्य भोगं समाचरेत्)** उस जीव का अभिप्राय के अनुरूप शुद्ध अथवा अशुद्ध भोग में आचरण होता है **(जेन सुद्धं मुक्ति पथं)** जो जीव सम्यग्ज्ञान सहित शुद्ध स्वभाव का उपभोग करते हैं वे मोक्षमार्गी हैं और **(असुद्धं दुर्गति भाजनं)** जो जीव इन्द्रिय विषयों में आसक्त होकर अशुद्ध उपभोग करते हैं वे दुर्गति के पात्र बनते हैं।

(ब) प्रत्यक्ष - परोक्ष प्रमाण कथन -

प्रमाणं दुविहं प्रोक्तं, जिनसासने च समं धुवं ।
परोष्यं आदि जानाति, प्रत्यष्यं परमं बुधैः ।। १०५ ।।

अन्वयार्थ - **(जिनसासने)** श्री जिनेन्द्र भगवान प्रणीत आगम में **(प्रमाणं दुविहं प्रोक्तं)** प्रमाण दो प्रकार का कहा गया है **(समं धुवं)** यह प्रमाण सम्यग्ज्ञान स्वरूप अविनाशी है **(आदि परोष्यं जानाति)** सम्यग्ज्ञानी प्रथम परोक्ष प्रमाण को जानता है **(च)** और **(प्रत्यष्यं परमं बुधैः)** दूसरा प्रत्यक्ष प्रमाण उत्कृष्ट है जो विशिष्ट ज्ञानीजनों के द्वारा जाना जाता है।

जस्य परोष्यं चिन्तंते, प्रत्यष्यं तस्य दिस्टते ।
जिन उक्तं समं सुद्धं, प्रमाणं भाव समाचरेत् ।। १०६ ।।

अन्वयार्थ - **(जस्य परोष्यं चिन्तंते)** जो आत्मार्थी जीव परोक्ष प्रमाण अर्थात् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान पूर्वक स्वभाव का चिंतन करते हैं **(तस्य प्रत्यष्यं दिस्टते)** उनको प्रत्यक्ष प्रमाण [अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और पूर्ण प्रत्यक्ष केवलज्ञान] प्रकट हो जाता है, इसलिये हे भव्य जीवो! **(जिन उक्तं समं सुद्धं, प्रमाणं भाव समाचरेत्)** जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे गये सम्यक् [यथार्थ] शुद्ध सम्यग्ज्ञान भाव में आचरण करो।

परोष्यं न्यान सद्भावं, प्रत्यष्यं न्यान उच्यते ।
परोष्यं दिस्टते जीवा, दर्सनं तव सुनिस्चयं ।। १०७ ।।

अन्वयार्थ - **(परोष्यं न्यान सद्भावं)** जो भव्य जीव परोक्ष प्रमाणरूप श्रुतज्ञान के द्वारा ज्ञान स्वभाव का अनुभव करते हैं [स्वानुभव प्रत्यक्ष होने से उसको ही] **(प्रत्यष्यं न्यान उच्यते)** प्रत्यक्ष ज्ञान कहा जाता है **(परोष्यं जीवा दिस्टते)** श्रुतज्ञान के द्वारा जीव अपने स्वरूप का अनुभव करता है उस समय उसे **(दर्सनं तव सुनिस्चयं)** निश्चय ही स्वानुभूति होती है।

परोष्यं आचरणं नित्यं, प्रत्यष्यं चरन संजुतं ।
परोष्यं तप सहावेन, प्रत्यष्य तप न्यानं धुवं ।। १०८ ।।

अन्वयार्थ - **(परोष्यं आचरणं नित्यं)** जो आत्म साधक भव्य जीव परोक्ष श्रुतज्ञान में नित्य ही आचरण करते हैं **(प्रत्यष्यं चरन संजुतं)** वे केवलज्ञान स्वभाव में रमणतारूप प्रत्यक्ष आचरण में लीन हो जाते हैं **(परोष्यं तप सहावेन)** जो जीव स्वभाव के आश्रय पूर्वक मति श्रुतज्ञान प्रमाण परोक्ष तप करते हैं **(प्रत्यष्य तप न्यानं धुवं)** उन्हें ज्ञानमयी ध्रुव स्वभाव में लीनतारूप प्रत्यक्ष तप होता है।

(स) तीन प्रकार का मिथ्यात्व वर्णन -

उपभोगं परोष्यं जानाति, सुद्ध भावं सुयं धुवं ।
निर्गुनं गुनं न जानाति, मिथ्यात्वं सहकारिनं ।। १०९ ।।

अन्वयार्थ - जो ज्ञानी जिनवाणी के अक्षर, स्वर, व्यंजन और पदों का चिंतन करते हुए श्रुतज्ञान की रसानुभूतिरूप **(परोष्यं उपभोगं)** परोक्ष उपभोग करता है, वह **(सुद्ध भावं)** शुद्ध भाव सहित **(सुयं धुवं)** अपने ध्रुव स्वभाव को **(जानाति)** जानता है [किन्तु] जो जीव **(मिथ्यात्वं सहकारिनं)** मिथ्यात्व सहित हो रहा है, वह **(निर्गुनं)** सम्यक्त्व गुण से रहित होने के कारण **(गुनं न जानाति)** आत्म गुणों को नहीं जानता है।

मिथ्या मयं न दिस्टंते, समय मिथ्या न देसनं ।
राग दोष विषयं जेन, समय मिथ्या संगीयते ।। ११० ।।

अन्वयार्थ - **(जेन)** जो जीव **(मिथ्या मयं न दिस्टंते)** मिथ्यात्वमय होकर नहीं देखते हैं और **(समय मिथ्या न देसनं)** न ही मिथ्या दर्शन का उपदेश देते हैं [उन्हें वस्तु स्वरूप का यथार्थ श्रद्धान है] किन्तु **(विषयं राग दोष)** इन्द्रिय विषयों व अन्य पदार्थों में राग-द्वेष रूप परिणति रहती है, इसको **(समय मिथ्या संगीयते)** सम्यक् मिथ्यात्व कहा जाता है।

समयं सुद्ध जिनं उक्तं, तिअर्थं तीर्थंकरं कृतं ।
समयं प्रवेस जेनापि, ते समयं सार्धं धुवं ।। १११ ।।

अन्वयार्थ - **(जिनं सुद्ध समय उक्तं)** श्री जिनेन्द्र भगवान ने रागादि व कर्मादि रहित स्व समय शुद्धात्म स्वरूप का उपदेश दिया है **(तिअर्थं तीर्थंकरं कृतं)** उनके द्वारा बतलाया हुआ रत्नत्रयमयी आत्म धर्म तीर्थंकर पद प्राप्त कराने वाला है **(जेनापि समयं प्रवेसं)** जो कोई भी जीव अपने स्व समय में प्रवेश करते हैं [शुद्धात्म स्वरूप में रमण करते हैं] **(ते समयं धुवं सार्धं)** वे ही स्व समय शुद्धात्म स्वरूप ध्रुव स्वभाव के साधक पुरुष हैं।

धुव समयं च जानाति, अनेयं राग बंधनं ।
दुर्बुद्धि विषया होंति, समय मिथ्या स उच्यते ।। ११२ ।।

अन्वयार्थ - **(धुव समयं च जानाति)** जो कोई भी जीव अपने अविनाशी आत्म स्वरूप को जानता है, किन्तु **(अनेयं राग बंधनं)** अनेक प्रकार के राग के बंधनों में बंधा रहता है, उसकी **(विषया दुर्बुद्धि होंति)** इन्द्रिय विषयों में राग-द्वेष रूप दुर्बुद्धि होती है **(समय मिथ्या स उच्यते)** इसको सम्यक् मिथ्यात्व कहा जाता है।

समयं च सुद्ध सार्धं च, असमय भावनं कृतं ।
समय मिथ्या जिनं उक्तं, संसारे दुष बीर्जयं ।। ११३ ।।

अन्वयार्थ - **(सुद्ध समयं च सार्धं च)** जो जीव शुद्ध आत्मा का श्रद्धानी है **(असमय भावनं कृतं)** किन्तु आत्म स्वरूप से भिन्न अचेतन पदार्थों की भी भावना करता है [इस मिले जुले परिणाम को] **(जिनं समय मिथ्या उक्तं)** जिनेन्द्र भगवान ने सम्यक् मिथ्यात्व कहा है, जो **(संसारे दुष बीर्जयं)** संसार के अनंत दु:खों का बीज [कारण] है।

समयं सर्वन्य सुद्धं च, सार्धं भव्यलोकयं ।
अन्यान व्रत क्रिया जेन, समय मिथ्या समाचरेत् ।। ११४ ।।

अन्वयार्थ - **(जेन)** जो कोई **(भव्यलोकयं)** भव्य जीव **(सर्वन्य सुद्धं समयं)** सर्वज्ञ स्वरूप शुद्धात्म तत्त्व के **(सार्धं)** श्रद्धानी हैं **(च)** और [अपने आत्म स्वरूप के विस्मरण रूप] **(अन्यान व्रत क्रिया)** अज्ञान भाव सहित व्रत तथा क्रियाओं का पालन करते हैं **(समय मिथ्या समाचरेत्)** यह सम्यक् मिथ्यात्वमय आचरण कहलाता है।

समयं दर्सनं न्यानं, चरनं तप सहकारिनो ।
समयं प्रवेस अन्यानं, व्रत तप मिथ्या संजुतं ।। ११५ ।।

अन्वयार्थ - **(समयं दर्सनं न्यानं, चरनं तप सहकारिनो)** आत्मार्थी जीव स्व समय के श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक् तप का सहकार करते हैं [अर्थात् आत्म कल्याण में सहकारी चार आराधनाओं का अपनी पात्रता अनुसार पालन करते हैं] यदि **(समयं अन्यानं प्रवेस)** वह आत्मा अज्ञान में प्रवेश करता है [अपने आत्म स्वरूप को भूलकर अज्ञानमय अर्थात् कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि भावों सहित होता है] उसके **(व्रत तप मिथ्या संजुतं)** व्रत, तप आदि मिथ्यात्वमय हो जाते हैं।

सुद्धं च जिन उक्तं च, अप्पा परमप्प सुद्धयं ।
षिउ उवसमं न सुद्धं च, प्रकृति मिथ्या समं धुवं ।। ११६ ।।

अन्वयार्थ - **(जिन उक्तं च सुद्धं च)** जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे हुए वचन शुद्ध अर्थात् निर्दोष हैं **(अप्पा परमप्प सुद्धयं)** आत्मा स्वभाव से परमात्मा के समान शुद्ध है [जिसके श्रद्धान में ऐसी निर्मलता नहीं होती वह] **(षिउ उवसमं न सुद्धं च)** क्षयोपशम सम्यक्दृष्टि है, चल मल अगाढ़ दोष के कारण परिपूर्ण शुद्धता नहीं है [वह] **(प्रकृति मिथ्या समं धुवं)** सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्व के उदय सहित ध्रुव स्वभाव का श्रद्धानी होता है।

अनेय तप तप्तानां, व्रत संजम क्रिया समं ।
षिउ उवसमं न सार्धंते, मिथ्या छाया प्रकीर्तते ।। ११७ ।।

अन्वयार्थ - जो जीव **(व्रत संजम क्रिया समं)** व्रत संयम तथा अन्य क्रियाओं सहित **(अनेय तप तप्तानां)** अनेक प्रकार से तप करते हैं, वे **(षिउ उवसमं न सार्धंते)** क्षयोपशम भाव सहित होने से निर्मल श्रद्धान को प्राप्त नहीं करते **(मिथ्या छाया प्रकीर्तते)** क्योंकि उनके श्रद्धान पर मिथ्यात्व की छाया पड़ रही है [अर्थात् सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृति के उदय के कारण उस जीव के श्रद्धान में मलिनता है ।]

आसा स्नेह लोभं च, लाज भय गारव स्थितं ।
विषयं राग समं छाया, षिउ उवसमं न सुद्धए ।। ११८ ।।

अन्वयार्थ - जो जीव **(आसा स्नेह लोभं च, लाज भय गारव स्थितं)** आशा, स्नेह, लोभ, लाज, भय, गारव आदि भावों में स्थित है तथा **(विषयं राग समं छाया)** विषयों के राग सहित जिसके श्रद्धान पर मिथ्यात्व की छाया पड़ रही है, उस जीव को **(षिउ उवसमं न सुद्धए)** क्षयोपशम भाव की शुद्धि नहीं है। [उसके श्रद्धान में चल, मल, अगाढ़ दोष लगते रहते हैं।]

विकहा विमुक्त रागं च, उवसम संसार स्थितिं ।
जदि षिपनं न सार्धंति, प्रकृति मिथ्या स उच्यते ।। ११९ ।।

अन्वयार्थ - **(विकहा रागं विमुक्त च)** जो आत्म श्रद्धानी जीव विकथाओं के राग से मुक्त हो गया है [संसार में परिभ्रमण करने रूप उसकी] **(संसार स्थितिं उवसम)** संसार की स्थिति का उपशम भी हो गया है किन्तु **(जदि षिपनं न सार्धंति)** यदि वह क्षायिक सम्यग्दर्शन को प्राप्त नहीं करता है [तब तक उसको] **(प्रकृति मिथ्या स उच्यते)** सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व का उदय कहा जाता है।

मिथ्या समय मिथ्या च, प्रकृति मिथ्या न दिस्टते ।
राग दोषं न चिंतन्ते, कषायं तिक्तंति जं बुधैः ।। १२० ।।

अन्वयार्थ - **(जं बुधैः)** जो आत्म श्रद्धानी सम्यग्दृष्टि जीव हैं वे **(मिथ्या समय मिथ्या च, प्रकृति मिथ्या न दिस्टते)** मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्व को नहीं देखते [उनके अंतरंग में दर्शन मोहनीय से सम्बंधित मिथ्या श्रद्धान नहीं होता, वे अनन्त संसार में कारणभूत] **(राग दोषं न चिंतन्ते)** राग द्वेष का चिंतन नहीं करते तथा **(कषायं तिक्तंति)** अनंतानुबंधी कषायों का त्याग कर देते हैं।

(द) अनंतानुबंधी चार कषाय -

कषायं जिन उक्तं च, चत्वारि अनन्त बंधनं ।
तिक्तंते सुद्ध दिस्टी च, मुक्ति गमनं च कारणं ।। १२१ ।।

अन्वयार्थ - **(जिन)** जिनेन्द्र भगवान ने [क्रोध, मान, माया, लोभ इन] **(चत्वारि)** चार **(कषायं)** कषायों को **(अनन्त बंधनं)** अनन्त संसार का बंधन कराने वाली होने से अनंतानुबंधी **(उक्तं च)** कहा है **(सुद्ध दिस्टी च)** आत्मार्थी सम्यग्दृष्टि जीव इनको **(तिक्तंते)** त्याग देते हैं यही **(मुक्ति गमनं च कारणं)** मुक्ति गमन का कारण है।

लोभं क्रोधं च मानं च, माया मिथ्या न दिस्टते ।
कषायं चतु अनंतानं, तिक्तते सुद्ध दिस्टितं ।। १२२ ।।

अन्वयार्थ - **(सुद्ध दिस्टितं)** आत्मानुभवी सम्यग्दृष्टि जीव **(मिथ्या न दिस्टते)** मिथ्यात्व को नहीं देखते [अर्थात् उनके अंतरंग में मिथ्या श्रद्धान नहीं होता] वे **(चतु अनंतानं कषायं)** चार अनंतानुबंधी कषाय **(लोभं क्रोधं च मानं च, माया)** लोभ, क्रोध, मान और माया को **(तिक्तते)** त्याग देते हैं [अनंतानुबंधी कषाय और तीन मिथ्यात्व का अभाव होने से सम्यग्दृष्टि जीव के श्रद्धान में निर्मलता होती है।]

अनंतानुबंधी लोभ -

लोभं असुद्ध परिणामं, चिन्तनं अनन्त न स्थितं ।
उपभोगं लोभ तिक्तंति, सुद्ध दिस्टि समाचरेत् ।। १२३ ।।

अन्वयार्थ - **(लोभं असुद्ध परिणामं)** लोभ कषाय का भाव अशुद्ध है, मलीन है **(अनन्त चिन्तनं न स्थितं)** आत्मार्थी सम्यग्दृष्टि जीव अनंतानुबंधी लोभ से सम्बंधित चिंतन नहीं करते, उन परिणामों में स्थित नहीं होते, वे **(उपभोगं लोभ तिक्तंति)** इन्द्रिय विषय सम्बंधी उपभोग के लोभ का भी त्याग कर देते हैं और **(सुद्ध दिस्टि समाचरेत्)** शुद्ध दृष्टि में सम्यक् प्रकार से आचरण करते हैं।

लोभं पुन्यार्थं जेन, परिनामं तिस्टते सदा ।
अनंतानुलोभ सद्भावं, तिक्तते सुद्ध दिस्टितं ।। १२४ ।।

अन्वयार्थ - **(जेन पुन्यार्थं लोभं)** जो अज्ञानी जीव पुण्य को प्रयोजनीय मानकर उसकी प्राप्ति का लोभ करते हैं, उनके अंतर में **(सदा परिनामं तिस्टते)** हमेशा पुण्य की प्राप्ति के भाव बने रहते हैं जबकि **(सुद्ध दिस्टितं)** सम्यग्दृष्टि जीव **(अनंतानुलोभ सद्भावं तिक्तते)** अनंतानुबंधी लोभ सम्बंधी समस्त प्रकार के भावों को त्याग देते हैं।

लोभं श्रुतं तपं कृत्वा, व्रत क्रिया अनेकधा ।
न्यानहीनो अनंतानं, तिक्तते सुद्ध दिस्टितं ।। १२५ ।।

अन्वयार्थ - जो कोई जीव **(लोभं)** पुण्य की प्राप्ति के लोभवश **(श्रुतं तपं कृत्वा)** शास्त्रज्ञान अर्जित करते हैं, तपस्या करते हैं **(अनेकधा क्रिया व्रत)** अनेक प्रकार की क्रियाओं सहित व्रताचरण करते हैं किन्तु **(न्यानहीनो अनंतानं)** आत्मज्ञान रहित होने से यह अनंतानुबंधी लोभ संसार का कारण है [अज्ञान रूप ऐसे समग्र आचरण को] **(सुद्ध दिस्टितं तिक्तते)** सम्यग्दृष्टि ज्ञानी त्याग देते हैं।

लोभं मूल असुहस्य, श्रुतं भेद अनेकधा ।
विस्वासं लोभ अनंतानं, तिक्तंते सुद्ध साधवा ।। १२६ ।।

अन्वयार्थ - **(श्रुतं अनेकधा भेद)** जिनवाणी में लोभ के अनेक भेद कहे गये हैं [जैसे – भोग का लोभ, उपभोग का लोभ, जीवन का लोभ, इन्द्रियों का लोभ] **(लोभं असुहस्य मूल)** लोभ समस्त पापों की जड़ है, इसलिये **(सुद्ध साधवा)** आत्मार्थी ज्ञानी साधक या योगी **(अनंतानं लोभ विस्वासं तिक्तंते)** अनंतानुबंधी लोभ में विश्वास करने का त्याग कर देते हैं।

लोभं अनृत असत्यस्य, अचेतं असुह अनर्थयं ।
अनंतानु लोभ भावेन, तिक्तंते सुद्ध साधवा ।। १२७ ।।

अन्वयार्थ - **(अनंतानु लोभ)** अनंतानुबंधी लोभ कषाय सहित होने से जीव **(अनृत अचेतं असत्यस्य)** क्षणभंगुर अचैतन्य असत् पदार्थों की **(भावेन)** भावना भाता हुआ **(अनर्थयं असुह)** अनर्थकारी पाप करता है **(सुद्ध साधवा)** ज्ञानी सम्यग्दृष्टि साधक **(लोभं)** ऐसे अनंतानुबंधी लोभ का **(तिक्तंते)** त्याग कर देते हैं।

लोभं श्रुतं अनेकार्थं, चक्र इन्द्र नराधिपं ।
अनेय भाव उत्पाद्यंते, तिक्तते सुद्ध दिस्टितं ।। १२८ ।।

अन्वयार्थ - **(अनेकार्थं श्रुतं चक्र इन्द्र नराधिपं लोभं)** अनेक प्रकार के शास्त्रों का अर्थ जानने का लोभ, चक्रवर्ती पद का लोभ, इन्द्र पद का लोभ, राजा – महाराजा पद के लोभ के [अनंतानुबंधी कषाय सहित होने से जीव को इस प्रकार के] **(अनेय भाव उत्पाद्यंते)** अनेक भाव उत्पन्न होते हैं **(सुद्ध दिस्टितं तिक्तते)** सम्यग्दृष्टि इस प्रकार के समस्त भावों का त्याग कर देता है।

लोभ करने की प्रेरणा -

लोभं कृतं जिन उक्तस्य, सुद्ध धर्म सुद्धं ध्रुवं ।
आत्म परमात्म लब्धं च, तं लोभं मुक्ति गामिनो ।। १२९ ।।

अन्वयार्थ - [लोभ करना ही है तो] **(जिन उक्तस्य)** जिनेन्द्र भगवान के कहे अनुसार **(सुद्धं ध्रुवं)** शुद्ध ध्रुव स्वभाव की अनुभूति रूप **(सुद्ध धर्म)** शुद्ध धर्म [निश्चय आत्म धर्म] का **(लोभं कृतं)** लोभ करो [इस लोभ से] **(आत्म परमात्म लब्धं च)** आत्मा को परमात्म पद उपलब्ध होगा और **(तं लोभं मुक्ति गामिनो)** स्वानुभव स्वरूप यथार्थ धर्म के लोभ से जीव मुक्ति को प्राप्त करेगा।

अनंतानुबंधी क्रोध -

क्रोधं कूड भावेन, आरति रौद्र समं जुतं ।
असत्य सहितो हिंसा, तिक्तते सुद्ध दिस्टितं ।। १३० ।।

अन्वयार्थ - **(क्रोधं कूड भावेन)** अनंतानुबंधी क्रोध अत्यंत कठोर भाव पूर्वक होता है, इस परिणाम में जीव **(आरति रौद्र समं जुतं)** आर्त ध्यान, रौद्र ध्यान सहित उसी में तन्मय रहता है **(असत्य सहितो हिंसा)** असत्य सहित हिंसा करता है [क्रोधादि असत् भाव सहित होने से द्रव्य और भाव दोनों प्रकार की हिंसा करता है] **(सुद्ध दिस्टितं तिक्तते)** सम्यग्दृष्टि ज्ञानी अनंतानुबंधी क्रोध को त्याग देता है।

क्रोधं अनंतान दिस्टंते, असुहं सुह समं जुतं ।
सरीरं दुष्य उत्पाद्यंते, थावर क्रोधानि तिक्तयं ।। १३१ ।।

अन्वयार्थ - जो जीव **(सुह असुहं समं)** शुभ अशुभ क्रियाओं सहित होते हुए **(अनंतान क्रोधं दिस्टंते)** अनंतानुबंधी क्रोध रूप भावों को देखते हैं **(जुतं)** उन्हीं में युक्त रहते हैं उनके **(सरीरं दुष्य उत्पाद्यंते)** शरीर में भी दुःख उत्पन्न होते हैं, ऐसे जीव **(थावर क्रोधानि तिक्तयं)** स्थावर पर्याय में चले जाते हैं, वहाँ भी क्रोध को नहीं छोड़ते।

अप तेज वायुं च, पृथ्वी वनस्पती जथा ।
विकलत्रयं उत्पाद्यंते, क्रोधं तिक्तंति साधवा ।। १३२ ।।

अन्वयार्थ - अनंतानुबंधी क्रोध के कारण जीव **(अप तेज वायुं च, पृथ्वी वनस्पती जथा)** जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, पृथ्वीकाय और वनस्पतिकाय में जन्म लेता है तथा **(विकलत्रयं उत्पाद्यंते)** दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय पर्यायों में उत्पन्न होता है, इसलिये **(साधवा क्रोधं तिक्तंति)** आत्मार्थी मोक्षार्थी साधक अनंतानुबंधी क्रोध को त्याग देते हैं।

उवसग्गं थावरं दिस्टा, विकलत्रय उत्पाद्यते ।
असुद्ध भाव न कर्तव्यं, तिक्तते सुद्ध साधवा ।। १३३ ।।

अन्वयार्थ - **(थावरं उवसग्गं दिस्टा)** स्थावर पर्याय के जीवों पर नाना प्रकार के उपसर्ग देखे जाते हैं **(विकलत्रय उत्पाद्यते)** दो इन्द्रिय आदि विकलत्रय जीवों पर भी अनेक कष्ट उत्पन्न होते हैं, इसलिये **(असुद्ध भाव न कर्तव्यं)** अशुद्ध भाव करना योग्य नहीं है **(सुद्ध साधवा)** शुद्धात्म स्वरूप के साधक **(तिक्तते)** अनंतानुबंधी क्रोध को त्याग देते हैं।

कोहं अनेय उत्पाद्यंते, भावं असुहं न क्रीयते ।
जदि भावं विचलंति, तिक्तते सुद्ध साधवा ।। १३४ ।।

अन्वयार्थ - **(कोहं)** अनंतानुबंधी क्रोध के कारण **(अनेय)** अनेक प्रकार के **(असुहं भावं)** अशुभ भाव **(उत्पाद्यंते)** उत्पन्न होते हैं **(न क्रीयते)** जिन भावों को नहीं करना चाहिये **(जदि भावं विचलंति)** यदि असावधानी और प्रमादवश भाव विचलित होते हैं तो **(सुद्ध साधवा)** आत्मार्थी साधक उस भाव का भी **(तिक्तते)** त्याग कर देते हैं।

कोहाग्नि प्रजुलते जेन, उवसमं जल सिंचते ।
षिउ उवसमं च सद्भावं, जोगिनो कम्म षयं कुरु ।। १३५ ।।

अन्वयार्थ - **(जेन कोहाग्नि प्रजुलते)** जो जीव क्रोध की अग्नि को प्रज्ज्वलित करते हैं [अर्थात् जो क्रोध रूपी अग्नि में जलते हैं, वे अज्ञानी हैं] **(उवसमं जल सिंचते)** ज्ञानीजन क्रोध रूपी अग्नि पर समता जल का सिंचन करते हैं **(षिउ उवसमं च सद्भावं)** क्षयोपशम भाव का सद्भाव होते हुए भी **(जोगिनो कम्म षयं कुरु)** हे योगीजनो! कर्मों को क्षय करो।

जिन उक्तं कोहं समनं, क्रीयते बुधै जनैः ।
उन्मूलितं कर्म त्रिविधं च, जिन सासने मुक्ति गामिनो ।। १३६ ।।

अन्वयार्थ - **(बुधै जनैः)** जो सम्यक्दृष्टि बुद्धिमान ज्ञानीजन **(जिन उक्तं)** जिनेन्द्र भगवान के कहे अनुसार [जिनेन्द्र प्रणीत वस्तु स्वरूप को स्वीकार करके] **(कोहं समनं क्रीयते)** क्रोध का शमन करते हैं वे **(त्रिविधं च कर्म उन्मूलितं)** तीनों प्रकार के कर्मों [द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म] को जड़मूल से उखाड़ देते हैं **(जिन सासने मुक्ति गामिनो)** जिन शासन में उन्हें मोक्षगामी कहा है।

जेतानि राग दोषानि, तेतानि असुह भावना ।
मिथ्या सल्य निकंदंति, उन्मूलितं कोह जोगिनः ।। १३७ ।।

अन्वयार्थ - **(जेतानि राग दोषानि)** जितने राग द्वेष आदि भाव हैं **(तेतानि असुह भावना)** उतनी ही अशुभ भावनाएँ हैं **(जोगिनः)** आत्मज्ञानी योगीजन [समस्त अशुभ भावनाओं सहित] **(मिथ्या सल्य निकंदंति)** मिथ्या शल्यों को दूर कर देते हैं और **(कोह उन्मूलितं)** क्रोध को जड़ मूल से उखाड़ फेंकते हैं।

अनंतानुबंधी मान -

मानं असत्य न दिस्टंते, असास्वतं मान बंधनं ।
मानं अनृत सहितेन, उन्मूलितं मान जोगिनः ।। १३८ ।।

अन्वयार्थ - **(मानं अनृत सहितेन)** अनंतानुबंधी मान क्षणभंगुर वस्तुओं के अहं भाव सहित होने

पर होता है **(मान बंधनं असास्वतं)** मान का बंधन स्थायी नहीं होता **(जोगिनः)** वीतरागी ज्ञानी योगीजनों में **(असत्य मानं न दिस्टंते)** झूठे मान के परिणाम दिखाई नहीं देते हैं, क्योंकि उन्होंने **(मान उन्मूलितं)** अनंतानुबंधी मान को जड़ से समाप्त कर दिया है।

मान बंधं च रागं च, क्रीयते असुहं सुहं ।
जेतानि मान सद्भावं, तिक्तंति सुद्ध दिस्टितं ।। १३९ ।।

अन्वयार्थ - [अज्ञानी जीव] **(मान बंधं च)** मान के बंधन में बंधा हुआ **(असुहं सुहं रागं च क्रीयते)** कभी अशुभ राग के परिणाम करता है और कभी शुभ राग के परिणाम करता है, किन्तु **(सुद्ध दिस्टितं)** सम्यग्दृष्टि साधक **(मान सद्भावं जेतानि)** मान कषाय के सद्भाव में होने वाले जितने भी परिणाम हैं, उन सबको **(तिक्तंति)** त्याग देते हैं।

यथार्थ मान क्या है ?

मानं च जिन उक्तं च, मानं प्रमान चिन्तनं ।
अप्पा परमप्पयं तुल्यं, मानं प्रमान उच्यते ।। १४० ।।

अन्वयार्थ - [मान करना है तो] **(जिन उक्तं च मानं च)** जिनेन्द्र भगवान के कहे अनुसार अपने स्वभाव का बहुमान करो **(प्रमान)** सम्यग्ज्ञान पूर्वक **(मानं)** अपने स्वभाव का बहुमान करते हुए **(अप्पा परमप्पयं तुल्यं)** मैं आत्मा परमात्मा के समान हूँ ऐसा **(चिन्तनं)** चिंतन करो **(प्रमान मानं उच्यते)** सम्यग्ज्ञान पूर्वक स्वभाव का बहुमान करना ही सच्चा मान कहा जाता है।

मानं लोकलोकांतं, त्रिलोकं भुवनत्रयं ।
केवलदर्सन न्यानं च, मानं सर्वन्य पूजते ।। १४१ ।।

अन्वयार्थ - **(लोकलोकांतं)** सम्पूर्ण लोक और अलोक **(भुवनत्रयं)** तीन लोक और उनमें स्थित समस्त पदार्थों का त्रिकालवर्ती परिणमन जिनके **(केवलदर्सन न्यानं च)** केवलदर्शन और केवलज्ञान में एक समय में युगपत् झलकता है वे **(सर्वन्य)** सर्वज्ञ परमात्मा **(मानं)** बहुमान पूर्वक **(त्रिलोकं)** तीनों लोकों के जीवों द्वारा **(पूजते)** पूजे जाते हैं, ऐसे पूर्ण ज्ञानी परमात्मा का **(मानं)** बहुमान करना [सर्वज्ञ की सर्वज्ञता को स्वीकार करना ही] सच्चा मान है।

अनंतानुबंधी माया -

माया अनृत अचेतस्य, असत्य माया समं जुतं ।
सत्यं सुद्ध न जानाति, तिक्तते सुद्ध दिस्टितं ।। १४२ ।।

अन्वयार्थ - जब जीव **(असत्य माया समं जुतं)** झूठी माया कषाय के भावों सहित होकर, उनमें युक्त रहता है तब वह **(सुद्ध सत्यं न जानाति)** आत्मा के शुद्ध सत्य स्वरूप को नहीं जानता बल्कि **(अनृत अचेतस्य माया)** क्षणभंगुर नाशवान अचैतन्य पदार्थों को प्राप्त करने के लिये मायाचारी करता है **(सुद्ध दिस्टितं तिक्तते)** आत्मार्थी सम्यग्दृष्टि ज्ञानी ऐसी अनंतानुबंधी माया कषाय को त्याग देते हैं।

माया कुन्यान समं प्रोक्तं, मिथ्या राग समं जुतं ।
असुहं सुहं नवि जानाति, माया दुर्गति भाजनं ।। १४३ ।।

अन्वयार्थ - **(माया कुन्यान समं प्रोक्तं)** अनंतानुबंधी माया कुज्ञान सहित कही गई है [माया

कषाय में जीव] **(मिथ्या राग समं जुतं)** मिथ्या राग सहित होता है और बार-बार उन्हीं परिणामों को करता है वह [मायाचारी जीव] **(असुहं सुहं नवि जानाति)** अशुभ और शुभ को नहीं जानता **(माया दुर्गति भाजनं)** यह अनंतानुबंधी माया उस जीव को दुर्गति का पात्र बना देती है।

माया असुद्ध भावस्य, परपंचं रमते सदा ।
पर दव्वं पर पुद्गलार्थं च, तिक्तंति सुद्ध दिस्टितं ।। १४४ ।।

अन्वयार्थ - (माया) माया कषाय करने वाला [मायाचारी] जीव **(सदा)** हमेशा **(असुद्ध भावस्य)** अशुद्ध भावों को करता रहता है **(पर दव्वं पर पुद्गलार्थं च)** शरीरादि पर द्रव्य और धन आदि पर पुद्गलों को प्रयोजनीय मानता है तथा इनके **(परपंचं रमते)** प्रपंचों में ही रमता रहता है **(सुद्ध दिस्टितं तिक्तंति)** सम्यग्दृष्टि जीव अनंतानुबंधी माया कषाय को त्याग देते हैं।

माया कूड कर्मस्य, कूड दिस्टि कूड भावना ।
कूड कर्मानि कर्तव्यं, तिक्तंति सुद्ध दिस्टितं ।। १४५ ।।

अन्वयार्थ - (माया कूड कर्मस्य) मायाचारी जीव मन में कुछ विचारता है, वाणी से कुछ और बोलता है तथा शरीर से कुछ और करता है, ऐसे कपटरूप कर्म की माया सहित होता है, उसकी **(कूड दिस्टि कूड भावना)** छल पूर्ण दृष्टि तथा छलकपट युक्त भावना होती है **(कूड कर्मानि कर्तव्यं)** कपट रूप कर्म ही उसके कर्तव्य बन जाते हैं **(सुद्ध दिस्टितं तिक्तंति)** सम्यग्दृष्टि जीव ऐसी मायाचारी को त्याग देते हैं।

माया दुर्गति उत्पन्नं, माया थावरं पुनः ।
माया तिर्यंच जोनी च, माया तजंति जोगिनः ।। १४६ ।।

अन्वयार्थ - (माया दुर्गति उत्पन्नं) मन, वचन, काय की वक्र परिणति रूप माया कषाय से जीव नरक निगोद आदि दुर्गतियों में उत्पन्न होता है **(पुनः माया थावरं)** तथा यह मायाचार जीव को पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति के भेदरूप स्थावर पर्याय में ले जाता है **(माया तिर्यंच जोनी च)** माया तिर्यंच योनि का कारण है **(जोगिनः माया तजंति)** योगीजन ऐसी दुःखदायी माया कषाय को छोड़ देते हैं।

माया असैनी संजुक्तं, माया अचेत बंधनं ।
माया कुदेव उत्पन्नं, माया तजंति जोगिनः ।। १४७ ।।

अन्वयार्थ - (अचेत बंधनं माया) जड़ पदार्थों की आसक्ति के बंधन में पड़कर जीव मायाचारी करता है **(माया असैनी संजुक्तं)** मायाचारी के इन परिणामों से जीव [निगोद से लेकर असैनी पंचेन्द्रिय पर्यंत] विविध पर्यायों में जन्म लेता है **(माया कुदेव उत्पन्नं)** मायाचारी करके जीव कुदेव योनियों में भी उत्पन्न हो जाता है **(जोगिनः माया तजंति)** वीतरागी योगीजन संसार की कारणभूत अनंतानुबंधी माया का त्याग कर देते हैं।

माया का आध्यात्मिक स्वरूप -

माया सुद्धं जिनं प्रोक्तं, त्रिलोकं त्रिभुवन मयं ।
तिअर्थं षट् कमलस्य, पंच दीप्ति प्रस्थितं ।। १४८ ।।

अन्वयार्थ - (षट् कमलस्य) षट्कमल की साधना के द्वारा **(तिअर्थं)** उत्पन्न अर्थ, हितकार अर्थ,

सहकार अर्थ ऐसे तिअर्थमयी स्वरूप का आराधन करते हुए **(पंच दीप्ति प्रस्थितं)** पंचम केवलज्ञान में स्थित होकर **(त्रिलोकं त्रिभुवन मयं)** तीन लोक के समस्त पदार्थों को त्रिकालवर्ती परिणमन सहित [एक समय की पर्याय में जानने को] **(जिनं सुद्धं माया प्रोक्तं)** जिनेन्द्र भगवान ने शुद्ध माया कही है।

माया न्यान समं जुक्तं, माया दर्सति दर्सनं ।
अप्पा परमप्पयं तुल्यं, माया मुक्ति पथं धुवं ।। १४९ ।।

अन्वयार्थ - **(समं माया न्यान जुक्तं)** सम्यक् माया सम्यग्ज्ञान से युक्त होती है अर्थात् सम्यग्ज्ञान पूर्वक होती है **(माया)** इस ज्ञानमयी माया में **(अप्पा परमप्पयं तुल्यं)** मैं आत्मा परमात्मा के समान हूँ **(दर्सनं दर्सति)** ऐसी निर्विकल्प स्वानुभूति के दर्शन होते हैं **(माया धुवं मुक्ति पथं)** यह आत्मज्ञानमयी माया अविनाशी मुक्ति को प्राप्त करने का मार्ग है।

त्रि मिथ्या चतु कषायं च, असुद्धं तिक्तंति जोगिनः ।
अविरतं च जिनं प्रोक्तं, श्रावगं सुद्ध दिस्टितं ।। १५० ।।

अन्वयार्थ - **(जोगिनः)** आत्म कल्याणार्थी साधक या योगीजन **(असुद्धं)** आत्मा की अशुद्धि में कारणभूत **(त्रि मिथ्या चतु कषायं च)** तीन मिथ्यात्व [मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व] और चार कषाय [अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ] को **(तिक्तंति)** त्याग देते हैं, इसलिये **(जिनं)** जिनेन्द्र भगवान ने उन्हें **(अविरतं च)** अविरति **(सुद्ध दिस्टितं श्रावगं)** सम्यग्दृष्टि श्रावक **(प्रोक्तं)** कहा है।

सप्त प्रकृति विच्छेदो जत्र, सुद्ध दिस्टि समाचरेत् ।
सुद्धं च सुद्ध पिच्छंतो, अविरत संमिक् दिस्टितं ।। १५१ ।।

अन्वयार्थ - **(जत्र)** जहाँ [जिस जीव को] सम्यक्त्व में बाधक **(सप्त प्रकृति विच्छेदो)** तीन मिथ्यात्व और चार अनंतानुबंधी कषाय ऐसी सात प्रकृतियों का अभाव हो जाता है वह **(सुद्ध दिस्टि समाचरेत्)** शुद्ध दृष्टि में सम्यक् प्रकार से आचरण करता है **(सुद्धं च सुद्ध पिच्छंतो)** वह निश्चय से अपने शुद्ध स्वभाव को पहिचानता हुआ **(अविरत संमिक् दिस्टितं)** अविरत सम्यग्दृष्टि होता है।

(इ) अविरत सम्यग्दृष्टि का स्वरूप -

अविरतं सुद्ध दिस्टि च, सुद्ध तत्त्व प्रकासए ।
सुद्धात्मा सुद्ध भावस्य, असुद्धं सर्व तिक्तयं ।। १५२ ।।

अन्वयार्थ - **(अविरतं सुद्ध दिस्टि च)** आत्म श्रद्धानी अविरत सम्यग्दृष्टि श्रावक **(सुद्ध तत्त्व प्रकासए)** रागादि के अभाव रूप शुद्ध तत्त्व का प्रकाश करता है **(सर्व असुद्धं तिक्तयं)** कर्म के उदय के निमित्त से होने वाले सर्व प्रकार की अशुद्धता का [श्रद्धान में] त्याग करके **(सुद्ध भावस्य सुद्धात्मा)** शुद्ध भावों के जागरण पूर्वक शुद्धात्म स्वरूप का श्रद्धान आराधन करता है।

सुद्ध दिस्टि जथा प्रोक्तं, दिस्टते सास्वतं पदं ।
दिस्टते मोष्यमार्गस्य, आत्मानं परमात्मनं ।। १५३ ।।

अन्वयार्थ - **(सुद्ध दिस्टि जथा प्रोक्तं)** अविरत सम्यग्दृष्टि का जैसा जिनागम में स्वरूप कहा गया

है कि वह **(सास्वतं पदं दिस्टते)** शाश्वत पद को देखता है [अर्थात् श्रद्धान करता है] **(आत्मानं परमात्मनं)** अपने आत्मा का परमात्म स्वरूप श्रद्धान अनुभव करता हुआ **(मोष्यमार्गस्य दिस्टते)** मोक्षमार्ग पर चलता है।

दिस्टते देवदेवं च, दिस्टते ममलं धुवं ।
दिस्टते सुद्ध सर्वन्यं, दिस्टते न्यान मयं धुवं ।। १५४ ।।

अन्वयार्थ - अविरत सम्यग्दृष्टि **(देवदेवं च दिस्टते)** देवों के देव [देवाधिदेव अरिहंत भगवान] का व्यवहार में श्रद्धान करता है **(ममलं धुवं दिस्टते)** निश्चय से त्रैकालिक एकरूप रहने वाले कर्म रहित ममल ध्रुव स्वभाव का श्रद्धानी होता है **(सुद्ध सर्वन्यं दिस्टते)** वह शुद्ध सर्वज्ञ स्वरूप को पहिचानता है और **(न्यान मयं धुवं दिस्टते)** ज्ञानमयी ध्रुव स्वभाव पर दृष्टि रखता है।

दिस्टते तिअर्थ सुद्धं च, षट् कमलं पंच दीप्तयं ।
आरति रौद्र परित्याज्यं, धर्म सुक्लं च दिस्टते ।। १५५ ।।

अन्वयार्थ - **(तिअर्थ सुद्धं च दिस्टते)** सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न, हितकार, सहकार ऐसे तिअर्थ से शुद्ध रत्नत्रयमयी स्वरूप को देखते हैं, वे **(षट् कमलं पंच दीप्तयं)** षट् कमल के द्वारा अपने पाँच ज्ञानमयी स्वभाव की साधना करते हैं **(आरति रौद्र परित्याज्यं)** दु:ख पीड़ा रूप परिणामों वाले आर्त ध्यान और रौद्र व कठोर परिणामों रूप रौद्र ध्यान के परित्यागी होते हैं **(धर्म सुक्लं च दिस्टते)** वस्तु स्वरूप के चिंतन मनन रूप धर्म ध्यान और स्वभाव में लीनता रूप शुक्ल ध्यान के साधक होते हैं।

दिस्टते च स्वयं रूपं, परमानंद नंदितं ।
चिदानंद मयं सुद्धं, अप्पा परमप्प दिस्टते ।। १५६ ।।

अन्वयार्थ - सम्यग्दृष्टि जीव को **(स्वयं रूपं)** अपना आत्म स्वरूप **(परमानंद नंदितं)** परमानंद आनंद में निमग्न **(चिदानंद मयं सुद्धं)** चैतन्यमयी आनन्द से परिपूर्ण द्रव्य, भाव और नोकर्म रहित शुद्ध **(दिस्टते)** दिखाई देता है, वह **(अप्पा परमप्प दिस्टते)** आत्मा को परमात्मा स्वरूप अनुभव करता है।

दिस्टते जिन उक्तं च, प्रोक्तं च भव्यलोकयं ।
दिस्टतं सुद्ध समं सुद्धं, सुद्ध दिस्टी च उच्यते ।। १५७ ।।

अन्वयार्थ - **(जिन उक्तं च)** जिनेन्द्र भगवान ने जैसा वस्तु स्वरूप कहा है **(भव्यलोकयं प्रोक्तं च)** अपर गुरु ज्ञानी गणधरादि द्वारा जैसा भव्य जीवों को समझाया गया है **(दिस्टते)** सम्यग्दृष्टि तद्रूप ही वस्तु स्वरूप का श्रद्धान करता है **(दिस्टतं समं सुद्धं सुद्ध)** जिसकी दृष्टि समतामयी शुद्ध स्वभाव पर है और शंका कांक्षा आदि दोषों से रहित है **(सुद्ध दिस्टी च उच्यते)** वही शुद्ध दृष्टि कहलाता है।

देवं गुरुं श्रुतं दिस्टं, जिन उक्तं जिनागमं ।
दिस्टतं सयल विन्यानं, सुद्ध दिस्टि समं धुवं ।। १५८ ।।

अन्वयार्थ - सम्यग्दृष्टि जीव **(देवं गुरुं श्रुतं दिस्टं)** सच्चे देव गुरु शास्त्र का श्रद्धानी होता है, वह **(जिन उक्तं जिनागमं)** जिनेन्द्र भगवान की दिव्य ध्वनि द्वारा नि:सृत द्वादशांग रूप जिनागम में वर्णित **(सयल)** सम्पूर्ण वस्तु स्वरूप का **(विन्यानं)** भेदज्ञान पूर्वक **(दिस्टतं)** श्रद्धान करता है, ऐसा **(समं)** साम्यभाव का धनी **(सुद्ध दिस्टि)** अविरत सम्यग्दृष्टि **(धुवं)** ध्रुव स्वभाव का आराधक होता है।

असुद्ध दिस्टि न दिस्टंते, कुदेवं कुगुरुस्तथा ।
कुसास्त्रं कुन्यानं जेन, न दिस्टते सुद्ध दिस्टतं ।। १५९ ।।

अन्वयार्थ - **(सुद्ध दिस्टतं)** आत्म श्रद्धानी सम्यग्दृष्टि **(कुदेवं कुगुरुस्तथा जेन कुन्यानं कुसास्त्रं)** कुदेव, कुगुरु तथा जो कुज्ञानमयी कुशास्त्र हैं **(न दिस्टते)** उन पर श्रद्धान नहीं करते [क्योंकि मिथ्यात्व का अभाव होने से सम्यग्दृष्टि जीव] **(असुद्ध दिस्टि न दिस्टंते)** अशुद्ध दृष्टि से नहीं देखते [उनके अंतरंग में मिथ्या श्रद्धान नहीं होता।]

मिथ्या देव गुरुं धर्मं, मिथ्या माया न दिस्टते ।
सल्यं त्रिति मिथ्यातं, न दिस्टते सुद्ध दिस्टितं ।। १६० ।।

अन्वयार्थ - **(सुद्ध दिस्टितं)** आत्मार्थी अविरत सम्यग्दृष्टि जीव को **(मिथ्या देव गुरुं धर्मं)** संसार के कारणभूत मिथ्या देव, मिथ्या गुरु और मिथ्या धर्म पर श्रद्धान नहीं होता वह [अज्ञान जनित चाहना और सांसारिक संयोगों में प्रीति रूप] **(मिथ्या माया न दिस्टते)** मिथ्या माया को नहीं देखता **(सल्यं त्रिति मिथ्यातं न दिस्टते)** तीन शल्य और तीन मिथ्यात्व के परिणाम भी सम्यग्दृष्टि के जीवन में दिखाई नहीं देते।

अदेवं अगुरुं जेन, अधर्मं असुहं पदं ।
संसार सरनि सरीरस्य, न दिस्टते सुद्ध दिस्टितं ।। १६१ ।।

अन्वयार्थ - **(सुद्ध दिस्टितं)** अविरत सम्यग्दृष्टि जीव को **(अदेवं अगुरुं)** चैतन्यता से रहित अदेव, मिथ्यात्व से सहित अगुरु **(अधर्मं)** रागादि से परिपूर्ण अधर्म **(जेन)** और जो भी **(असुहं पदं)** अशुद्ध पद हैं इनके प्रति श्रद्धान नहीं होता **(संसार सरनि सरीरस्य न दिस्टते)** वह संसार के पंच परावर्तन रूप परिभ्रमण से छूटना चाहता है, इसलिये शरीर के प्रति भी उसे एकत्व आदि की मान्यता नहीं होती।

राग दोषं न दिस्टंते, विकहा विसन न दिस्टते ।
अबंभ भाव न दिस्टंते, न दिस्टते संसार कारणं ।। १६२ ।।

अन्वयार्थ - **(राग दोषं न दिस्टंते)** सम्यग्दृष्टि जीव को अनंतानुबंधी कषाय प्रमाण राग-द्वेष का अभाव हो जाता है **(विकहा विसन न दिस्टते)** व्यर्थ चर्चा रूप विकथा और व्यसन उसके जीवन में दिखाई नहीं देते **(अबंभ भाव न दिस्टंते)** अब्रह्म भाव को भी वह नहीं देखता **(संसार कारणं न दिस्टते)** इसके अतिरिक्त संसार में परिभ्रमण कराने वाले जितने भी कारण हैं, उन सबको भी नहीं देखता।

कर्म त्रिविधि न पस्यंते, दोषं नंत न पस्यते ।
न पस्यते मन पसरस्य, इन्द्री सुषं न पस्यते ।। १६३ ।।

अन्वयार्थ - **(त्रिविधि कर्म न पस्यंते)** सम्यग्दृष्टि जीव को तीन प्रकार के कर्म दिखाई नहीं देते हैं **(नंत दोषं न पस्यते)** वह कर्म के उदय के निमित्त से होने वाले अनंत दोषों को नहीं देखता **(मन पसरस्य न पस्यते)** मन की पसरने [फैलनेरूप प्रवृत्ति] को नहीं देखता **(इन्द्री सुषं न पस्यते)** पाँच इन्द्रियों के सुख भोगों में सम्यग्दृष्टि जीव प्रीति नहीं करता।

जेतानि कर्म संजुक्तं, प्रकृति भाव न दिस्टते ।
न दिस्टते घाति कर्मस्य, पुण्यं पापं न दिस्टते ।। १६४ ।।

अन्वयार्थ - **(कर्म संजुक्तं जेतानि)** कर्म के उदय निमित्त से होने वाले जितने भी **(प्रकृति भाव**

न दिस्टते) प्रकृति भाव [औदयिक भाव] हैं, सम्यग्दृष्टि ज्ञानी उन्हें नहीं देखता **(घाति कर्मस्य न दिस्टते)** घातिया कर्मों को नहीं देखता [अर्थात् घातिया कर्म मेरे स्वभाव में नहीं हैं ऐसा श्रद्धान करता है] **(पुण्यं पापं न दिस्टते)** पुण्य पाप भी उसे दिखाई नहीं देते [अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव कर्म को कर्म मात्र जानता है।]

न पस्यते त्रि कुन्यानं, कषायं विषय न पस्यते ।
न पस्यते इन्द्री न्यानं, न पस्यते बंध चौविहं ।। १६५ ।।

अन्वयार्थ - अविरत सम्यग्दृष्टि के जीवन में **(त्रि कुन्यानं न पस्यते)** कुमति, कुश्रुत, कुअवधि तीन कुज्ञान दिखाई नहीं देते **(विषय कषायं न पस्यते)** पंचेन्द्रियों विषय भाव और क्रोधादि कषाय करने का उसका अभिप्राय नहीं होता **(इन्द्री न्यानं न पस्यते)** इन्द्रिय ज्ञान को वह प्रयोजनीय नहीं मानता और **(चौविहं बंध न पस्यते)** प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग चार प्रकार के कर्म बंध को भी वह नहीं देखता [अर्थात् संसार के परिभ्रमण में कारणभूत कर्मों का बंध नहीं करता।]

ठिदि अनुभागं न पस्यंते, प्रकृति प्रदेस न पस्यते ।
चौविहि बंध न पस्यंते, संसार सरनि न दिस्टते ।। १६६ ।।

अन्वयार्थ - अविरती आत्म श्रद्धानी सम्यग्दृष्टि **(प्रकृति प्रदेस न पस्यते)** भवभ्रमण में निमित्तभूत प्रकृति बंध, प्रदेश बंध नहीं करता **(ठिदि अनुभागं न पस्यंते)** स्थिति बंध और अनुभाग बंध भी वहाँ दिखाई नहीं देते **(चौविहि बंध न पस्यंते)** जिनके निमित्त से जीव चारों गतियों में ठहरता है, ऐसे चारों ही प्रकार के बंध को नहीं करता **(संसार सरनि न दिस्टते)** इसलिये वह सम्यग्दृष्टि जीव संसार के पंच परावर्तन रूप प्रवाह में परिभ्रमण नहीं करता।

अन्यानं व्रत क्रिया जेन, श्रुतं अन्यान तपं कृतं ।
अनेय कस्ट न दिस्टंते, न्यानहीनो न दिस्टते ।। १६७ ।।

अन्वयार्थ - **(जेन)** जो कोई अज्ञानी जीव **(अन्यानं व्रत क्रिया)** आत्म बोध के अभाव रूप अज्ञान सहित व्रताचरण और क्रियाओं का पालन करते हैं **(अन्यान श्रुतं तपं कृतं)** अज्ञान पूर्वक शास्त्र का अभ्यास करते हैं, तप करते हैं वे मिथ्यादृष्टि होते हैं, सम्यग्दृष्टि आत्मार्थी जीव इस तरह के **(अनेय कस्ट न दिस्टंते)** अनेक कष्टकारी कार्य नहीं करते **(न्यानहीनो न दिस्टते)** आत्मज्ञान से रहित होकर वे कुछ भी नहीं देखते [अर्थात् उनका समग्र आचरण आत्मज्ञान सहित होता है।]

अविरतं सुद्ध दिस्टि च, उपादेय गुन संजुतं ।
मति न्यानं च संपूर्नं, उवएसं भव्यलोकयं ।। १६८ ।।

अन्वयार्थ - **(अविरतं सुद्ध दिस्टि च)** अविरत सम्यग्दृष्टि श्रावक **(उपादेय गुन संजुतं)** ग्रहण करने योग्य गुणों का धारी होता है **(मति न्यानं च संपूर्नं)** वह भेदविज्ञान सहित प्रकट होने वाले सम्यक् मतिज्ञान से परिपूर्ण होता है **(भव्यलोकयं उवएसं)** भव्य जीवों के लिये जिनवाणी का उपदेश भी देता है।

(फ) उपादेय पदवी धारी ज्ञानी का उपदेश तथा वीतराग भाव की साधना -

उवएसं च जिनं उक्तं, सुद्ध तत्त्व समं धुवं ।
मिथ्या माया न दिस्टंते, उवएसं सास्वतं पदं ।। १६९ ।।

अन्वयार्थ - **(जिनं उक्तं)** जिनेन्द्र भगवान की दिव्य देशना में वर्णित वस्तु स्वरूप के अनुसार **(धुवं**

समं) ध्रुव स्वभाव का सम्यक् श्रद्धानी ज्ञानी **(सुद्ध तत्त्व)** निज शुद्धात्म तत्त्व का श्रद्धान करने का **(उवएसं च)** उपदेश देता है **(मिथ्या माया न दिस्टंते)** वह मिथ्या माया पर दृष्टि नहीं देता **(सास्वतं पदं)** स्वयं शाश्वत पद की आराधना करते हुए उसी की प्राप्ति का **(उवएसं)** उपदेश करता है।

उवएसं धर्म सुद्धं च, तत्त्व दर्व पदार्थकं ।
उवएसं काय पंचास्तं, उवएसं व्रत संजमं ।। १७० ।।

अन्वयार्थ - उपादेय पदवी का धारी सम्यग्ज्ञानी **(सुद्धं च धर्म उवएसं)** आत्मा के शुद्ध स्वभाव रूप धर्म का उपदेश करता है **(तत्त्व दर्व पदार्थकं)** जीवादि सात तत्त्व, छह द्रव्य, नौ पदार्थ **(काय पंचास्तं उवएसं)** और पंचास्तिकाय का यथार्थ उपदेश देता है [जीवादि तत्त्वों के श्रद्धान पूर्वक] **(व्रत संजमं उवएसं)** अणुव्रत, महाव्रत आदि संयम को धारण करने की प्रेरणा देता है।

उवएसं तपं सुद्धं, प्रतिमा एक दसानि च ।
देव गुरू धर्म सुद्धं च, दर्सनं न्यान संजुतं ।। १७१ ।।

अन्वयार्थ - **(देव गुरू धर्म सुद्धं च दर्सनं न्यान संजुतं)** सच्चे देव गुरु धर्म के यथार्थ श्रद्धान पूर्वक सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान को प्राप्त करके **(प्रतिमा एक दसानि च)** दर्शन, व्रत, सामायिक आदि ग्यारह प्रतिमाओं का पालन तथा **(सुद्धं तपं)** आत्म ज्ञान पूर्वक सम्यक् तप करना चाहिये [उपादेय पदवी का धारी सम्यग्दृष्टि ज्ञानी] **(उवएसं)** इस प्रकार उपदेश देता है।

उवएसं न्यान मयं सुद्धं, संमिक्तं सास्वतं पदं ।
उवएसं सयल विन्यानं, न्यान सहकार उदेसनं ।। १७२ ।।

अन्वयार्थ - **(उवएसं)** उपादेय पदवी का धारी सम्यग्दृष्टि ज्ञानी ऐसा उपदेश देता है कि **(न्यान मयं)** ज्ञान स्वभावमय होकर निर्विकल्प अनुभव करना **(सुद्धं संमिक्तं)** निश्चय सम्यग्दर्शन है, यही **(सास्वतं पदं)** अविनाशी मोक्ष पद को प्राप्त कराता है [इस प्रकार] **(सयल विन्यानं उवएसं)** जिनवाणी में निहित वस्तु स्वरूप के समग्र विज्ञान का उपदेश करता है **(न्यान सहकार उदेसनं)** ज्ञान की प्राप्ति में जो-जो भी सहकारी उपाय होते हैं, उन सभी उपायों का उपदेश देता है।

आत्मा त्रिविधि प्रोक्तं च, परु अंतर बहिरप्पयं ।
आत्मानं सुद्धात्मानं, परमात्मा परमं पदं ।। १७३ ।।

अन्वयार्थ - **(आत्मा त्रिविधि प्रोक्तं च)** आत्मा के तीन भेद कहे गये हैं **(परु अंतर बहिरप्पयं)** परमात्मा, अंतरात्मा और बहिरात्मा [यह तीन भेद पर्याय की अपेक्षा से कहे हैं] **(आत्मानं सुद्धात्मानं)** आत्मा स्वभाव से शुद्धात्मा **(परमं पदं परमात्मा)** परम पद का धारी परमात्म स्वरूप है [उपादेय पदवी का धारी सम्यग्दृष्टि ज्ञानी ऐसा उपदेश देता है।]

मिथ्या त्रिति कुन्यानं च, सल्यं त्रिति न दिस्टते ।
कषायं विषय दुस्टं च, राग दोषं न चिंतए ।। १७४ ।।

अन्वयार्थ - आत्मार्थी सम्यग्दृष्टि ज्ञानी **(त्रिति मिथ्या कुन्यानं च)** तीन प्रकार के मिथ्यात्व, तीन प्रकार के कुज्ञान और **(त्रिति सल्यं न दिस्टते)** तीन प्रकार की शल्यों को नहीं देखता **(कषायं विषय दुस्टं च)** क्रोधादि कषाय और पाँच इन्द्रियों के विषय, जो दुःखदाई हैं इनसे विरत रहते हुए **(राग दोषं न चिंतए)**

इष्ट-अनिष्ट की भावना रूप राग-द्वेष का चिंतन नहीं करता।

(क) प्रथम उपदेश सम्यक्त्व और उसके पच्चीस दोषों का स्वरूप -

प्रथमं उवएस संमत्तं, सुद्ध सार्धं सदा बुधैः ।
दर्सनं न्यान मयं सुद्धं, संमत्तं सास्वतं धुवं ।। १७५ ।।

अन्वयार्थ - (बुधैः) सम्यग्दृष्टि ज्ञानीजनों के द्वारा **(प्रथमं संमत्तं उवएस)** सर्वप्रथम सम्यक्त्व को ग्रहण करने का उपदेश दिया गया है, इसलिये **(सुद्ध सदा सार्धं)** शुद्ध स्वभाव के आश्रय पूर्वक सदैव सम्यक्त्व प्राप्ति का साधन करना चाहिये **(संमत्तं सास्वतं धुवं)** सम्यक्त्व स्वरूप अपना अविनाशी ध्रुव स्वभाव है, इसका **(सुद्धं न्यान मयं)** शुद्ध ज्ञानमय होकर [स्वयं के द्वारा स्वयं का] निर्विकल्प अनुभव करना **(दर्सनं)** सम्यग्दर्शन है।

संमिक् दर्सनं सुद्धं, मिथ्यामोह विवर्जितं ।
मूढत्रयादि मलं मुक्तं, संमत्तं संमिक् दर्सनं ।। १७६ ।।

अन्वयार्थ - (सुद्धं संमिक् दर्सनं) रागादि व कर्मादि से रहित स्वभाव की अनुभूति रूप निश्चय सम्यग्दर्शन **(मिथ्यामोह विवर्जितं)** दर्शनमोह एवं चारित्रमोह सम्बंधी अनंतानुबंधी चतुष्क के अभाव पूर्वक होता है **(मूढत्रयादि मलं मुक्तं)** व्यवहार में तीन मूढ़ता आदि पच्चीस दोषों से रहित **(संमत्तं संमिक् दर्सनं)** यथार्थ श्रद्धान को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा गया है।

मूढ त्रयं कथं जेन, संसारे भ्रमनं सदा ।
कुन्यानं राग संबंधं, मूढं दुर्गति बंधनं ।। १७७ ।।

अन्वयार्थ - (जेन) जो जीव **(मूढ त्रयं कथं)** आगम में जिनका स्वरूप कहा गया है, उन तीन मूढ़ताओं में विश्वास करते हैं **(मूढं)** मिथ्यादृष्टि जीव **(कुन्यानं राग संबंधं)** कुज्ञान पूर्वक कामना, चाहना के वशीभूत होकर राग से सम्बंध बनाकर **(दुर्गति बंधनं)** दुर्गति का बंधन [बंध] करते हैं और **(सदा संसारे भ्रमनं)** हमेशा संसार [चार गति चौरासी लाख योनियों] में परिभ्रमण करते रहते हैं।

लोक मूढ़ता -

प्रथमं लोक मूढस्य, पाष्यिक धर्म संजुतं ।
असत्यं अनृत जानाति, जिनद्रोही दुर्गति भाजनं ।। १७८ ।।

अन्वयार्थ - (प्रथमं लोक मूढस्य) प्रथम लोकमूढ़ता को मानने वाला मिथ्यादृष्टि जीव [किसी कुदेव, कुगुरु आदि का पक्ष करके] **(पाष्यिक धर्म संजुतं)** पाक्षिक धर्म में संलग्न रहता है वह **(असत्यं अनृत जानाति)** झूठे क्षणभंगुर पदार्थों को ही जानता है [उनमें ही आसक्त रहता है] **(जिनद्रोही)** वह जिनमत के विपरीत चलने वाला जिनद्रोही **(दुर्गति भाजनं)** संसार में दुर्गतियों का पात्र बनकर भटकता रहता है।

कुदेवं कुगुरुं जेन, कुधर्मं राग बंधनं ।
कुन्यानं सल्य संजुक्तं, मान्यते लोकमूढयं ।। १७९ ।।

अन्वयार्थ - (जेन) जो जीव **(लोकमूढयं)** लोकमूढ़ता वाला है, वह [सांसारिक पदार्थों की चाहना करते हुए] **(राग बंधनं)** राग के बंधन में बंधकर **(कुदेवं कुगुरुं)** कुदेव, कुगुरु **(कुधर्मं)** कुधर्म

को **(मान्यते)** मानता है और **(कुन्यानं सल्य संजुक्तं)** कुज्ञान सहित [ऐसा न हो जाये, ऐसा करूँगा, फिर क्या होगा ? आदि] शल्य रूप परिणामों में डूबा रहता है।

लोकमूढ रतो जेन, पष्य धर्म प्रकासये ।
सुद्ध धर्मं न जानाति, मिथ्या मूढ व्रतं तपं ।। १८० ।।

अन्वयार्थ - **(जेन लोकमूढ रतो)** जो जीव लोकमूढ़ता में रत रहता है, वह **(पष्य धर्म प्रकासये)** पक्ष धर्म [अर्थात् जो लौकिकजन जिस-जिस कुदेव आदि को मानते हैं, उनकी चर्चा करता है, उन्हें इष्ट मानता है इस प्रकार मिथ्या धर्म] का प्रकाश करता है **(सुद्ध धर्मं न जानाति)** आत्मानुभव वीतरागता रूप यथार्थ धर्म को नहीं जानता है **(व्रतं तपं)** उसका व्रताचरण और तप आदि करना **(मूढ मिथ्या)** मूढ़तामय मिथ्या आचरण है।

देव मूढता -

देव मूढं उत्पाद्यंते, अदेवं देव उच्यते ।
असास्वतं अनृतं जेन, कुन्यानं रमते सदा ।। १८१ ।।

अन्वयार्थ - **(जेन)** जिस जीव को **(देव मूढं उत्पाद्यंते)** देव मूढ़ता के परिणाम उत्पन्न होते हैं [अर्थात् जो देवमूढ़ता को मानता है वह चैतन्यता रहित] **(अदेवं देव उच्यते)** अदेव को देव कहता है और **(असास्वतं अनृतं)** अशाश्वत क्षणभंगुर पदार्थों की आसक्ति सहित **(सदा कुन्यानं रमते)** हमेशा कुज्ञान में ही रमता रहता है।

देव मूढं च मूढत्वं, राग दोषं च संजुतं ।
मान्यते जेन केनापि, दुर्गति भाजन ते नरा ।। १८२ ।।

अन्वयार्थ - **(जेन केनापि)** जो कोई भी जीव **(देव मूढं च)** देवमूढ़ता को **(मान्यते)** मानता है **(ते नरा)** वह मनुष्य **(मूढत्वं)** मिथ्यात्व भाव सहित **(राग दोषं च संजुतं)** राग द्वेषादि परिणामों में लीन रहता हुआ **(दुर्गति भाजन)** दुर्गति का पात्र बन जाता है [संसार की नरकादि गतियों में जन्म-मरण करता है।]

देव मूढं च मूढं च, न्यानं कुन्यान पस्यते ।
मान्यते लोकमूढस्य, मिथ्या मय निगोयं पतं ।। १८३ ।।

अन्वयार्थ - **(मूढं च)** जो मिथ्यात्वी जीव **(देव मूढं च)** देवमूढ़ता को मानता है, वह **(न्यानं कुन्यान पस्यते)** यथार्थ ज्ञान को कुज्ञान रूप देखता है **(लोकमूढस्य मान्यते)** वह लोकमूढ़ता को भी मानता है और **(मिथ्या मय निगोयं पतं)** मिथ्यात्व में निमग्न रहता हुआ निगोद को प्राप्त हो जाता है।

पाखंड मूढ़ता -

पाषण्डी मुढंपि जानाति, पाषण्ड विभ्रम जे रताः ।
प्रपंचं पर पुद्गलार्थं च, जिन द्रोही दुर्गति भाजनं ।। १८४ ।।

अन्वयार्थ - **(जे)** जो जीव **(पाषण्डी)** पाखंडी साधुओं के जाल में फंसकर **(पाषण्ड विभ्रम रताः)** नाना प्रकार के भ्रमपूर्ण आडम्बर में रत रहता है, वह **(मुढंपि जानाति)** मिथ्यात्व को ही जानता है [अर्थात् मिथ्यात्व में ही आचरण करता रहता है] **(प्रपंचं पर पुद्गलार्थं च)** अनेक प्रकार के प्रपंच और

शरीर धन आदि पुद्गलों को प्रयोजनीय मानता है **(जिन द्रोही दुर्गति भाजनं)** वह जीव जिनमत के विपरीत होने से दुर्गति का पात्र बनता है।

पाषण्डी मूढ विस्वासं, लोकमूढं च दिस्टते ।
विस्वासं जेवि कर्तव्यं, दुर्गति भाजन ते नराः ।। १८५ ।।

अन्वयार्थ - **(पाषण्डी मूढ विस्वासं)** जो मनुष्य पाखंडी कुगुरुओं के वचन और उनके द्वारा बताये हुए मिथ्या आडंबरों में विश्वास करता है **(लोकमूढं च दिस्टते)** वह लोकमूढ़ता को भी मानता है और **(जेवि विस्वासं कर्तव्यं)** जो कोई भी इन मूढ़ताओं में विश्वास करना कर्तव्य समझते हैं **(ते नराः)** वे मनुष्य **(दुर्गति भाजन)** दुर्गति के पात्र बनते हैं।

पाषण्डी वचन विस्वासं, प्रोक्तं अधर्मं श्रुतं ।
अदेवं देव उक्तं च, विस्वासं नरय पतं ।। १८६ ।।

अन्वयार्थ - **(पाषण्डी)** मिथ्यात्वी कुगुरु **(अदेवं देव उक्तं च)** चैतन्यता से रहित अदेवों को देव कहते हैं **(वचन विस्वासं)** उनके वचनों पर विश्वास करने को **(श्रुतं अधर्मं प्रोक्तं)** शास्त्रों में अधर्म कहा गया है **(विस्वासं नरय पतं)** इस मिथ्या विश्वास से जीव नरकादि गतियों को प्राप्त होता है।

पाषण्डी मूढ प्रोक्तं च, विकहा राग संजुतं ।
दुर्बुद्धि जिनद्रोही च, विस्वासं संसार भाजनं ।। १८७ ।।

अन्वयार्थ - **(पाषण्डी)** मिथ्यात्वी कुगुरु **(विकहा राग संजुतं)** व्यर्थ चर्चाओं एवं लौकिक राग में डूबे रहते हैं **(दुर्बुद्धि जिनद्रोही च)** वे तत्त्व बुद्धि से रहित वीतराग मत से विपरीत चलने वाले हैं **(विस्वासं)** उन पर विश्वास करना **(मूढ प्रोक्तं च)** पाखंडी मूढ़ता कही गई है और यह **(संसार भाजनं)** संसार का पात्र बनाने वाली है।

पाषण्डी मूढ संगानि, अनुमोयं वचन विभ्रमं ।
कुन्यान भाव संजुक्तं, दुर्गति गमनं न संसया ।। १८८ ।।

अन्वयार्थ - **(मूढ)** जो मिथ्यादृष्टि जीव **(पाषण्डी)** अज्ञानी कुगुरुओं का **(संगानि)** संग करते हैं **(अनुमोयं वचन विभ्रमं)** उनकी अनुमोदना करते हैं और उनके द्वारा कहे हुए वचनों से भ्रमित होते हैं, वे **(कुन्यान भाव संजुक्तं)** कुज्ञान भाव सहित रहते हुए **(दुर्गति गमनं न संसया)** खोटी गतियों में चले जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है।

छह अनायतन -

अनायतन षट्कस्चैव, कुदेवं कुदेव धारिनं ।
कुसास्त्रं कुसास्त्र धारी च, कुलिंगी कुलिंग धारिनं ।। १८९ ।।

अन्वयार्थ - **(अनायतन षट्कस्चैव)** अनायतन [जो धर्म के स्थान नहीं हैं] छह प्रकार के होते हैं **(कुदेवं कुदेव धारिनं)** कुदेव और कुदेवों को मानने वाले **(कुलिंगी कुलिंग धारिनं)** कुगुरु और कुगुरुओं को मानने वाले **(कुसास्त्रं कुसास्त्र धारी च)** कुशास्त्र और कुशास्त्रों को मानने वाले, इनकी श्रद्धा और मान्यता करने को अनायतन कहते हैं।

कुदेवं जिनं उक्तं, राग दोष असुद्ध भावना ।
मिथ्या माया संजुक्तं, कुन्यानं कुदेव जानेहि ।। १९० ।।

अन्वयार्थ - **(जिनं कुदेवं उक्तं)** जिनेन्द्र भगवान ने कुदेवों का ऐसा स्वरूप कहा है कि जो **(राग दोष असुद्ध भावना)** राग द्वेष आदि सांसारिक अशुद्ध भावना में लीन रहते हैं **(मिथ्या माया संजुक्तं)** मिथ्यात्व और माया में निमग्न रहते हैं **(कुन्यानं कुदेव जानेहि)** जो कुज्ञान के धारी हैं उन्हें कुदेव जानो।

इन्दियमयं कुदेवं, विषम विष सहिऊ जानि नियमेन ।
कषायं वर्धनं नित्यं, ध्यान रौद्रं च संजोगिनः ।। १९१ ।।

अन्वयार्थ - **(कुदेवं)** कुदेव **(विषम)** दु:खदाई **(इन्दियमयं)** पाँच इन्द्रियों के विषयों में लीन रहते हैं, उन्हें **(नियमेन विष सहिऊ जानि)** नियम से पंचेन्द्रिय विषयों के विष सहित जानो, जिनकी **(कषायं नित्यं वर्धनं)** कषाय हमेशा ही बढ़ती रहती है **(च)** और **(रौद्रं ध्यान)** रौद्र ध्यानरूप परिणामों का जिनको **(संजोगिनः)** संयोग बना रहता है, वे कुदेव हैं।

मिथ्यादेव अदेवं च, न्यानं कुन्यान पस्यते सर्वं ।
सुह असुहंपि न बुज्झं, नहु जानदि लोयविवहारं ।। १९२ ।।

अन्वयार्थ - जो जीव **(मिथ्यादेव अदेवं च)** रागी-द्वेषी कुदेव और चैतन्यता से रहित अदेव को मानता है वह **(सर्वं न्यानं कुन्यान पस्यते)** सर्व प्रकार से ज्ञान को कुज्ञानरूप देखता है **(सुह असुहंपि न बुज्झं)** उस जीव को यह जीव नहीं बूझता कि क्या शुभ है और क्या अशुभ है और **(नहु लोयविवहारं जानदि)** न ही वह लोक व्यवहार को जानता है।

उत्पत्ति नत्थि अदेवं, कृत कारित मूढ लोयस्य ।
जे देवंति कहंतेन, ते सव्वे मूढ दुर्बुद्धि ।। १९३ ।।

अन्वयार्थ - **(अदेवं उत्पत्ति नत्थि)** जड़ अचैतन्य अदेवों की स्वाभाविक उत्पत्ति नहीं है **(मूढ लोयस्य कृत कारित)** मूढ़ लोगों के द्वारा उन्हें बनाया जाता है और बनवाया जाता है **(जे देवंति कहंतेन)** जो जीव उन्हें देव कहते हैं [या मानते हैं] **(ते सव्वे मूढ दुर्बुद्धि)** वे सब मूढ़ और दुर्बुद्धि हैं अर्थात् बुद्धि रहित हैं।

कुदेव धारी पुरिसा, हिंडंति संसार दुष्य संजुत्तं ।
थावर वियलेन्द्रीया, नरयं गच्छेह दुष संतत्ता ।। १९४ ।।

अन्वयार्थ - **(कुदेव धारी पुरिसा)** जो पुरुष कुदेवों को मानते हैं वे **(संसार हिंडंति दुष्य संजुत्तं)** संसार की चारों गतियों में भटकते हुए दु:ख भोगते रहते हैं **(थावर वियलेन्द्रीया)** कभी स्थावर [पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति] पर्याय में और कभी विकलेन्द्रिय [दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और चार इन्द्रिय] के भवों में दु:ख भोगते हैं और **(नरयं गच्छेह दुष संतत्ता)** नरकों में जाकर दु:खों की आग से संतप्त रहते हैं।

अदेवं जो वंदे, पूजै आराहि भत्तिभारेन ।
सो दुग्गैपि सहंता, निगोयवासं मुनेयव्वा ।। १९५ ।।

अन्वयार्थ - **(जो अदेवं वंदे)** जो जीव अदेव की वंदना करता है [उन्हें देव मानकर नमस्कार

करता है] **(भत्तिभारेन पूजै आराहि)** भक्तिभाव सहित उनकी पूजा आराधना करता है **(सो दुग्गैपि सहंता)** वह जीव दुर्गतियों के दु:खों को सहता हुआ **(निगोयवासं मुनेयव्वा)** निगोद चला जाता है, ऐसा जानना चाहिये।

कुदेवं अदेवयत्वं, जो चिंतेइ कुमय मयमंता ।
चिंता सायर बूडं, संसारे सरनि न लहे थाहं ।। १९६ ।।

अन्वयार्थ - **(जो)** जो जीव **(कुमय मयमंता)** कुमति के मद में मत्त होकर **(कुदेवं अदेवयत्वं)** कुदेव और अदेव का **(चिंतेइ)** चिंतवन करते हैं, वे **(चिंता सायर बूडं)** चिंताओं के समुद्र में ऐसे डूबते हैं कि **(संसारे सरनि न लहे थाहं)** संसार के पंच परावर्तन में परिभ्रमण की थाह भी नहीं ले पाते अर्थात् संसार में अनन्तकाल तक जन्म - मरण करते हैं।

कुलिंगी जे जीवा, ते अन्यान भासियं लोये ।
मिथ्यात राग दोषं, सल्यं संजुत्त दुर्बुद्धि ।। १९७ ।।

अन्वयार्थ - **(जे जीवा कुलिंगी)** जो जीव मिथ्या वेष धारी कुगुरु हैं, वे **(मिथ्यात राग दोषं)** मिथ्यात्व, राग, द्वेष आदि विभाव तथा **(सल्यं संजुत्त दुर्बुद्धि)** शल्यों [मिथ्या, माया, निदान] सहित मिथ्याज्ञानी है **(ते लोये अन्यान भासियं)** वे लोक में अज्ञान की चर्चा करते हैं, उसका ही प्रसार करते हैं।

इन्द्री सुह संतुष्टा, कुलिंगी असुहभाव पयडत्था ।
विकहा विसन सहावं, कुलिंगी एरिसो होई ।। १९८ ।।

अन्वयार्थ - **(इन्द्री सुह संतुष्टा)** पाँच इन्द्रियों के सुख में संतुष्ट रहने वाले **(कुलिंगी)** मिथ्यात्वी कुगुरु **(असुहभाव पयडत्था)** हमेशा अशुभ भावों में ही प्रवृत्त रहते हैं **(विकहा विसन सहावं)** व्यर्थ चर्चारूप विकथायें करना और व्यसनों में रत रहना जिनका स्वभाव बन गया है **(कुलिंगी एरिसो होई)** कुलिंगी ऐसे होते हैं।

दुर्बुद्धि जिन द्रोही च, पयडै अन्यान लोक रंजेई ।
सहिओ असुद्ध झानं, कुलिंगी कुगुरु जानेहि ।। १९९ ।।

अन्वयार्थ - **(दुर्बुद्धि जिन द्रोही च)** जो मिथ्या बुद्धि सहित होते हैं और वीतराग धर्म से पराङ्मुख हैं वे **(लोक रंजेई)** संसारी अज्ञानी जीवों को रंजायमान [प्रसन्न] करने के लिये **(अन्यान पयडै)** अज्ञान को प्रकट करते हैं [मिथ्या उपदेश देते हैं, और नाना प्रकार के प्रपंच रचते हैं] **(असुद्ध झानं सहिओ)** वे आर्त ध्यान और रौद्र ध्यान सहित होते हैं **(कुलिंगी कुगुरु जानेहि)** ऐसे कुलिंगियों को कुगुरु जानो।

अप्पा परु न पिच्छई, मिच्छादिट्ठि असुह भावस्य ।
दर्सन सुद्धि न जानै, परपंचं पर पुद्गलासत्तो ।। २०० ।।

अन्वयार्थ - कुगुरु **(मिच्छादिट्ठि असुह भावस्य)** मिथ्यादृष्टि सहित अशुभ भाव करते हैं **(अप्पा परु न पिच्छई)** वे आत्मा परमात्मा [अथवा स्व-पर भेदविज्ञान] को नहीं जानते **(दर्सन सुद्धि न जानै)** और न ही सम्यग्दर्शन की शुद्धि को जानते हैं, मिथ्यात्व सहित **(परपंचं पर पुद्गलासत्तो)** सांसारिक प्रपंच और शरीर आदि पर पुद्गलों में आसक्त रहते हैं।

जो तस्स भत्ति भारे, मानै मिच्छादिट्ठि ससहाओ ।
सो मिच्छदिट्ठि सहिओ, अन्मोयं निगोय वासम्मि ।। २०१ ।।

अन्वयार्थ - **(जो)** जो जीव **(मिच्छादिट्ठि ससहाओ)** मिथ्यादृष्टि से परिपूर्ण भावों सहित **(तस्स भत्ति भारे मानै)** कुगुरु की भक्ति के भार से नम्रीभूत होकर उन्हें मानता है [कुगुरु की वंदना पूजा आदि करता है] **(सो मिच्छदिट्ठि सहिओ)** वह मिथ्यादृष्टि सहित जीव **(अन्मोयं)** कुगुरु की अनुमोदना करके **(निगोय वासम्मि)** निगोद में वास करता है।

कुलिंग संग जुत्तो, स्थानं जंति आयरो भत्ती ।
सो मिच्छा मय अन्यानी, थावर वियलिंदि नरय वासम्मि ।। २०२ ।।

अन्वयार्थ - **(कुलिंग संग जुत्तो)** जो जीव कुगुरुओं की संगति करता है **(स्थानं जंति)** उनके स्थानों में जाता है **(भत्ती आयरो)** उनकी भक्ति और उनके बताये अनुसार आचरण करता है **(सो मिच्छा मय अन्यानी)** वह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जीव **(थावर वियलिंदि नरय वासम्मि)** पृथ्वीकाय आदि स्थावर, दो इन्द्रिय आदि विकलेन्द्रिय पर्यायों में जन्म लेता है और नरक में वास करता है।

कुलिंग वयन स्रवनं, आलापं लोक रंजनं भत्ती ।
ते मूढा अन्यानी, दुग्गइ गइ भावनो हुंति ।। २०३ ।।

अन्वयार्थ - जो जीव **(भत्ती)** भक्ति पूर्वक **(कुलिंग वयन स्रवनं)** कुगुरु के वचनों को सुनते हैं **(लोक रंजनं आलापं)** लोकरंजन के अभिप्राय पूर्वक उनसे वार्तालाप करते हैं **(ते मूढा अन्यानी)** वे अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव हैं [इस प्रकार के आचरण से उनकी] **(दुग्गइ गइ भावनो हुंति)** दुर्गति में जाने योग्य भावनायें होती हैं।

कुसास्त्रंपि सार्धं, विकहा विसनं च पुन्य पावं च ।
परिनामं जं असुद्धं, अस्तिति बंध कुसास्त्र जानेहि ।। २०४ ।।

अन्वयार्थ - जिनमें **(विकहा विसनं च पुन्य पावं च)** राजकथा आदि विकथा और व्यसनों की चर्चाएँ हैं तथा [अनेक प्रकार के क्रिया कांड करके] जिनमें पुण्य-पाप को बढ़ाने की वार्ता है **(कुसास्त्रंपि सार्धं)** ऐसे कुशास्त्रों पर मिथ्यादृष्टि जीव श्रद्धा रखते हैं, उन्हें पढ़ते और सुनते हैं **(परिनामं जं असुद्धं)** जिनके पढ़ने से परिणाम अशुद्ध हो जाते हैं **(अस्तिति बंध)** इस प्रकार की [गद्य पद्यात्मक या अन्य प्रकार की सभी] रचनाओं को **(कुसास्त्र जानेहि)** कुशास्त्र जानो।

जेवि कुसास्त्रं पठनं, इंद्री सुह जानि असुह लेस्याओ ।
संसार सरनि हिंडै, जह जल सरनि ताल कीटाओ ।। २०५ ।।

अन्वयार्थ - **(जेवि कुसास्त्रं पठनं)** जो कोई कुशास्त्रों को पढ़ते हैं वे **(इंद्री सुह जानि)** पाँच इन्द्रियों के विषयों में सुख है ऐसा जानकर **(असुह लेस्याओ)** कृष्ण, नील, कापोत इन अशुभ लेश्याओं के भावों में रत रहते हैं [इन परिणामों सहित] **(जह जल सरनि ताल कीटाओ)** जैसे पानी की नाली या तालाब के कीड़े वहीं बिलबिलाते रहते हैं, उसी प्रकार वे जीव **(संसार सरनि हिंडै)** संसार के पंच परावर्तनरूप प्रवाह में परिभ्रमण करते रहते हैं।

अनायतन षट्कस्चैव, जो मानै मिच्छादिट्ठि सभावं ।
सो मिच्छा मयेहि भारिऊ, संसारे दुहकारणं तंपि ।। २०६ ।।

अन्वयार्थ - **(जो मिच्छादिट्ठि सभावं)** जो कोई मिथ्यादृष्टि स्वभाव वाला जीव **(षट्कस्चैव अनायतन)** षट् अनायतन को **(मानै)** मानता है **(सो मिच्छा मयेहि भारिऊ)** वह मिथ्यात्व के मद से भरा हुआ है **(संसारे दुहकारणं तंपि)** इससे वह संसार में दुःख के कारणों को उत्पन्न करता है।

शंकादि आठ दोष -

संसय अस्ट दोसं, संका कंष्या चिंतनं चित्तं ।
त्रिविदिगंच्छायमूढा, दिठि उपगोहनं दोसं ।। २०७ ।।

अन्वयार्थ - **(संसय अस्ट दोसं)** अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव शंका आदि आठ दोषों सहित होता है वह **(संका कंष्या चिंतनं चित्तं)** शंका और कांक्षा का चित्त में चिंतन करता है **(त्रिविदिगंच्छायमूढा दिठि उपगोहनं दोसं)** निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि और उपगूहन अंग में दोष लगाता है अर्थात् इनके विपरीत आचरण करता है।

ठिदिकरनं वाछिलं, पहावना संसया हुंति ।
सहकारं कुन्यानं, संसय दोस नरय वासम्मि ।। २०८ ।।

अन्वयार्थ - **(ठिदिकरनं वाछिलं पहावना संसया हुंति)** मिथ्यादृष्टि जीव को स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना में संशय होता है **(सहकारं कुन्यानं)** वह मिथ्याज्ञान का सहकार करके **(संसय दोस नरय वासम्मि)** शंका आदि आठ दोषों में रत रहता हुआ नरक में वास करता है।

जे संसयरा जीवा, मनवयकायेन संसये जुत्ता ।
ते असुह मिच्छ भावे, संसारे भ्रमन वीयम्मि ।। २०९ ।।

अन्वयार्थ - **(जे संसयरा जीवा)** जो शंका करने वाले जीव हैं **(ते)** वे **(मनवयकायेन संसये जुत्ता)** मन से, वचन से और काय से संशय युक्त रहते हैं तथा **(असुह मिच्छ भावे)** अशुभ मिथ्यात्व भाव में निमग्न रहते हुए **(संसारे भ्रमन वीयम्मि)** संसार की चार गति चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने का बीज बो देते हैं।

संसय दोसं मिच्छा, संसैयारोपि दोष संजुत्ता ।
ते दंसनं च भट्टा, संसेयि न कहंमि सिज्झंतो ।। २१० ।।

अन्वयार्थ - **(संसय मिच्छा दोसं)** संशय, मिथ्यात्व सम्बंधी दोष है, इसलिये **(संसैयारोपि दोष संजुत्ता)** संशय को धारण करने वाला जीव मिथ्यात्व के दोष से संयुक्त है **(ते दंसनं च भट्टा)** वह सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट है **(संसेयि कहंमि न सिज्झंतो)** संशय में पड़ा हुआ जीव कभी भी सीझता नहीं है अर्थात् मुक्ति को प्राप्त नहीं करता है।

आठ मद -

मद्यं अस्ट स उत्तं, जाइ कुली स्वर रूप सहियानं ।
अभिमानं अन्यानं, अतपं बल सिलपि संतुट्ठं ।। २११ ।।

अन्वयार्थ - **(जाइ कुली स्वर रूप सहियानं)** जाति मद, कुल मद, धन मद, रूप मद सहित

(अन्यानं) ज्ञान का मद **(अतपं बल सिलपि संतुट्ठं)** अज्ञान सहित तप का मद, बल मद, शिल्प या विद्या मद में संतुष्ट होना **(अभिमानं)** जाति आदि का अभिमान करना **(मद्यं अस्ट स उत्तं)** यह आठ प्रकार के मद कहे गये हैं।

मद्यंपि असुह भावं, रागादि दोष असुह पयडत्थो ।
सो मद्यपा स उत्तं, स किरिया नरय वासम्मि ।। २१२ ।।

अन्वयार्थ - जो जीव **(मद्यंपि असुह भावं)** मद के अशुभ भाव करता है वह **(रागादि दोष असुह पयडत्थो)** राग-द्वेष आदि विभावों में रत रहता हुआ इन्द्रिय विषय तथा पापों को प्रकट करता है **(सो मद्यपा स उत्तं)** मद करने वाले को मदिरापान करने वाले के समान [शराबी] कहा गया है **(स किरिया नरय वासम्मि)** अभिमान, मद सहित की जाने वाली क्रियाएँ नरक में वास कराती हैं।

मल पच्चीस वियानं, तिक्तंति भाव सुद्ध परिनामं ।
सो सुद्ध दिट्ठि भनिऊ, दंसनमल विवज्जिओ सुद्धो ।। २१३ ।।

अन्वयार्थ - **(मल पच्चीस वियानं)** तीन मूढ़ता आदि को सम्यग्दर्शन के पच्चीस दोष जानो **(सुद्ध भाव परिनामं तिक्तंति)** जो जीव शुद्ध भाव [आत्म श्रद्धान सहित स्वानुभूति] में परिणमन करते हुए इन दोषों को त्याग देते हैं **(दंसनमल विवज्जिओ सुद्धो)** वे सम्यग्दर्शन के दोषों से रहित निर्मल श्रद्धानी हैं **(सो सुद्ध दिट्ठि भनिऊ)** उन्हें सम्यग्दृष्टि कहा गया है।

सम्यक्त्व रत्न से शुद्धि -

सम्मत्तरयन सुद्धो, जानै पिच्छेइ दंसनं सुद्धं ।
सो सुद्ध दिट्ठि जीवो, अचिरेन लहंति निव्वानं ।। २१४ ।।

अन्वयार्थ - **(सम्मत्तरयन सुद्धो)** जो जीव सम्यक्त्वरूपी रत्न से शुद्ध हैं [अर्थात् जिसने सम्यक्त्व को धारण कर लिया है] **(सुद्धं दंसनं जानै पिच्छेइ)** वह शुद्धात्म स्वरूप की प्रतीति को जानता है, पहिचानता है **(सो सुद्ध दिट्ठि जीवो)** वह आत्म श्रद्धानी सम्यग्दृष्टि जीव **(अचिरेन निव्वानं लहंति)** अल्पकाल में [शीघ्र ही] निर्वाण को प्राप्त करता है।

दंसन दिठि संजुत्तं, जानै पिच्छेइ सुद्ध संमत्तं ।
सो भव्यजीव सुद्धं, अचिरेन निव्वुए जंति ।। २१५ ।।

अन्वयार्थ - **(दंसन दिठि संजुत्तं)** जो जीव सम्यग्दर्शन की दृष्टि सहित है **(सुद्ध संमत्तं जानै पिच्छेइ)** वह शुद्धात्मा की अनुभूतिरूप सम्यक्त्व को जानता है, पहिचानता है **(सो भव्यजीव सुद्धं)** वह भव्य जीव शुद्ध स्वभाव की साधना करते हुए **(अचिरेन निव्वुए जंति)** शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त कर लेता है।

अप्पा परु पिच्छंतो, परचवैवि अप्प सुद्ध सभावं ।
अप्पा सुद्धप्पानं, परमप्पा लहै निव्वानं ।। २१६ ।।

अन्वयार्थ - सम्यग्दृष्टि ज्ञानी **(अप्पा परु पिच्छंतो)** आत्मा और शरीर आदि पर द्रव्यों को भिन्न-भिन्न पहिचानता हुआ **(अप्प सुद्ध सभावं परचवैवि)** अपनी आत्मा के शुद्ध स्वभाव का अनुभव करता है वह **(अप्पा सुद्धप्पानं परमप्पा लहै निव्वानं)** आत्मा को शुद्धात्म स्वरूप ध्याता हुआ परमात्मा होकर

निर्वाण को प्राप्त कर लेता है।

(ख) आठ मूलगुणों का पालन और आठ मूल अवगुणों का त्याग -

मूलगुनं ए अट्ठा, संव्वेओ निव्वेय सम संजुत्ता ।
निन्दा गरुहा नाए, उवसम संजुत्त भत्तिभारेन ।। २१७ ।।
वाच्छिल्लं अनुकम्पा, अट्ठ गुनं संजुत्त सम्मत्तं ।
सद्दहै सुद्ध भावं, सम्मत्तं निम्मलं सुद्धं ।। २१८ ।।

अन्वयार्थ - (सम संजुत्ता) सम्यक्त्व से सहित सम्यग्दृष्टि जीव **(संव्वेओ)** संवेग **(निव्वेय)** निर्वेद **(निन्दा नाए गरुहा)** आत्म शुद्धि के उपायरूप निंदा, गुरु के समक्ष विनय पूर्वक की जाने वाली गर्हा [अपने दोषों की निंदा] **(उवसम संजुत्त)** कषाय की मंदतारूप उपशम **(भत्तिभारेन)** आत्मा परमात्मा के बहुमानरूप भक्ति **(वाच्छिल्लं अनुकम्पा)** वात्सल्य और अनुकम्पा **(सम्मत्तं अट्ठ गुनं संजुत्त)** सम्यक्त्व के इन आठ गुणों का धारी होता है **(सुद्ध भावं सद्दहै)** शुद्ध स्वभाव का श्रद्धान करता है **(सम्मत्तं निम्मलं सुद्धं)** उसका सम्यक्त्व दोष रहित निर्मल शुद्ध होता है [श्री श्रावकाचार जी ग्रन्थ में श्रावक के आचार की अपेक्षा पाँच उदम्बर, तीन मकार के त्याग को अष्ट मूलगुण कहा था, यहाँ सम्यग्ज्ञानी की अपेक्षा संवेग आदि आठ मूलगुण कहे गये हैं।]

संवेग -

संवेओ सुद्धार्थं, जानै पिच्छेइ दंसनं सहसा ।
चरनंपि दुविह भेयं, सहकारेन तवंपि संवेओ ।। २१९ ।।

अन्वयार्थ - (संवेओ सुद्धार्थं) आत्म कल्याण की अतिशय उत्साह रूप भावना सहित शुद्ध स्वभाव को प्रयोजनीय मानना संवेग है **(सहसा दंसनं पिच्छेइ)** सम्यग्ज्ञानी जीव अपने स्वभाव के आश्रय पूर्वक स्वानुभूतिरूप सम्यग्दर्शन को पहिचानता है **(जानै)** सम्यग्ज्ञान को ग्रहण करता है **(दुविह भेयं चरनंपि)** सम्यक्त्वाचरण और संयमाचरण ऐसे दो भेदरूप सम्यक्चारित्र की **(सहकारेन तवंपि)** सहकारिता पूर्वक सम्यक् तप की भावना भाता हुआ **(संवेओ)** संवेग गुण का पालन करता है।

संवेउ सुयं वेगी, षिउ उवसमंपि सुद्ध संवेओ ।
सम्मत्त सुयं चरनं, संवेओ सुद्धमप्पानं ।। २२० ।।

अन्वयार्थ - (सुयं वेगी संवेउ) स्वयं स्वभाव के प्रति वेगवान पुरुषार्थवान होना संवेग है **(षिउ उवसमंपि सुद्ध संवेओ)** क्षायिक सम्यक्त्व हो या उपशम सम्यक्त्व हो दोनों ही शुद्ध संवेग गुण सहित होते हैं **(संवेओ)** संवेग गुण का धारी ज्ञानी **(सुद्धमप्पानं)** शुद्धात्म स्वरूप को ग्रहण कर **(सम्मत्त)** सम्यक्त्व सहित **(सुयं चरनं)** स्वयं के स्वभाव में [श्रद्धान सापेक्ष] आचरण करता है अर्थात् सम्यक्त्वाचरण चारित्र का पालन करता है।

निर्वेद -

निव्वेओ निस्सल्लो, लोयायासेहि सुद्ध अवयासो ।
दंसन न्यान पहानो, चरनं सुद्धंपि हवे निव्वेओ ।। २२१ ।।

अन्वयार्थ - (निस्सल्लो निव्वेओ) शल्य रहित होना निर्वेद गुण है **(दंसन न्यान पहानो)**

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान की प्रधानता पूर्वक **(सुद्धंपि चरनं)** सम्यक्चारित्र को ग्रहण करके **(लोयायासेहि सुद्ध अवयासो)** लोकाकाश के समान निर्मल अपने शुद्ध स्वभाव में ठहरने का पुरुषार्थ करना **(हवे निव्वेओ)** यही निर्वेद गुण है।

निव्वेओ निरु निस्चय, जानइ पिच्छेइ सुद्ध संमत्तं ।
अप्पा सुद्धप्पानं, परमप्पा निवेउ निव्वानं ।। २२२ ।।

अन्वयार्थ - **(निरु निस्चय निव्वेओ)** परम शुद्ध निश्चय नय से निर्वेद गुण यह है कि **(सुद्ध संमत्तं जानइ पिच्छेइ)** ज्ञानी शुद्ध सम्यक्त्व स्वरूप आत्मा को जानता पहिचानता है और अनुभव करता है **(निवेउ)** निर्वेद गुण के बल से वह **(अप्पा सुद्धप्पानं)** अपनी आत्मा को शुद्धात्म स्वरूप ध्याता हुआ **(परमप्पा)** परमात्मा होकर **(निव्वानं)** निर्वाण को प्राप्त कर लेता है।

निव्वेओ निद्दंदो, निःलोहो निव्वियार निकलेसो ।
सुद्ध सहावे सुरदो, संमत्त गुनं जानि निव्वेओ ।। २२३ ।।

अन्वयार्थ - सम्यग्दृष्टि ज्ञानी का निर्वेद गुण **(निव्वेओ)** वेद या काम भाव से रहित है **(निद्दंदो)** आत्मा परमात्मा के भेद से रहित निर्द्वन्द है **(निःलोहो)** लोभ रहित है **(निव्वियार)** विकार रहित है **(निकलेसो)** क्लेश रहित है [इस प्रकार विकारों से रहित ज्ञानी] **(सुद्ध सहावे सुरदो)** शुद्ध स्वभाव में अच्छी तरह रत रहता है **(संमत्त निव्वेओ गुनं जानि)** इसी को सम्यक्त्व का निर्वेद गुण जानो।

निंदा -

कुन्यानं निंदंतो, सल्यं निंदंति कसाय मिच्छत्तं ।
निंदंति असुहभावं, अनृत असत्य सयल निंदंति ।। २२४ ।।

अन्वयार्थ - सम्यग्दृष्टि ज्ञानी निंदा गुण का धारी होता है वह **(कुन्यानं निंदंतो)** कुज्ञान की निंदा करता है **(सल्यं कसाय मिच्छत्तं निंदंति)** शल्य, कषाय और मिथ्यात्व आदि भावों की निंदा करता है **(असुहभावं निंदंति)** जितने भी प्रकार के अशुभ भाव हैं उनकी निंदा करता है **(अनृत असत्य सयल निंदंति)** क्षणभंगुर नाशवान असत् पदार्थों के प्रति जितना भी अंतरंग में माया, मोह-राग है उस सबकी निंदा करता है।

निंदंति असुह वयनं, इंदी विषयम्मि सयल निंदंति ।
निंदंति राय दोसं, परिनामं असुह निंदंति ।। २२५ ।।

अन्वयार्थ - **(असुह वयनं निंदंति)** यदि वह अशुभ वचन बोलता है उसकी स्वयं निंदा करता है **(इंदी विषयम्मि सयल निंदंति)** पाँच इन्द्रियों के विषयों में होने वाली प्रवृत्ति की निंदा करता है **(राय दोसं निंदंति)** कर्म के उदयवश होने वाले राग-द्वेष परिणामों की निंदा करता है **(असुह परिनामं निंदंति)** मन में उत्पन्न होने वाले समस्त अशुद्ध परिणामों की निंदा करता है।

गर्हा -

निंदंति गरुह नाए, सरीरं असुहं च सरनि संसारे ।
दुबुहि असत्यं सहियं, अन्यानं व्रत तप क्रियं च ।। २२६ ।।

अन्वयार्थ - **(नाए निंदंति गरुह)** गुरु के समक्ष साधक विनय पूर्वक अपने दोषों की निंदा करता है,

इसको गर्हा कहते हैं **(सरनि संसारे सरीरं असुहं च)** वह संसार के परिभ्रमण में कारणभूत शरीर से होने वाली अशुभ क्रियाओं की **(दुबुहि असत्यं सहियं)** बुद्धि जो असत्य सहित दुर्बुद्धि हो जाती है **(च)** और **(अन्यानं व्रत तप क्रियं)** अपने स्वरूप का विस्मरण कर अज्ञान सहित जो भी व्रत, तप और क्रियाओं का पालन करता है [गुरु के समक्ष] उस समस्त अज्ञानरूप आचरण की निंदा करता है यह उसका गर्हा गुण है।

जस्स न न्यान सहावं, व्रत तप क्रियं च सहन उवसग्गं ।
न्यान सहावेन बिना, सयलंपि अनेय निंदंति ।। २२७ ।।

अन्वयार्थ - (जस्स न न्यान सहावं) जिस जीव को ज्ञान स्वभाव का बोध नहीं है **(व्रत तप क्रियं च उवसग्गं सहन)** उसका व्रताचरण करना, तप करना, क्रियाओं का पालन तथा उपसर्गों को सहन करना [मोक्षमार्ग में] कार्यकारी नहीं है **(न्यान सहावेन बिना)** ज्ञान स्वभाव की अनुभूति के बिना **(अनेय सयलंपि निंदंति)** अनेक प्रकार के समस्त आचरण को निंदा के योग्य मानता है [और स्वयं की गल्तियों की गुरु के समक्ष निंदा करता है, यही ज्ञानी का गर्हा नाम का गुण है।]

उपशम -

उवसम ऊर्ध सहावं, उवसम संजुत्त सुद्ध सम्मत्तं ।
षिउ उवसमंपि सुद्धं, उवसम गुन लहंति निव्वानं ।। २२८ ।।

अन्वयार्थ - (ऊर्ध सहावं उवसम) आत्मा के ऊर्धगामी [अथवा श्रेष्ठ] स्वभाव का अनुभव करना उपशम गुण है **(सुद्ध सम्मत्तं)** निश्चय सम्यक्त्व वाला जीव **(उवसम संजुत्त)** उपशम गुण का धारी होता है **(षिउ उवसमंपि सुद्धं)** क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो या उपशम सम्यग्दृष्टि हो, दोनों के श्रद्धान में निर्मलता होती है **(उवसम गुन निव्वानं लहंति)** वे ज्ञानी उपशम गुण से निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

उवसम सहिओ जीवो, संसार सरीर भोग विरदोय ।
मिच्छा मय कुन्यानं, रागं दोसंपि विषय उवसंतो ।। २२९ ।।

अन्वयार्थ - (जीवो उवसम सहिओ) जो ज्ञानी जीव उपशम गुण सहित होता है **(संसार सरीर भोग विरदोय)** वह संसार शरीर और भोगों से विरक्त होता है **(मिच्छा मय कुन्यानं)** उसका मिथ्यात्व, मद, कुज्ञान **(रागं दोसंपि विषय उवसंतो)** राग-द्वेषादि भाव तथा विषयों की वांछा आदि सभी उपशमित हो जाते हैं।

कषायं उवसंतो, रागादि दोष सयल परिचत्तो ।
संसार सरनि विरदो, उवसंतो विविह असुहाए ।। २३० ।।

अन्वयार्थ - (कषायं उवसंतो) सम्यग्दृष्टि ज्ञानी के कषाय भाव उपशमित हो जाते हैं **(रागादि सयल दोष परिचत्तो)** वह रागादि समस्त दोषों का परित्याग कर देता है **(विविह असुहाए उवसंतो)** उसकी विविध प्रकार की अशुभ परिणति, क्रियाएँ आदि उपशमित, शांत हो जाती हैं, इसलिये वह **(संसार सरनि विरदो)** संसार के परिभ्रमण से विरत हो जाता है।

उवसंत षीन मोहो, मिथ्या दंसनेहि उवसमो चरनो ।
चौगई गमनागमनो, उवसंतो लहै निव्वानं ।। २३१ ।।

अन्वयार्थ - (उवसंत षीन मोहो) उपशम सम्यक्त्वी का मोह उपशमित होता है, क्षायिक सम्यक्त्वी

का मोह क्षीण हो जाता है **(मिथ्या दंसनेहि उवसमो चरनो)** मिथ्यादर्शन के उपशमित होने पर उपशम सम्यक्त्वी को जो श्रद्धान रूप आचरण [सम्यक्त्वाचरण] प्रकट होता है, इससे **(चौगई गमनागमनो उवसंतो)** उस सम्यग्दृष्टि ज्ञानी का गमन-आगमन उपशमित हो जाता है यही उपशम गुण है जिससे वह **(निव्वानं लहै)** निर्वाण को प्राप्त करता है।

भक्ति -

भत्ती दंसन न्यानं, चरनं चारित्र दुविहि भत्तीए ।
तव भत्ती सहकारं, सम्मत्तं सुद्ध भत्तीओ ।। २३२ ।।

अन्वयार्थ - सम्यग्दृष्टि ज्ञानी **(दंसन न्यानं भत्ती)** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान को अत्यंत अनुराग पूर्वक धारण करता है, यह सम्यग्दर्शन ज्ञान की भक्ति है **(दुविहि चारित्र चरनं भत्तीए)** सम्यक्त्वाचरण और संयमाचरण इन दो भेद रूप चारित्र को धारण करता है ऐसे चारित्र की भक्ति सहित **(तव भत्ती सहकारं)** तप करने की प्रीति रूप तप भक्ति का सहकार करता है **(सम्मत्तं सुद्ध भत्तीओ)** सम्यक्त्वी का यही शुद्ध भक्ति गुण है।

भत्ती अनंत न्यानं, मल रहिओ सुद्ध दंसनं भत्ती ।
भत्ती सुद्ध सहावं, सुद्धं सम्मत्त भत्ति सो दिट्ठि ।। २३३ ।।

अन्वयार्थ - सम्यग्दृष्टि ज्ञानी **(अनंत न्यानं भत्ती)** अनन्त ज्ञान स्वरूपी आत्मा की भक्ति करता है **(मल रहिओ सुद्ध दंसनं भत्ती)** सम्यग्दर्शन के पच्चीस दोषों से रहित निर्मल श्रद्धान रखते हुए सम्यग्दर्शन की भक्ति करता है **(सुद्ध सहावं भत्ती)** आत्मा के शुद्ध स्वभाव के प्रति समर्पित रहता है **(सुद्धं सम्मत्त)** निश्चय सम्यक्त्व के धारी **(दिट्ठि सो भत्ति)** सम्यग्दृष्टि का यही भक्ति गुण है।

न्यानमयी भत्तीनं, अप्पा परमप्प सुद्ध भत्तीए ।
मिच्छात दोष रहियं, भत्ती पुन लहंति निव्वानं ।। २३४ ।।

अन्वयार्थ - सम्यग्दृष्टि **(न्यानमयी भत्तीनं)** आत्मज्ञान मयी भक्ति करता है **(अप्पा परमप्प)** मैं आत्मा परमात्मा हूँ ऐसे बहुमान पूर्वक **(सुद्ध भत्तीए)** शुद्ध भक्ति में रत रहता है **(मिच्छात दोष रहियं)** वह मिथ्यात्व आदि दोषों से रहित होता है **(पुन भत्ती निव्वानं लहंति)** सम्यग्दृष्टि बारम्बार ऐसी भक्ति करता हुआ निर्वाण को प्राप्त कर लेता है।

वात्सल्य -

वाच्छल्लं विन्यानं, न्यानं विन्यान सरूव सम्मत्तं ।
अप्पा पर विन्यानं, परचवैवि अप्प सुद्ध सभावं ।। २३५ ।।

अन्वयार्थ - **(विन्यानं वाच्छल्लं)** भेदविज्ञान के प्रति प्रीति होना ही वात्सल्य गुण है **(सम्मत्तं)** सम्यक्त्व का धारी साधक **(अप्पा पर विन्यानं)** आत्मा और पर पदार्थों को भेदविज्ञान के द्वारा भिन्न-भिन्न जानता है **(अप्प सुद्ध सभावं परचवैवि)** अपनी आत्मा के शुद्ध स्वभाव का वह अनुभव करता है **(न्यानं विन्यान सरूव)** ज्ञान विज्ञानमयी स्वरूप के प्रति समर्पित रहता है, यही उसका वात्सल्य गुण है।

अप्पा सुद्धप्पानं, विन्यानं करंति भावमय गहनं ।
लब्धं परमप्पानं, विन्यानं लहंति निव्वानं ।। २३६ ।।

अन्वयार्थ - जो सम्यग्दृष्टि ज्ञानी **(विन्यानं करंति)** स्व-पर भेदविज्ञान करते हैं **(अप्पा सुद्धप्पानं)** मैं आत्मा ही शुद्धात्मा हूँ ऐसे श्रद्धान को **(भावमय गहनं)** भावपूर्वक अर्थात् आल्हादित ह्रदय से प्रीति पूर्वक ग्रहण करते हैं **(परमप्पानं लब्धं)** उन्हें अपने परमात्म स्वरूप की प्राप्ति हो जाती है **(विन्यानं)** वे भेदविज्ञान के रसिक ज्ञानी **(निव्वानं लहंति)** संसार परिभ्रमण से मुक्त होकर निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

अनुकम्पा -

अनुकंपा जीवानं, थावर वियलेन्दिय सयलमप्पानं ।
अनुकंप भाव विसुद्धं, असत्य सहितोपि विवरीदो ।। २३७ ।।

अन्वयार्थ - **(थावर वियलेन्दिय सयलमप्पानं)** पंच स्थावर, दो इन्द्रिय आदि विकलेन्द्रिय तथा असैनी, सैनी पंचेन्द्रिय समस्त जीवात्माओं पर **(अनुकंपा)** दया भाव रखना अनुकंपा है **(अनुकंप)** यह अनुकंपा **(जीवानं)** जीव दया पालन करने के **(विसुद्धं भाव)** विशुद्ध भाव पूर्वक होती है **(असत्य सहितोपि विवरीदो)** असत्य सहित [रागादि भाव सहित] हिंसा होती है किन्तु उससे विपरीत अनुकंपा गुण है, जिसका पालन सम्यग्दृष्टि जीव करता है।

अनुकंप भाव विसुद्धं, अप्प सरूवं च चेयना भावं ।
अनृत असत्य सहियं, तिक्तंति अनुकंप भावेन ।। २३८ ।।

अन्वयार्थ - **(अनुकंप)** जीव मात्र पर दया भाव रखना व्यवहार से अनुकंपा है **(विसुद्धं भाव)** सम्यग्दृष्टि ज्ञानी विशुद्ध भाव सहित [व्यवहार से जीव दया का पालन करते हुए] **(चेयना भावं अप्प सरूवं च)** चैतन्य स्वभावी आत्म स्वरूप की आराधना करता है **(अनृत असत्य सहियं तिक्तंति)** शरीरादि क्षणभंगुर संयोगों में रागादि भाव सहित होने [रागादि भाव में जुड़ने] का त्याग कर देता है **(भावेन)** स्वभाव के आश्रय पूर्वक होने वाली [अपनी आत्मा पर दया] **(अनुकंप)** निश्चय से अनुकंपा है।

दर्संति सुद्ध तत्त्वं, अयं च अप्प गुनेहि दर्संति ।
अप्पा परमप्पानं, अनुकंपा लहंति निव्वानं ।। २३९ ।।

अन्वयार्थ - सम्यग्दृष्टि साधक **(अप्पा परमप्पानं)** मैं आत्मा परमात्मा हूँ ऐसे **(सुद्ध तत्त्वं दर्संति)** अपने शुद्धात्म तत्त्व का दर्शन करते हैं **(च)** और **(अयं अप्प)** यह आत्मा **(गुनेहि दर्संति)** अनंत गुणों में विलस रहा है ऐसा श्रद्धान [अनुभव] करते हैं **(अनुकंपा)** यही अनुकंपा गुण है **(निव्वानं लहंति)** जिससे वे निर्वाण को प्राप्त कर लेते हैं।

मूलगुनं ए अट्ठा, जानै पिच्छेइ सुद्ध सम्मत्तं ।
मिच्छात राग रहियं, अप्पा परमप्पयं सुद्धं ।। २४० ।।

अन्वयार्थ - **(ए अट्ठा मूलगुनं)** इस प्रकार यह आठ मूलगुण होते हैं **(सुद्ध सम्मत्तं)** शुद्धात्मा का श्रद्धानी सम्यक्त्वी साधक **(जानै पिच्छेइ)** इनको जानता है, मूलगुणों का जैसा स्वरूप है वैसा जीवन में आचरण करता है **(मिच्छात राग रहियं)** उसका मिथ्यात्व तथा [अनंतानुबंधी कषाय प्रमाण] राग छूट गया है **(अप्पा परमप्पयं सुद्धं)** वह अपने आत्मा को परमात्मा के समान शुद्ध अनुभव करता है।

अष्ट मूल (दोषों) का त्याग -

तिक्तंति मूल अट्ठा, पंचुम्बर मद्य मासं मधु पेयं ।
तिक्तंति भव्य जीवा, क्रिया मल विवज्जिओ सुद्धो ।। २४१ ।।

अन्वयार्थ - सम्यग्दृष्टि जीव **(पंचुम्बर मद्य मासं मधु पेयं)** पाँच उदम्बर फल, मदिरापान, माँस एवं मधु का सेवन **(अट्ठा मूल तिक्तंति)** इन आठ दोषों का त्याग कर देते हैं **(मल विवज्जिओ सुद्धो क्रिया)** दोषों से रहित शुद्ध आचरण का पालन करने के लिये **(भव्य जीवा तिक्तंति)** भव्य जीव इन दोषों को त्याग देते हैं।

पाँच उदम्बर फल -

बड़ पीपल पिलषूनं, पाकर उदंबरं जाने ।
त्रस जीवा उप्पत्ती, तिक्तंति सव्व सावया हुंति ।। २४२ ।।

अन्वयार्थ - **(बड़ पीपल पिलषूनं पाकर उदंबरं जाने)** बड़ का फल, पीपल का फल, ऊमर का फल, कठूमर का फल और अंजीर का फल इनको पाँच उदम्बर फल जानो **(त्रस जीवा उप्पत्ती)** इन फलों में द्वीन्द्रिय आदि अनेक त्रस जीवों की उत्पत्ति होती है [अहिंसा धर्म का पालन करने के अभिप्राय से] **(सव्व)** इन सबका **(तिक्तंति)** जो आत्म हितैषी जीव इनका त्याग करते हैं **(सावया हुंति)** वे श्रावक कहलाते हैं।

तीन मकार -

मद्यं च असुह भावं, असुहं आलाप विकह सभावं ।
मोह मय मान सहियं, मद्यं मानं च असुह मयमंतं ।। २४३ ।।

अन्वयार्थ - **(असुह भावं मद्यं च)** अशुभ भावों में निमग्न रहना मदिरापान करने के समान है **(असुहं आलाप विकह सभावं)** अशुभ वचनालाप करना विकथा [व्यर्थ चर्चाएँ] करने की प्रवृत्ति बन जाना **(मोह मय मान सहियं)** मोह के नशे में संयोगी पदार्थों का अहंकार करना **(असुह मयमंतं)** अशुभ के मद में उन्मत्त होकर **(मानं च)** अभिमान में चूर रहना **(मद्यं)** मदिरा पान करना है।

तिक्तंति मद्यपानं, ममता भावेन मिच्छ सहियानं ।
पुन्यं भोय निमित्तं, करंति ममता मद्यपा हुंति ।। २४४ ।।

अन्वयार्थ - अज्ञानी जीव **(मिच्छ सहियानं)** मिथ्यात्व सहित **(ममता भावेन)** ममत्व भाव पूर्वक **(भोय निमित्तं पुन्यं)** इन्द्रियों के भोगों की प्राप्ति के निमित्त से व्रत, तप आदि करके पुण्य का उपार्जन करते हैं और **(ममता करंति)** उस पुण्य में ममता करते हैं **(मद्यपा हुंति)** ये जीव शराब का सेवन करने वाले के समान [शराबी] होते हैं **(मद्यपानं तिक्तंति)** जो जीव पुण्य में ममत्व का त्याग करते हैं वे यथार्थपने मद्यपान के त्यागी होते हैं।

मासं च असुह भावं, भावं पंचम्मि थावरं सहियं ।
असुद्धं परिनामं, मांस दोस विरहिओ जीवो ।। २४५ ।।

अन्वयार्थ - **(मासं च)** मांस भक्षण का त्याग कर दिया किन्तु **(असुह भावं)** हिंसा आदि रूप अशुभ भावों का होना **(पंचम्मि थावरं भावं सहियं)** पाँच स्थावरकाय के जीवों की हिंसा के भाव सहित

होना **(असुद्धं परिनामं)** ये सब अशुद्ध परिणाम हैं **(मांस दोस)** इन परिणामों से होने से मांस का दोष लगता है **(जीवो विरहिओ)** सम्यग्दृष्टि जीव इन सभी दोषों से बचना चाहता है अत: वह हिंसादि के सभी अशुद्ध परिणामों का त्याग कर देता है।

पुग्गला एइन्दीया, भरितं आहारपान एइन्दी ।
मांस दोष बेइंदी, रष्यंतो सुद्ध भावेन ।। २४६ ।।

अन्वयार्थ - **(मांस दोष बेइंदी)** दो इन्द्रिय आदि जीवों के मृत कलेवर का भक्षण करने में मांस का दोष होता है जबकि **(एइन्दीया पुग्गला भरितं आहारपान)** एक इन्द्रिय पुद्गलों से भरण पोषण हेतु आहार पान तैयार होता है [अत: दो इन्द्रिय जीवों के साथ-साथ] **(सुद्ध भावेन एइन्दी रष्यंतो)** शुद्ध भाव पूर्वक एकेन्द्रिय जीवों की भी रक्षा करना चाहिये।

महुरं मधुर सहावं, स्वादं विचलंति महुर उप्पत्ती ।
तिक्तंति सुद्ध भावं, मूलं अवगुनंपि तिक्तंति ।। २४७ ।।

अन्वयार्थ - **(महुरं मधुर सहावं)** मधु का मीठा स्वभाव होता है **(स्वादं विचलंति महुर उप्पत्ती)** किन्तु भक्षण के योग्य जिस मीठी वस्तु का स्वाद विचलित हो जाता है, उसमें मधु के समान अनंत जीव राशि उत्पन्न हो जाती है **(सुद्ध भावं तिक्तंति)** विवेकवान श्रावक शुद्ध भाव सहित इस प्रकार की वस्तुओं के सेवन करने का त्याग कर देते हैं **(मूलं अवगुनंपि तिक्तंति)** इस प्रकार सम्यग्दृष्टि मूल अवगुणों के त्यागी होते हैं।

(ग) रत्नत्रय की साधना -

रयनत्तयंपि जोई, दंसन न्यानेन सुद्ध चरनानि ।
चिंतंति भव्य जीवा, अप्पा समयं च सुद्ध दिट्ठीऊ ।। २४८ ।।

अन्वयार्थ - **(सुद्ध दिट्ठीऊ)** आत्मानुभवी सम्यग्दृष्टि साधक **(रयनत्तयंपि जोई)** रत्नत्रय की साधना करता है **(भव्य जीवा)** वह भव्य जीव **(अप्पा समयं च)** अपने स्व समय शुद्धात्म स्वरूप का **(चिंतंति)** चिंतन करता हुआ **(दंसन न्यानेन सुद्ध चरनानि)** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान पूर्वक सम्यक्चारित्र को धारण करता है।

सम्यग्दर्शन -

दंसन भेय चउक्कं, चष्यं अचष्य अवहि संजुत्तं ।
केवलदंसन सुद्धं, दंसन धरनं च सुद्ध संमत्तं ।। २४९ ।।

अन्वयार्थ - **(दंसन धरनं च सुद्ध संमत्तं)** शुद्ध सम्यक्त्वी जीव दर्शनोपयोग रूप निर्विकल्पता को धारण करता है **(दंसन चउक्कं भेय)** दर्शन के चार भेद हैं **(चष्यं अचष्य अवहि संजुत्तं)** चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधि दर्शन क्षायोपशमिक होते हैं **(केवलदंसन सुद्धं)** केवलदर्शन क्षायिक होता है, शुद्ध होता है।

दंसेइ मोष्य मग्गं, मल रहियं राग मिच्छ परिचत्तं ।
दंसेइ अप्प रूवं, अप्पा परमप्पयं सुद्धं ।। २५० ।।

अन्वयार्थ - **(मल रहियं)** जो जीव सम्यग्दर्शन के पच्चीस दोषों से रहित है **(मिच्छ राग**

परिचत्तं) जिसने मिथ्यात्व और राग का त्याग कर दिया है ऐसे जीव का श्रद्धान **(मोष्य मग्गं दंसेइ)** मोक्षमार्ग को दर्शाता है **(अप्प रूवं दंसेइ)** उसके श्रद्धान में आत्म स्वरूप दिखाई देता है **(अप्पा परमप्पयं सुद्धं)** वह अपने आत्मा को परम पद के धारी परमात्मा के समान शुद्ध अनुभव करता है।

संमिक् दर्सन सुद्धं, अदंसन सयल दोष परिचत्तं ।
दंसेइ तिहुवनग्गं, विंदस्थं दंसनं सुद्धं ।। २५१ ।।

अन्वयार्थ - **(संमिक् दर्सन सुद्धं)** शुद्ध सम्यग्दर्शन के प्रकट होने पर **(अदंसन सयल दोष परिचत्तं)** मिथ्यादर्शन सम्बंधी समस्त दोष छूट जाते हैं **(तिहुवनग्गं दंसेइ)** सम्यग्दृष्टि साधक तीनों लोक के अग्रभाग में विराजमान सिद्ध परमात्मा के समान अपने स्वरूप का दर्शन करता है **(विंदस्थं)** समस्त संकल्प-विकल्पों से रहित निर्विकल्प स्वरूप में स्थित होता है यह आत्मानुभूति ही **(सुद्धं दंसनं)** शुद्ध सम्यग्दर्शन है।

अनंत दर्सन दर्सं, केवलदर्सन तिलोय संजुत्तं ।
लोय अवलोय दर्सं, अनंत दर्सन दर्सनं सुद्धं ।। २५२ ।।

अन्वयार्थ - **(अनंत दर्सन दर्सनं सुद्धं)** आत्मा अनंत दर्शनमयी है, दर्शनोपयोग शुद्ध है [निर्विकल्प और निराकार है, वस्तु की सत्ता मात्र को ग्रहण करता है] **(अनंत दर्सन दर्सं)** अनंत दर्शनमयी ऐसे आत्म स्वरूप का निर्विकल्प अनुभव करना सम्यग्दर्शन है **(तिलोय केवलदर्सन संजुत्तं)** यह सम्यग्दर्शन तीन लोक जिसमें प्रकटता है ऐसे केवलदर्शन को प्राप्त कराता है **(लोय अवलोय दर्सं)** केवलदर्शन में तीन लोक के साथ अलोक भी प्रकाशित होता है।

ममलं दंसन दिट्ठी, मलं न पिच्छेइ सयल दोस परिचत्तं ।
पिच्छै परमप्पानं, तिविहं कम्मं न पिच्छेइ ।। २५३ ।।

अन्वयार्थ - **(ममलं दंसन दिट्ठी)** ममल स्वभाव के दर्शन की दृष्टि में **(मलं न पिच्छेइ)** कोई भी दोष दिखाई नहीं देते **(सयल दोस परिचत्तं)** सम्यग्दृष्टि मिथ्यात्व सम्बंधी समस्त दोषों का परित्याग कर देता है **(परमप्पानं पिच्छै)** अपने परमात्म स्वरूप का अनुभव करता है **(तिविहं कम्मं न पिच्छेइ)** वह तीनों प्रकार के कर्मों पर भी दृष्टि नहीं देता।

दंसन दिट्ठि सदिट्ठं, कम्ममल मिच्छ दोस परिगलियं ।
गलियं कुन्यान रागं, जं तिमिरं दिनकरं तेजं ।। २५४ ।।

अन्वयार्थ - **(जं दिनकरं तेजं तिमिरं)** जैसे सूर्य का प्रकाश होते ही अंधकार दूर हो जाता है [उसी प्रकार] **(दिट्ठि दंसन सदिट्ठं)** जिस भव्य जीव की दृष्टि में अभेद स्वभाव का निर्विकल्प अनुभव दिखाई देता है [श्रद्धा गुण सम्यक्रूपेण प्रकट हो जाता है] **(मिच्छ दोस कम्ममल परिगलियं)** उसके मिथ्यात्व सम्बंधी दोष कर्मोदय के निमित्त से होने वाले रागादि विकार गल जाते हैं **(कुन्यान रागं गलियं)** कुज्ञान और राग भी गलित हो जाता है।

दंसनदिट्ठि स दिट्ठं, विहडै कम्मान मिच्छ सुह असुहं ।
विहडै मान कषायं, जं सीहं दिट्ठि गयंद जूहेहि ।। २५५ ।।

अन्वयार्थ - **(जं सीहं दिट्ठि गयंद जूहेहि)** जैसे सिंह को देखकर हाथियों के समूह भाग जाते हैं

[उसी प्रकार] **(दंसनदिट्ठि स दिट्ठं)** जिस जीव को अनंत गुण सम्पन्न आत्म स्वभाव के अनुभव की दृष्टि प्रकट हो जाती है वहाँ **(मिच्छ सुह असुहं कम्मान विहडै)** मिथ्यात्व और शुभ-अशुभ कर्म विघटित हो जाते हैं, विला जाते हैं **(मान कषायं विहडै)** मान कषाय के परिणाम भी रहते नहीं हैं।

दंसन सुद्धि निमित्तं, दंसन दिट्ठि धरेहि भावेन ।
दंसेइ तिहुवनग्गं, दंसन धरनं च मुक्ति गमनं च ।। २५६ ।।

अन्वयार्थ - सम्यग्दृष्टि साधक **(दंसन सुद्धि निमित्तं)** सम्यग्दर्शन की शुद्धि के निमित्त से [अर्थात् सम्यक्त्व में शंका, कांक्षा आदि दोष लगते हुए प्रतीत होते हैं उन्हें दूर करने के लिये वह] **(भावेन दंसन दिट्ठि धरेहि)** भाव पूर्वक दृढ़ता सहित परिपूर्ण स्वभाव की दृष्टि धारण करता है [स्वभाव के आश्रय से श्रद्धान को निर्मल बनाता है] **(तिहुवनग्गं दंसेइ)** यह निर्मल सम्यग्दर्शन तीन लोक के अग्रभाग में स्थित सिद्ध पद को दर्शाता है **(दंसन धरनं च मुक्ति गमनं च)** सम्यग्दृष्टि जीव शुद्ध सम्यग्दर्शन को धारण कर मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।

सम्यग्ज्ञान -

न्यानमयं अप्पानं, न्यानं तिलोय सयल संजुत्तं ।
अन्यान तिमिर हरनं, न्यान उदेसं च सयल विलयंमि ।। २५७ ।।

अन्वयार्थ - [स्व-पर के यथार्थ निर्णय सहित] **(न्यानमयं अप्पानं न्यानं)** ज्ञानमयी आत्मा का अनुभव प्रमाण बोध होना ही सम्यग्ज्ञान है **(तिलोय सयल संजुत्तं)** यह [सम्यग्ज्ञान] तीन लोक के समस्त पदार्थों को जानने की सामर्थ्य वाला है **(अन्यान तिमिर हरनं)** अज्ञान अंधकार को दूर कर देता है **(न्यान उदेसं च सयल विलयंमि)** सम्यग्ज्ञान का उदय होने पर अज्ञान जनित समस्त विकार विलय हो जाते हैं।

न्यानं तिलोय सारं, न्यानं दंसेइ दंसनं मग्गं ।
जानदि लोयपमानं, न्यान सहावेन सुद्धमप्पानं ।। २५८ ।।

अन्वयार्थ - **(सहावेन सुद्धमप्पानं न्यान)** आत्म स्वभाव के आश्रय से अपने शुद्धात्म स्वरूप को जानना सम्यग्ज्ञान है **(न्यानं तिलोय सारं)** सम्यग्ज्ञान तीन लोक में सार है **(न्यानं दंसनं मग्गं दंसेइ)** ज्ञान ही आत्म स्वभाव की निर्विकल्पता के मार्ग को दर्शाता है **(लोयपमानं जानदि)** और असंख्यात प्रदेशी लोक प्रमाण आत्मा को जानता है।

न्यानं न्यान सरूवं, जानदि पिच्छेइ सुद्धमप्पानं ।
अप्पा सुद्धप्पानं, परमप्पा न्यान संजुत्तं ।। २५९ ।।

अन्वयार्थ - **(न्यान सरूवं न्यानं)** ज्ञान स्वरूप का यथार्थ बोध होना सम्यग्ज्ञान है **(सुद्धमप्पानं जानदि पिच्छेइ)** यह ज्ञान ही शुद्धात्मा को जानता और अनुभव करता है **(अप्पा सुद्धप्पानं परमप्पा न्यान संजुत्तं)** तथा आत्मा के शुद्धात्म स्वरूप को प्रकट करता हुआ परमात्म स्वरूप के ज्ञान से संयुक्त कर देता है।

न्यान बलेन जीवो, अप्पा सुद्धप्प हवेइ परमप्पा ।
न्यान सहावं जानदि, मुक्ति पंथ सिद्धि ससरूवं ।। २६० ।।

अन्वयार्थ - **(न्यान बलेन जीवो)** सम्यग्ज्ञान के बल से जीव **(न्यान सहावं जानदि)** अपने ज्ञान स्वभाव को जानता है **(ससरूवं)** स्व स्वरूप का अनुभव करता है **(मुक्ति पंथ सिद्धि)** यही मुक्ति का

मार्ग और सिद्धि को प्राप्त करने का उपाय है, ऐसा जानते हुए **(अप्पा सुद्धप्प परमप्पा हवेइ)** अपने आत्मा को शुद्धात्म स्वरूप ध्याता हुआ परमात्मा हो जाता है।

न्यानं जिनेहि भनियं, रूवातीतं च विक्त लोयस्य ।
न्यानं तिलोय सारं, नायव्वो गुरूपसाएन ।। २६१ ।।

अन्वयार्थ - **(जिनेहि न्यानं भनियं)** श्री जिनेन्द्र भगवान ने सम्यग्ज्ञान का स्वरूप ऐसा कहा है कि ज्ञान **(रूवातीतं च लोयस्य विक्त)** पुद्गल के समस्त रूपों से अतीत अर्थात् अमूर्तिक है और सम्पूर्ण लोक को व्यक्त करने वाला है [जानने वाला है] **(न्यानं तिलोय सारं)** यह सम्यग्ज्ञान ही तीन लोक में सार है **(गुरूपसाएन नायव्वो)** ऐसा श्री गुरु के प्रसाद से जानो।

सम्यक्चारित्र -

न्यानं दंसन सम्मं, सम भावना हवदि चारित्तं ।
चरनंपि सुद्ध चरनं, दुविहि चरनं मुनेयव्वा ।। २६२ ।।

अन्वयार्थ - **(दंसन न्यानं सम्मं)** सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान सहित **(सम भावना)** जो सम भावना अर्थात् राग-द्वेष रहित वीतरागता **(हवदि)** होती है **(चारित्तं)** यही सम्यक्चारित्र है **(सुद्ध चरनंपि चरनं)** शुद्ध स्वभाव में रमणतारूप शुद्ध आचरण सम्यक्चारित्र कहलाता है **(चरनं दुविहि मुनेयव्वा)** यह सम्यक्चारित्र दो प्रकार का होता है, ऐसा जानना चाहिये।

सम्यक्चारित्र के दो भेद -

सम्मत्त चरन पढमं, संजम चरनंपि होइ दुतियं च ।
सम्मत्त चरन सुद्धं, पच्छादो संजमं चरनं ।। २६३ ।।

अन्वयार्थ - **(पढमं सम्मत्त चरन)** पहला सम्यक्त्वाचरण चारित्र है [सम्यग्दर्शन के पच्चीस दोषों के अभाव से जो श्रद्धानरूप आचरण है उसे सम्यक्त्वाचरण चारित्र कहते हैं] **(च)** और **(दुतियं)** दूसरा **(संजम चरनंपि होइ)** संयमाचरण चारित्र है [पाप, विषय, कषायों के त्यागरूप व्यवहार संयमाचरण तथा शुद्ध स्वभाव में लीनता निश्चय संयमाचरण है] **(सम्मत्त चरन सुद्धं)** पहले सम्यक्त्वाचरण चारित्र से शुद्ध होना चाहिये **(पच्छादो संजमं चरनं)** उसके पश्चात् संयमाचरण चारित्र होता है।

सम्मत्त चरन चरियं, दंसन न्यानेन सुद्ध भावं च ।
कम्ममल पयडि मुक्कं, अचिरेन लहंति निव्वानं ।। २६४ ।।

अन्वयार्थ -सम्यग्दृष्टि ज्ञानी **(दंसन न्यानेन सुद्ध भावं च)** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान के बल से शुद्ध स्वभाव की आराधना करता है **(चरियं सम्मत्त चरन)** तथा यथार्थ श्रद्धान में आचरण करता है यही सम्यक्त्वाचरण चारित्र है **(कम्ममल पयडि मुक्कं)** इसके बल से वह कर्म मलों की प्रकृतियों से मुक्त होकर **(अचिरेन निव्वानं लहंति)** अल्पकाल में ही निर्वाण को प्राप्त कर लेता है।

(घ) तीन पात्र और चार दान कथन -

उत्तं दान चउक्कं, न्यानं आहार भेषजं भनियं ।
अभयं भयं न दिट्ठं, दानं चत्तारि पत्त दातव्वं ।। २६५ ।।

अन्वयार्थ - **(चउक्कं दान उत्तं)** चार प्रकार के दान का स्वरूप कहते हैं **(न्यानं आहार भेषजं)**

ज्ञानदान, आहारदान, औषधिदान और **(भयं न दिट्ठं अभयं)** जहाँ भय दिखाई नहीं देता ऐसा अभयदान **(भनियं)** आगम में यह दान के चार भेद कहे गये हैं **(दानं चत्तारि पत्त दातव्यं)** यह चार प्रकार का दान पात्रों को देना चाहिये।

पत्तं तिविह पयारं, जिनरूवी उत्किट्ठ सावम्मि ।
अविरतिया विन्नेयं, दानं पत्तस्स भावना सुद्धं ।। २६६ ।।

अन्वयार्थ - **(पत्तं तिविह पयारं)** पात्र तीन प्रकार के होते हैं **(जिनरूवी उत्किट्ठ)** जिनेन्द्र परमात्मा के समानरूप के धारी निर्ग्रन्थ वीतरागी भावलिंगी साधु उत्कृष्ट या उत्तम पात्र हैं **(सावम्मि)** पहली प्रतिमा से ग्यारहवीं प्रतिमा तक के सभी श्रावक मध्यम पात्र हैं **(अविरतिया विन्नेयं)** जिन वचनों के यथार्थ श्रद्धानी अविरत सम्यग्दृष्टि श्रावक को जघन्य पात्र जानो **(पत्तस्स सुद्धं भावना दानं)** इन तीन प्रकार के पात्रों को शुद्ध भावना सहित दान देना चाहिये।

जिनरूवी जिनलिंगं, कम्मं षिपति तिविह जोएन ।
तारन तरन समत्थं, जिन उवइट्ठं पयत्तेन ।। २६७ ।।

अन्वयार्थ - **(जिनरूवी जिनलिंगं)** जिनेन्द्र भगवान के समान रूप के धारी निर्ग्रन्थ वीतरागी भावलिंगी साधु उत्तम पात्र हैं **(जिन उवइट्ठं पयत्तेन)** वे जिनेन्द्र भगवान द्वारा उपदिष्ट वचनानुसार मोक्षमार्ग में चलने का प्रयत्न [पुरुषार्थ] करते हैं **(तारन तरन समत्थं)** स्वयं भवसागर से तिरने में और जगत में भव्य जीवों को तारने में समर्थ सच्चे गुरु हैं **(तिविह जोएन कम्मं षिपति)** वे तीन प्रकार के योग की एकता पूर्वक [स्वभाव में लीन होकर] कर्मों को क्षय कर देते हैं।

रयनत्तय संजुत्तं, झानं झायंति सुद्धमप्पानं ।
आरति रौद्र न दिट्ठं, धम्मं सुक्कं च झान संजुत्तं ।। २६८ ।।

अन्वयार्थ - वीतरागी निर्ग्रन्थ साधु **(रयनत्तय संजुत्तं)** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र के धारी होते हैं **(सुद्धमप्पानं झानं झायंति)** अपने शुद्धात्म स्वरूप को ही ध्यान में ध्याते हैं **(आरति रौद्र न दिट्ठं)** उन्हें आर्त-रौद्र ध्यान दिखाई नहीं देता **(धम्मं सुक्कं च झान संजुत्तं)** वे योगी धर्म और शुक्ल ध्यान की साधना में लीन रहते हैं।

षिउ उवसम संजुत्तं, अवधिं दिस्टंति न्यान सभावं ।
मनपज्जय चिंतंतो, रिजु विपुलमइ न्यान संपन्नं ।। २६९ ।।

अन्वयार्थ - वीतरागी साधु **(षिउ उवसम संजुत्तं)** क्षयोपशमिक चारित्र के धारी होते हैं **(न्यान सभावं)** ज्ञान स्वभाव की साधना में लीन रहने से **(अवधिं दिस्टंति)** अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से उन्हें अवधिज्ञान प्रकट हो जाता है **(मनपज्जय चिंतंतो)** मन:पर्ययज्ञान का चिंतन करते हुए **(रिजु विपुलमइ न्यान संपन्नं)** मन:पर्यय ज्ञानावरण का क्षयोपशम होने से वे ऋजुमति और विपुलमति मन:पर्यय ज्ञान से सम्पन्न हो जाते हैं।

कम्मं घाय विमुक्कं, मुक्कं मिच्छत्त दोस अन्यानं ।
संमिक् दर्सन सुद्धं, केवल भावं च भावेन ।। २७० ।।

अन्वयार्थ - उत्तम पात्र वीतरागी साधु **(सुद्धं संमिक् दर्सन)** निश्चय आत्मानुभूति सहित शुद्ध

सम्यग्दर्शन के धारी होते हैं **(अन्यानं मिच्छत्त दोस मुक्कं)** उनके अज्ञान मिथ्यात्व आदि समस्त दोष छूट जाते हैं **(भावेन)** वे आत्म स्वभाव के आश्रयपूर्वक साधनारत रहते हुए **(घाय कम्मं विमुक्कं)** चार घातिया कर्मों से मुक्त होकर **(केवल भावं च)** केवलज्ञान को प्रकट करने की भावना भाते हैं।

उत्किस्ट सावयानं, पडिमा एकादसं च वय पंचं ।
पालंति सुद्ध भावं, सुद्ध सम्मत्त भावना सुद्धं ।। २७१ ।।

अन्वयार्थ - (पडिमा एकादसं) दर्शन व्रत आदि ग्यारह प्रतिमाओं का पालन करने वाले श्रावक **(च)** और **(उत्किस्ट सावयानं)** ग्यारहवीं प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावक [यह सभी श्रावक] **(सुद्ध भावं)** शुद्ध भाव पूर्वक **(पंचं वय पालंति)** अहिंसादि पाँच अणुव्रतों का पालन करते हैं **(सुद्ध सम्मत्त सुद्धं भावना)** वे निर्दोष सम्यक्त्व का पालन करते हुए शुद्धात्म स्वरूप की भावना भाते हैं।

अविरतिया विन्नेयं, सुद्धं दिट्ठि च सुद्ध भावेन ।
मिच्छत्तं अन्यानं, परिहारो पुन्न पावं च ।। २७२ ।।

अन्वयार्थ - (अविरतिया विन्नेयं) जिन वचनों का यथार्थ श्रद्धानी जिसके जीवन में व्रत नहीं हैं ऐसे अविरत सम्यग्दृष्टि को जघन्य पात्र जानो [यह श्रावक] **(भावेन सुद्ध सुद्धं दिट्ठि च)** भाव पूर्वक अर्थात् अंतरंग रुचि सहित शुद्धात्म स्वरूप का श्रद्धानी शुद्ध दृष्टि होता है **(मिच्छत्तं अन्यानं)** मिथ्यात्व अज्ञान **(च)** और **(पुन्न पावं परिहारो)** पुण्य - पाप का परिहार कर देता है [ऐसे तत्त्वार्थ श्रद्धानी सम्यक्त्वी को जघन्य पात्र कहते हैं।]

पत्तं तिविह स उत्तं, दानं चत्वारि दिंति भावेन ।
विन्यान न्यान सुद्धं, दत्तं पत्तं मुनेयव्वा ।। २७३ ।।

अन्वयार्थ - (तिविह पत्तं स उत्तं) तीन प्रकार के पात्रों का जो यह स्वरूप कहा गया है, इन पात्रों को **(भावेन)** दातार श्रावक भाव पूर्वक [श्रद्धा सहित] **(चत्वारि दानं दिंति)** चार प्रकार का दान देता है **(न्यान विन्यान सुद्धं दत्तं)** जो श्रावक आत्म श्रद्धान सहित ज्ञान विज्ञान से शुद्ध होता है वह सच्चा दाता है **(पत्तं मुनेयव्वा)** और जो ज्ञान विज्ञान से शुद्ध है वह सच्चा पात्र है ऐसा जानना चाहिये।

पत्तं च सुद्ध भावं, दत्तं सुद्ध सहाव संजुत्तं ।
दत्तं पत्तं च समं, दानं सुद्धं च मुनेयव्वा ।। २७४ ।।

अन्वयार्थ - (सुद्ध भावं पत्तं) शुद्ध भाव के धारी उत्तम, मध्यम, जघन्य पात्र हैं **(च)** और **(दत्तं सुद्ध सहाव संजुत्तं)** दातार श्रावक शुद्ध स्वभाव के श्रद्धान सहित हो **(दत्तं पत्तं च समं)** जहाँ दाता और पात्र एक समान सम्यक्त्व के धारी आत्मज्ञानी हों **(दानं सुद्धं च मुनेयव्वा)** वहीं पात्र दान शुद्ध होता है ऐसा जानना चाहिये।

ज्ञानदान -

न्यानं दान समत्थं, अन्यानं तिक्त सव्वहा सव्वे ।
आलाप वचन असुहं, तिक्तंति असुद्ध भावेन ।। २७५ ।।

अन्वयार्थ - (अन्यानं सव्वहा सव्वे तिक्त) जिस विवेकवान श्रावक ने अज्ञान का सर्वथा सर्व प्रकार से त्याग कर दिया है **(न्यानं दान समत्थं)** वही ज्ञान दान देने में समर्थ होता है **(असुद्ध भावेन)** वह

भव्य श्रावक अशुद्ध भाव सहित होने वाले **(असुहं वचन आलाप)** अशुभ वचनालाप को **(तिक्तंति)** त्याग देता है।

मतिन्यानी मति दत्तं, सुतन्यानं च भावना जुत्तं ।
दत्तं पत्त विसेषं, दानं ममलबुद्धि संपन्नं ।। २७६ ।।

अन्वयार्थ - **(मतिन्यानी मति दत्तं)** सम्यग्दृष्टि मतिज्ञानी सुबुद्धि देता है **(सुतन्यानं च भावना जुत्तं)** श्रुतज्ञान की भावना भाता है **(दत्तं पत्त विसेषं)** इस प्रकार दाता और पात्र दोनों ही सम्यक् श्रद्धानी होते हैं **(ममलबुद्धि दानं संपन्नं)** वहीं ममल बुद्धि पूर्वक दान सम्पन्न होता है [आचार्य श्री तारण स्वामी जी ने मतिज्ञानी को उपाध्याय पदवी वाला कहा है, यह अविरत सम्यग्दृष्टि होता है और श्रुतज्ञान की प्रधानता अणुव्रती प्रतिमाधारी को होती है, इसलिये यहाँ मतिज्ञानी श्रुतज्ञान की भावना भाता है अर्थात् अविरती व्रत धारण करने की भावना भाता है ऐसा कहा है, यह विषय इसी ग्रन्थ की गाथा ४६, ८२ और २९८ में स्पष्ट किया गया है।]

न्यानी न्यान सरूवं, अन्मोयं दत्त पत्त विसेषं ।
अन्यानी अलहंतो, न दत्तं न्यान दान अपत्तं ।। २७७ ।।

अन्वयार्थ - **(दत्त पत्त)** दाता और पात्र दोनों ही **(न्यानी)** आत्मज्ञानी होते हैं **(न्यान सरूवं अन्मोयं)** ज्ञान स्वरूप की अनुमोदना करते हैं **(विसेषं)** दाता और पात्र की यही विशेषता है **(अन्यानी अलहंतो)** अज्ञानी जीव को यह विशेषता प्राप्त नहीं होती **(अपत्तं)** इसलिये अपात्र को **(न्यान दान न दत्तं)** ज्ञान दान नहीं देना चाहिये।

दानं न्यान स उत्तं, न्यानी पत्तस्य दान संजुत्तं ।
दत्तं पत्तं च सुद्धं, ममलं दानं च दत्त पत्तं च ।। २७८ ।।

अन्वयार्थ - **(न्यान दानं स उत्तं)** ज्ञान दान उसे कहते हैं कि **(न्यानी पत्तस्य दान संजुत्तं)** आत्मज्ञानी उपयोग दाता है वह स्वभाव रूपी पात्र को दान देता है **(दत्तं पत्तं च सुद्धं)** दाता शुद्धोपयोग और पात्र शुद्ध स्वभाव दोनों ही शुद्ध हैं **(दत्त पत्तं च)** ऐसे दाता और पात्र के मध्य जो ज्ञान के सिंधु में अभेदपने निमग्नता होती है **(ममलं दानं च)** यही ममल ज्ञानदान है।

अन्यान मयं अपत्तं, वचनं आलाप रंजनं जाने ।
नवि दत्तं न सुपत्तं, दत्तं पत्तं च समायरहि ।। २७९ ।।

अन्वयार्थ - **(अपत्तं)** अपात्र जीव **(अन्यान मयं)** अज्ञानमय होता है [वह स्वभाव के भेद - अभेद को नहीं जानता] **(वचनं आलाप रंजनं जाने)** वह वचनों से ही तत्त्व की चर्चा करके आनन्द मानता है ऐसा जानो **(नवि दत्तं)** यदि कोई दाता ऐसा करता है तो वह दाता नहीं है **(न सुपत्तं)** और कोई पात्र ऐसा करे तो वह पात्र नहीं है **(दत्तं पत्तं च समायरहि)** यथार्थ दान के लिये दाता और पात्र का समान आचरण होना चाहिये।

जे सुद्ध दिट्ठि सुद्धं, जानदि पिच्छेइ सुद्ध सम्मत्तं ।
दत्तं पत्तं तं पिय, अन्मोयं सुग्गए लहई ।। २८० ।।

अन्वयार्थ - **(जे सुद्धं सुद्ध दिट्ठि)** जो शुद्ध स्वभाव के श्रद्धानी शुद्ध दृष्टि जीव हैं **(सुद्ध सम्मत्तं**

जानदि पिच्छेइ) वे शुद्ध सम्यक्त्व स्वरूप आत्मा को जानते हैं, अनुभव करते हैं **(दत्तं)** वे सच्चे दातार हैं **(तं पत्तं पिय)** उनको आत्मज्ञानी पात्र प्रिय होते हैं **(अन्मोयं)** वे उनकी अनुमोदना करके **(सुग्गए लहई)** सद्गति को प्राप्त करते हैं।

औषधिदान -

भेषज दान स उत्तं, संसारे सरनि व्याधि मुक्तस्य ।
भेषज जिन उवएसं, जिनवयनंपि सार्धं तंपि ।। २८१ ।।

अन्वयार्थ - (जिन उवएसं) जिनेन्द्र भगवान की दिव्यध्वनि में उपदिष्ट अमृतमयी वस्तु स्वरूप **(संसारे सरनि व्याधि मुक्तस्य)** संसार में पंच परावर्तन रूप परिभ्रमण की व्याधि से मुक्त होने की **(भेषज)** औषधि है [जन्म, जरा, मरण आदि सर्व रोगों से रहित होने के लिये] **(जिनवयनंपि सार्धं तंपि)** जिनेन्द्र भगवान के वचनों पर श्रद्धान करना इसे **(भेषज दान स उत्तं)** औषधि दान कहा गया है।

भेषज दान जिनुत्तं, दव्वं षट् काय पंचत्थं ।
नव पयत्थ पदार्थं, तत्तं सप्तं च सुद्ध जानत्थं ।। २८२ ।।

अन्वयार्थ - (जिनुत्तं) जिनेन्द्र भगवान की दिव्यध्वनि द्वारा जिनवाणी में निर्दिष्ट **(षट् दव्वं)** छह द्रव्य **(काय पंचत्थं)** पाँच अस्तिकाय **(पदार्थं नव पयत्थ)** पद और अर्थ का बोध कराने वाले नव पदार्थ **(च)** और **(सप्तं तत्तं)** सात तत्त्वों के यथार्थ स्वरूप का श्रद्धान करके **(सुद्ध जानत्थं)** शुद्ध ज्ञान में स्थित होना **(भेषज दान)** औषधि दान है।

एरिस गुनेहि सुद्धं, जानदि रूव भेय विन्यानं ।
सद्दहंति जिन उत्तं, भेषज दान पयासेई ।। २८३ ।।

अन्वयार्थ - (एरिस गुनेहि सुद्धं) इस प्रकार जो आत्मार्थी भव्य जीव तत्त्वार्थ श्रद्धान आदि गुणों से शुद्ध होकर **(भेय विन्यानं रूव जानदि)** भेदविज्ञान पूर्वक आत्म स्वरूप को जानते हैं **(जिन उत्तं सद्दहंति)** जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहे हुए वचनों पर श्रद्धान करते हैं **(भेषज दान पयासेई)** वे ज्ञानी औषधि दान का प्रकाश करते हैं अर्थात् यथार्थ औषधि दान देते हैं।

पत्त कुपत्त न जानदि, भेषज उवएस सुद्धमप्पानं ।
जे भव्य जीव साहं, ते जर मरन विनासेई ।। २८४ ।।

अन्वयार्थ - (जे भव्य जीव) जो भव्य जीव **(पत्त)** सम्यग्दर्शन सहित पात्र हैं **(उवएस भेषज)** वे जिनेन्द्र भगवान द्वारा उपदिष्ट वस्तु स्वरूप की औषधि सेवन करके **(सुद्धमप्पानं)** शुद्धात्म स्वरूप की **(साहं)** साधना करते हैं **(ते जर मरन विनासेई)** वे ज्ञानी जन्म, जरा, मरण आदि को नाश करते हैं **(कुपत्त न जानदि)** कुपात्र जीव औषधि दान के इस मर्म को नहीं जानता है।

आहारदान -

आहारदान सुद्धं, न्यानं आहार दिंति पत्तस्य ।
तिक्तंति जीव आहारं, न्यानं आहार कुनय भव महनं ।। २८५ ।।

अन्वयार्थ - (पत्तस्य) सम्यग्दृष्टि ज्ञानी का शुद्धोपयोग दाता है वह पात्र - शुद्ध स्वभाव को

(न्यानं आहार दिंति) ज्ञान का आहार देता है **(सुद्धं आहारदान)** यह शुद्ध आहार दान है **(जीव आहार तिक्तंति)** अभेद स्वरूप में लीन ज्ञानी स्थावर पदार्थों से बने आहार का त्याग कर देते हैं **(न्यानं आहार)** ज्ञान स्वभाव में रमण करते हुए ज्ञान का आहार करते हैं **(कुनय भव महनं)** यह ज्ञानाहार कुनय और संसार का मथन [क्षय] करने वाला है।

आहार दान सुद्धं, पत्तं जो देई भाव सुद्धीये ।
सो भव दुष्य विनासै, पत्तं आहार न्यान ससहावं ।। २८६ ।।

अन्वयार्थ - **(जो)** जो सम्यग्दृष्टि दातार **(भाव सुद्धीये)** शुद्ध भाव पूर्वक **(पत्तं)** तीन प्रकार के पात्रों को [द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा सहित यथायोग्य विधि पूर्वक] **(सुद्धं आहार दान)** शुद्ध आहार दान **(देई)** देता है **(सो)** वह सम्यक्त्वी जीव **(भव दुष्य विनासै)** संसार में जन्म-मरण आदि सर्व दु:खों का विनाश कर देता है **(पत्तं ससहावं)** जबकि पात्र जीव स्वभाव के आश्रय पूर्वक [बाह्य आहार में उपयोग नहीं लगता वह अपने उपयोग को स्वभाव में लगाते हुए] **(न्यान आहार)** ज्ञान का आहार करता है।

अभयदान -

अभयं च दान जुत्तं, पत्तं जो देइ भाव सुद्ध संजुत्तं ।
सो संचियं विनासै, अभयदानं च भय रहियं ।। २८७ ।।

अन्वयार्थ - **(जो)** जो सम्यक्त्वी श्रावक **(सुद्ध भाव संजुत्तं)** शुद्ध भाव सहित **(पत्तं)** पात्र जीव को **(अभयं च दान)** अभय दान **(देइ)** देता है **(जुत्तं)** और अभय दान देने की भावना से युक्त रहता है **(सो संचियं विनासै)** वह ज्ञानवान भव्य जीव पूर्व जन्मों से संचित किये हुए कर्मों का विनास कर देता है **(भय रहियं अभयदानं च)** व्यवहार में किसी जीव को भय रहित करना अभय दान है और निश्चय से स्वयं निर्भय रहना अभयदान है।

अभयं दानं उत्तं, अभयं दानंपि भाव संजुत्तं ।
चिंतंति अभय दानं, दानं फलं मुक्ति गमनं च ।। २८८ ।।

अन्वयार्थ - **(अभयं दानं उत्तं)** अभयदान के स्वरूप को कहते हैं कि **(अभयं)** स्वयं अभय रहते हुए **(दानंपि भाव संजुत्तं)** अभय दान देने की भावना सहित अन्य जीवों को निर्भय करना अभय दान है **(अभय दानं चिंतंति)** जो जीव इस प्रकार से अभयदान देने का चिंतन करते हैं, भावना भाते हैं **(दानं फलं)** वे इस दान के फल से **(मुक्ति गमनं च)** मुक्ति को प्राप्त करते हैं।

ए चारि दान उत्तं, जानिवि जो देइ पत्त कुपत्तं ।
जो देइ जस्य अत्थिं, दानं उवएस जिनवरिंदेहि ।। २८९ ।।

अन्वयार्थ - **(ए चारि दान उत्तं)** इस प्रकार चार दान के स्वरूप का वर्णन किया **(जानिवि)** इनके स्वरूप को जानकर **(जो पत्त कुपत्तं देइ)** जो जीव पात्र अथवा कुपात्र को दान देता है [सम्यग्दृष्टि श्रावक पात्र को दान देता है और मिथ्यादृष्टि कुपात्र को दान देता है] **(जो देइ जस्य अत्थिं)** जो जिसको दान देता है उसको उसी प्रकार का फल प्राप्त होता है **(दानं उवएस जिनवरिंदेहि)** दान के सम्बंध में इस प्रकार का उपदेश तीर्थंकर भगवंतों ने दिया है।

(ङ) जलगालन -

जलगालन उवएसं, प्रथमं सम्मत्त सुद्ध भावस्य ।
चित्तं सुद्ध गलंतं, पच्छिदो जलं च गालम्मि ।। २९० ।।

अन्वयार्थ - **(जलगालन उवएसं)** श्रावकों को जलगालन क्रिया का उपदेश करते हैं कि **(प्रथमं)** सर्वप्रथम **(सम्मत्त सुद्ध भावस्य)** सम्यक्त्व सहित शुद्ध भाव को ग्रहण करना **(चित्तं सुद्ध गलंतं)** चित्त को चैतन्य स्वभाव के आश्रय भलीभाँति पवित्र करना **(पच्छिदो जलं च गालम्मि)** पश्चात् जलगालन करना [पानी छानकर पीना] इस विधि से जलगालन यथार्थ होता है।

मन सुद्धं चित गालं, भाव सुद्धं च चेयना भावं ।
चेयन सहित सुभावं, जलगालन तंपि जानेहि ।। २९१ ।।

अन्वयार्थ - **(मन सुद्धं चित गालं)** मन रागादि भावों से रहित शुद्ध हो, चित्त में कोई चंचलता न हो इस प्रकार मन को शुद्ध रखकर चित्त को गाल [पवित्र] कर **(सुद्धं भाव च चेयना भावं)** शुद्ध भाव सहित चैतन्य स्वभाव की आराधना करना **(चेयन सुभावं सहित)** चैतन्य स्वभाव में लीन हो जाना **(तंपि जलगालन जानेहि)** इसको ही जलगालन जानो।

(च) रात्रि भोजन त्याग -

अनस्तमितं उवएसं, पढमं सम्मत्त चरन संजुत्तं ।
जस्य न अनस्तं दिट्ठं, तस्यय मिथ्यादि भावमप्पानं ।। २९२ ।।

अन्वयार्थ - **(अनस्तमितं उवएसं)** श्रावक को रात्रि भोजन त्याग का उपदेश करते हैं कि [चारित्र के दो भेदों में से] **(पढमं सम्मत्त चरन संजुत्तं)** प्रथम सम्यक्त्वाचरण चारित्र को धारण करो [पश्चात् रात्रि भोजन त्याग सम्यक् होगा] **(जस्य न अनस्तं दिट्ठं)** जिस जीव का इस विधि से रात्रि भोजन त्याग नहीं होता **(तस्यय मिथ्यादि भावमप्पानं)** उसकी आत्मा में मिथ्यात्व रागादि भाव बने रहते हैं [मिथ्यात्व अंधकार है, सम्यक्त्व प्रकाश है।]

अप्पानं अप्पानं, सुद्धप्पा भाव विमल परमप्पा ।
एयं जिनेहि भनियं, अनस्तमितं तंपि जानेहि ।। २९३ ।।

अन्वयार्थ - **(अप्पानं अप्पानं)** एक आत्मा ही आत्मा का चिंतन-मनन करना **(सुद्धप्पा)** शुद्धात्म स्वरूप की साधना करना **(विमल भाव परमप्पा)** और विमल भाव सहित परमात्म स्वरूप की आराधना में तल्लीन रहना **(तंपि अनस्तमितं जानेहि)** इसको ही रात्रि भोजन त्याग जानो **(एयं जिनेहि भनियं)** ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है।

एयं आहार जुत्तं, न्यानं आहार नेय संजुत्तं ।
अनस्तमितं बेघडियं, निस्चय विवहार संजदो सुद्धो ।। २९४ ।।

अन्वयार्थ - सम्यग्दृष्टि श्रावक **(एयं आहार)** इस प्रकार एक तो व्यवहार में योग्य आहार **(बेघडियं)** सूर्य अस्त होने के दो घड़ी [४८ मिनिट] पूर्व **(जुत्तं)** ग्रहण कर लेता है **(नेय न्यानं आहार संजुत्तं)** और निश्चय से ज्ञानानन्द स्वभाव के आश्रय पूर्वक उसी का चिंतन-मनन, अनुभव करते हुए ज्ञान का आहार लेता है **(निस्चय विवहार सुद्धो संजदो)** इस प्रकार वह निश्चय-व्यवहार दोनों नयों की अपेक्षा

रात्रि भोजन का त्यागी शुद्ध संयमी होता है।

अठ दह किरियानं, अविरइ सम्माइट्ठि संकलियं ।
उवएसं उज्झायं, अविरइ पालंति सुद्ध भावेन ।। २९५ ।।

अन्वयार्थ - इस प्रकार **(अविरइ सम्माइट्ठि)** आत्म श्रद्धानी अविरत सम्यग्दृष्टि श्रावक **(अठ दह किरियानं)** अठारह क्रियाओं का **(संकलियं)** पालन करता है **(उज्झायं उवएसं)** वह उपाध्याय पदवी का धारी है और भव्य जीवों के हितार्थ जिनवाणी का उपदेश देता है **(सुद्ध भावेन)** और शुद्ध भाव पूर्वक **(अविरइ पालंति)** अविरत सम्यग्दृष्टि के आचरण [१८ क्रियाओं] का पालन करता है।

श्री ज्ञानसमुच्चयसार - सार कथन

सारमत का यह ग्रन्थ अपने आपमें अत्यंत महिमामय है। आचार्य श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज ने इस ग्रन्थ में सम्यग्ज्ञान की प्रधानता से वस्तु स्वरूप का विवेचन किया है। आगम में समाहित सिद्धांतों को ज्ञान प्रधान दृष्टि से आचार्य ने निरूपित किया है। अध्यात्म दृष्टि प्रत्येक विषय में प्रमुख है। यहाँ ९५ से २९५ तक की गाथाओं की विषय वस्तु का अध्ययन चिंतन प्रमुख ध्येय है।

आचार्य देव ने सर्व प्रथम भाव को शुद्ध करने की प्रेरणा प्रदान की है। इस संदर्भ में गुरुदेव कहते हैं कि प्रथम करने योग्य कार्य अपने भावों को शुद्ध करो, अशुद्ध उपभोग का त्याग करके अशुद्ध भावों से पराङ्मुख होकर अपने मन को श्रुत के चिंतन में लगाओ क्योंकि परिणाम ही बंध के कारण हैं और परिणाम ही मुक्ति के कारण हैं।

अज्ञानी जीव अज्ञान दशा में मन से अशुद्ध उपभोग करता है और ज्ञानी बुद्धि से शुद्ध उपभोग करता है। मन से विषय विकारों में रस लेना, विषय प्रपंचों का विचार करना अशुद्ध उपभोग है। बुद्धि से शुद्ध उपभोग होता है। मति और श्रुतज्ञान पूर्वक जिनवाणी में निरूपित अक्षर, स्वर, व्यंजन आदि के माध्यम से शुद्धात्मा और अपने शाश्वत पद का चिंतवन करना शुद्ध उपभोग है।

'सम्यग्ज्ञानं प्रमाणं' सम्यग्ज्ञान को प्रमाण कहते हैं। इसके दो भेद हैं - परोक्ष और प्रत्यक्ष। मति, श्रुत दो ज्ञान परोक्ष हैं। अवधिज्ञान और मन:पर्यय ज्ञान एकदेश प्रत्यक्ष और केवलज्ञान सर्वदेश प्रत्यक्ष हैं। जो जीव परोक्ष में आचरण करता है उसका प्रत्यक्ष में भी आचरण होता है।

जो जीव मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्व में रत रहता है वह आत्म गुणों को नहीं जानता इसलिये वह निर्गुण है। तीन मिथ्यात्व और चार अनंतानुबंधी कषाय सम्यक्त्व में बाधक हैं। मिथ्यात्व नामक दर्शन मोहनीय कर्म की प्रकृति के उदय से होने वाले तत्त्वार्थ के अश्रद्धान को मिथ्यात्व कहते हैं। अनंतानुबंधी कषाय द्विघातक प्रकृति है, यह सम्यक्त्व और सम्यक्त्वाचरण का घात करती है। दर्शन मोहनीय की तीन और चारित्र मोहनीय की चार इन सात प्रकृतियों के उपशम से उपशम सम्यक्त्व और इनके क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व होता है तथा चार अनंतानुबंधी कषाय, मिथ्यात्व और सम्यक्मिथ्यात्व इन छह सर्वघाती प्रकृतियों के उदयाभावी क्षय और इन्हीं के सद्वस्था रूप उपशम और देशघाती स्पर्द्धक वाली सम्यक्त्व प्रकृति के उदय में जो तत्त्वार्थ श्रद्धान होता है वह क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहलाता है।

सम्यग्दृष्टि ज्ञानी किसी भी मिथ्या मान्यता को धारण नहीं करता। वह त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा से विरत नहीं है इसलिये अव्रती है और जिनेन्द्र भगवान के वचनों का यथार्थ श्रद्धानी है इसलिये सम्यक्त्वी है। यह सम्यक्त्वी मोक्षमार्गी होता है। तीन मूढ़ता, छह अनायतन, शंकादि आठ दोष और आठ मद से रहित यथार्थ श्रद्धानी होता है।

संवेग आदि को ग्रहण किया जाता है, इनका पालन किया जाता है इसलिये ये आठ मूलगुण हैं तथा पाँच उदम्बर तीन मकार दोषों के घर हैं इनका त्याग किया जाता है इसलिये यह आठ मूल अवगुण हैं।

सम्यग्दर्शन

सम्यग्दर्शन की महिमा बतलाते हुए आचार्य ने कहा है कि सम्यक्त्वी जीव अपने आत्मा को परमात्म स्वरूप जानता है। ममल स्वभाव की दृष्टि होने पर मिथ्यात्व सम्बंधी समस्त दोष छूट जाते हैं, कर्म मल, कुज्ञान, राग भाव आदि इस प्रकार गल जाते हैं जैसे सूर्य के उदय होने पर अंधकार नष्ट हो जाता है।

आचार्य कहते हैं स्वानुभव की दृष्टि अत्यंत महिमामय है, इसके प्रकट होने पर शुभ-अशुभ कर्म, मान कषाय आदि सर्व विकार इस प्रकार विघटित हो जाते हैं जैसे सिंह को देखकर हाथियों के समूह तितर-बितर हो जाते हैं। सम्यग्दर्शन संसार के परिभ्रमण से मुक्त होने का अचूक उपाय है।

सम्यग्ज्ञान

आत्मा ज्ञानमय है। ज्ञानमय निज आत्मा को समस्त पर पदार्थों से भिन्न जानने को सम्यग्ज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान तीन लोक को जानने की सामर्थ्य वाला है। अज्ञान रूपी अंधकार को नष्ट करने वाला है। सम्यग्ज्ञान तीन लोक में सार है, यही निर्विकल्प आत्म स्वरूप में रमणता के मार्ग को प्रशस्त करता है। जैसे मिश्री में सर्वत्र मिठास व्याप्त है उसी प्रकार आत्मा में सर्वत्र ज्ञान ही ज्ञान व्याप्त है। आत्मा ज्ञान प्रमाण है, ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है, ज्ञेय सम्पूर्ण लोकालोक है, इसलिये आत्मा सर्व व्यापक तत्त्व है।

ज्ञान के बल से ही जीव आत्मा से परमात्मा होता है। जिनेन्द्र भगवान ने आत्म ज्ञान को ही ज्ञान कहा है। इसी ज्ञान से जीव परम सुखी होता है, ऐसा श्री गुरु के प्रसाद से जानो।

सम्यक्चारित्र

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सहित राग-द्वेषादि के अभाव से जो वीतराग भाव होता है इसी को सम्यक्चारित्र कहते हैं। सम्यक्चारित्र दो प्रकार का होता है - सम्यक्त्वाचरण और संयमाचरण। प्रथम सम्यक्त्वाचरण को धारण करना चाहिये पश्चात् संयमाचारण होता है। इस प्रकार रत्नत्रय की साधना समस्त कर्म प्रकृतियों को क्षय कर परमात्म पद प्राप्त कराने वाली है।

चार दान

सम्यक्त्वी श्रावक उत्तम, मध्यम और जघन्य तीन प्रकार के पात्रों को आहारदान, ज्ञानदान, औषधिदान और अभयदान देता है। व्यवहार में दिया जाने वाला दान सद्गति का कारण होता है। आचार्य देव ने दाता और पात्र की विशेषता को बतलाते हुए कहा है कि दाता शुद्ध दृष्टि हो और पात्र भी सम्यक्त्व का धारी हो वहीं शुद्ध दान होता है। सम्यग्दृष्टि पात्र को दाता और दाता को पात्र प्रमोद भाव का कारण होते हैं। दाता और पात्र एक समान होते हैं वहीं महिमामय दान सम्पन्न होता है। पात्रों को दान देना व्यवहार दान है जो स्वर्गादि

सद्गति का कारण है और अपने उपयोग को स्वभाव में लगाना निश्चय दान है जो मुक्ति का कारण है।

जलगालन और रात्रि भोजन त्याग

व्यवहार में दोहरे मोटे छन्ना से पानी छानकर पीना और उपयोग में लेना चाहिये यह व्यवहार की क्रिया है। जैसे व्यवहार में पानी छानकर पिया जाता है उसी प्रकार सम्यक्त्व सहित मन को गालकर [पवित्र कर] चित्त को शुद्ध करके शुद्ध भाव को ग्रहण करना पानी छानकर पीने की क्रिया को सार्थक करना है।

सूर्य अस्त होने के दो घड़ी पूर्व भोजन कर लेना रात्रि भोजन त्याग कहलाता है। आचार्य कहते हैं कि प्रथम सम्यक्त्व सहित सर्व प्रकार के मिथ्या भावों का त्याग करके आत्म श्रद्धान में दृढ़ रहना और अज्ञान, मिथ्यात्व के अंधेरे में कोई कार्य नहीं करना रात्रि भोजन त्याग का वास्तविक अभिप्राय है।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न ०१ - सबसे पहले करने योग्य कार्य क्या है ?

उत्तर - 'प्रथमं भाव सुद्धं च', सबसे पहले करने योग्य कार्य अपने भावों को शुद्ध करना है।

प्रश्न ०२ - भाव कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर - भाव के भेदों का कथन करते हुए आचार्य कुन्दकुन्द महाराज कहते हैं -

भावं तिविह पयारं सुहासुहं सुद्धमेव णायव्वं।
असुहं च अट्टरउद्दं सुह धम्मं जिणवरिंदेहिं।।
सुद्धं सुद्ध सहावं अप्पा अप्पम्मि तं च णायव्वं।
इदि जिणवरेहिं भणियं जं सेयं तं समायरह।। (भाव पाहुड गाथा - ७६-७७)

अर्थ - जिनवर देव ने भाव तीन प्रकार के कहे हैं, शुभ भाव, अशुभ भाव और शुद्ध भाव। आर्त और रौद्र अशुभ ध्यान हैं तथा धर्म ध्यान शुभ है। शुद्ध है वह अपना शुद्ध स्वभाव अपने में ही है इस प्रकार जिनवर देव ने कहा है वह जानकर इनमें जो कल्याण रूप हो उसको अंगीकार करो।

सुह परिणामो पुण्णं असुहो पाव त्ति भणियमण्णेसु।
परिणामो णण्णगदो दुक्खक्खयकारणं समये।। (प्रवचनसार)

अर्थ - पर के प्रति शुभ परिणाम पुण्य (शुभ भाव) है और अशुभ परिणाम पाप (अशुभ भाव) है तथा जो दूसरों के प्रति प्रवर्तमान नहीं है ऐसा परिणाम शुद्ध परिणाम (शुद्ध भाव) है जो आगामी समय में सर्व दु:खों के क्षय का कारण है।

प्रश्न ०३ - उपभोग के कितने भेद हैं ?

उत्तर - उपभोग के दो भेद हैं - शुद्ध उपभोग और अशुद्ध उपभोग।

प्रश्न ०४ - भोग और उपभोग में क्या अंतर है ?

उत्तर - जिस वस्तु का एक ही बार उपयोग किया जावे उसे भोग और जिस एक ही वस्तु का अनेक बार उपयोग किया जावे उसे उपभोग कहते हैं यही दोनों में अंतर है। जैसे - भोजन, पानी, फूल आदि भोग और बर्तन, वस्त्र, गाड़ी, पलंग, पुस्तक आदि उपभोग हैं।

प्रश्न ०५ - शुद्ध उपभोग किसे कहते हैं ?

उत्तर - मति श्रुतज्ञान के बल से शुद्धात्म स्वरूप का चिंतवन करने को शुद्ध उपभोग कहते हैं।

प्रश्न ०६ - अशुद्ध उपभोग किसे कहते हैं ?

उत्तर - मन से विषय विकारों का बारम्बार विचार करने को अशुद्ध उपभोग कहते हैं।

प्रश्न ०७ - शुद्ध और अशुद्ध उपभोग किससे होता है ?

उत्तर - शुद्ध उपभोग बुद्धि से और अशुद्ध उपभोग मन से होता है।

प्रश्न ०८ - मनुष्य के पास कौन सी शक्ति है, जिससे इसकी विशेषता मानी जाती है ?

उत्तर - मनुष्य के पास अंत:करण एक विशेष शक्ति है, जिससे मनुष्य की विशेषता मानी जाती है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार को अंत:करण कहते हैं।

प्रश्न ०९ - मन क्या है ?

उत्तर - मन एक अभ्यंतर इन्द्रिय है। चक्षु आदि इन्द्रियों के समान अपने विषय में निमित्त होने पर भी अप्रत्यक्ष व अत्यंत सूक्ष्म होने के कारण इसे इन्द्रिय न कहकर अनिन्द्रिय या ईषत् इन्द्रिय कहा जाता है।

प्रश्न १० - मन के कितने भेद हैं, स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर - मन के दो भेद हैं - द्रव्य मन और भाव मन।

हृदय स्थान में अष्ट पांखुड़ी के कमल के आकार रूप पुद्‌गलों की रचना विशेष को द्रव्य मन कहते हैं। संकल्प विकल्पात्मक परिणाम तथा विचार चिंतवन आदि रूप ज्ञान की अवस्था विशेष को भाव मन कहते हैं।

प्रश्न ११ - बुद्धि किसे कहते हैं ?

उत्तर - '**ऊहितोऽर्थो बुद्धयते अवगम्यते अनया इति बुद्धि:**' जिसके द्वारा ऊहित अर्थ अर्थात् विशेष जिज्ञासा पूर्वक वस्तु को जाना जाता है उसे बुद्धि कहते हैं।

'**बुद्धिशब्देन ज्ञानमुच्यते**' बुद्धि का अर्थ ज्ञान है। मति श्रुतज्ञान की पर्याय को बुद्धि कहते हैं।

प्रश्न १२ - चित्त किसे कहते हैं ?

उत्तर - 'आत्मनश्चैतन्यविशेषपरिणामश्चित्तम्' आत्मा के चैतन्य विशेष परिणाम को चित्त कहते हैं।

'बोधो ज्ञानं चित्तमित्यनर्थान्तरम्' बोध, ज्ञान और चित्त ये भिन्न पदार्थ नहीं हैं।

'हेयोपादेयविचारकचित्तम्' हेय - उपादेय को विचारने वाला चित्त होता है।

'चित्तं च विकल्प:' विकल्प का नाम चित्त है।

प्रश्न १३ - अहंकार किसे कहते हैं ?

उत्तर - ये कर्मकृताभावा परमार्थ नयेन चात्मनोभिन्ना:। तत्रात्माभिनिवेशोऽहंकारोऽहं यथा नृपति:।।

कर्मों के द्वारा निर्मित जो पर्यायें हैं और निश्चयनय से आत्मा से भिन्न हैं, उसमें आत्मा का जो मिथ्या आरोप है उसका नाम अहंकार है। जैसे - मैं राजा हूँ।

'मनुष्यादिपर्यायरूपोऽहमित्यहंकारो भण्यते' मनुष्य आदि पर्याय रूप ही मैं हूँ, ऐसा कहना अहंकार है।

प्रश्न १४ - ममकार और अहंकार में क्या अंतर है ?

उत्तर - 'कर्मजनितदेहपुत्रकलत्रादौ ममेदमिति ममकारस्तत्रैवाभेदेन गौरस्थूलादि देहोऽहं राजाऽह - मित्यहंकारलक्षणमिति।' कर्मों से उत्पन्न जो देह, पुत्र, स्त्री आदि में 'यह मेरा शरीर है, यह मेरा पुत्र है' इस प्रकार की जो बुद्धि है वह ममकार है और उन शरीरादि को अपनी आत्मा से अभेद मानकर 'मैं गौरवर्ण का हूँ, मोटे शरीर वाला हूँ, राजा हूँ, इस प्रकार मानना यह अहंकार का लक्षण है।'

प्रश्न १५ - संवेग गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर - 'संवेओ सुद्धार्थं' आत्म कल्याण की अतिशय उत्साहरूप भावना सहित शुद्ध स्वभाव को प्रयोजनीय मानना संवेग गुण है।

प्रश्न १६ - निर्वेद गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर - सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान की प्रधानता पूर्वक सम्यक्चारित्र को ग्रहण करके लोकाकाश के समान निर्मल अपने शुद्ध स्वभाव में ठहरने का पुरुषार्थ करना और निःशल्य रहना निर्वेद गुण है।

प्रश्न १७ - निंदा गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर - अंतर में होने वाले कषाय भाव, शल्य, मिथ्यात्व, कुज्ञान आदि सर्व अशुद्ध भावों की निंदा करना, क्षणभंगुर, नाशवान, असत् पदार्थों के प्रति जितना भी अंतरंग में माया मोह है उस सबकी निंदा करना निंदा गुण है।

प्रश्न १८ - गर्हा गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर - गुरु के समक्ष साधक विनय पूर्वक अपने दोषों की निंदा करता है इसको गर्हा कहते हैं।

प्रश्न १९ - उपशम गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर - आत्मा के ऊर्ध्वगामी स्वभाव का अनुभव करना, संसार शरीर भोगों से विरक्त रहना, राग - द्वेषादि परिणामों का तथा कषाय भाव आदि विविध प्रकार के अशुभ भावों का उपशमित हो जाना उपशम गुण है।

प्रश्न २० - भक्ति गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर - सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान को भक्ति पूर्वक धारण करना, आत्म गुणों के प्रति समर्पण की भावना होना तथा सम्यक्त्वाचरण और संयमाचरण सहित तप को धारण करना भक्ति गुण है।

प्रश्न २१ - वात्सल्य गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर - भेदविज्ञान पूर्वक स्व-पर को भिन्न-भिन्न जानना और अपने ज्ञान विज्ञानमयी स्वभाव के प्रति अतिशय प्रीति और अनुराग होना वात्सल्य गुण है।

प्रश्न २२ - अनुकंपा गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर - समस्त जीवों के प्रति दया भाव होना व्यवहार से अनुकंपा है। स्वभाव के आश्रय पूर्वक अपनी आत्मा को रागादि भावों से बचाना, अपने आप पर दया करना निश्चय से अनुकंपा है।

प्रश्न २३ - श्री श्रावकाचार ग्रन्थ में पाँच उदम्बर तीन मकार के त्याग को अष्ट मूलगुण कहा है और श्री ज्ञानसमुच्चयसार ग्रन्थ में संवेग आदि आठ गुणों को आठ मूलगुण कहा है तथा पाँच उदम्बर तीन मकार को अष्ट मूल अवगुण कहा है ऐसा कथन क्यों किया गया है ?

उत्तर - प्रथम पालन करने योग्य गुणों को मूलगुण कहते हैं इसलिये पाँच उदम्बर, तीन मकार के त्याग को श्रावक दशा में पालन करने योग्य होने से श्री श्रावकाचार जी ग्रन्थ में उन्हें अष्ट मूलगुण कहा है। श्री ज्ञानसमुच्चयसार ग्रन्थ में सम्यग्दृष्टि सम्यग्ज्ञानी साधक की साधना की प्रधानता से कथन किया गया है इसलिये यहाँ सम्यग्ज्ञानी के संवेग, निर्वेद आदि आठ गुणों को अष्ट मूलगुण कहा गया है।

प्रश्न २४ - श्री श्रावकाचार जी ग्रन्थ में और श्री ज्ञानसमुच्चयसार ग्रन्थ में भी अठारह क्रियाओं का वर्णन किया गया है, दोनों में क्या अंतर है ?

उत्तर - श्री श्रावकाचार जी ग्रन्थ में अठारह क्रियाओं का वर्णन श्रद्धान प्रधान है तथा श्री ज्ञानसमुच्चयसार जी ग्रन्थ में ज्ञान प्रधान है यही दोनों में अंतर है।

प्रश्न २५ - श्री ज्ञानसमुच्चसार ग्रन्थ में जिन वचनों की महिमा का कथन किस प्रकार किया है ?

उत्तर - जिनेन्द्र भगवान के कहे हुए वचन दोष रहित हैं, ज्ञान ही ज्ञान से अलंकृत हैं। संसार के दु:खों से मुक्त कराने वाले और शुद्ध स्वभाव की प्राप्ति में कारणभूत मोक्षमार्ग प्रशस्त करने वाले हैं।

(नोट : निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 'श्री ज्ञानसमुच्चयसार ग्रन्थ के सार कथन' से खोजें....)

प्रश्न २६ - श्री गुरु तारण तरण स्वामी जी ने इस ग्रन्थ में सिद्धांतों का विवेचन किस दृष्टि से किया है ?

प्रश्न २७ - ज्ञानी और अज्ञानी जीव उपभोग किस प्रकार करता है ?

प्रश्न २८ - प्रमाण किसे कहते हैं, इसे भेद सहित स्पष्ट कीजिये ?

प्रश्न २९ - सम्यक्त्व की प्राप्ति में बाधक कारण क्या है ?

प्रश्न ३० - मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

प्रश्न ३१ - अनंतानुबंधी कषाय द्विघातक प्रकृति क्यों है ?

प्रश्न ३२ - उपशम आदि सम्यक्त्व किस प्रकार प्रकट होते हैं ?

प्रश्न ३३ - अविरती किसे कहते हैं ?

प्रश्न ३४ - पाँच उदम्बर तीन मकार को आठ मूल अवगुण क्यों कहते हैं ?

प्रश्न ३५ - सम्यग्दर्शन होने पर सर्व विकार किस प्रकार विघटित हो जाते हैं, उदाहरण सहित समझाइये ?

प्रश्न ३६ - सम्यग्ज्ञान की महिमा अपने शब्दों में लिखिये ?

प्रश्न ३७ - सम्यक्चारित्र को भेद सहित स्पष्ट कीजिये ?

प्रश्न ३८ - महिमामय दान कब सम्पन्न होता है ?

प्रश्न ३९ - पानी छानकर पीने की क्रिया सार्थक किस प्रकार होती है ?

प्रश्न ४० - रात्रि भोजन त्याग का वास्तविक अभिप्राय क्या है ?

....

(ब)
नय परिचय एवं श्रुतज्ञान

णत्थि णएहिं विहूणं सूत्तं अत्थोत्व जिनवरमदम्हि ।
तो णयवादे णिउणा मुणिणो सिद्धंतिया होंति ।।

– धवला जी पुस्तक १, खण्ड १, भाग १, गाथा ६८
– जैनेन्द्र सिद्धांत कोश भाग २ पृ. ५१८

जिनेन्द्र भगवान के मत में नयवाद के बिना सूत्र और अर्थ कुछ भी नहीं कहा गया है इसलिए जो मुनि नयवाद में निपुण होते हैं, वे सच्चे सिद्धांत के ज्ञाता समझने चाहिये। अनादिकालीन मिथ्यात्व की ग्रंथि का भेदन आत्मानुभव के बिना संभव नहीं है। आत्मानुभव आत्मपरिज्ञानपूर्वक होता है। अनंत धर्मात्मक अर्थात् अनेकांत स्वरूप आत्मा का सम्यक् ज्ञान नयों के द्वारा ही होता है। अनेकांत को नय मूलक कहा है।

आचार्य देवसेन के अनुसार – '' यद्यपि आत्मा स्वभाव से नय पक्षातीत है, तथापि वह आत्मा नयज्ञान के बिना पर्याय में नय पक्षातीत होने में समर्थ नहीं है क्योंकि अनादिकालीन कर्मवश से यह असत् कल्पनाओं में उलझा हुआ है। अत: सत्कल्पना रूप अर्थात् सम्यक् विकल्पात्मक नयों का स्वरूप कहते हैं।''

प्रश्न ०१ – नय क्या हैं ?

उत्तर – १. ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहते हैं।
२. स्याद् पद से मुद्रित परमागमरूप श्रुतज्ञान के भेद नय हैं।
३. प्रमाण सर्वग्राही होता है, नय अंशग्राही होता है तथा प्रमाण द्वारा प्रकाशित पदार्थ के एक अंश को अपना विषय बनाने वाला नय है।
४. प्रमाण द्वारा ग्रहीत वस्तु के एक अंश को ग्रहण करने का नाम नय है।
५. श्रुतज्ञान का विकल्प नय है।
६. प्रमाण से जानी हुई वस्तु के द्रव्य अथवा पर्याय में अर्थात् सामान्य या विशेष में वस्तु के निश्चय को नय कहते हैं।

प्रश्न ०२ – नय का स्वरूप क्या है ?

उत्तर – नय के स्वरूप को हम निम्न बिंदुओं में समझ सकते हैं –
०१. नय स्याद्वाद रूप सम्यक् श्रुतज्ञान के अंश हैं।
०२. नयों की प्रवृत्ति प्रमाण द्वारा जाने हुए पदार्थ के एक अंश में होती है।
०३. अनंत धर्मात्मक पदार्थ के कोई एक धर्म को अथवा परस्पर विरूद्ध प्रतीत होने वाले धर्म युगलों में से कोई एक धर्म को नय अपना विषय बनाता है।
०४. वस्तु के किस धर्म को विषय बनाया जाये–यह ज्ञानी वक्ता के अभिप्राय पर निर्भर करता है।
०५. नय ज्ञानी के ही होते हैं।
०६. ज्ञानी वक्ता जिसे विषय बनाता है उसे विवक्षित कहते हैं।

०७. नयों के कथन में विवक्षित धर्म मुख्य होता है और अन्य धर्म गौण रहते हैं।

०८. नय गौण (द्वितीय) धर्मों का निराकरण नहीं करता, मात्र उसके संबंध में मौन रहता है।

०९. नय ज्ञानात्मक भी होते हैं और वचनात्मक भी होते हैं।

१०. सापेक्ष नय ही सम्यक् नय होते हैं, निरपेक्ष नहीं।

जिन नयों के प्रयोग में उक्त तथ्य न आ पायें वे वस्तुत: नय नहीं हैं, नयाभास हैं।

प्रश्न ०३ - प्रमाण और नय में क्या संबंध है ?

उत्तर - जैन दर्शन में वस्तु स्वरूप को जानने और प्रतिपादन करने में नयों का प्रयोग एक मौलिक विशेषता है। धर्म और धर्मी के समूह रूप वस्तु के धर्मों और धर्मी दोनों को प्रधान रूप से जानने वाले ज्ञान को प्रमाण कहते हैं। वस्तु के एकदेश को जानना नय है। इसलिए प्रमाण, नय नहीं हो सकता, किंतु नय प्रमाण का ही अंश है। नय विवक्षा वस्तु के एक धर्म का निश्चय करने वाली होने से एकांत है और प्रमाण विवक्षा वस्तु के अनेक धर्मों की निश्चय स्वरूप होने के कारण अनेकांत है। प्रमाण सर्वनय रूप होता है क्योंकि नय वाक्यों में ''स्यात्'' शब्द लगाकर बोलने को प्रमाण कहते हैं। प्रमाण वस्तु को उसके विरोधी धर्मों को युगपत् (एक साथ) ग्रहण करता है और नय किसी को मुख्य और किसी को गौण करके कथन करता है।

प्रश्न ०४ - मूलनय कितने होते हैं ?

उत्तर - जिनागम में मूलनय के संबंध में विभिन्न कथनों के अनुसार -

१. ''**तत्त्वार्थ सूत्र**'' में सात नयों का कथन है तो ''**प्रवचन सार**'' में सैंतालीस नय हैं।

२. ''**गोम्मटसार**'' एवं ''**सन्मति तर्क**'' में कहा है - ''जावदिया वयणवहा तावदिया चेव होंति नयवादा।'' (गो.क. गाथा ८९४, स.त.कारिका ३ गाथा ४७) अर्थात् ''जितने वचन विकल्प हैं, उतने ही नयवाद हैं अर्थात् नय के भेद हैं।''

३. ''**श्लोकवार्तिक**'' नय विवरण श्लोक १७ से १९ आचार्य विद्यानंदि के अनुसार-''नय सामान्य से एक, विशेष में-संक्षेप में दो, विस्तार से सात और अति विस्तार से संख्यात भेद वाले हैं।''

४. ''**धवला**'' पु. १ खंड १, भाग १ पृ. ९१-''अवांतर भेदों की अपेक्षा नय असंख्य प्रकार के हैं।''

५. ''**सर्वार्थ सिद्धि**'' अध्याय - १ सूत्र ३३ पृ. १०२ - नय अनंत भी हो सकते हैं क्योंकि प्रत्येक वस्तु की शक्तियाँ अनंत हैं। अत: प्रत्येक शक्ति की अपेक्षा भेद को प्राप्त होकर नय अनंत विकल्प रूप हो जाते हैं।

६. ''**आलाप पद्धति**'' गाथा - ३ सर्वनयों के मूल निश्चय और व्यवहार दो भेद माने गये हैं। उसमें निश्चयनय तो द्रव्याश्रित है और व्यवहार नय पर्यायाश्रित है।

७. ''**द्रव्यस्वभाव प्रकाशक नयचक्र**'' गाथा १८३ - द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक ये दो ही मूलनय कहे हैं, अन्य असंख्यात संख्या को लिए इनके ही भेद जानना चाहिये।

इस तरह दो दृष्टियाँ सामने आती हैं। एक तो निश्चय-व्यवहार को मूलनय बताने वाली और दूसरी द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक नयों को मूलनय बताने वाली। वस्तुत: यह दो प्रकार की कथन पद्धतियों के भेद हैं, इन्हें एक-दूसरे से मिलाकर नहीं देखा जा सकता है। मुख्यत: अध्यात्म पद्धति में निश्चय व्यवहार शैली का प्रयोग होता है और आगम पद्धति में द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक शैली का प्रयोग देखा जाता है। अत: कहा जा सकता है कि - अध्यात्म शैली के मूलनय निश्चय व्यवहार हैं तथा आगम शैली के मूलनय द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक नय हैं। इनके आधार पर मूलनय चार हैं - (क) १. निश्चय २. व्यवहार (ख) १. द्रव्यार्थिक २. पर्यायार्थिक ।

द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक नय को निश्चय और व्यवहार का हेतु कहकर आचार्य आगम को अध्यात्म का हेतु बताना चाहते हैं। आत्मा का साक्षात् हित करने वाला तो अध्यात्म ही है आगम तो उसका सहकारी कारण है। निष्कर्षत: मूलनय निश्चय और व्यवहार हैं।

प्रश्न ०५ - निश्चय-व्यवहार का स्वरूप एवं विषयवस्तु बताइये।

उत्तर - सर्वप्रथम जिनागम में प्राप्त निश्चय व्यवहार की परिभाषाएँ देखते हैं -

१. **द्रव्यस्वभाव प्रकाशक नयचक्र आचार्य माइल्ल धवल** के अनुसार - ''जो एक वस्तु के धर्मों में कथंचित् भेद व उपचार करता है, उसे व्यवहार नय कहते हैं और उससे विपरीत निश्चयनय होता है।''

२. **आलाप पद्धति - आचार्य देवसेन** के अनुसार - ''अभेद और अनुपचार से वस्तु का निश्चय करना निश्चयनय है और भेद तथा उपचार रूप से वस्तु का व्यवहार करना व्यवहार नय है।''

३. **पंचाध्यायी - पांडे राजमल जी** - ''जिस प्रकार एक सत् का जिस किसी प्रकार से विभाग करना व्यवहारनय का लक्षण है, उसी प्रकार इससे उल्टा निश्चयनय का लक्षण है।''

४. **अनागार धर्मामृत - पं. आशाधर जी** - ''जो निश्चय की प्राप्ति के लिये कर्ता, कर्म, करण आदि कारकों को जीव आदि वस्तु से भिन्न बतलाता है, वह व्यवहारनय है तथा अभिन्न देखने वाला निश्चयनय है।''

५. **समयसार** गाथा २१२ की आत्मख्याति टीका **आचार्य अमृतचंद्र जी** के अनुसार - ''आत्माश्रित कथन को निश्चय और पराश्रित कथन को व्यवहार कहते हैं। भूतार्थ को निश्चय और अभूतार्थ को व्यवहार कहते हैं।''

६. **पं. टोडरमल जी** ने अनेक शास्त्रों का आधार लेकर निश्चय व्यवहार का स्वरूप स्पष्ट ही कर दिया है - (**मोक्षमार्ग प्रकाशक** पृ. २४८-२५१)

(क) सच्चे निरूपण को निश्चय और उपचरित निरूपण को व्यवहार कहते हैं।

(ख) एक ही द्रव्य के भाव को उस रूप ही कहना निश्चयनय है और उपचार से उक्त द्रव्य के भाव को अन्य द्रव्य के भाव स्वरूप कहना व्यवहार नय है। जैसे - मिट्टी के घड़े को मिट्टी का कहना निश्चय नय का कथन है और घी का संयोग देखकर घी का घड़ा कहना व्यवहार नय का कथन है।

(ग) जिस द्रव्य की जो परिणति हो, उसे उस ही का कहना निश्चयनय है और उसे ही अन्य द्रव्य को कहने वाला व्यवहार नय है।

(घ) व्यवहार नय स्वद्रव्य को, परद्रव्य को व उनके भावों को व कारण-कार्यादिक को, किसी को किसी में मिलाकर निरुपण करता है तथा निश्चयनय उन्हीं को यथावत् निरुपण करता है, किसी को किसी में नहीं मिलाता है।

उक्त समस्त परिभाषाओं के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं -

१. निश्चयनय का विषय अभेद है और व्यवहार नय का विषय भेद है।
२. निश्चयनय सच्चा निरुपण करता है और व्यवहारनय उपचरित।
३. निश्चयनय सत्यार्थ है और व्यवहार नय असत्यार्थ।
४. निश्चयनय आत्माश्रित कथन करता है और व्यवहार नय पराश्रित।
५. निश्चयनय असंयोगी कथन करता है और व्यवहारनय संयोगी।
६. निश्चयनय जिस द्रव्य का जो भाव या परिणति हो, उसे उसी द्रव्य की कहता है, पर व्यवहारनय निमित्तादि की अपेक्षा लेकर अन्य द्रव्य के भाव या परिणति को अन्य द्रव्य तक की कह देता है।
७. निश्चयनय प्रत्येक द्रव्य का स्वतंत्र कथन करता है जबकि व्यवहार नय अनेक द्रव्यों को उनके भावों, कारण-कार्यादिक को भी मिलाकर कथन करता है।

इस तरह निश्चय और व्यवहार की विषयवस्तु और कथन शैली में मात्र भेद ही नहीं, अपितु विरोध दिखाई देता है क्योंकि जिस विषय वस्तु को निश्चयनय अखंड कहता है, व्यवहार उसी में भेद बताने लगता है। जिन दो वस्तुओं को व्यवहार एक बताता है, निश्चय के अनुसार वे कदापि एक नहीं हो सकती हैं। जैसे व्यवहारनय कहता है कि जीव और देह एक ही हैं और निश्चयनय कहता है कि जीव और देह कदापि एक नहीं हो सकते। (समयसार जी गाथा २७)

प्रश्न ०६ - ''व्यवहार की दृष्टि संयोग पर है और निश्चय की दृष्टि असंयोगी तत्त्व पर'' इसे सिद्ध करें।

उत्तर - समयसार जी गाथा - ७

ववहारेणुवदिस्सदि णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं ।
ण वि णाणं ण चरितं ण दंसणं जाणगो सुद्धो ।।

अर्थात ज्ञानी (आत्मा) के चरित, दर्शन, ज्ञान ये तीन भाव व्यवहार से कहे जाते हैं, निश्चय से ज्ञान भी नहीं है, चारित्र भी नहीं है और दर्शन भी नहीं है, ज्ञानी तो एक शुद्ध ज्ञायक ही है।

इसमें व्यवहार नय ने एक अखंड आत्मा को ज्ञान, दर्शन, चारित्र के भेद करके समझाया है किंतु निश्चयनय ने सब भेदों का निषेधकर आत्मा को अभेद ज्ञायक स्थापित किया है। इस प्रकार व्यवहार का कार्य निज में भेद और पर से अभेद करके समझाना है और निश्चय का कार्य पर से भेद और स्व से अभेद करना है। व्यवहार का कार्य अभेद वस्तु को भेद करके समझाने के साथ-साथ भिन्न-भिन्न वस्तुओं के संयोग व उनके निमित्त संयोगी भावों का ज्ञान कराना है। यही कारण है कि निश्चयनय का कथन स्वाश्रित और व्यवहारनय

का कथन पराश्रित होता है। निश्चयनय कथन को सत्यार्थ, सच्चा और व्यवहारनय के कथन को असत्यार्थ उपचरित कहा जाता है। निश्चय व्यवहार की परिभाषा में भेदाभेदा विशेषणों के साथ ''उपचरित'' विशेषण का भी प्रयोग है। दो द्रव्यों की एकता संबंधी जितने भी संयोगी कथन हैं, वे सब उपचरित ही तो हैं। देह और आत्मा को एक बताने वाला संयोगी कथन उपचरित व्यवहार है।

प्रश्न ०७ - निश्चय को भूतार्थ और व्यवहार को अभूतार्थ क्यों कहा है ?

उत्तर - निश्चय को भूतार्थ सत्यार्थ और व्यवहार को अभूतार्थ - असत्यार्थ कहा है। व्यवहार नय सर्वथा असत्यार्थ है, ऐसा नहीं है। व्यवहार नय के विषय - भेद और संयोग का भी अस्तित्व है, किंतु उन भेद व संयोग के आश्रय से आत्मा का अनुभव नहीं होता, इस अपेक्षा उसे अभूतार्थ-असत्यार्थ कहा है। निश्चयनय का विषय अभेद-अखंड आत्मा है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति होती है। यही कारण है कि उसे भूतार्थ-सत्यार्थ कहा है। भूत अर्थात् प्रयोजनभूत अर्थ को बतावे, वह भूतार्थ और अभूत अर्थात् अप्रयोजनभूत अर्थ को बतावे वह अभूतार्थ है।

प्रश्न ०८ - व्यवहार नय असत्यार्थ है तो जिनमार्ग में उसका उपदेश ही क्यों दिया है ?

उत्तर - समयसार जी गाथा - ८

जह ण वि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा दु गाहेदुं ।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवदेसणमसक्कं ।। ८ ।।

अर्थ - जिस प्रकार अनार्य अर्थात् म्लेच्छ को म्लेच्छ भाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने में कोई समर्थ नहीं, उसी प्रकार व्यवहार के बिना परमार्थ का उपदेश अशक्य है, इसलिए व्यवहार का उपदेश है। निश्चय से तो आत्मा परद्रव्यों से भिन्न, स्वभाव से अभिन्न स्वयं-सिद्ध वस्तु है, उसे जो नहीं पहचानते, उनसे उसी प्रकार कहते रहें, तब तो वे समझ नहीं पायेंगे इसलिए उनको व्यवहारनय से शरीरादिक परद्रव्यों की सापेक्षता द्वारा नर-नारक-पृथ्वीकायिक जीव की विशेष किये। तब मनुष्य जीव है, नारकी जीव है इत्यादि प्रकार सहित उन्हें जीव की पहचान होती है। निश्चय से वीतराग भाव मोक्षमार्ग है ऐसा न पहिचानने वालों को व्यवहारनय से तत्व श्रद्धानपूर्वक-ज्ञानपूर्वक परद्रव्य से निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा व्रत, शील, संयमादिरूप वीतराग भाव के विशेष बतलाये, तब उन्हें वीतराग भाव की पहचान होती है। इसी प्रकार अन्यत्र भी व्यवहार के बिना निश्चय के उपदेश का न होना जानना। इसलिए व्यवहार का उपदेश दिया है।

प्रश्न ०९ - व्यवहारनय पर को उपदेश में ही कार्यकारी है या अपना भी प्रयोजन साधता है

उत्तर - जब तक निश्चयनय से प्ररुपित वस्तु को न पहचाने तब तक व्यवहार मार्ग से वस्तु का निश्चय करें। इसलिए निचली दशा में अपने को भी व्यवहारनय कार्यकारी है, परंतु व्यवहार को उपचार मात्र मानकर उसके द्वारा वस्तु को ठीक प्रकार समझे तब तो कार्यकारी है, परन्तु यदि निश्चयवत् व्यवहार को भी सत्यभूत मानकर वस्तु इस प्रकार है-''ऐसा श्रद्धान करें तो उल्टा अकार्यकारी हो जाये।'' (मोक्षमार्ग प्रकाशक पृ. २५१-२५३) अत: वस्तु स्वरूप का निर्णय करने में दोनों नय कार्यकारी हैं। निश्चय प्रतिपाद्य है और व्यवहार प्रतिपादक है। व्यवहार के बिना निश्चय का प्रतिपादन नहीं होता और व्यवहार के निषेध बिना निश्चय की प्राप्ति नहीं होती।

प्रश्न १० – जिनमार्ग में दोनों नयों को ग्रहण करना कहा है। कैसे ?

उत्तर – जिनमार्ग में कहीं तो निश्चयनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है उसे तो ''सत्यार्थ ऐसे ही है'' ऐसा जानना। तथा कहीं व्यवहारनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है, उसे ''ऐसे है नहीं, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है'' ऐसा जानना। इस प्रकार जानने का नाम ही दोनों नयों का ग्रहण है। तथा दोनों नयों के व्याख्यान को समान जानकर ''ऐसा भी है, ऐसे भी है।'' इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो दोनों नयों का ग्रहण करना नहीं कहा है।

(मोक्षमार्ग प्रकाशक – पृ. २५१)

प्रश्न ११ – निश्चय और व्यवहार को उपादेय-हेय क्यों कहा है ?

उत्तर – समयसार जी गाथा १२ की आत्मख्याति टीका में आचार्य अमृतचंद्राचार्य कहते हैं – ''**यदि जिनमत को प्रवर्ताना चाहते हो तो निश्चय व्यवहार में से एक को भी मत छोड़ो, क्योंकि एक (व्यवहार) के बिना तीर्थ का लोप हो जावेगा और दूसरे (निश्चय) के बिना तत्व का लोप हो जावेगा।**'' यहाँ तीर्थ का अर्थ उपदेश और तत्व का अर्थ शुद्धात्मा का अनुभव है। उपदेश की प्रक्रिया प्रतिपादन द्वारा संपन्न होती है और प्रतिपादन का कार्य व्यवहार करता है। अत: व्यवहार को सर्वथा असत्यार्थ मानने से तीर्थ का लोप हो जायेगा। शुद्धात्मा का अनुभव निश्चयनय के विषयभूत अर्थ में एकाग्र होने पर होता है अत: निश्चयनय को छोड़ने पर तत्त्व की प्राप्ति नहीं होगी अर्थात् आत्मा का अनुभव नहीं होगा। द्वादशांग जिनवाणी में व्यवहार द्वारा जो उपदेश दिया गया है उसका सार आत्मानुभव ही है। आत्मानुभूति ही समस्त जिनशासन का सार है।

उपदेश की प्रक्रिया में व्यवहारनय और अनुभूति की प्रक्रिया में निश्चयनय प्रधान है। ज्ञानीजन जब व्यवहारनय को हेय या असत्यार्थ कहते हैं तो उसकी गौणता के कारण ही है–अभाव करके नहीं। क्योंकि अनुभव के काल में व्यवहारनय स्वत: गौण हो जाता है। अनुभव की प्रेरणा की देशनारूप व्यवहार और अनुभव रूप निश्चय की विद्यमानता ही व्यवहार निश्चय को नहीं छोड़ने की प्रक्रिया है।

प्रश्न १२ – निश्चयनय के भेद-प्रभेद बताइये।

उत्तर – निश्चयनय यद्यपि अभेद्य है तथापि जिनागम में समझने–समझाने के लिये ये भेद निरुपित हैं। इस षड्–द्रव्यात्मक लोक में अनंत वस्तुएँ हैं। छह तो द्रव्यों के प्रकार है और द्रव्य अनंतानंत हैं, ये ही लोक की अनंत वस्तुएँ हैं। ये सभी वस्तुएँ सामान्य–विशेषात्मक हैं। सामान्य विशेषात्मक वस्तुएँ ही प्रमाण का विषय हैं। इन्हें सम्यक् जानने वाला ज्ञान ही प्रमाण है। सम्यग्ज्ञान प्रमाण है और नय प्रमाण का एकदेश है। जब सामान्य विशेषात्मक वस्तु को सामान्य और विशेष इन अंशों में विभाजित करके समझा जाता है तो सामान्यांश को विषय करने वाला निश्चयनय है और विशेषांश को विषय करने वाला व्यवहारनय है।

जिनागम में निश्चयनय के अनेक नाम आये हैं जैसे–शुद्धनय, परमशुद्धनय, परमार्थनय, भूतार्थनय,

किंतु यह अनेक प्रकार का नहीं है। सामान्य को अभेद, निरुपाधि, द्रव्य, शक्ति, स्वभाव, शुद्धभाव, परमभाव, एक, परमार्थ, निश्चय, ध्रुव, त्रिकाली आदि नामों से भी कहा है। आलाप पद्धति में कहा है – ''निश्चयनय दो प्रकार का है–शुद्धनिश्चयनय और अशुद्ध निश्चयनय।'' शुद्ध निश्चयनय की विषयवस्तु के सम्बंध में अनेक प्रकार के कथन प्राप्त होते हैं, उनके आधार पर इस नाम के आगे लगे हुये विशेषण द्वारा शुद्ध निश्चयनय के प्रभेद कहे गये हैं–

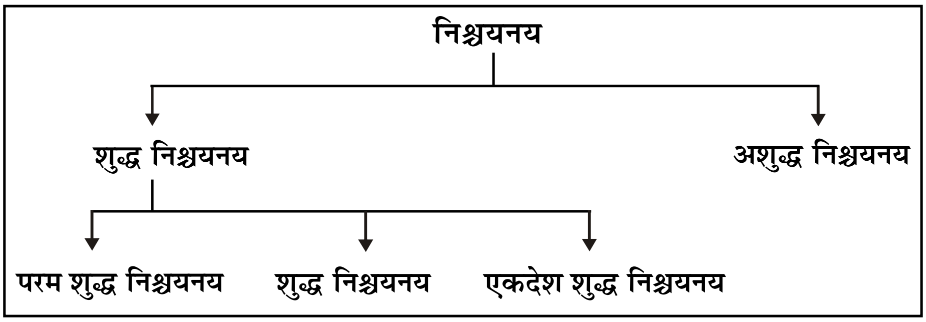

१. परमशुद्ध निश्चनय – इसमें त्रिकाली शुद्ध परम पारिणामिक सामान्य भाव का ग्रहण होता है। उदाहरण इन कथनों में व्यक्त है –

(क) शुद्धनिश्चयनय से सहज ज्ञानादि परमस्वभावभूत गुणों का आधार होने से कारणशुद्धजीव है।

(ख) शुद्ध निश्चयनय से जीव सत्ता, चैतन्य व ज्ञानादि शुद्ध प्राणों से जीता है।

२. शुद्ध या साक्षात् निश्चयनय – निरुपाधिक गुण–गुणी को अभेद रूप विषय करने वाला शुद्ध निश्चनय या साक्षात् शुद्ध निश्चनय है। उदाहरण – (क) जीव को शुद्ध केवलज्ञानादि रूप कहना। (यह नय आत्मा को क्षायिक भावों से अभेद बताता है।)

(ख) शुद्ध निश्चयनय से केवलज्ञानादि शुद्ध भाव जीव के स्वभाव कहे जाते हैं।

(ग) शुद्ध निश्चयनय से निरुपाधि स्फटिकमणि के समान आत्मा समस्त रागादि विकल्प की उपाधि से रहित है।

(घ) शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध, अखंड केवलज्ञान और केवलदर्शन ये दोनों जीव के लक्षण हैं।

३. एकदेश शुद्ध निश्चनय – एकदेश शुद्धता से तन्मय द्रव्य सामान्य को पूर्णशुद्ध देखना एकदेश शुद्ध निश्चयनय है। उदाहरण – (क) परमध्यान में स्थित जीव को जिस वीतराग परमानंद रूप सुख का प्रतिभास होता है, वही निश्चय मोक्षमार्ग स्वरूप है।

४. अशुद्ध निश्चयनय – सोपाधिक गुण–गुणी में अभेद दर्शाने वाला अशुद्ध निश्चयनय है। उदाहरण – मतिज्ञानादि को जीव कहना। यह नय औदयिक और क्षायोपशमिक भावों को जीव के साथ अभेद बताता है, उनके कर्ता–कर्म आदि भी बताता है। वृहद् द्रव्य संग्रह की गाथा ८ टीका के अनुसार – ''अशुद्ध निश्चय का अर्थ कहा जाता है''– कर्मोपाधि से उत्पन्न हुआ होने से अशुद्ध कहलाता है और उस समय तपे हुये लोहखंड के गोले के समान तन्मय होने से निश्चय कहलाता है। इस प्रकार अशुद्ध और निश्चय का मिलाप करके अशुद्ध निश्चय कहा जाता है। उदाहरण हेतु कथन – (क) जीव में कर्मों के क्षयोपशम से

उत्पन्न होने वाले जितने भाव हैं वे जीव के भावप्राण हैं।

(ख) अशुद्ध निश्चयनय से यह आत्मा संपूर्ण मोहराग के द्वेषादि रूप भावकर्मों का कर्ता और भोक्ता होता है।

(ग) वही आत्मा अशुद्ध निश्चयनय से सोपाधिक स्फटिक की भाँति समस्त रागादि विकल्पों की उपाधि से रहित है।

प्रश्न १३ - निश्चयनय के चारों भेद किस-किस गुणस्थान में पाये जाते हैं ?

उत्तर - (अ) परम पारिणामिक भावरूप सामान्य अंश का ग्राही होने से परम शुद्ध निश्चयनय तो मुक्त और संसारी समस्त जीवों के पाया जाता है। अत: वह तो चौदह गुणस्थानों और गुणस्थानातीत सिद्धों में भी पाया जाता है। ''सर्व जीव सिद्ध सम'', ''ममस्वरूप है सिद्ध समान'' या ''सिद्ध समान सदा पद मेरो'' ये कथन इसी नय के हैं। एक यही निश्चयनय है जो द्रव्य स्वभाव को ग्रहण करता है। शेष सभी पर्याय स्वभाव को ग्रहण करते हैं इसलिए इसे नयाधिपति कहा है। ''जो निगोद में सो ही मुझमें, सोही मोक्ष मझार'' यहपरम शुद्ध निश्चयनय का कथन है।

(ब) शुद्ध (साक्षात्) निश्चयनय पूर्ण शुद्ध भावों (क्षायिक भाव)रूप पर्यायों को द्रव्य में अभेद रूप से ग्रहण कर कथन करने वाला होने से क्षायिक भाव वालों में पाया जाता है। क्षायिक सम्यग्दर्शन की अपेक्षा यह चौथे गुणस्थान में भी पाया जाता है। इसी अपेक्षा क्षायिक सम्यग्दृष्टि को दृष्टि मुक्त कहा गया है। चौथे गुणस्थान से सिद्धों तक यह साक्षात् निश्चयनय पाया जा सकता है।

(स) मुक्ति मार्ग के साथ अभेदता स्थापित करने के कारण एकदेश शुद्ध निश्चयनय साधक जीव के ही पाया जाता है, अत: यह चौथे से बारहवें गुणस्थान तक समझना चाहिये। इसे निर्विकल्प समाधि अथवा शुद्धोपयोग भी कहते हैं।

(द) अशुद्ध निश्चयनय प्रथम गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक वर्तता है।

प्रश्न १४ - व्यवहारनय के भेद-प्रभेद बताइये।

उत्तर - व्यवहारनय का कार्य एक अखंड वस्तु में भेद करके तथा दो भिन्न वस्तुओं में अभेद करके वस्तु स्वरूप को स्पष्ट करना है। इसी विशेषता के आधार पर उसके दो भेद हैं - १. सद्भूत व्यवहारनय, २. असद्भूत व्यवहारनय। इसके भी उपचरित और अनुपचरित के भेद से चार प्रकार माने गये हैं -

१. सद्भूत व्यवहारनय - एक ही वस्तु में भेद व्यवहार करने वाला सद्भूत व्यवहारनय है। सद्भूत व्यवहारनय अनंतधर्मात्मक एक अखंड वस्तु में गुणों, कर्मों, स्वभावों व पर्यायों के आधार पर भेद करता है अर्थात् भेद करके वस्तु स्वरूप को स्पष्ट करता है। वे गुणधर्म आदि सद्भूत हैं अर्थात् उस वस्तु में विद्यमान हैं, उस वस्तु के ही गुण धर्म हैं, इस कारण इसे सद्भूत कहा जाता है। अखंडवस्तु में गुण धर्मादि के आधार पर भेद करने से व्यवहार कहा जाता है और भेदाभेद रूप वस्तु के एकांश को ग्रहण करने से नय कहा जाता है। गुण-गुणी में, पर्याय-पर्यायी में, स्वभाव-स्वभाववान में और कारक-कारकवान में भेद करना अर्थात् जो वस्तु अभिन्न है, उनमें भेद व्यवहार करना सद्भूत व्यवहार का विषय है। जैसे-ज्ञानगुण वाला आत्मा।

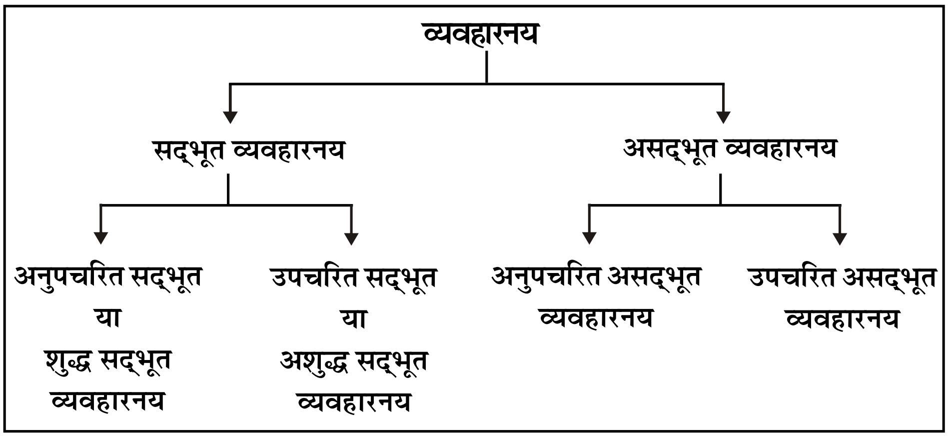

२. असद्भूत व्यवहारनय – भिन्न वस्तुओं में अभेद व्यवहार करने वाला असद्भूत व्यवहार नय है। यह भिन्न द्रव्यों में संयोग संबंध आदि के आधार पर अभेद बताकर वस्तु स्वरूप को स्पष्ट करता है जबकि वस्तुत: भिन्न द्रव्यों में अभेद वस्तुगत नहीं है, इस कारण इस नय को असद्भूत व्यवहारनय कहते हैं। आलाप पद्धति के अनुसार – ''अन्य द्रव्य में प्रसिद्ध धर्म का अन्य द्रव्य में आरोप करने को असद्भूत व्यवहारनय कहते हैं।'' इसे असत्य आरोप करने के कारण असद्भूत, भिन्न द्रव्यों में संबंध जोड़ने के कारण व्यवहार और संयोग का ज्ञान कराने वाले सम्यक् श्रुतज्ञान का अंश होने के कारण नय कहा जाता है।

एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का उपचार, एक पर्याय में दूसरी पर्याय का, एक गुण में दूसरे गुण का, द्रव्य में गुण का, द्रव्य में पर्याय का, गुण में द्रव्य का, गुण में पर्याय का, पर्याय में द्रव्य का और पर्याय में गुण का उपचार–इस प्रकार नौ प्रकार का असद्भूत व्यवहारनय का विषय है।

३. अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय – निरुपाधि गुण–गुणी में भेद को विषय बनाने वाला अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय है। इसके उदाहरण हेतु निम्न कथन हैं –

(क) जीव के केवलज्ञानादि गुण हैं।

(ख) शुद्ध गुण व शुद्ध गुणी अथवा शुद्ध पर्याय व शुद्ध पर्यायी में भेद का कथन।

(ग) केवलज्ञानादि शुद्ध गुणों का आधार होने के कारण कार्य शुद्ध जीव।

४. उपचरित सद्भूत व्यवहारनय – सोपाधि गुण–गुणी में भेद को विषय करने वाला उपचरित सद्भूत व्यवहारनय है–जैसे (क) जीव के मतिज्ञानादि गुण हैं।

५. अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय – भिन्न वस्तुओं के संश्लेशसहित सम्बंध को विषय करने वाला अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय है। जैसे–(क) जीव का शरीर है। (ख) आत्मा द्रव्यकर्मों का कर्ता और उसके फलस्वरूप सुखदुख का भोक्ता है। (ग) यह जीव मूर्त है। (घ) यह आत्मा देह से अभिन्न है। (ङ) जीव यथासंभव द्रव्य प्राणों के द्वारा जीता है, जीयेगा और पहले से जीता था। (च) तीर्थंकर वज्रवृषभनाराचसंहनन के धारी होते हैं।

६. उपचरित असद्भूत व्यवहारनय – भिन्न वस्तुओं के संश्लेश रहित संबंध को विषय करने वाला

उपचरित असद्भूत व्यवहारनय है। जैसे – (क) देवदत्त का धन है।

(ख) असद्भूत व्यवहारनय उपचार है और उपचार में भी जो उपचार करता है वह उपचरित असद्भूत व्यवहारनय है।

(ग) इस नय से आत्मा घट, पट और रथ आदि का कर्ता है।

(घ) इस नय से आत्मा समवशरण में स्थित वीतराग सर्वज्ञ की भाँति एक ग्राम या घर में स्थित है।

(ङ) यह जीव पंचेन्द्रियों के इष्टानिष्ट विषयों से उत्पन्न सुख-दुख भोगता है।

(घ) प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव भरत-बाहुबली के पिता है।

प्रश्न १५ – व्यवहारनय के भेद-प्रभेदों को इंकार करने पर क्या आपत्ति खड़ी होगी ?

उत्तर – १. अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय के विषयभूत शरीरस्थ आत्मा को जीव नहीं मानने से त्रसस्थावर को भस्म के समान मसल देने पर भी हिंसा नहीं कहलायेगी। ऐसा होने से अहिंसाणुव्रत और अहिंसा महाव्रत काल्पनिक हो जायेंगे। तीर्थंकर भगवान की सर्वज्ञता संकट में पड़ जायेगी क्योंकि केवली भगवान पर को अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से जानते हैं।

२. उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से इंकार करने पर जिन मंदिर शिवमंदिर का भेद संभव न होगा। माँ-बाप, स्त्री, पुत्रादि, मकान आदि को अपना कहने का व्यवहार न रहेगा। स्वस्त्री-परस्त्री, स्वधन-परधन के विभाग बिना लौकिक मर्यादाएँ कैसे निभेंगी ?

३. उपचरित-अनुपचरित दोनों ही प्रकार के असद्भूत व्यवहार नयों से इंकार करने पर समस्त जिनवाणी के व्याघात का प्रसंग उपस्थित होगा, क्योंकि जिनवाणी में नयों का कथन सम्यक् श्रुतज्ञान के अंश के रूप में आया है। उक्त दोनों ही नय भेदविज्ञान की सिद्धि का मार्ग भी प्रशस्त करते हैं।

प्रश्न १६ – इन सबको जानने से क्या लाभ है ?

उत्तर – जिनवाणी में विविध प्रकार से आत्मा का स्वरूप समझाते हुए कथन किया गया है। व्यवहारनय के सम्यग्ज्ञान के बिना उनका मर्म समझा नहीं जा सकता और भ्रमित होना संभव है। इन नयों को जानने का सम्यक् फल इन सब सम्बंधों और उपचारों को जानकर, इनकी निस्सारता जानकर एवं इन नय कथनों को वास्तविक न जान, मात्र उपचरित कथन अनुसार मानकर पर से विभक्त और निज से एकत्व को प्राप्त निज परमात्म तत्व में ही अहं स्थापित करना है।

प्रश्न १७ – द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नय क्या है ? उसके भेद-प्रभेद बताइये।

उत्तर – प्रत्येक वस्तु सामान्य – विशेषात्मक है। वस्तु के सामान्य अंश को द्रव्य और विशेष अंश को पर्याय कहते हैं। वस्तु के सामान्य अंश को ग्रहण करने वाले ज्ञान के अंश को द्रव्यार्थिकनय और विशेष अंश को पर्यायार्थिक नय कहते हैं। दोनों अंशों को एक साथ ग्रहण करने वाले ज्ञान को प्रमाण कहते हैं।

वस्तु प्रमाण का विषय है और वस्तु का एक अंश नय का विषय है। जो अर्थ प्रमाण और नय से

निर्णीत होता है, वह निक्षेप का विषय है। द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा प्रमाण, द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक नय का विषय निम्नानुसार है –

	प्रमाण का विषय	द्रव्यार्थिक नय का विषय	पर्यायार्थिक नय का विषय
द्रव्य	सामान्य विशेषात्मक	सामान्य	विशेष
क्षेत्र	भेदाभेदात्मक	अभेद	भेद
काल	नित्यानित्यात्मक	नित्य	अनित्य
भाव	एकानेकात्मक	एक	अनेक
		(द्रव्य)	(पर्याय)

* पर्याय को गौण करके जो द्रव्य को ग्रहण करे उसे द्रव्यार्थिक नय तथा द्रव्य को गौण करके जो पर्याय को ग्रहण करे उसे पर्यायार्थिक नय कहते हैं।
* दोनों नयों का विषय एक वस्तु की मर्यादा के भीतर है। इन नयों का मूल कार्य समस्त वस्तुओं को मिलाकर देखना नहीं वरन् मुख्यरूप से उसके विभिन्न पक्षों को प्रकाशित करना है। जिस वस्तु का जो अंश जिस नय का विषय बनता है वह अंश मुख्य होता है तथा शेष अंश गौण होते हैं। मुख्य अंश को विवक्षित तथा गौण अंश को अविवक्षित कहते हैं।
* **द्रव्यार्थिक नय के भेद-प्रभेद**-जिनागम में द्रव्यार्थिक नय के सामान्यत: दो भेद हैं –

१. शुद्ध द्रव्यार्थिक नय – शुद्ध द्रव्य ही जिसका प्रयोजन है वह शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। इस प्रकरण में कर्मोपाधि, भेद कल्पना, उत्पाद व्यय से निरपेक्षता ही शुद्धता है। इस आधार पर पुन: शुद्ध द्रव्यार्थिक नय के तीन भेद हैं –

१. कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय – जो कर्मों के मध्य में स्थित अर्थात् कर्मों से लिप्त जीव को सिद्ध समान शुद्ध ग्रहण करता है, उसे कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहते हैं। **उदाहरण – संसारी जीव सिद्ध के समान शुद्धात्मा है।** यहाँ कर्म की उपाधि की अपेक्षा न करने वाला कर्मोपाधि निरपेक्ष है।

२. उत्पाद व्यय निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय – जो नय उत्पाद व्यय को गौण करके केवल सत्ता को ग्रहण करता है उसे आगम में उत्पाद व्यय निरपेक्ष सत्याग्राही शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहते हैं। **जैसे – द्रव्य नित्य है।**

३. भेद कल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय-जो नय गुण-गुणी, स्वभाव-स्वभाववान, पर्याय-पर्यायी, धर्म-धर्मी अर्थ में भेद नहीं करता, वह भेद कल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। **जैसे – द्रव्य अपने गुण पर्याय और स्वभाव से अभिन्न है।**

२. अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय – अशुद्ध द्रव्य ही जिसका प्रयोजन है, वह अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। यहाँ कर्मोपाधि, भेदकल्पना, उत्पाद व्यय सापेक्षता ही अशुद्धता है। इस आधार पर इसके भी तीन भेद हैं –

(अ) कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय – जो नय सब रागादि भावों को जीव या जीव के

कहता है वह कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। **उदाहरण - कर्मजन्य क्रोधादि भाव रूप आत्मा।**

(ब) उत्पाद व्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय - जो नय उत्पाद व्यय के साथ मिली हुई सत्ता को ग्रहण करके द्रव्य को एक समय में उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप कहता है। वह उत्पाद व्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। **जैसे-द्रव्य एक ही समय में उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है।**

(स) भेद कल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय-जो नय द्रव्य में गुण-गुणी आदि का भेद करके उनके साथ संबंध कराता है, वह भेद कल्पना सहित होने से भेद कल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। **जैसे - आत्मा के ज्ञान दर्शनादि गुण हैं।**

इनके अतिरिक्त द्रव्यार्थिक नय के चार भेद कहे हैं -

१. अन्वय द्रव्यार्थिक नय - जो नय समस्त स्वभावों में "यह द्रव्य है" इस प्रकार अन्वय रूप से द्रव्य की स्थापना करे, वह अन्वय द्रव्यार्थिक नय है। **जैसे-आत्मा ज्ञान स्वभावी है।**

२. स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय - जो नय स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव में सत् द्रव्य को ग्रहण करता है वह स्वद्रव्यादि ग्राहक द्रव्यार्थिक नय है। **जैसे - द्रव्य स्वचतुष्टय की अपेक्षा सत् है।**

३. परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय - जो नय परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव में असत् द्रव्य को ग्रहण करता है। **जैसे - द्रव्य पर चतुष्टय अपेक्षा असत् है।**

४. परम भावग्राही द्रव्यार्थिक नय - जो नय शुद्ध, अशुद्ध और उपचरित स्वभाव से रहित परम स्वभाव को ग्रहण करता है, उसे मोक्षाभिलाषियों द्वारा परमभाव ग्राही द्रव्यार्थिक नय जानना चाहिये। **जैसे - आत्मा ज्ञानस्वरूप है।**

* **पर्यायार्थिक नय के भेद-प्रभेद - पर्यायार्थिक नय के छह भेद हैं -**

१. अनादिनित्य पर्यायार्थिक नय-जो नय अकृत्रिम और अनिधन अर्थात् अनादि अनंत चंद्रमा, सूर्य, सुमेरु आदि पर्यायों को ग्रहण करता है उसे जिनेंद्र भगवान ने अनादि नित्य पर्यायार्थिक नय कहा है। **जैसे - पुद्गल की पर्याय सुमेरु आदि नित्य है।**

२. सादि नित्य पर्यायार्थिक नय - जो पर्याय कर्मों के क्षय से उत्पन्न होने के कारण सादि है और विनाश का कारण न होने से अविनाशी है ऐसी सादि नित्य पर्याय को ग्रहण करने वाला सादि नित्य पर्यायार्थिक नय है। **जैसे - सिद्ध पर्याय नित्य है।**

३. सत्ता निरपेक्ष अनित्य पर्यायग्राही शुद्ध पर्यायार्थिक नय - जो सत्ता को गौण करके उत्पाद व्यय को ग्रहण करता है, वह अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय है। **जैसे-पर्याय प्रति समय विनाशशील है।**

४. सत्ता सापेक्ष अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय - जो एक समय में ध्रुवत्व (सत्ता) से संयुक्त उत्पाद व्यय को ग्रहण करता है। **जैसे - एक समय में पर्याय त्रयात्मक (उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक) है।**

५. कर्मोपाधि निरपेक्ष अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय - जो संसारी जीवों की पर्याय को सिद्धों के

समान शुद्ध कहता है, वह अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय है। **जैसे – संसारी जीवों की पर्याय सिद्ध जीवों की पर्याय के समान शुद्ध है।**

६. कर्मोपाधि सापेक्ष अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय – जो चार गतियों के संसारी जीवों की अनित्य–अशुद्ध पर्यायों का कथन करता है वह विभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय है। **जैसे–संसारी जीवों का जन्म और मरण होता है।**

प्रश्न १८ – द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयों को जानने से क्या लाभ है ?

उत्तर – १. प्रत्येक नय का प्रयोजन विवक्षित अंश को गहराई से जानना व प्रतिपादन करना होता है।

२. तत्संबंधी अज्ञान का नाश होता है।

३. भेदज्ञान तथा वीतरागता की उत्पत्ति, वृद्धि, पूर्णता की प्राप्ति में नयज्ञान हेतु बनता है।

४. सम्यग्ज्ञान रूपी प्रमाण का फल तत्संबंधी अज्ञान के नाश के साथ–साथ जानी हुई हेय, उपादेय, ज्ञेय वस्तु के संदर्भ में त्याग, ग्रहण और माध्यस्थ भाव से है, अत: सम्यग्ज्ञान रूपी प्रमाण का अंश होने से नयज्ञान का लाभ भी त्याग ग्रहण और उपेक्षा में होता है। जिससे वीतरागता की उत्पत्ति, वृद्धि व पूर्णता होती है।

५. सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप मोक्षमार्ग की उत्पत्ति, वृद्धि व पूर्णता द्रव्यार्थिक नय के विषयभूत द्रव्य स्वभाव के आश्रय से ही होती है।

६. रत्नत्रय की पूर्णता मोक्षस्वरूप है, अनंत सुखरूप है, प्रयोजनभूत साध्य है।

७. द्रव्यार्थिक नय का विषय द्रव्य स्वभाव अपरिवर्तनशील और पर्यायार्थिक नय का विषय पर्याय स्वभाव परिवर्तनशील है। जो अंश अपरिवर्तनशील है वह शुद्ध–बुद्ध है, अजर–अमर है तथा जो परिवर्तनशील है, वह वर्तमान में अशुद्ध है, विकृत है अपूर्ण है। इस तरह जो हमें इष्ट है वह अपरिवर्तनशील है और जो अनिष्ट है, वह परिवर्तनशील है। यह विचार हमें निर्भय बनाता है। दीनहीन होने से रोकता है। आश्वस्त करता है कि अशुद्धता शाश्वत नहीं है। संयोगों और विकारों की क्षणभंगुरता सहज ही वीतरागता उत्पादक व पोषक होती है।

८. पर्याय में होने वाली अशुद्धि पर्याय के साथ ही नष्ट हो जाती है। पर्यायार्थिक नय की विषयभूत क्षणभंगुर पर्याय के लक्ष्य से होने वाले रागद्वेष भी शाश्वत नहीं होते। अत: यह भी वैराग्योत्पादक वीतरागता की पोषक है।

प्रश्न १९ – सप्तनय क्या है ?

उत्तर – आगम और अध्यात्म शैली में मूलभूत अंतर यह है कि आगम शैली में नयों का प्रयोग छह द्रव्यों की मुख्यता से होता है, जबकि अध्यात्म शैली में आत्मा की मुख्यता से नयों का प्रयोग होता है। आगम शैली में वस्तु स्वरूप की तथा अध्यात्म शैली में आत्महित की प्रमुखता है। मुख्यत: आगम के नय द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक, नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ तथा एवंभूतनय हैं। उपनय (व्यवहारनय) सद्भूत, असद्भूत, उपचरित भी आगम नय हैं। अध्यात्म नय–निश्चय और व्यवहार हैं।

वैसे तो सम्यक् श्रुतज्ञान का अंश होने से सभी नय ज्ञानात्मक होते हैं, तथापि विषयवस्तु की अपेक्षा उन्हें ज्ञाननय, शब्दनय और अर्थनय में विभाजित किया है।

१. ज्ञाननय – ज्ञान को जानने वाले ज्ञाननय। जैसे – गाय को जानने वाला ज्ञान।

२. शब्दनय – शब्दों को जानने वाले शब्दनय। जैसे – गाय नामक शब्द।

३. अर्थनय – अर्थ को जानने वाले अर्थनय। जैसे – गाय नामक पशु।

सप्तनयों में – नैगम, संग्रह, व्यवहार और ऋजुसूत्र अर्थनय हैं। शब्द, समभिरूढ़, एवंभूत शब्दनय हैं। नैगमनय, ज्ञाननय भी है। वह विभाजन मुख्यता–गौणता की अपेक्षा है वैसे तो सारे नय ज्ञान, शब्द, अर्थ नय भी है क्योंकि सभी नय दूसरों के लिये अर्थ का कथन करने पर शब्दनय हैं, ज्ञाता के लिये अर्थ का प्रकाशन करने पर ज्ञाननय और उनके द्वारा ज्ञात किये वस्तु के धर्म कहे जाते हैं, इसलिये वे अर्थनय हैं।

प्रश्न २० – नैगमादि सप्तनय-भेद-प्रभेद सहित बताइये।

उत्तर – द्रव्यार्थिक नय तीन प्रकार का है – नैगम, संग्रह और व्यवहार तथा पर्यायार्थिक नय चार प्रकार का है – ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ तथा एवंभूत। इस तरह सप्तनय है। इनका संक्षिप्त स्वरूप निम्न प्रकार से है –

१. नैगम नय – संकल्प मात्र का ग्राहक नैगम नय होता है। पूज्यपाद स्वामी के अनुसार–अनिष्पन्न अर्थ में संकल्प मात्र को ग्रहण करने वाला नय नैगम नय है। जो कार्य अभी संपन्न नहीं हुआ है उसे अनिष्पन्न कहते हैं। नैगम नय विचारात्मक जगत् में होने वाली अनेक कल्पनाएँ, संभव–असंभव विकल्प, संकल्प, योजनाएँ चाहे वे साकार हों या न हों, को विषय बनाता है। इस तरह इसमें असत् कल्पनाओं को विषय बनाया है। यह नय लोक व्यवहार में सर्वाधिक प्रचलित है। इसके भेद–प्रभेद निम्नानुसार हैं –

१. भूतनैगम नय – जो कार्य हो चुका हो, उसका वर्तमानकाल में आरोप करना। जैसे – आज के दिन भगवान महावीर का निर्वाण हुआ था।

२. भावी नैगम नय – जो अनिष्पन्न भावी पदार्थ को निष्पन्न की तरह कहता है। जैसे–भावलिंगी संतों को सिद्ध कहना।

३. वर्तमान नैगम नय – जो आरंभ किये गये कार्य में संपन्न कार्य के समान व्यवहार करता है। जैसे–चांवल धोने वाले से पूछने पर वह कहे भात पका रहा हूँ।

२. संग्रहनय – प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणों द्वारा अपनी जाति का विरोध न करते हुये सभी विशेषों को कथंचित एकत्वरूप से ग्रहण करना संग्रह नय है। जैसे – जीव का लक्षण चेतना है। यह नय मात्र सत् का विषय बनाता है। जिस पदार्थ की लोक में सत्ता है उसे सत् कहते हैं। यह सत् उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य होता है। यही द्रव्य का लक्षण है। इसके दो भेद हैं –

१. शुद्ध संग्रहनय, जो अस्तित्व के आधार पर एकता स्थापित करता है। जैसे – सत्सामान्य द्रव्य का लक्षण है।

२. अशुद्ध संग्रहनय एकमात्र जाति (समूह) के आधार पर एकता स्थापित करता है। जैसे–जो चैतन्य है वह जीव द्रव्य है।

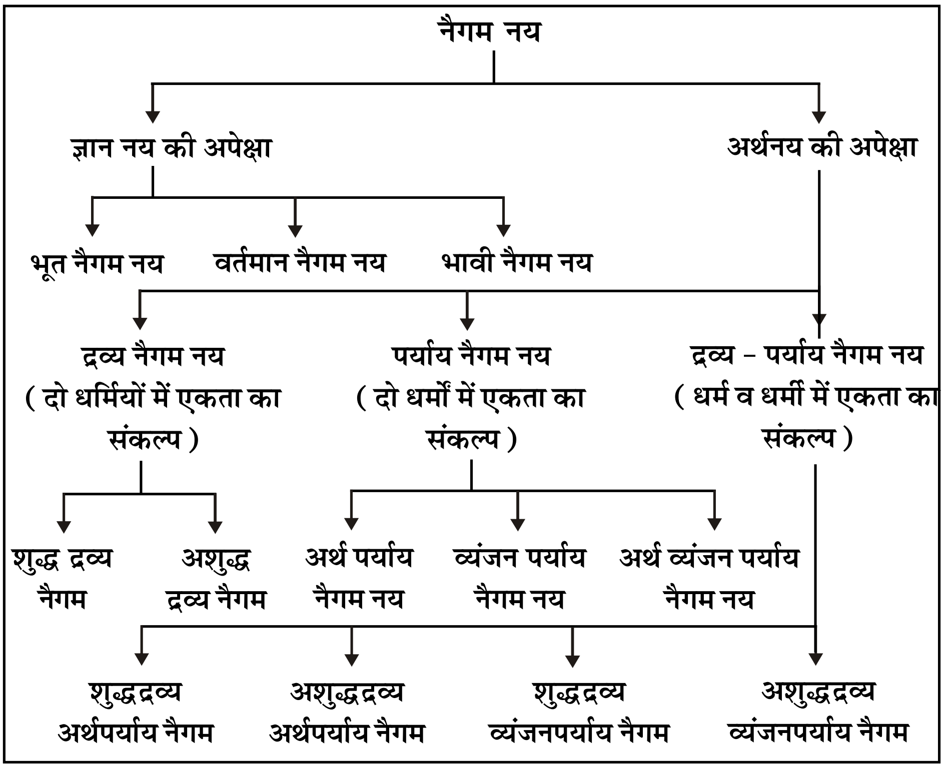

३. व्यवहारनय – संग्रहनय द्वारा संग्रहित पदार्थों में विधिपूर्वक भेद करना व्यवहार नय है। इसमें अशुद्ध संग्रहनय में भेद करने वाला अशुद्ध व्यवहार नय तथा शुद्ध संग्रहनय में भेद करने वाला शुद्ध व्यवहारनय है। जैसे – ''**द्रव्य छह हैं**'' यह कथन शुद्ध व्यवहारनय का है तथा ''**जीव दो हैं– संसारी और मुक्त**'' यह अशुद्ध व्यवहारनय का कथन है। यह व्यवहारनय संग्रहनय द्वारा ग्रहीत विषय को परमाणु पर्यंत (अंतिम बिंदु तक) विभाजित करता है।

४. ऋजुसूत्र नय – यह क्षणध्वंसी पर्याय को विषय बनाता है। इसके भी दो प्रकार हैं।

१. सूक्ष्म ऋजुसूत्र नय – जो द्रव्य में एक समयवर्ती अध्रुव पर्याय को ग्रहण करता है। जैसे – शब्द क्षणिक है।

२. स्थूल ऋजुसूत्र नय – जो द्रव्य में अनेक समयवर्ती (अपनी स्थिति पर्यंत) रहने वाली मनुष्य आदि पर्याय को विषय बनाता है वह स्थूल ऋजुसूत्र नय है। यद्यपि यह भी वर्तमान पर्याय को ही विषय बनाता है। सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय केवलज्ञानियों के ज्ञान में ही आ सकता है। किंतु चौबीस तीर्थंकरों के भव बताते समय स्थूल ऋजुसूत्रनय का सहारा लिया जाता है।

५. शब्दनय–लिंग, संख्या और साधन आदि के व्यभिचार की निवृत्ति करने वाला शब्दनय है।

१. लिंग व्यभिचार – अन्यलिंग के साथ अन्य लिंग का प्रयोग।

२. संख्या व्यभिचार – अन्य या वचन के स्थान पर अन्य संख्या या वचन का प्रयोग।

३. साधन व्यभिचार – कारकों के प्रयोग में उचित कारक का प्रयोग न करना।

४. पुरुष व्यभिचार – अन्य पुरुष का (उत्तम, मध्यम, प्रथम) अन्य पुरुष के साथ प्रयोग।

५. काल व्यभिचार – अन्यकाल के साथ अन्य काल का प्रयोग। होने वाले कार्य को हो गया बतलाना आदि।

६. उपग्रह (उपसर्ग) व्यभिचार – अन्य उपसर्ग के साथ अन्य उपसर्ग का प्रयोग।

यहाँ व्यभिचार का अर्थ है – सदोष कथन। शब्दनय का अभिप्राय है – ''वस्तु स्वरूप के प्रतिपादन में निर्दोष भाषा का प्रयोग होना चाहिये, लिंग, वचन, संख्या, काल, कारक, पुरुष और उपग्रह संबंधी व्याकरणिक नियमों का पालन कड़ाई से किया जाना शब्दनय की आवश्यक शर्त हैं।''

ऋजुसूत्र नय लौकिक व्याकरण का अनुसरण करने वाला है किंतु शब्दनय एकार्थवाचक शब्दों को ही उचित मानता है जैसे – इन्द्र, पुरंदर, शक्र तीनों शचीपति के वाचक हैं।

६. समभिरूढ़ नय – शब्दनय लिंग वचन, कारक, काल उपग्रह आदि के व्याभिचार से रहित एकार्थवाची शब्द को स्वीकार कर लेता है, किंतु समभिरूढ़नय की दृष्टि में कोई शब्द समानार्थी नहीं होता। वह शब्दनय द्वारा ग्रहण किये गये समान स्वभावी एकार्थवाची शब्दों में निरुक्ति या व्युत्पत्ति अर्थ से अर्थभेद की स्थापना कर केवल मुख्य कार्य के अनुसार शब्द को ग्रहण करता है। वह शब्द को शब्दारूढ़ और अर्थ को अर्थारूढ़ करता है उसे समभिरूढ़ नय कहते हैं। जैसे – इन्द्र = ऐश्वर्यवान, पुरंदर–पुर को भेदने वाला, शक्र–सामर्थ्यवान, शची का पति–शचिपति यह शब्दारूढ़ है। गो शब्द का गाय नामक पशु के अर्थ में रूढ़ होना अर्थारूढ़ है।

७. एवंभूत नय – समभिरूढ़ नय जितने शब्द उतने अर्थ स्वीकार करता है किंतु एवंभूतनय उसी शब्द को ग्रहण करता है जो उस समय उस क्रिया को करता है। जैसे – जब गमन करें तो वह गाय है। अत: जो वस्तु जिस पर्याय को प्राप्त हुई, उसी रूप निश्चय कराने वाले नय को एवंभूत नय कहते हैं। जिस ज्ञान से आत्मा परिणत हो उसी रूप से उसका निश्चय कराने वाला नय एवंभूतनय है। यहाँ पदों का समास रूप ग्रहण नहीं होता। आत्मा केवल आत्मा ही है, ऐसा ग्रहण होता है।

इस तरह सातों नय भाषा के प्रयोगों को आवश्यकता अनुसार सुसंगत रूप प्रदान करने वाले उत्तरोत्तर सूक्ष्म विषय वाले हैं।

प्रश्न २१ – सप्तभंगी क्या है ?

उत्तर – सात है भंग जिसके वह सप्तभंगी हैं। यह दो प्रकार की है – प्रमाण सप्तभंगी और नय सप्तभंगी। जब एक धर्म के द्वारा समस्त वस्तु को अखंड रूप से ग्रहण करता है तब वे भंग सकलादेशी होने से प्रमाण सप्तभंग हैं तथा जब एक धर्म को प्रधान तथा शेष धर्मों को गौण करके वस्तु को ग्रहण करें तब वे विकलादेशी भंग नय सप्तभंगी हैं। स्यात् पद लगाने से वही नय प्रमाण हो जाता है।

प्रत्येक वस्तु में अनंतधर्म होने के कारण वस्तु में अनंत भंग होते हैं परंतु ये अनंत भंग विधि और निषेध की अपेक्षा सात ही हो सकते हैं। चाहे वह प्रमाण हो या नय हो। प्रमाण में **स्यात्** (कथंचित्) शब्द लगाकर तथा नय में **ही** लगाकर कथन करते हैं। भंग शब्द का अर्थ वस्तु का स्वरूप है। इस तरह सात भंगों के समूह को सप्तभंगी कहते हैं।

प्रश्न २२ - सप्तभंग कौन से हैं ? स्वरूप बताइये।

उत्तर - वस्तु स्वरूप का निर्णय करने में सप्तभंगों की कथनशैली का प्रयोग किया जाता है। वस्तु किसी अपेक्षा अस्ति है, किसी अपेक्षा नास्ति है। किसी अपेक्षा अस्ति-नास्ति है। किसी अपेक्षा अवक्तव्य है, किसी अपेक्षा अस्ति अवक्तव्य है और किसी अपेक्षा नास्ति अवक्तव्य है तो किसी अपेक्षा अस्ति-नास्ति अवक्तव्य है। इस आधार पर सप्तभंग हैं -

१. स्यात् अस्ति, २. स्यात् नास्ति, ३. स्यात् अस्ति-नास्ति, ४. स्यात् अवक्तव्य, ५. स्यात् अस्ति अवक्तव्य, ६. स्यात् नास्ति अवक्तव्य, ७. स्यात् अस्ति-नास्ति अवक्तव्य। आचार्य जयसेन ने पंचास्तिकाय जी की गाथा १४ की टीका में इसे समझाया है -

''जिस प्रकार एक ही देवदत्त नाम का पुरुष मुख्य और गौण विवक्षा से अनेक प्रकार का हो जाता है, पुत्र की अपेक्षा पिता, पिता की अपेक्षा पुत्र, मामा की अपेक्षा भांजा, भांजे की अपेक्षा मामा, पत्नी की अपेक्षा पति, बहिन की अपेक्षा भाई कहा जाता है, शत्रु की अपेक्षा शत्रु और मित्र की अपेक्षा मित्र कहा जाता है, इसी प्रकार एक द्रव्य विभिन्न अपेक्षाओं से सातभंग वाला हो सकता है।''

आचार्य अमृतचंद्र के अनुसार -

१. द्रव्य स्वद्रव्य-स्वक्षेत्र-स्वकाल-स्वभाव से कथन किये जाने पर **अस्ति** है।
२. द्रव्य परद्रव्य-परक्षेत्र-परकाल-परभाव से कथन किये जाने पर **नास्ति** है।
३. द्रव्य स्वद्रव्य-स्वक्षेत्र-स्वकाल-स्वभाव से और परद्रव्य-परक्षेत्र-परकाल-परभाव से क्रमशः कथन किये जाने पर **अस्ति और नास्ति** है।
४. द्रव्य स्वद्रव्य-स्वक्षेत्र-स्वकाल-स्वभाव से और परद्रव्य-परक्षेत्र-परकाल-परभाव से युगपद् (एक साथ) कथन किये जाने पर **अवक्तव्य** है।
५. द्रव्य स्वद्रव्य-स्वक्षेत्र-स्वकाल-स्वभाव से और युगपद् स्वपर-द्रव्य क्षेत्र काल भाव से कथन किये जाने पर **अस्ति अवक्तव्य** है।
६. द्रव्य परद्रव्य-परक्षेत्र-परकाल-परभाव से कथन किये जाने पर **नास्ति अवक्तव्य** है।
७. द्रव्य स्वद्रव्य-स्वक्षेत्र-स्वकाल-स्वभाव से, परद्रव्य-परक्षेत्र-परकाल-परभाव से और युगपद् स्व परद्रव्य क्षेत्र कालभाव से कथन किये जाने पर **अस्ति-नास्ति और अवक्तव्य** है।

इस तरह वस्तु के प्रत्येक धर्म में सप्तभंग का प्रयोग कर उसके परस्पर विरोधी स्वरूप को समझा जा सकता है। जैसे वस्तु नित्य-अनित्य, एक-अनेक, सत्-असत्, किसी-किसी अपेक्षा है, उन्हें स्यात् पद से सप्तभंग द्वारा समझा जा सकता है। यह सप्तभंग जैन न्याय दर्शन का अनुपम अनुसंधान है। आत्महित के लिये वस्तु स्वरूप को सम्यक् स्वरूप में समझने के लिये उपयोगी तथा परमावश्यक है।

प्रश्न २३ - अनेकांत और स्याद्वाद क्या है ?

उत्तर - आचार्य समंतभद्र ने स्याद्वाद को सप्तभंग और नय सापेक्ष कहा है। वस्तु का स्वरूप अनेकांतात्मक है। प्रत्येक वस्तु अनेक गुणधर्मों से युक्त है। अनंत धर्मात्मक वस्तु ही अनेकांत है और वस्तु के अनेकांत स्वरूप को समझाने वाली सापेक्ष कथन पद्धति को स्याद्वाद कहते हैं।

अनेकांत शब्द ''अनेक'' और ''अंत'' दो शब्दों से मिलकर बना है। अनेक का अर्थ होता है – एक से अधिक। एक से अधिक दो भी हो सकते हैं और अनंत भी। दो और अनेक के बीच अनेक अर्थ संभव हैं तथा अंत का अर्थ है धर्म अर्थात् गुण। जहाँ अनेक का अर्थ अनंत होगा, वहाँ अंत का अर्थ गुण लेना चाहिये। किंतु जहाँ अनेक का अर्थ दो लिया जायेगा वहाँ अंत का अर्थ धर्म होगा। स्यात्कार का प्रयोग धर्मों में होता है गुणों में नहीं। प्रत्येक वस्तु में अनंत शक्तियाँ हैं जिन्हें गुण या धर्म कहते हैं। इनमें जो शक्तियों परस्पर विरूद्ध या सापेक्ष होती हैं उन्हें धर्म कहते हैं। जैसे – नित्य-अनित्य, एक-अनेक, सत्-असत्, भिन्न-अभिन्न। जो शक्तियाँ विरोधाभास रहित हैं उन्हें गुण कहते हैं। जैसे – आत्मा के ज्ञान, दर्शन, सुख आदि तथा पुद्गल के रूप, रस, गंध आदि। जिनमें विरोध प्रतिभासित होते हैं, उन्हें स्याद्वाद द्वारा प्रतिपादित किया जाता है।

जैन दर्शन सर्वथा न एकातंवादी है न सर्वथा अनेकांतवादी। वह कथंचित् एकांतवादी और कथंचित् अनेकांतवादी है। इसी का नाम **अनेकांत में अनेकांत है**। एकांत भी दो प्रकार का है और अनेकांत भी दो प्रकार का है – सम्यक् एकांत, मिथ्या एकांत, सम्यक् अनेकांत और मिथ्या अनेकांत। निरपेक्ष नय मिथ्या एकांत है और सापेक्ष नय सम्यक् अनेकांत है और निरपेक्ष नयों का समूह अर्थात् श्रुत प्रमाण सम्यक् अनेकांत है और निरपेक्ष नयों का समूह अर्थात् प्रमाणाभास मिथ्या अनेकांत है। सम्यक् एकांतनय है सम्यक् अनेकांत प्रमाण अनेकांतवाद सर्वनयात्मक है।

''**जिस प्रकार बिखरे हुये मोतियों को एक सूत्र में पिरों देने से मोतियों का सुंदर हार बन जाता है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न नयों को स्याद्वादरूपी सूत में पिरो देने से संपूर्ण नय श्रुत प्रमाण कहे जाते हैं।**'' (राजवार्तिक अध्यात्म – १ सूत्र ६)

''**परमागम के बीज स्वरूप अनेकांत में संपूर्ण नयों (सम्यक् एकांतों) का विलास है, उसमें एकांतों के विरोध को समाप्त करने की सामर्थ्य है क्योंकि विरोध वस्तु में नहीं, अज्ञान में हैं।**'' (पुरुषार्थ सिध्युपाय श्लोक २) जिनेन्द्र भगवान का स्याद्वादरूपी नय चक्र अत्यंत पैनी धार वाला है। इसे अत्यंत सावधानी से चलाना चाहिये, अन्यथा धारण करने वाले का ही मस्तक भंग हो सकता है। इसे चलाने के पूर्व नयचक्र चलाने में चतुर गुरुओं की शरण लेना चाहिये। उनके मार्गदर्शन में जिनवाणी का मर्म समझना चाहिये।

....

श्रुतज्ञान

(श्री गोम्मटसार जी ग्रन्थ की गाथा ३१५ से ३५५ के आधार पर)

प्रश्न ०१ - श्रुत ज्ञान किसे कहते हैं ? श्रुतज्ञान के कितने भेद हैं ?

उत्तर - मतिज्ञान के विषयभूत पदार्थ से भिन्न पदार्थ के ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान नियम से मतिज्ञान पूर्वक होता है। श्रुतज्ञान के अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक अथवा शब्दज और लिंगज, इस तरह दो भेद हैं।

अक्षरात्मक अर्थात् शब्दजन्य श्रुतज्ञान मुख्य है, क्योंकि उपदेश शास्त्राध्ययन, ध्यान आदि की अपेक्षा मोक्षमार्ग में तथा लेनदेन आदि समस्त लोक-व्यवहार में शब्द और तज्जन्य बोध की मुख्यता है। अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक सभी जीवों के पाया जाता है, परन्तु यह लोक-व्यवहार में और मोक्षमार्ग में उपयोगी नहीं है।

प्रश्न ०२ - विस्तार से श्रुतज्ञान के कितने भेद हैं ?

उत्तर - विस्तार से श्रुतज्ञान के बीस भेद होते हैं।

१. पर्याय २. पर्यायसमास ३. अक्षर ४. अक्षरसमास ५. पद ६. पदसमास ७. संघात ८. संघातसमास ९. प्रतिपत्तिक १०. प्रतिपत्तिकसमास ११. अनुयोग १२. अनुयोगसमास १३. प्राभृतप्राभृत १४. प्राभृतप्राभृतसमास १५. प्राभृत १६. प्राभृतसमास १७. वस्तु १८. वस्तुसमास १९. पूर्व २०. पूर्वसमास।

प्रश्न ०३ - पर्यायज्ञान का क्या स्वरूप है ? उनके स्वामी कौन हैं ?

उत्तर - सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के एक अन्तर्मुहूर्त में अधिक से अधिक ६०१२ भव सम्भव हैं। उनमें भ्रमण करके अन्त के अपर्याप्त शरीर को तीन मोड़ों के द्वारा ग्रहण करने वाले जीव के प्रथम मोड़ा के समय में स्पर्शन इन्द्रियजन्य मतिज्ञान पूर्वक लब्ध्यक्षर रूप सबसे जघन्य ज्ञान होता है, उसको पर्याय ज्ञान कहते हैं। इसमें विशेषता केवल यही है कि इसके आवरण करने वाले कर्म के उदय का फल इस पर्यायज्ञान में नहीं होता क्योंकि यदि पर्यायावरण कर्म का फल पर्याय ज्ञान में हो जाय तो ज्ञानोपयोग का अभाव होने से जीव का भी अभाव हो जाता है परन्तु कम से कम पर्यायरूप ज्ञान जीव के अवश्य पाया जाता है। इससे यह ज्ञान निरावरण होता है क्योंकि इसे घातने वाले पर्याय नामक श्रुतज्ञानावरण का प्रभाव पर्यायसमास ज्ञान पर पड़ता है, पर्याय नामक ज्ञान का नहीं पड़ता है।

प्रश्न ०४ - पर्यायसमास ज्ञान के कितने भेद हैं ?

उत्तर - अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान में असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थान होते हैं। ये सब ही पर्याय समास ज्ञान के भेद हैं।

प्रश्न ०५ – अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान का कितना प्रमाण है ?

उत्तर – अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, अनंतगुणवृद्धि इन षट् स्थानपतित वृद्धि, की अपेक्षा से पर्याय पर्यायसमास रूप अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के सबसे जघन्यस्थान से लेकर उत्कृष्टस्थान पर्यन्त असंख्यात लोकप्रमाण भेद होते हैं।

प्रश्न ०६ – अक्षर ज्ञान कब उत्पन्न होता है।

उत्तर – अन्तिम पर्यायसमासज्ञान स्थान में सब जीवराशि का भाग देने पर जो लब्ध आवे उसे उसी में मिलाने पर अक्षरज्ञान उत्पन्न होता है। यह अक्षरज्ञान सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक के अनन्तानन्त लब्ध्यक्षरों के बराबर होता है।

प्रश्न ०७ – अक्षर समास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर – इस अक्षर के ऊपर दूसरे अक्षर की वृद्धि होने पर अक्षरसमास नाम का श्रुतज्ञान होता है। इस प्रकार एक-एक अक्षर की वृद्धि होते हुए संख्यात अक्षरों की वृद्धि होने तक अक्षरसमास श्रुतज्ञान होता है। अक्षरज्ञान के ऊपर और पदज्ञान के पूर्व तक जितने ज्ञान के विकल्प हैं वे सब अक्षर समास ज्ञान के भेद हैं।

प्रश्न ०८ – श्रुत निबद्ध विषय का प्रमाण क्या है ?

उत्तर – जो केवल केवलज्ञान के द्वारा जाने जा सकते हैं किन्तु जिनका वचन के द्वारा निरूपण नहीं किया जा सकता ऐसे पदार्थ अनन्तानन्त हैं इस तरह के पदार्थों से अनन्तें भाग प्रमाण वे पदार्थ हैं। जिनका वचन के द्वारा निरूपण हो सकता है, उनको प्रज्ञापनीय भाव कहते हैं जितने प्रज्ञापनीय पदार्थ हैं उनका भी अननतवां भाग श्रुत में निरूपित है।

प्रश्न ०९ – अक्षर के तीन भेदों के नाम और स्वरूप क्या हैं ?

उत्तर – लब्ध्यक्षर, निर्वृत्यक्षर और संस्थानाक्षर।

१. लब्ध्यक्षर – यह अक्षरज्ञान, सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक से लेकर श्रुतकेवली तक के जीवों के जितने क्षयोपशम होते हैं उन सबकी लब्ध्यक्षर संज्ञा है।

२. निर्वृत्यक्षर – जीवों के मुख से निकले हुये शब्द की निर्वृत्यक्षर संज्ञा है। उस निर्वृत्यक्षर के व्यक्त और अव्यक्त ऐसे दो भेद हैं। उनमें से व्यक्त निर्वृत्यक्षर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकों को होता है। और अव्यक्त निर्वृत्यक्षर द्वीन्द्रिय से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के होता है।

३. संस्थानाक्षर – आकार रूप से बनाया कोई अक्षर उसे संस्थानाक्षर कहते हैं इसका दूसरा नाम स्थापना अक्षर भी है।

प्रश्न १० – स्थापना क्या है ?

उत्तर – ''यह वह अक्षर है'' इस प्रकार अभेद रूप से बुद्धि में जो स्थापना होती है अथवा जो लिखा जाता है, वह स्थापना अक्षर है।

प्रश्न ११ – पद श्रुत ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर – अक्षर ज्ञान के ऊपर क्रम से एक-एक अक्षर की वृद्धि होते होते जब संख्यात अक्षरों की वृद्धि हो जाय तब पद नामक श्रुतज्ञान होता है।

प्रश्न १२ – पद कितनी तरह के होते हैं ?

उत्तर – पद तीन तरह के होते हैं – १. अर्थ पद २. प्रमाण पद ३. मध्यम पद ।

१. अर्थ पद – '' सफेद गौ को रस्सी से बांधो '' '' अग्नि को लाओ '' इत्यादि अनियत अक्षरों के समूह रूप किसी अर्थ विशेष के बोधक वाक्य को अर्थपद कहते हैं।

२. प्रमाण पद – आठ आदिक अक्षरों के समूह को प्रमाण पद कहते हैं। जैसे अनुष्टुप श्लोक के एक पद में आठ अक्षर होते हैं।

३. मध्यम पद – पद के अक्षरों का प्रमाण सर्वदा के लिये निश्चित है, इसी को मध्यम पद कहते हैं। परमागम में द्रव्यश्रुत का ज्ञान कराने के लिये जहां पदों का प्रमाण बताया गया है वहां यह मध्यम पद ही समझना चाहिये।

प्रश्न १३ – मध्यम पद के अक्षरों का प्रमाण कितना है ?

उत्तर – एक मध्यम पद में सोलह सौ चौतीस करोड़ तिरासी लाख सात हजार आठसौ अट्ठासी अक्षर (१६३४८३०७८८८) होते हैं।

प्रश्न १४ – पद समास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं।

उत्तर – मध्यम पद श्रुतज्ञान के ऊपर एक अक्षर बढ़ने पर पदसमास नाम का श्रुतज्ञान होता है इस प्रकार एक–एक अक्षर की वृद्धि से बढ़ता हुआ पद समास श्रुतज्ञान एक अक्षर से न्यून संघात श्रुतज्ञान के प्राप्त होने तक जाता है।

प्रश्न १५ – संघात श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर – एक पद के आगे भी क्रम से एक–एक अक्षर की वृद्धि होते होते संख्यात हजार पदों की वृद्धि हो जाय उसको संघात नामक श्रुतज्ञान कहते हैं। यह संघात नामक श्रुतज्ञान चार गति में से एक गति के स्वरूप का निरूपण करने वाले अपुनरुक्त मध्यम पदों के समूह से उत्पन्न अर्थज्ञान रूप है।

प्रश्न १६ – संघात समास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर – संघात श्रुतज्ञान के ऊपर एक अक्षर की वृद्धि होने पर संघात समास श्रुतज्ञान होता है। संघात और प्रतिपत्ति श्रुतज्ञान के मध्य में जितने ज्ञान के विकल्प हैं उतने ही संघातसमास के भेद हैं।

प्रश्न १७ – प्रतिपत्तिक श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर – चार गति में से एक गति का निरूपण करने वाले संघात श्रुतज्ञान के ऊपर पूर्व की तरह क्रम से एक–एक अक्षर की तथा पदों और संघातों की वृद्धि होते होते जब संख्यात हजार संघात की वृद्धि हो जाय तब एक प्रतिपत्तिक श्रुतज्ञान होता है यह ज्ञान नरकादि चार गतियों का विस्तृत स्वरूप जानने वाला है।

अनुयोग द्वार के जितने अधिकार होते हैं, उनमें से एक अधिकार की प्रतिपत्ति संज्ञा है।

प्रश्न १८ – प्रतिपत्ति समास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर – एक–एक अक्षर की वृद्धि क्रम से बढ़ता हुआ एक अक्षर से न्यून अनुयोग श्रुतज्ञान के प्राप्त होने

तक प्रतिपत्ति समास श्रुतज्ञान जाता है।

प्रश्न १९ - अनुयोग श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर - अंतिम प्रतिपत्तिसमासज्ञान के भेद में एक अक्षर की वृद्धि होने से अनुयोग श्रुतज्ञान होता है। इस ज्ञान के द्वारा चौदह मार्गणाओं का विस्तृत स्वरूप जाना जाता है।

प्रश्न २० - अनुयोग समास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर - अनुयोगद्वार श्रुतज्ञान के ऊपर एक अक्षर की वृद्धि होने पर अनुयोग समास श्रुतज्ञान होता है। प्राभृतप्राभृतक श्रुतज्ञान के पहले अनुयोग ज्ञान के ऊपर जितने ज्ञान के विकल्प हैं वे सब अनुयोग समास श्रुतज्ञान के भेद जानना।

प्रश्न २१ - प्राभृतप्राभृत श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर - अनुयोग ज्ञान के ऊपर पूर्वोक्त क्रम के अनुसार एक-एक अक्षर की वृद्धि होते होते जब चतुरादि अनुयोगों की वृद्धि हो जाय तब उसे प्राभृतप्राभृत श्रुतज्ञान कहते हैं।

प्राभृत और अधिकार ये दोनों शब्द एक ही अर्थ के वाचक हैं। अतएव प्राभृत के अधिकार को प्राभृतप्राभृत कहते हैं।

वस्तु नाम श्रुतज्ञान के एक अधिकार को प्राभृत और अधिकार के अधिकार को प्राभृतप्राभृत कहते हैं।

प्रश्न २२ - प्राभृतप्राभृत समास श्रुतज्ञान कब होता है ?

उत्तर - प्राभृतप्राभृतश्रुतज्ञान के ऊपर एक अक्षर की वृद्धि होने पर प्राभृतप्राभृत समास श्रुतज्ञान होता है। प्राभृतश्रुतज्ञान के पहले और प्राभृतप्राभृतश्रुतज्ञान के ऊपर जितने ज्ञान के विकल्प हैं वे सभी प्राभृतप्राभृत समास श्रुतज्ञान के भेद जानना।

प्रश्न २३ - प्राभृत श्रुतज्ञान कब होता है ?

उत्तर - प्राभृतप्राभृतश्रुतज्ञान के ऊपर पूर्वोक्त क्रम से एक-एक अक्षर की वृद्धि होते होते जब चौबीस प्राभृत की वृद्धि हो जाय तब एक प्राभृत श्रुतज्ञान होता है।

प्रश्न २४ - प्राभृतसमास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर - प्राभृतश्रुतज्ञान के ऊपर एक अक्षर की वृद्धि होने पर प्राभृत समास श्रुतज्ञान होता है। वस्तु ज्ञान के पहले और प्राभृत ज्ञान के ऊपर जितने विकल्प हैं वे सब प्राभृतसमास ज्ञान के भेद हैं।

प्रश्न २५ - वस्तु श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर - प्राभृतसमासश्रुतज्ञान के ऊपर एक-एक अक्षर की वृद्धि होते होते जब क्रम से बीस प्राभृत की वृद्धि हो जाय तब एक वस्तु अधिकार पूर्ण होता है पूर्व श्रुतज्ञान के जितने अधिकार हैं। उनकी अलग-अलग वस्तु संज्ञा है। उत्कृष्ट प्राभृत समास में एक अक्षर की वृद्धि होने से वस्तु नामक श्रुतज्ञान पूर्ण होता है।

प्रश्न २६ - वस्तु समास श्रुतज्ञान कब होता है ?

उत्तर - वस्तु श्रुतज्ञान के ऊपर एक अक्षर की वृद्धि होने पर वस्तु समास श्रुतज्ञान होता है। इस प्रकार

एक–एक अक्षर की वृद्धि होते हुये एक अक्षर न्यून पूर्व श्रुतज्ञान के प्राप्त होने तक वस्तु समास श्रुतज्ञान होता है।

प्रश्न २७ – पूर्व श्रुतज्ञान कब होता है ?

उत्तर – वस्तु समास श्रुतज्ञान के ऊपर एक अक्षर की वृद्धि होने पर पूर्व श्रुतज्ञान होता है।

प्रश्न २८ – पूर्व समास श्रुतज्ञान कब होता है ?

उत्तर – इस उत्पाद पूर्व श्रुतज्ञान के ऊपर एक अक्षर की वृद्धि होने पर पूर्व समास श्रुतज्ञान होता है।

प्रश्न २९ – द्वादशाङ्ग के समस्त पदों की संख्या कितनी है ?

उत्तर – द्वादशाङ्ग के समस्त पद एक सौ बारह करोड़ तिरासी लाख अट्ठावन हजार पाँच (११२८३५८००५) होते हैं।

प्रश्न ३० – अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य श्रुत के समस्त अपुनरुक्त अक्षर कितने हैं ?

उत्तर – (१८४४६७४४०७ ३७०९५५१६१५) एक लाख, चौरासी हजार, चार सौ सड़सठ कोड़ाकोड़ी, चबालीस लाख, सात हजार, तीन सौ सत्तर करोड़, पंचानवे लाख, इक्कावन हजार, छह सौ पन्द्रह। अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य श्रुत के समस्त अपुनरुक्त अक्षर हैं। (पुनरुक्त अक्षरों की संख्या का नियम नहीं है)

प्रश्न ३१ – पूर्वोक्त अपुनरुक्त अक्षरों को समझने की प्रक्रिया क्या है ?

उत्तर – तेतीस व्यंजन सत्ताईस स्वर चार योगवाह इस तरह कुल चौंसठ मूलवर्ण होते हैं।
स्वर के बिना जिनका उच्चारण न हो सके ऐसे अर्धाक्षरों को व्यंजन कहते हैं। उनके क् ख् से ह् पर्यन्त तेतीस भेद हैं। अ इ उ ॠ ऌ ए ऐ ओ औ ये नव स्वर हैं, इनके ह्रस्व दीर्घ प्लुत की अपेक्षा सत्ताईस भेद होते हैं। अनुस्वार विसर्ग जिव्हामूलीय उपध्मानीय ये चार योगवाह हैं। सब मिलकर चौंसठ अनादि निधन मूलवर्ण हैं। उक्त चौंसठ अक्षरों का बिरलन करके प्रत्येक के ऊपर दो अंक देकर परस्पर सम्पूर्ण दो के अंकों का गुणा करने से लब्धराशि में एक घटा देने पर जो प्रमाण रहता है उतने ही श्रुत ज्ञान के अपुनरुक्त अक्षर होते हैं।

प्रश्न ३२ – अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य श्रुत के अक्षरों का विभाग क्या है ?

उत्तर – मध्यम पद के अक्षरों का जो प्रमाण है उसका समस्त अक्षरों के प्रमाण में भाग देने से जो लब्ध आवे उतने अंग और पूर्वगत मध्यम पद होते हैं। शेष जितने अक्षर रहें उतना अंगबाह्य अक्षरों का प्रमाण है।

प्रश्न ३३ – अंगबाह्य अक्षर कितने हैं ?

उत्तर – आठ करोड़ एक लाख आठ हजार एक सौ पचहत्तर (८०१०८१७५) अंगबाह्य अक्षरों का प्रमाण है। इतने अक्षरों में से एक मध्यम पद नहीं बनता अत: इसे अंगबाह्य कहते हैं।

....

मॉडल प्रश्न पत्र

श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय

पंचम वर्ष (शास्त्री)

प्रथम प्रश्न पत्र - श्री श्रावकाचार जी एवं जीव समास

[चारित्र निर्णय]

मॉडल प्रश्न पत्र

समय - ३ घंटा पूर्णांक - १००

नोट - सभी प्रश्न हल करना अनिवार्य है। शुद्ध व स्पष्ट लेखन पर अंक दिये जावेंगे।

प्रश्न ०१ - रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये । (अंक २×५=१०)

(क) जो पूरे एक शरीर का मालिक हो उसे........कहते हैं। (ख) उत्पत्ति के स्थान को...........कहते हैं।

(ग) संसारी जीवों के कुलों की संख्या...........करोड़ है। (घ) जीवों के क्षुद्र भव.................होते हैं।

(ङ) चारों ओर से पुद्‌गलों का ग्रहण करके अवयव गढ़ना.......................जन्म है।

प्रश्न ०२ - सत्य/असत्य कथन चुनकर लिखिये । (अंक २×५=१०)

(क) स्वरूप को बाहर प्रकट करना उपगूहन है। (ख) बिना दी हुई वस्तु का लेना स्तेय है।

(ग) ब्रह्म शब्द का अर्थ निर्मल ज्ञान स्वभाव आत्मा है। (घ) आत्मज्ञान के बिना अनशन आदि तप अशुद्ध हैं।

(ङ) शुद्ध षट् कर्मों का पालन अविरत सम्यग्दृष्टि करते हैं।

प्रश्न ०३ - निम्नलिखित शब्दों की सही जोड़ी बनाइये । (अंक २×५=१०)

स्तंभ क	-	**स्तंभ ख**
शील	-	३७७३
श्वासों का एक मुहूर्त	-	१८०००
एकेन्द्रिय के क्षुद्र भव	-	दो से चार इन्द्रिय
विकलेन्द्रिय	-	पाँच इन्द्रिय
सकलेन्द्रिय	-	६०१२

प्रश्न ०४ - सही विकल्प चुनकर लिखिये । (अंक २×५=१०)

(क) न किंचन: इति...... -	(१) परिग्रह:	(२) अकिंचन:	(३) ब्रह्मचर्य:	(४) अस्तेय:
(ख) स्थावर जीवों की इन्द्रिय -	(१) रसना	(२) घ्राण	(३) चक्षु	(४) स्पर्शन
(ग) सर्व व्रतों में प्रधान व्रत है -	(१) सत्य	(२) अहिंसा	(३) अपरिग्रह	(४) अस्तेय
(घ) स्व-पर का यथार्थ निर्णय है -	(१) अमूढ़दृष्टि	(२) नि:शंकित	(३) उपगूहन	(४) प्रभावना
(ङ) सम्मूर्च्छन मनुष्यों की आकृति -	(१) निगोदाकार	(२) मनुष्याकार	(३) तिर्यंचाकार	(४) नारकी

प्रश्न ०५ - किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर ५० शब्दों में लिखिये । (अंक ४×५=२०)

(१) उपगूहन अंग की व्याख्या करो। (२) सत्याणुव्रत का लक्षण स्पष्ट कीजिये।

(३) महाव्रती के लिये अचौर्य व्रत की भावनायें क्या हैं ? (४) चौदह जीव समास कौन से हैं ?

(५) अपर्याप्त जीवों के भेद लिखिये। (६) सप्रतिष्ठित वनस्पति को समझाइये।

(७) सम्यग्दर्शन के आठ अंगों के नाम लिखकर किन्हीं दो का परिचय दीजिये।

प्रश्न ०६ - किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर लगभग ७० शब्दों में लिखिये । (अंक ६×५=३०)

(१) कुलकोडि अपेक्षा जीव समास लिखिये। (२) हिंसा और अहिंसा को समझाइये।

(३) जीव समास के सामान्य उन्नीस भेद लिखिये। (४) जन्म की अपेक्षा जीवों के भेद लिखिये।

(५) योनियों के प्रकार भेद का वर्णन करें। (६) शरीर अवगाहना के प्रकार बतलाइये।

(७) शुद्ध षट्कर्म क्या हैं, नाम लिखकर संक्षिप्त परिचय दीजिये।

प्रश्न ०७ - किसी एक प्रश्न का उत्तर लगभग ३०० शब्दों में लिखिये । (अंक १×१०=१०)

(अ) सत्य का परिचय (ब) परिग्रह का परिचय **अथवा**

(क) जीवसमास का ज्ञान क्यों आवश्यक है, इससे क्या शिक्षा मिलती है ? (ख) ५७ या ९८ जीवसमास को विस्तृत लिखें।

श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय

मॉडल प्रश्न पत्र

पंचम वर्ष (शास्त्री)

द्वितीय प्रश्न पत्र - योगसार एवं सिद्ध स्वभाव

मॉडल प्रश्न पत्र

समय - ३ घंटा [स्वभाव निर्णय] पूर्णांक - १००

नोट - सभी प्रश्न हल करना अनिवार्य है। शुद्ध स्पष्ट लेखन पर अंक दिये जावेंगे।

प्रश्न ०१ - रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये। (अंक २×५=१०)

(क) योगसार का प्रतिपाद्य..............के समान ही है। (ख) सिद्ध स्वभाव..................का ग्रन्थ है।

(ग) ....आनंद ही बाधारहित है। (घ) शक्तिपने तो प्रत्येक आत्मा................है।

(ङ) परिणामों से ही...................का..................कहा गया है।

प्रश्न ०२ - सत्य/असत्य कथन चुनकर लिखिये। (अंक २×५=१०)

(क) आत्मा त्रिकाल ज्ञानमयी है। (ख) आत्मा स्व - पर प्रकाशक है।

(ग) ज्ञानी निश्चय - व्यवहार से दान देता है। (घ) आपत्तियों से जर्जरित नरक वास की तरह शरीर का वास है।

(ङ) जो लोकाकाश प्रमाण असंख्यात शुद्ध प्रदेशों से पूर्ण है वही अपना आत्मा है।

प्रश्न ०३ - सही जोड़ी बनाइये। (अंक २×५=१०)

स्तंभ क	-	**स्तंभ ख**
आत्मा स्फटिक	-	प्रतापवान
आत्मा अग्नि	-	प्रकाशवान
आत्मा चांदी	-	निर्मल परिणमनशील
आत्म रत्न	-	उज्ज्वल
आत्म सूर्य	-	प्रज्वलित

प्रश्न ०४ - सही विकल्प चुनकर लिखिये। (अंक २×५=१०)

(क) सम्यग्दर्शन का स्वामी है।	(१) ज्ञानी	(२) पंडित	(३) ध्यानी	(४) जीव
(ख) आत्मरती जीव नहीं बांधता।	(१) कर्म	(२) मर्म	(३) धर्म	(४) शर्म
(ग) माया के अभाव में होता है।	(१) मार्दव	(२) आर्जव	(३) सत्य	(४) शौच
(घ) निर्मोही होकर देखना -	(१) आत्मा	(२) शरीर	(३) पर्याय	(४) कर्म
(ङ) आत्मा के तीन लक्षण हैं -	(१) उत्पाद व्यय ध्रौव्य	(२) राग द्वेष मोह	(३) ज्ञान दर्शन	(४) रत्नत्रय

प्रश्न ०५ - किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर लगभग ५० शब्दों में दीजिये। (अंक ४×५=२०)

(१) समय का सर्वांग स्वरूप क्या है ? (२) चोरी के पाँच भेद लिखिये ?

(३) सूत्र तीन के अनुसार साधु का स्वरूप लिखें। (४) परम समाधि शिव सुख का कारण है, सिद्ध करो।

(५) सम्यक्त्वी ही पंडित और प्रधान है, बताइये। (६) जीव सदा अकेला है, कैसे ?

(७) आत्मानुभव का फल केवलज्ञान कैसे है, बताइये।

प्रश्न ०६ - किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर लगभग ७० शब्दों में लिखिये। (अंक ६×५=३०)

(१) जीव अजीव का भेदज्ञान करने से क्या लाभ है ? (२) पुरुषार्थ क्या है ?

(३) संसार का कारण क्या है ? (४) अंतरात्मा का स्वरूप बताइये।

(५) सिद्ध संपत्ति को प्राप्त करने का क्या उपाय है ? (६) व्यवहार से आत्मा शरीर प्रमाण कैसे है, बताइये।

(७) सिद्ध स्वभाव के कोई दो सूत्र अर्थ सहित लिखें। [प्रश्नपत्र में पूछे गये सूत्र छोड़कर]

प्रश्न ०७ - किसी एक प्रश्न का उत्तर लगभग १००० शब्दों में दीजिये। (अंक १×१०=१०)

(अ) सिद्ध स्वभाव का सारांश लिखें। (ब) योगसार का प्रतिपाद्य लिखें।

अथवा

(क) योगसार के आधार पर चारित्र के पाँच भेदों का विस्तार कीजिये।

श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय

मॉडल प्रश्न पत्र

पंचम वर्ष (शास्त्री)

तृतीय प्रश्न पत्र - त्रिकालवर्ती महापुरुष एवं कथानक

मॉडल प्रश्न पत्र

समय : ३ घंटा [आदर्श निर्णय] पूर्णांक : १००

नोट - सभी प्रश्न अनिवार्य हैं। शुद्ध एवं स्पष्ट लेखन पर अंक दिये जावेंगे।

प्रश्न ०१ - रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये। (अंक २×५=१०)

(क) आगम का आधार साधु वर्ग..........है। (ख) दृष्टिवाद के तीसरे भेद अनुयोग में................हजार पद हैं।

(ग) रूपमद से वैराग्य ....को हुआ। (घ) सर्वज्ञ तीर्थंकर महावीर परमदेव................हैं।

(ङ) ....माह की कृष्ण पक्ष प्रतिपदा को कृतयुग आरम्भ हुआ।

प्रश्न ०२ - सत्य/असत्य कथन चुनकर लिखिये। (अंक २×५=१०)

(क) राजा वैजयंत के पुत्र संजयंत और जयंत थे। (ख) ईशान दिशा में पांडुक शिला का वर्ण रक्त है।

(ग) कृष्ण ने चार अंगुल तक कोटि शिला उठाई थी। (घ) ऋषभदेव के समवशरण का विस्तार दस योजन था।

(ङ) भोगभूमि में दम्पत्ति दस प्रकार के कल्पवृक्षों से भोग भोगते हैं।

प्रश्न ०३ - सही जोड़ी बनाइये। (अंक २×५=१०)

स्तंभ क	-	**स्तंभ ख**
उदायन राजा	-	३२ चँवर
वारिषेण मुनि	-	१६ चँवर
वज्रकुमार मुनि	-	निर्विचिकित्सा अंग
नौ नारायण	-	स्थितिकरण अंग
चक्रवर्ती	-	प्रभावना अंग

प्रश्न ०४ - सही विकल्प चुनकर लिखिए। (अंक २×५=१०)

(क) जिनदत्त सेठ ने विद्या किसे दी थी ? (१) सोमदत्त (२) अंजनचोर (३) निरंक (४) मणिकांजन

(ख) श्रीकृष्ण को तीर्थंकरप्रकृति किस दान से हुआ -(१) ज्ञान (२) अभय (३) औषधि (४) आहार

(ग) वृषभदेव किसके गणधर हुए ? (१) ऋषभदेव (२) महावीर (३) नमिनाथ (४) चंद्रप्रभु

(घ) अंत:कृत केवली कौन थे ? (१) पार्श्वनाथ (२) गजकुमार (३) श्रीधर (४) भरत

(ङ) ये सभी अधोगति जाते हैं - (१) नारद (२) बलदेव (३) रुद्र (४) नारायण

प्रश्न ०५ - किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर लगभग ५० शब्दों में लिखिए। (अंक ४×५=२०)

(१) नारायण का स्वरूप लिखिये। (२) नौ प्रतिनारायण के नाम लिखिये।

(३) १६९ महापुरुषों में कौन विशेष प्रसिद्ध हुए ? (४) त्रेषठ शलाका पुरुष कहाँ से आकर जन्म लेते हैं ?

(५) १६९ महापुरुषों का संक्षिप्त परिचय दीजिये। (६) कुलकर किसे कहते हैं, नाम लिखिये।

(७) भोगभूमि युगलों का परिचय दीजिये।

प्रश्न ०६ - किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर लगभग ७० शब्दों में लिखिए। (अंक ६×५=३०)

(१) प्रथम चक्रवर्ती भरत के वैभव का परिचय लिखिये। (२) योग निरोध क्या है ?

(३) किसी एक कथानक का सारांश और शिक्षा लिखें। (४) मृत्यु, मोक्ष और समाधि में अंतर बताइये।

(५) तीर्थंकर प्रकृति का बंध विषय पर टिप्पणी लिखिये। (६) तीर्थंकर विषय पर टिप्पणी लिखिये।

(७) भोगभूमि का सम्पूर्ण स्वरूप लिखिये ?

प्रश्न ०७ - किसी एक प्रश्न का उत्तर १००० शब्दों में लिखिये। (अंक १×१०=१०)

(अ) तीर्थंकरों के पंच कल्याणक **अथवा**

(ब) समवशरण का स्वरूप **अथवा**

(स) प्रथमानुयोग का स्वरूप।

श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय

मॉडल प्रश्न पत्र

पंचम वर्ष (शास्त्री)

चतुर्थ प्रश्न पत्र - श्री ज्ञानसमुच्चयसार जी, नय परिचय, श्रुतज्ञान

मॉडल प्रश्न पत्र

समय : ३ घंटा [सार निर्णय] पूर्णांक - १००

नोट - सभी प्रश्न अनिवार्य हैं। शुद्ध एवं स्पष्ट लेखन पर अंक दिये जायेंगे।

प्रश्न ०१ - रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये। (अंक २×५=१०)

(क) ज्ञानसमुच्चयसार जी में ....गाथायें हैं। (ख) ज्ञाता के अभिप्राय को .... कहते हैं।

(ग) नय स्याद्वादरूप सम्यक् ....के अंश हैं। (घ) ....को प्रमाण कहते हैं।

(ङ) आत्मा के ऊर्ध्वगामी स्वभाव का अनुभव करना ......गुण है।

प्रश्न ०२ - सत्य/असत्य कथन चुनकर लिखिये। (अंक २×५=१०)

(क) श्रुतज्ञान का विकल्प नय है। (ख) 'यह द्रव्य है' अन्वय द्रव्यार्थिक नय है।

(ग) 'मति ज्ञानादि जीव के हैं' यह अशुद्ध निश्चय नय का कथन है। (घ) मोहन का शरीर है।

(ङ) व्यवहार नय से दिया जाने वाला दान सद्गति का कारण होता है।

प्रश्न ०३ - सही जोड़ी बनाइये। (अंक २×५=१०)

स्तंभ क	-	**स्तंभ ख**
प्रथमं भाव	-	समस्त संसारी जीव
आत्मा	-	दृष्टि मुक्त
परम शुद्ध निश्चय नय	-	शुद्धात्म भावेन
क्षायिक सम्यग्दृष्टि	-	सुद्धं च
अशुद्ध निश्चय नय	-	प्रथम से बारहवें गुणस्थान तक

प्रश्न ०४ - सही विकल्प चुनकर लिखिए। (अंक २×५=१०)

(क) भोग, उपभोग, जीवन, इन्द्रिय का होता है - (१) लालच (२) लोभ (३) ध्यान (४) संयोग

(ख) राग द्वेषादि भाव हैं - (१) शुद्ध (२) शुभ (३) अशुभ (४) अन्य

(ग) 'देवदत्त पिता हैं' यह कथन है - (१) नास्ति (२) अस्ति (३) वक्तव्य (४) अवक्तव्य

(घ) प्रत्येक वस्तु में अनंत शक्ति है, वह है - (१) गुण (२) लक्षण (३) भेद (४) अन्य

(ङ) 'इसका नाम राम है' यह नय का कथन है - (१) अर्थ (२) ज्ञान (३) शब्द (४) नैगम

प्रश्न ०५ - किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर ५० शब्दों में लिखिए। (अंक ४×५=२०)

(१) सप्तभंग कौन से हैं, समझाइये। (२) नय क्या है ? नय का स्वरूप क्या है ?

(३) तीन मूढ़ताओं को स्पष्ट कीजिये। (४) श्रुतज्ञान के भेद विस्तार से बताइये।

(५) आठ मदों का स्वरूप बताइये। (६) प्रमाण और नय का सम्बंध बताइये।

(७) निश्चय नय को भूतार्थ और व्यवहार नय को अभूतार्थ क्यों कहा गया है ?

प्रश्न ०६ - किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर ७० शब्दों में लिखिए। (अंक ५×६=३०)

(१) चार दान का स्वरूप विस्तार से लिखिये। (२) पद कितने प्रकार के होते हैं, स्पष्ट कीजिये।

(३) निश्चय नय को भेद - प्रभेद सहित स्पष्ट करें। (४) द्रव्यार्थिक नय को भेद - प्रभेद सहित बताइये।

(५) पर्यायार्थिक नय को भेद - प्रभेद सहित बताइये। (६) अनेकांत और स्याद्वाद को समझाइये।

(७) जिन मार्ग में दोनों नयों का ग्रहण कैसे होता है ?

प्रश्न ०७ - किसी एक विषय पर १००० शब्दों में टिप्पणी लिखिए। (अंक१०×१=१०)

(अ) श्री ज्ञानसमुच्चयसार जी का परिचय व सार लिखिये। **अथवा**

(ब) नैगमादि सप्त नयों का स्वरूप समझाइये।

।। वन्दे श्री गुरु तारणम्।।

श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय

संचालन संस्था - श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान, संबद्ध - श्री सम्मेद शिखर जी मधुबन जिला - गिरिडीह (झारखंड)

संचालन कार्यालय - श्री तारण भवन, संत तारण तरण मार्ग, छोटी बाजार, छिन्दवाड़ा (म.प्र.) फोन : ०७१६२-२४५२७८

प्रवेश आवेदन पत्र

मैं श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय में ज्ञानोपार्जन की भावना से अध्ययन हेतु प्रवेश पाने हेतु इच्छुक हूँ। अत: निवेदन है कि आप मुझे प्रवेश हेतु स्वीकृति प्रदान करें।

मेरी व्यक्तिगत आवश्यक जानकारी निम्नानुसार है -

प्रवेशार्थी स्वयं का पासपोर्ट साइज फोटो लगायें

१. नाम - श्री/कु./श्रीमती/सुश्री : ....

२. पिता/ पति श्री : .... ३. जन्म तिथि : ...../...../..... उम्र : .... जन्मस्थान: ....

४. पुरुष/महिला : .... जाति : .... लौकिक शिक्षा : ....

५. पत्र व्यवहार का पूरा पता (पिनकोड सहित) : ....

विकासखंड : .... तहसील : .... जिला/प्रदेश : ....पिनकोड : ....

६. फोन व मोबाइल : .... ईमेल/फेक्स : .... प्रवेश शुल्क : ....

७. प्रवेश वर्ष (जिस वर्ष में प्रवेश लेना हो उस वर्ष में सही का चिन्ह लगायें)(प्रथम वर्ष उत्तीर्ण होने पर ही अगले वर्ष की पात्रता होगी)

प्रथम वर्ष (प्रवेश) ☐ द्वितीय वर्ष (परिचय) ☐ तृतीय वर्ष (प्रवीण) ☐

चतुर्थ वर्ष (प्रज्ञ) ☐ पंचम वर्ष (शास्त्री) ☐

८. प्रवेश वर्ग - (प्रवेशार्थी अपनी उम्र के अनुसार प्रवेश वर्ग में सही का चिन्ह लगायें)

दर्शन वर्ग ☐ (१५ से २५ वर्ष) ज्ञान वर्ग ☐ (२६ से ४० वर्ष) ममल वर्ग ☐ (४१ वर्ष से ऊपर)

९. श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय द्वारा संचालित **गत वर्ष** उत्तीर्ण की गई परीक्षा का विवरण -

प्रवेश वर्ष का नाम	उत्तीर्ण वर्ष	प्राप्तांक	प्रतिशत	श्रेणी	अनुक्रमाँक

एतद् द्वारा मैं प्रमाणित करता हूँ/करती हूँ कि मुझसे संबंधित उपरोक्त जानकारी सत्य है। श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय द्वारा निर्देशित समस्त नियम मुझे स्वीकार हैं और मैं इन नियमों का निष्ठापूर्वक पालन करूँगा/ करूँगी।

पालक का नाम एवं हस्ताक्षर

विद्यार्थी के हस्ताक्षर एवं पूरा नाम

दिनाँक : ....../...../.....

स्थान : ....

रसीद क्र.-..................दिनांक....................

नोट - यह प्रवेश पत्र पाँचों वर्षों के लिये है, प्रवेशार्थी इसको काटकर भरें एवं निर्धारित शुल्कसहित संयोजक के माध्यम से छिंदवाड़ा भेजें।